151443

वर्ष १६
अंक ३
क्रमांक १८३

फाल्गुन
संवत् १९९१
मार्च
सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

एक उपास्य देव।
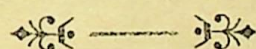
यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये॥

अथर्ववेद ७।८७।१

"जो देव अग्निमें, जलोंमें, औषधियों और वनस्पतियोंमें प्रविष्ट होकर रहा है, जो इन सब भुवनोंको बनाता और बढाता है, उस तेजस्वी देवके लिये हमारा नमस्कार हो।"

जो संपूर्ण विश्वका निर्माण करनेवाला देव है, वह एक ही समर्थ ईश्वर है और वह सर्वत्र व्यापक है। कोई वस्तु उससे पृथक् नहीं है। सब पदार्थ उसकी सामर्थ्य से भरपूर हुए हैं। मानो वह हरएक वस्तुके रूपमें हमें साक्षात्कार दे रहा है। मनुष्य अपने मनको ऐसा तैयार करके उस साक्षात्कारका अनुभव लें और अपने अन्दर उस परमात्माको देखे।

14,VED-D
151443

पूर्वकालीन भारत वर्ष ।

यह बतानेकी कुछ भी आवश्यकता अब प्रतीत नहीं होती कि, विश्वसभ्यताकी जननी आर्यजाति और आर्यभूमि ही है। पक्षपातरहित पाश्चात्य गवेषकोंने विशद गवेषणाके अनन्तर अब इस बातको स्वीकार कर लिया है कि, स्वयम्भू मनुके पुत्र विश्वविजयी प्रियव्रतने जम्बू, प्लक्ष, पुष्कर, क्रौञ्च, शक, शाल्मली और कुशद्वीप जो आज एशिया, दक्षिणअमेरिका, उत्तरामेरिका, अफ्रिका, योरोप, आष्ट्रेलिया और अविलेनियाके नामसे प्रसिद्ध हैं, पृथ्वीके सप्त खण्डोंमें बांट दिया था, इसी लिये प्रसिद्ध है।

सप्तद्वीपा वसुमती ।

महाभारतके सभापर्वमें लिखा है कि, दिग्विजय के लिये निकले पाण्डवोंने ब्रह्मा, श्याम, चीन, तिब्बत, मङ्गोलिया, तातार, बिलोचिस्थान, फारस काबुल, कान्धार, पहिली बार जीता था। अरब, लङ्का, मिश्र, जञ्जीबार, अफ्रिका आदिमें दूसरी बार उनने विजयकी पताकायें गाडी थीं। अर्जुनका अमेरिकामें जाकर नागराजकी पुत्री उलूपीसे विवाह करना प्रसिद्ध ही है। ऋग्वेदमें लिखा है कि, सुदास समस्त वसुमतीका शासक था। विजित स्थानोंमें विजयियोंके वीर पुरुष रह जाते थे, वे ब्राह्मण और पुरोहितोंके अभावसे स्वधर्मज्ञानशून्य होकर म्लेच्छ हो गये। देखो मनुको—

> शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
> वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥
> पौण्ड्राश्चोड्रद्रविडकाः काम्बोजाः यवनाः शकाः ।
> पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥

विदेशोंमें रहनेवाले क्षत्रिय क्रियाओंके लोप और ब्राह्मणोंके अदर्शनसे वृषलत्वको प्राप्त हो गये। वे पौण्ड्र, उड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीनी, किरात, दरद और खश, इन नामोंसे प्रसिद्ध हुए। मनुस्मृति बननेके पूर्व हिन्दुओंका स्वामित्व सभी देशोंमें था।

"कौण्ट जोर्न्स जेर्ना" ने लिखा है कि, "आर्यावर्त केवल धर्महीकी भूमि नहीं प्रत्युत सभ्यताकी भी है"। यह पश्चिममें "इथियोपिया, मिश्र, फिनिशियादि, पूर्वमें श्याम, चीन, जापानादि, दक्षिणमें लङ्का, जावा, सुमात्रादि और उत्तरमें फारस, कालडिया, कोलचिस आदि देशोंतक फैली हुई थी"। इन देशोंमें अब भी हिन्दुस्थानके वाणी, वेशका प्रभाव दीख पडता है। ग्रीसकी-रोमकी लैटिन भाषा अब भी संस्कृतके प्रचुर शब्दोंका प्रयोग करती है। देखिये—

संस्कृतभाषा,	ग्रीकभाषा,
अक्षिवान्	इक्सिओन्
हरित्	आरिट्
पितरः	पेतर्
ददामि	ददोमि
अस्मि	एस्मि
अस्ति	एस्ति
मातरः	मातर
ददासि	ददोसि

अब संस्कृत और लैटिनका भी कुछ साम्य देखिये। जैसे—

संस्कृत,	लैटिन,	संस्कृत,	लैटिन,
विश्वकर्मा	वलकरन	सूर्यः	सोलह
तृतिया	तेरतिया	नवमः	नोव
अस्ति	एस्त	अस्मि	साम

ईसाके २७०० वर्ष पहिलेका चीनराज्य अत्यन्त प्रतिष्ठित था। भारतको छोडकर इसकी प्राचीनता

अन्य सभी देशोंसे प्राचीन है, किन्तु चीनियोंकी "सुकिग" नामक पुस्तकमें लिखा है कि, चीनियोंके पूर्व पुरुष चीनके पश्चिमीय पर्वत हिमालयसे आकर बसे थे। राजसूय यज्ञके अवसरपर अर्जुनने चीनके भगदत्तको हराया था। चीन और भारतका यातायात बहुत प्राचीन है। चीनके कपडेकी प्रशंसा हमारे प्राचीन ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायणमें भी आयी है। भट्टि कविने भी बहुत कुछ चीनके वस्त्रके विषयमें कहा है। कालिदासने शाकुन्तलमें लिखा है—

"चीनांशुकमिकेतोः प्रतिवातं नीयमानस्य"

भारतोत्पन्न बुद्ध भगवान्का प्रभाव सबसे अधिक चीन ही पर पडा है। डी० ओ० बाऊन और थरन्टर साहबका स्पष्ट सिद्धान्त है कि "धर्मादिके विषयमें हिन्दू सभ्योंके गुरु हैं" "अत्यन्त प्राचीन कालमें जब इटली और ग्रीसमें असभ्य और बर्बर जातियां क्रीडा करती थीं, उस समय भारत अत्युच्च सभ्यताका केन्द्र था।"

दिन जाते देर नहीं लगती। सर्वत्र परिवर्तनहीका आधिपत्य है। देखतेही देखते हम औरके और हो गये। जहां आज समुद्र है, वहां कभी पर्वत और जहां विशालश्रृङ्ग पर्वत है वहां समुद्र रहे होंगे। जो पहिल आर्यावर्तके नामसे प्रसिद्ध था वही भारतवर्ष बना और जो भारत था, वही हिन्दुस्थान और अब इण्डियाके नामसे प्रसिद्ध है। आज मैं अपने पाठकोंके सामने अनेक देशोंके प्राचीन और अर्वाचीन नाम रखता हूं जिससे वे समझ सकेंगे कि, प्राचीन कालमें कौन देश किस नामसे प्रसिद्ध था और अब उसका क्या नाम है—

प्राचीन नाम	नवीन नाम
विष्णूक्रान्तः, आसेचनकः	एशिया
अश्वक्रान्तः	योरोप
रथक्रान्तः, सूर्यारिका	आफ्रिका
रमणकः	आष्ट्रेलिया
कुमारद्वीपः, माहेयः, स्वर्णभूमिः	अमरिका
भ्रावर्तनम्	बृटानिया
स्नमः, रोमः पटच्चरः	रोम
पतिदेशः, रोमन्तः	इटली
क्रमथः, कमलुः, क्रौंचः	जर्मनी
कुहकः, प्रलीपा	फ्रांस
मारकः	डेनमार्क
इन्दुद्वीपः, इन्द्रद्वीपः	इङ्गलैण्ड
भावकच्छम्	पर्तगाल
कुक्कुट	बेल्जियम
अश्वीया, अश्वकः	ओष्ट्रिया
तामसदेशः	स्पेन
माठकः	स्केनडिनेविया
तुरुष्कस्थानम्	टर्की
तालनोषकः, तिर्वतम्	तिब्बत
शैलराज्यम्, पार्स्तम्	तातार
खशः	ईरान
यावनम्	मक्का
पारस्यम्, पारसी	फारस
स्नषः	रूस
होरवः	साइबेरिया
पारदः, चीनः	चीन
आवर्तः, काम्बोजः	अरब
नादिनाम, कारस्करः	मदीना
गान्धारः	कन्धार
मणिद्वीपः	जापान
गान्धर्वः, स्कलावासः, लङ्का	सीलोन
चन्द्रशङ्कम्, सौम्यम्, तारकटः, मारीवासः, सैनिकः	हालेण्ड
ब्रम्हदेशः	बर्मा
कुमारिका, भारतवर्षम्, नाभिवर्षम्, कर्मभूमिः, आर्यावर्तः, हिन्दुस्थानम्	इण्डिया
दरदः	भोटान
पंचनदः	पंजाब
गारिकम्, काश्मीरः	काश्मीर
कृष्णपुरी, मधुपुरम्, सूरसेनम्, मथुरा	मथुरा
भृङ्गदेशः	सिंगापुर
दरदलिंगम्	दारजिलिंग
वाराणसी, काशी, आनन्दवन	बनारस
हस्तिनापुरम्, इन्द्रप्रस्थः	देहली, दिल्ली

गङ्गाद्वारम्, बद्रिकक्षेत्र	बद्रिकाश्रम
अवन्ती, धारा, विशाला, पुष्करवर्तिनी, उज्जयिनी	उज्जैन
गुर्जरः	गुजरात
कांजी	कर्नाटक
माहिषकः, महीसूरः	मैसूर
मलयः	मालावार
उत्कलः, श्रीक्षेत्रम्	उडीसा
ओड्रः	कटक
विदेहस्थानम्, मिथिला	तिर्हुत
कामरूपम्	आसाम
लवपुरम्	लाहौर
योधपुरम्	जोधपुर
लक्ष्मणपुरम्	लखनऊ
विक्रमपुरम्	बीकानेर
मयराष्ट्रम्	मेरठ
कालीक्षेत्रम्	कलकत्ता
पुरुषपुरम्	पेशावर
मुम्बापुरी, मोहमयी	बम्बई
अजमीढः	अजमेर
पुष्पपुरम्, पाटलिपुत्रम्	पटना

इत्यादिक अनेकों नाम जिस भांति परिवर्तित हो गये हैं उसी भांति प्रत्येक स्थानोंके आचार विचार में भी महान् अन्तर आ गया है। किन्तु हैं सभी भारतीय और सबका भारतसे सदा सम्बन्ध रहा है। महाभारतके देखनेसे भली विधि जाना जाता है कि,कुरु पाण्डवोंके युद्धमें इन सभी देशोंके योद्धा युद्धार्थ आये हैं।

जो भूमण्डल पहिले सप्तखण्डों तथा प्रतिखण्डोंके विविध खण्डोंमें खण्डित था वही आज पांच टुकडोंमें विभक्त है, जैसे एशिया, यूरोप, आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, और अमेरिका। एशियामें भारत, चीन, जापान, सीरिया, परसिया, मञ्चोरिया, कोरिया, मङ्गोलिया, साइबेरिया, ईरान, अफगानिस्तान, काबुल, मेसोपोटामिया, अरब, बिलोचिस्तान, श्याम, बोर्नियो जावा और सुमात्रा है। यूरोपमें वृटेनियां (इङ्गलैण्ड, आयर्लेण्ड, स्काटलेण्ड) बेल्जियम, जर्मन, होलेण्ड, डेनमार्क, नार्वेस्वीडेन, रूस, आष्ट्रिया, हङ्गरी, रोमानिया, बल्गेरिया, इटली, ग्रीस, और तुर्क संज्ञक देश हैं। आफ्रिकामें ईजिप्ट, मोरक्को, अल्जिरिया, ट्युनिसिया, लिबिया, सहारा (मरुभूमि), आङ्गल सुडान, फ्रेंच सूडाना नाईजीरिया, अबिसिनिया, एरिट्रिया, बृटिश सोमालीलेण्ड, सियेरालियोनि, गोल्डकोष्ट, केमेरून्स, बेल्जियन कांगो, केनिया, टङ्गारिका, जञ्जीबरपेम्बा,पोर्तुगले,पूर्वीयाफ्रिका, रोडेसिया, केपटाउन, नेटाल, ट्रांसवाल, मडागास्कर, मारिशस्, रीयूनियन्, और एटलांटिक महासागर आदि देश हैं। आष्ट्रेलियामें विक्टोरिया, न्यू साउथवेल्स, दक्षिणाष्ट्रेलिया, पश्चिमाष्ट्रेलिया, उत्तराष्ट्रेलिया, टस्मेनिया, न्यूज़ीलेण्ड, फीजी और गायना है। अमेरिकामें केनाडा, संयुक्तराज्य (न्यूयार्क, बोष्टन, फिलेडेल्फिया, वाशिङ्गटन शिकागो आदि), मेक्सिको, ग्वटेमेला, हण्डूरस, सेन्सल्, वेडर, निकरग्वा, कोष्टरिका, बृटिश हण्डूरस, वेष्ट इण्डीज द्वीपसमूह, भेंजुला, गायना, ब्राजिल, आर्जेन्टिनो, अरुग्वे, पारुग्वे, पटगोनिया, फाक्लेण्ड, कोलम्बिया, ऐकुडर और पेरु बोलविया है।

संस्कृतके प्राचीन नामोंकी सूचीमें मैं बहुत वर्तमान नामोंके नामान्तर दिखा चुका हूं। जो पीछेसे बसे उनका संस्कृत नामोंका पता ही क्या लग सकता है? किन्तु पुरातन सम्बन्धके कारण यह समस्त देशसम्बन्धी ही हैं। हमें पाश्चात्योंके प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं, हम वैदिक-प्रमाणोंसे ही यह सिद्ध करनेकी चेष्टा करेंगे कि, विदेश और समुद्रयात्रा हमारी प्राचीन पद्धति है। हां! उनके सम्भाषण, संस्पर्श, संस्कृति और सहवाससे म्लेच्छत्व और शुद्धि-औचित्य अवश्य आजाता है। असंस्कृत जनताकी असंस्कृतयोनिज सन्तानें कुछ कालमें असंस्कारार्ह हो जाती हैं, ऐसा मानव सिद्धान्त है।

ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। उसमें अनेकों स्थानोंमें विदेशयात्राका उल्लेख किया

गया है। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके पचीसवें सूक्तके द्रष्टा महर्षि शुनःशेफ कहते हैं कि, "समुद्रमें तथा आकाशमें चलनेवाले जहाजोंके सबसे अधिक ज्ञाता वरुण देव हैं।" देखिये मंत्र १।२५।७॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः॥

प्रस्कण्व ऋषि प्रथम मण्डलके ४८ वें सूक्त देखते हैं "जैसे लोभी मनुष्य अपने जहाजोंको समुद्रमें भेजते हैं वैसे ही उषा समुद्रमें अपने रथोंको भेजती है।" देखिये मंत्र १।४८।३

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः॥

प्रथम मण्डलके ५६ वें सूक्तमें महर्षि सैव्य देखते हैं "जैसे धनाभिलाषी लोग समुद्रमें चारों ओर व्याप्त हो जाते हैं वैसे ही इन्द्रको यज्ञके समय हव्यवाही स्तोताओंने घेर लिया।" देखिये मंत्र १।५६।२

तम् गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रम् न सञ्चरणे सनिष्यवः। पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिम् न वेना अधिरोह तेजसा॥

ऋग्वेदके सातवें मण्डलके ८८ वें सूक्तसे तो यह भाव निकलता है कि, वसिष्ठ और वरुणने भी एक ही नावपर समुद्रयात्रा की जिससे वे बड़े प्रसन्न हुए। अश्विलोगोंके प्रिय तुग्र नामक एक राजर्षिने द्वीपान्तवर्ती दुष्टोंसे पीडित होकर उन्हें पराजित करनेके लिये अपने पुत्र भुज्युको सेना समेत नौकाओंसे भेजा था। पर वे समुद्रमें डूब गई। भुज्युको अश्विद्वय लौटा लाये ऐसा भाव ऋ० १।११६।३ में पाया जाता है।

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिम् न कश्चिन्ममृवां अवाहाः। तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः॥

सामवेदके १।३।५।९ वें मंत्रसे पता चलता है कि, उस समय विदेशोंमें मणिमाणिक्यका विक्रय किया जाता था। एक व्यापारी कहता है, हे हीरे! हे वज्र! तुम्हें हम बहुत मूल्य पाकर भी नहीं बेचेंगे।

"महेचन त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे। न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतमय।"

वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्डमें वानरोंको भेजनेका आदेश दिया गया है, प्रायः सभी स्थानोंके लिये है।

"भूमिं च कोषकाराणाम्"
"ततो रक्तजलां भूमिम्
लोहितं नाम सागरम्"

चीन और लोहित सागरमें जानेका उल्लेख इनमें है। यवद्वीप और सुवर्णद्वीप पर जो इस समय जावा और सुमात्राके नामसे प्रसिद्ध हैं, जानेका उल्लेख वाल्मीकीय रामायणमें आया है।

वाराह पुराणके द्वितीय भागमें गोकर्ण नामक व्यापारीकी कथा है जिसने व्यापारके लिये विदेशयात्रा की थी और उसका जहाज तूफानसे मार्गमें ही टूट गया था। मिताक्षराके व्यवहाराध्यायमें समुद्री व्यापारियोंको ऋण देनेकी व्यवस्था दी गई है। रघुवंशमें महाराज रघुका फारस आदि कितने ही पश्चिमीय देशोंमें जानेका वर्णन है।

'पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।' (रघु० सर्ग ४ श्लो० ६०) रत्नावली नाटिकामें लिखा है सिंहलराजपुत्री जहाजके टूट जानेसे डूबने लगी। किन्तु कौशाम्बीके व्यापारियोंने उसे बचा लिया। महाज्योतिषाचार्य वराहके पुत्र आचार्य मिहिरकी पत्नी विदुषी खना सिंहलहीकी थी। कथासरित्सागरमें प्रथम लम्बककी प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ तरङ्गमें कितनी ही जगहमें समुद्रयात्रा करनेका उल्लेख है। महाकवि दण्डीके दशकुमारचरितकी पूर्वपीठिकामें रत्नभवनामक एक वैश्यका उल्लेख है, जो कालयवन द्वीपको गया था। इसी

ग्रन्थकी उत्तर पीठिकामें चित्रगुप्तका उल्लेख हुआ है जो यवनकी नौकापर सवार था, तूफान आनेके कारण अपरिचित द्वीपमें चला गया था। हमारे चरक, सुश्रुत आदि ग्रंथोंमें जायफल, जावित्री, दारुचीनी आदि कितनी ही औषधियोंका लेख है जो भारतवर्षके बाहरसे आती हैं। इसी तरह अनेकों वेद, पुराण, स्मृति, काव्य, वैद्यक और इतिहासग्रन्थोंमें प्रमाण पाये जाते हैं जिनसे पता चलता है कि, भारतीय सदा उन्नतावस्थामें बहिर्विजय और यात्रा करते थे। जिस तरह हमें बाहरकी चीजें मोल लेनी पडती थीं उसी भांति हमारी भी चीजें बाहरवाले लेते थे। ग्रीसमें यहांसे जानेवाली चीजोंके नाम देखिये किस तरह बदले हैं।

संस्कृत नाम	ग्रीस नाम
शर्करा	शखर
कार्पास	कार्पासम्
पिप्पली	पिपरि
चन्दन	सण्टानन
नलद	नरदस
जटामासी	जटामांसी

महाभारत आदिपर्वमें लिखा है कि, अर्जुनने यन्त्रयुक्त नावमें विदेशयात्रा की थी। देखिये।

ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा,
पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम्।
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम्॥

जिस अमेरिकाका आविष्कार १५ वीं शताब्दीमें कोलम्बसने किया था उसे हमारे पूर्वज हजारों वर्षसे पूर्व जानते थे। अमेरिका और भारतीयोंका इतना निकट सम्बन्ध था कि, वहांके निवासियोंने यहांके आचारोंको भी अपना लिया था। अमेरिकाके प्रासाद शिखर भारतीय मन्दिरोंके शिखरोंके समान था। अमेरिकामें देव देवीकी मूर्तियोंका निर्माण और पूजन भारतीय विधिसे ही होता था। भारतमें जिस तरह कृष्ण और बुद्धके पद पूजे जाते हैं अमेरिकामें वैसेही "कोयेट जालकोटक" नामक देवताके चरण पूजे जाते हैं। जैसे ग्रहणके अनन्तर यहां उत्सव मनाया जाता है अमेरिकामें वैसेही आनन्द होता है। जैसे सूर्य और चन्द्रके ग्रहणका कारण राहु और केतु यहां माना जाता है वैसेही वहां "माल्य" नामक दैत्य ग्रहणका कारण कहा जाता है। करिमुखाकाररूप देवका पूजन वहां यहांके गणेशके तुल्यही होता है। जैसे यहां विजयादशमीमें उत्सव होता है वैसेही मेसिको भी सीतारामके नामसे हर्ष मनाया जाता है। वहांके पेरुदेशीय मनुष्य अपनेको सूर्यवंशी क्षत्रिय मानकर सीतारामके नामसे अब भी हर्ष मनाते हैं। उनके क्षत्रिय होनेमें आश्चर्य भी क्या हो सकता है, क्योंकि महाभारतके अनुशासन पर्वमें लिखा है—

द्राविडाश्च कुलिन्दाश्च पुलिन्दाश्चाप्युशीनराः।
कोलिसर्पा माहिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः॥
मेकला द्राविडा लाटाः पौंड्राः कोन्वशिरास्तथा।
शौण्डिका दरदा दर्वाश्चौराः शबरबर्बराः॥
किराता यवनाश्चैव तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥

तात्पर्य यह कि, यहांसे बाहर रहनेवाले क्षत्रिय ब्राह्मणोंके अदर्शनसे म्लेच्छ हो गये तत् तत् देशोंमें निवास करनेसे अनन्त कालके अनन्तर भारतकी जलवायुसे दूर होनेके कारण वर्ण, वेष, भाषा, आचार और विचार परम्परासे दूर होकरके औरके और ही हो गये।

भारतीयायुर्वेदकी महिमा पाश्चात्य विद्वान् वेबर, विल्सन, डइलियम, हन्टर आदिकोंने सर्व प्रथम गाई है। आधुनिक विद्वोंका विचार है कि चिकित्सा रोमसे चली, पर रोमदेशीयोंने वह ग्रीससे पाई थी और ग्रीसके राजपुरुष भारतमें विद्याध्ययन करनेके लिये आये,यह ग्रीसके इतिहाससे ही पता लगता है, इसलिये इस कलाका प्रवर्तक भारतही है। अधिक क्या डाक्टर हेनिमनका "विषस्य विषमौषधम्" होमियोपैथिक

भारतीयायुर्वेदमें मिलता है। आज भी यहांका नाड़ी-विज्ञान सबको चकित किये है। जिस तरह सांख्य का सिद्धान्त है कि, सत्व, रज [illegible]मकी साम्यावस्था प्रकृति और वैषम्यावस्था [illegible]कृति, साम्यावस्था मुक्ति और वैषम्यावस्था बन्ध[illegible]का कारण, वैसे ही वात, पित्त और कफकी विष[illegible]तासे दुःख, समतासे सुख, सुखी शरीरी शरी[illegible] इन्द्रिय, मन और बुद्धिको स्वच्छ रखता [illegible]आ मोक्ष प्राप्त करता है। यह वैद्यकका सिद्धान्त है, इसलिये यह मानना पड़ेगा कि, भारतीय त्रिदोषविज्ञानदर्शन मूलक है।

वासन्त, प्लेग, आ[illegible]दि रोगोंपर टीका लगानेकी प्रथा सर्वप्रथम आ[illegible]ने ही प्रकट की थी। अगद, रसायन, कौमार[illegible]त्य, शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतवि[illegible] और वाजीकरण इन आठ तंत्रोंमें आयुर्वेद विभ[illegible]क्त है। इन्हींके अन्तर्गत शरीर विभक्त, शास्त्र-विज्ञा[illegible], धात्री-विज्ञान, भेषजविज्ञान और रोग-विज्ञानादि है।

पाश्चात्योंमें अब भी कोई काष्ठज कोई धातुज औषधियोंका प्रयोग करते हैं, किन्तु आयुर्वेदमें सभी तरहकी औषधियोंके प्रयोग-की व्यवस्था की गई है। यहांका ज्योतिःशास्त्र और उसका राशिभाग उसके विचार अत्यन्त [illegible]चीन होनेपर भी अत्यन्त नवीन ही बना है। यहां [illegible] यावत् सिद्धान्त सत्य और स्थिर हैं। फ्रेंच पण्डित डाक्टर मेसमर साहबकी जिसमें मेसमेरि-[illegible]मको देखकर आज लोक चकित हो रहा है, [illegible]भारतीय उसे अनन्तकालसे जानते हैं। योग-शास्त्रकी अष्टसिद्धियोंमें "वशित्व" नामक सिद्धिके अन्तर्गत है।

अब भी यत्र तत्र यह साधुमहात्माओंके पास है। स्वामी रामकृष्ण तीर्थ अध्यात्म-[illegible]क्तिहीसे लोगोंके रोग दूर कर देते थे। हमारा [illegible]मंत्रशास्त्र जिसके बलपर अग्नि जल वायु भी उत्पन्न तथा नाश हो जाता था, अन्यत्र कहां है। अब भी उसका कुछ बचाखुचा अंश झाड फूंक करनेवाले ओझा और नातोंमें पाया जाता है। सर्प का विष कँवलरोग, मिर्गी, आदि भयंकर उपद्रव सब मंत्रके द्वारा अब भी शान्त किये जाते हैं। सर्पोंके झारने-वाले कई आदमी मिलकर जिस समय आर्तके कर्णकुहरोंमें एक साथ बडे वेग और जोरसे पाठन बोलते हैं, रोयें खडे हो जाते हैं और भारतीय मंत्रकलाका दृश्य सामने नाचने लगता है। पर हा! यह सब बातें धीरे धीरे हमारी नास्तिकता और अनुदारताके कारण नष्ट होती जाती हैं।

यही दो चार कथा भारतकी सभी कलायें किसी समय अति अत्युन्नत थीं तभी यह देश भी सर्वोच्च था अब उनकी अवनतिके साथ साथ देश भी गिर गया।

अब यदि फिर भी इसके उठानेकी विशद आकांक्षा है तो हमें खोज खोज कर अपनी प्राचीन कलायें उन्नत करनी चाहिये। विद्याध्ययन अब नौकरीके लिये नहीं स्वतन्त्रता और देशकी दलित शक्तिके उत्थानके लिये होना चाहिये। हमको अपना सिद्धान्त सब अपने ही हैं। वैर किससे किया जाय? कविका प्रचार देशविदेशमें घूमकर करना चाहिये। भाई भाईके प्रति श्रद्धा रखनी होगी तभी हम उन्नत और सुखी हो सकेंगे। भारतीयोंको सर्वप्रथम भारतकी उन्नतिके लिये भारतीय ग्रंथोंका अध्ययन करना चाहिये तभी पूर्वभारत देखनेको मिलेगा। नहीं तो सदा यही कहनेका अवसर हाथ आता रहेगा—

दिगन्तविस्तारियशोमहौजसो,
महीश्वरास्ते किल पाण्डवादयः।
अवातरन् यत्र पवित्रभूतले,
तदेव किं भारतवर्ष! वर्तसे?॥

ऐतिहासिक-दृष्टिसे अद्वैत-मत-समीक्षण।

(ले०- श्री० पं० वेदनिधिशर्मात्मज ब्र० सच्चिदानन्द, राँची बिहार प्रांत)

(क्रमाङ्क १८० से समाप्त.)

यह विशाल भूमण्डल उस अनन्त-शक्ति-सम्पन्न अनन्तके सिरपर तिलकके समान दिखाई देता है। वह इतना महान् है कि यह समस्त भूत-भव्योपाधिमय जगत् उसमें ओत-प्रोत हो रहा है। इसी भावका स्पष्टीकरण निम्नलिखित गद्य-पद्य-मय अंशोंमें इस प्रकार किया गया है—

"स एवोपसंहृतामर्षरोषहुताशनो जगत्सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुरनन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेवो भगवाँल्लोकानां स्वस्तये समवतिष्ठते। य एष एव-मनुश्रुतः.....इत्यादि..........(माघ १।२८)

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन. संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः, संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते॥" —माघ

"उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः, सत्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदिच्छयाऽऽसन्। यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्, नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म॥" (श्रीमद्भागवत ५।२५)

इन प्रमाणोंका सारांश यह है कि-'जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और लयके हेतु प्रकृतिके सत्वादि गुण जिसकी इच्छासे ही अपने अपने कार्यमें समर्थ होते हैं, जिसका रूप अनादि और नित्य है,जो अकेला ही समस्त प्रपञ्चोंको धारण किये हुये है-उसके मार्गको कौन जानता है?' इसी बातको वेदने यों कहा है—

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य,
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः॥ (अथर्व)

क्षीर-सागर-शायी भगवान् अनन्त के इस स्वरूपको पढकर कोई भी पुरुष 'शेष' या 'अनन्त' को सर्प माननेके भ्रममें नहीं रह सकता।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
— मुण्डकोपनिषत् २।२।८

जिसके दर्शन-मात्रसे हृदयग्रन्थि छूट जाती है, सम्पूर्ण संशयोंका निवारण हो जाता है और मनुष्य कर्म-क्षय होनेके पश्चात् आराम पाता है, उस परात्पर परमात्माकी महिमा निर्वचनोय है ×! उसकी महिमाका इस लेखनीसे वर्णन किया जाना सर्वथा असंभव है।

पाठकवृन्द ! यह एक ऐसा गम्भीर विषय है कि इस विषयपर जितना लिखा जाय उतना ही थोडा है ! मेरी इच्छा यह थी कि मैं इस विषयको कुछ और विस्तृत करूं। परन्तु मैं समझता हूं कि पाठकोंका मन इस विस्तृत निबन्धको पढते पढते कहीं परेशान न हो जाय अतएव इस निबन्धको समाप्त करता हूँ। आशा है विचारशील पाठक इस लघु निबन्धका तीव्र दृष्टिसे मनन करके मुझ अबोध शिशुके श्रमको सफलीभूत बनायेंगे।

× परमेश्वरीय-शक्ति और सृष्टि-प्रक्रियाका रहस्य समझनेके लिये निम्नलिखित प्रमाण-आलोचनीय हैं—

ततः स्वयम्भूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदके शयम्। तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति निःश्रुतम्॥
हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम्। तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च॥ (हरिवंश १।२७-३०)

इन श्लोकोंका पाठान्तर मनुस्मृतिमें भी पाया जाता है। पश्चाद्भूमिमथो पुरः (यजुः ३१। पुरुषसूक्त)

सहस्रपत्रं विरजो भास्कराभं हिरण्मयम्। पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवाँस्तदा॥
हुताशनं ज्वलिताशिखोज्ज्वलत्प्रभम्। सुगन्धिनं शरदमलार्कतेजसम्।
विराजते कमलमुदारवर्चसम्। महात्मनस्तनुरुहं चारुदर्शनम्॥ (हरिवंश३।११)

अथर्ववेद

स्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।)

एकादशं काण्डम्

लेखक और प्रकाशक ।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि० सातारा.)

प्रथम वार

संवत् १९९२, शके १८५७, १९३५

ब्रह्मचर्यसे मृत्यु
दूर करो।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १९ ॥

अथर्ववेद कां० ११।५ (७)

"ब्रह्मचर्यरूप तपसे राजा राष्ट्रकी रक्षा करता है, ब्रह्मचर्यसे ही आचार्य ब्रह्मचारीको प्राप्त करता है, ब्रह्मचर्य रूप तपसे ही देवोंने मृत्युको दूर किया, और ब्रह्मचर्यसे ही इन्द्रने देवोंमें तेज भर दिया।"

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्यायमंडल,
भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोधभाष्य)

एकादश काण्ड।

ग्यारहवां काण्ड अथर्ववेदके द्वितीय विभागका चौथा काण्ड है। इसके अनुवाक, सूक्त, मंत्र और दशति इस प्रकार हैं—

अनुवाक	सूक्त	दशति	मंत्रसंख्या
१	१	३+७	३७
	२	२+११	३१
२	३	(३ पर्याय)	५६
	४	२+६	२६
३	५	२+६	२६
	६	१+१३	२३
४	७	२+७	२७
	८	२+१४	३४
५	९	२+६	२६
	१०	२+७	२७
५	१०		३१३ कुल मंत्रसंख्या

14,VED-D
151443

				पत्या बृहती; २६ आर्ची अनुष्टुभ्; २७ (२८, २९) साम्नी बृहती, (२९ भुरिग्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अल्पापंक्तिः याजुषी।
	[२ पर्यायः	१८ ,,		ओदनः]	३२, १८, ४१ (प्र०), ३२-३९ साम्नी त्रिष्टुप्; ३२, ३५, ४२ (द्वि०), ३२-४९ (तृ०), ३३, ३४, ४४-४८ (पं०) एकपदा आसुरी गाय[illegible] ४१, ४३, ४७ (च०) [illegible] (द्वि०), [illegible] आसुरी [illegible] साम्नी अनु[illegible] अनुष्टुभ्; ४२-४[illegible] (प०) साम्न्यनुष्टुभ[illegible] ३३-४९ (प्र०) आर्ची-अनुष्टुभ्; ३[illegible] (प्र०) साम्नीपंक्तिः; ३३, ३६, ४०,४७, ४८ (द्वि०) आसुरी जगती; ३४, ३७, ४१, ४३, ४५ (द्वि०) आसुरी पंक्तिः; ३४ (च०) आसुरी त्रिष्टुप्; ४५, ४६, ४८ (च०) याजुषी गायत्री; ३६, ४०, ३७ (च०) दैवी पंक्तिः; ३८, ३९ (च०) प्राजापत्या गायत्री, ३९ (द्वि०) आसुरी उष्णिग्; ४२, ४५, ४९ (च०) दैवी त्रिष्णुभ्; ४९ (द्वि०) एकपदा भुरिग् साम्नी बृहती।
	[३ पर्यायः	७	,,	,,]	५० आसुरी अनुष्टुभ्; ५१ आर्ची अनुष्टुभ्; ५२ त्रिपदाभुरिक्साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती; ५५ साम्नी उष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती।
४	२६	भार्गवो वैदर्भिः	प्राणः	अनुष्टुप्; १ शंकुमती; ८ पथ्यापंक्तिः १४ निचृत्; १५ भुरिक्; २० अनुष्टु० गर्भा-त्रिष्टुप्; २१ मध्ये ज्योतिर्जगती; २२ त्रिष्टुभ्; २६ बृहती गर्भा।
५	२६	ब्रह्मा	ब्रह्मचारी	त्रिष्टुभ्; १ पुरोतिजागतविराड्गर्भा; २ पंचपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती; ७ विराड्-

				गर्भा ... रोतिजागता विराड् जगती; ९ बृह... १० भुरिक्; ११ जगती; १२ शाक्वर... चतुष्पदा विराडतिजगती, १३ ज... पुरस्ताज्ज्योतिः; १४, १६-२२ अनुष्टुभ्; २३ पुरो बार्हतातिजागतगर्भा; २५ एकावसाना आर्ची उष्णिग्; २६ मध्ये ज्योति... गर्भा ।
६	२३	शन्तातिः	चन्द्रमाः मन्त्रोक्ताः	अनुष्टुभ्; २३ बृहतीगर्भा ।
		...थर्वा	अध्यात्मं उच्छिष्टः	अनुष्टुभ्; ६ पुरोष्णिग्...र्हतपरा; २१ स्वराट्; २२ विराट् पथ्या बृहती ।
८		...रुपथिः	अध्यात्मं,मन्युः	अनुष्टुभ्; ३३ पथ्याप...ः ।
९	२६	कांकायनः	अर्बुदिः	अनुष्टुभ्; १ सप्तपदा विराट् शक्वरी त्र्यवसाना; ३ परोष्णिक्; ४ त्र्यवसाना उष्णिग्बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप् षट्पदाति जगती; ९, ११, १४, २३, २... पथ्यापंक्तिः; १५, २२, २४, २५ ...ना सप्तपदा शक्वरी; १६ त्र्यव० पंचप० ...ट् उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुभ्; १७ ... गायत्री ।
१०	२७	भृग्वंगिराः	त्रिषन्धिः	अनुष्टुभ्; १ विराट् पथ्या बृहती, २ त्र्य... षट्प० त्रिष्टु० गर्भातिजगती; ३ विराडा...स्तारपंक्तिः, ४ विराट्; ८ विराट् त्रिष्टुभ्; ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुभ्; १२ पंच प० पथ्या पांक्तिः; १३ षट्प० जगती; १६ त्र्यव० षट्प० ककुंमत्यनुष्टुप् त्रिष्टुब्गर्भा शक्वरी; १७ पथ्यापंक्तिः; २१ त्रिपदा गायत्री; २२ विराट् पुरस्ताद्बृहती; २५ प्रस्तार पंक्तिः ।

...का स्पष्टीकरण ... अंशोंमें इस प्रकार किय... ...चोपसंहृता...

इस प्रकार इन दस सूक्तोंके ऋषि देवता और छन्द हैं। इनमें अध्यात्म और युद्ध ये दो प्रकरण विशेष महत्त्वके हैं, अतः पाठक इनका अधिक मनन करें। इस काण्डके पश्चात् के बारहवें काण्डमें मातृभूमिका वैदिक राष्ट्रगीत है और इस ग्यारहवें काण्डमें उसके पूर्व युद्धकी तैयारीका वर्णन है। इस तरह यह बडा मनोरंजक विषय इस काण्डमें है; इसका योग्य अभ्यास पाठक करें।

ॐ

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुबोधभाष्य)

एकादश काण्ड ।

ब्रह्मौदन-सूक्त ।

(१)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (जायस्व) प्रकट हो । (इयं नाथिता अदितिः) यह याचना करनेवाली अदीन माता (पुत्र-कामा ब्रह्मौदनं पचति) पुत्रोंकी इच्छा करती हुई ज्ञान बढानेवाला अन्न पकाती है । (भूतकृतः सप्त ऋषयः) भूतोंको बनानेवाले सात ऋषि (इह त्वा प्रजया सह मन्थन्तु) यहां तुझे प्रजाके साथ मथन करें ॥ १ ॥

हे (वृषणः सखायः) बलवान् मित्रो ! (धूमं कृणुत) धूवा करो, अग्निको प्रदीप्त करो । (अद्रोघ-अविता वाचं अच्छ) द्रोह न करनेवालोंकी रक्षा करनेवाली भाषा बोलो । (अयं अग्निः पृतनाषाट् सुवीरः) यह अग्नि शत्रुसेनाको पराजित करनेवाला उत्तम वीर है । (येन देवाः दस्यून् असहन्त) जिससे देवोंने शत्रुओंको पराजित किया ॥ २ ॥

भावार्थ- माता उत्तम वीर पुत्र होनेकेलिये ईश्वर की प्रार्थना करे, उसके लिये सुयोग्य अन्न पकावे । जगत्के निर्माण करनेवाले सप्त ऋषि उस माताको सुप्रजा प्रदान करें ॥ १ ॥

बल प्राप्त कर, यज्ञ कर, द्रोह करनेवाली भाषा न बोल, तेजस्वी बन, जिससे समरविजयी सुपुत्र होगा, जो शत्रुओंको दूर भगा देगा ॥ २ ॥

म पुस्तक =) -)
निबंधमाला ।

अग्नेर्जनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ३ ॥
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितृणां मर्त्यानाम् ।
अं[illegible] [illegible]र्नं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५ ॥

[illegible]का स्पष्टीकरण[illegible] [illegible]
अंशोंमें इस प्रकार किया [illegible]
[illegible]ोपसंहताय [illegible]

[illegible] जातवेद! तू (महते वीर्याय अजनिष्ठाः) बडा पराक्रम [illegible] है। (ब्रह्म-ओदनाय पक्तवे) और ज्ञानवर्धक [अ]न्न पकानेके[illegible] [प्र]कट हुआ है। (भूतकृतः सप्त ऋषयः त्वा अजीजन्) भूतोंकी उत्पत्ति करनेवाले सात ऋषियोंने तुझे प्रकट किया है। [(]अस्यै सर्ववीरं रयिं नि यच्छ) इस माताके लिये सब प्रकार का धन प्रदान कर ॥ ३ ॥

हे अग्ने! (समिधा समिद्धः सं इध्यस्व) समिधासे प्रदीप्त हुआ तू प्रदीप्त हो। (यज्ञियान् देवान् इह आवक्षः) यज्ञके योग्य देवोंको तू य[hाँ] ले आ। हे जातवेद! (तेभ्यः हविः श्रपयन्) उनके लिये हवि पका[ता] हुआ, (इमं उत्तमं नाकं अधिरोहय) इसको उत्तम स्वर्गपर चढा ॥ ४ ॥

(यः पुरा त्रेधा भागः निहितः) जो पहिले तीन प्रकारका भाग रखा है, वह (देवानां पितृणां मर्त्यानां) देवोंका पितरोंका ओर मर्त्योंका ऐसा है। (अहं वः तान् विभजामि) मैं तुम्हें उन भागोंको पृथक् पृथक् अर्पण करता हूं। (अंशान् जानीध्वं) उन भागोंको समझो। (यः देवानां सः इमां पारयाति) जो देवोंका भाग है वह इस स्त्रीको आपत्तिसे पार करेगा॥५॥

भावार्थ-तू बडा पराक्रम करनेकेलिये उत्पन्न हुआ है। उत्तम अन्न द्वारा पाकयज्ञ करके सप्त ऋषियोंका संतोष करनेसे वे सब प्रकारके वीर भावोंसे युक्त सुपुत्र अवश्य प्रदान करेंगे और उत्तम धन देंगे ॥ ३ ॥

अग्नि प्रदीप्त कर, उनमें हविका हवन कर, इससे उत्तम स्वर्ग अवश्य प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

देव पितर और मर्त्य इन तीनोंका भाग अन्नमें होता है। अतः उनको वह भाग अर्पण करना उचित है ॥ ५ ॥

अग्ने॒ सह॑स्वानभि॒भूर॒भीद॑सि॒ नीचो॒ न्युब्ज द्वि॒षतः॑ स॒पत्ना॑न् ।
इ॒यं मात्रा॑ मी॒यमा॑ना मि॒ता च॑ सजा॒तांस्ते॑ बलि॒हृत॑ः कृणोतु ॥ ६ ॥
सा॒कं स॑जा॒तैः पय॑सा स॒हैध्युदु॑ब्जैनां मह॒ते वी॒र्या॑य ।
ऊ॒र्ध्वो नाक॒स्याधि॑ रोह वि॒ष्टपं॑ स्व॒र्गो लो॒क इति॒ यं वद॑न्ति ॥ ७ ॥
इ॒यं म॒हि प्रति॑ गृह्णातु चर्म॑ पृथि॒वी दे॒वी सु॑मन॒स्यमा॑ना ।
अथ॑ गच्छेम सु॒कृत॑स्य लो॒कम् ॥ ८ ॥

अर्थ- हे अग्ने! (सहस्वान् अभिभूः इत् अभि अ[illegible] शत्रुका पराजय करनेवाला है। अतः (द्विषतः सपत्न[illegible] न्युब्ज) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको नीचे दबा। (इयं मात्रा मीयमाना मिता च) यह परिमाण मापा हुआ परिमित प्रमाणमें (ते सजातान् बलिहृतः कृणोतु) तेरे सजातीय वीरोंको तुम्हें कर देनेवाला बना[illegible] ॥ ६ ॥

(पयसा सजातैः साकं एधि) तू दूधके साथ स्वजातियोंके साथ बढ। (महते वीर्याय एनां उत् उब्ज) बडे पराक्रमके लिये इसको तैयार कर। (ऊर्ध्वः नाकस्य विष्टपं अधिरोह) उंचा होकर स्वर्गके उपर चढ। (यं स्वर्गः लोकः इति वदन्ति) जिसे स्वर्ग लोक कहते हैं ॥ ७ ॥

(इयं मही पृथिवी देवी) यह बडी पृथ्वी देवता (सुमनस्यमाना चर्म प्रति गृह्णातु) शुभ विचारवाली होकर इस चर्मकी ढाल अपनी रक्षा के लिये लेवे। इससे (अथ सुकृतस्य लोकं गच्छेम) हम पुण्य लोकको प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भावार्थ-बलवान और क्षत्रुका पराभव करनेवाला हो, शत्रुओं को दूर भगा दे, और वे तुम्हें कर देंगे ऐसा पराक्रम कर ॥ ६ ॥

बडा पराक्रम करनेके लिये तैयार हो, दूध पीकर स्वजातीयोंके साथ पुष्ट हो। इस प्रकार पराक्रम करके स्वर्ग के योग्य बन ॥ ७ ॥

यह पृथ्वी बडी देवी है, अपने मनको शुभसंकल्पयुक्त करके उसकी रक्षाके लिये तैयार रह, जिससे पुण्यवानोंका लोक प्राप्त होगा ॥ ८ ॥

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्धरन्त्युदूह ॥ ९ ॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥ १० ॥ (१)
इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥

...ौ ग्रावाणौ) ये साथ रहनेवाले दो पत्थर (चर्मणि युङ्धि) ...मानाय अंशून् निर्भिन्धि) यजमानके लिये सोमर- ...। (ये इमां पृतन्यवः) जो इस स्त्रीपर हमला करते हैं उनका (निजहि) नाश कर । (अवघ्नती उद्धरन्ती प्रजा ऊर्ध्वं उदूह) कूटती हुई और भरणपोषण करती हुई प्रजाका उद्धार कर ॥ ९ ॥

हे वीर ! (सुकृतौ ग्रावाणौ हस्ते गृहाण) उत्तम कर्म करनेवाले ये दो पत्थर हाथमें ले । (यज्ञियाः देवाः ते यज्ञं आ अगुः) पूज्य देव तेरे यज्ञमें आजावें । (यतमान् त्वं वृणीषे) जो तू मांगता है वे (त्रयः वराः) तीन वर हैं । (ताः समृद्धीः ते इह राधयामि) उन संपत्तियोंको तेरे लिये सिद्ध करता हूं ॥ १० ॥

(इयं ते धीतिः) यह तुम्हारा पानस्थान है, और (इदं उ ते जनित्रं) यह तेरा जन्मस्थान है । (शूरपुत्रा अदितिः त्वां गृह्णातु) शूर पुत्रोंवाली अदीन माता तेरा स्वीकार करे । (ये पृतन्यवः इमां परा पुनीहि) जो सेनावाले शत्रु इस स्त्रीको कष्ट देते हैं उनको दूर कर और (अस्यै सर्व-वीरं रयिं नि यच्छ) इसको सर्व वीरोंसे युक्त धन दे ॥ ११ ॥

भावार्थ- ये सोमका रस निकालनेवाले पत्थर हैं । इनसे सोमका रस निकालो । जो सेना लेकर तुम्हारा नाश करना चाहते हैं उनका नाश कर और अपनी प्रजाका उद्धार कर ॥ ९ ॥

यज्ञके लिये जो योग्य देव हैं उनको इस यज्ञमें बुला । जिस विषयमें तुम्हारा प्रयत्न होगा उन वरोंको तुम प्राप्त होंगे और उससे यथेष्ट समृद्धी मिलेगी ॥ १० ॥

यह जन्मभूमि है, यहां यज्ञमें सोमपान होता है, जो शत्रु तुमपर हमला करते हैं उनको परास्त कर और सर्व वीरोंसे युक्त धन तुम्हें प्राप्त हो ॥ ११ ॥

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विंच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया संमानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥
परेहि नारि पुनरेहिं क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥
एमा अंगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय [illegible]

अर्थ- (यूयं द्रुवये उपश्वसे सीदत) तुम सब उत्तम [illegible] हे (यज्ञियासः) याजको ! आप (तुषैः विविच्य [illegible] करो। हम (समानान् सर्वान् श्रिया अति स्याम) सब समान जनोंसे धनसे श्रेष्ठ बनेंगे। और मैं (द्विषतः अधः पदं आपादयामि) शत्रुओंका स्थान नीचे करता हूं ॥ १२ ॥

हे नारि ! (परा इहि) दूर जा और (पुनः क्षिप्रं एहि) फिर शीघ्र आजा। (अपां गोष्ठः भराय त्वा अधि अरुक्षत्) जलोंका स्थान भरनेके लिये तेरे लिये तैयार है। (तासां यतमाः यज्ञियाः असन्) उनमें जो पूजनीय किंवा यज्ञके लिये योग्य जल हैं, उनका (गृहीतात्) स्वीकार कर और (धीरी इतराः विभाज्य जहीतात्) बुद्धीसे इतरोंको पृथक् करके छोड दो ॥ १३ ॥

(इमाः योषितः शुम्भमानाः आ अगुः) ये स्त्रियाँ सुशोभित होकर यहां आगई हैं। हे नारि ! (उत्तिष्ठ तवसं रभस्व) उठ और बलसे प्राप्त हो। तू (पत्या सुपत्नी) उत्तम पतिके साथ उत्तम पत्नी हो, (प्रजया प्रजावती) उत्तम संतानसे प्रजावाली हो, (यज्ञः त्वा आ अगन्) यज्ञ तेरे पास पहुंचा है, (कुम्भं प्रति गृभाय) घडेका ग्रहण कर ॥ १४ ॥

भावार्थ- जैसे तुषोंको दूर फेंक देते हैं वैसे शत्रुओंको भगा दो, स्वजातीयोंको धनसंपत्तीसे युक्त कर और शत्रुओंको दबा दे ॥ १२ ॥

स्त्री अपने घरकेपास सब ओर घूमकर देखे। जलका स्थान जहां हो वहांसे जल भर लावे। जो जल उत्तम हो वही ले आवे। अन्य जल दूर रखे ॥ १३ ॥

स्त्रियां सुंदर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभत रहें। स्त्रियां उत्तम पति प्राप्त करें, सुपुत्र उत्पन्न करें, घरका सौंदर्य बढावें और उत्तम जलसे घडे भर रखें ॥ १४ ॥

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५॥
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥ १६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
... ...र्वं बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥ १७ ॥

... ...जलो ! (यः वः ऊर्जः भागः पुरा निहितः) जो आपका ... रखा गया है, (ऋषिप्रशिष्टाः एता आभर) ऋषियोंकी आज्ञा... ... भर कर ले आ। (अयं यज्ञः वः) यह यज्ञ आपके लिये (गातुवित् नाथवित प्रजावित्) मार्गदर्शक, ऐश्वर्यवर्धक, प्रजाको देनेवाला,(उग्रः पशुवित् वीरवित् अस्तु) उग्रता देनेवाला, पशु देनेवाला, और वीर बढानेवाला होवे ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! (यज्ञियः शुचिः तपिष्ठः चरुः त्वा अधि आरुक्षत्) यज्ञके योग्य, पवित्र और तपःसामर्थ्यसे युक्त अन्न तुझे प्राप्त हुआ है, अतः तू (एनं तपसा तप) इसको अपनी उष्णतासे तपा। (आर्षेयाः दैवाः तपिष्ठाः) ऋषियों और देवोंसे उत्पन्न तपनसामर्थ्य (इमं भागं अभिसंगत्य ऋतुभिः तपन्तु) इस अन्नभागके पास आकर ऋतुओंके अनुकूल तपावें ॥ १६ ॥

(इमाः शुद्धाः पूताः यज्ञियाः योषितः) ये शुद्ध पवित्र और पूजनीय स्त्रियाँ (शुभ्राः आपः चरुं अवसर्पन्तु) और स्वच्छ जल इस अन्नके पास आजावे। (नः प्रजां बहुलान् पशून् अदुः) हमें संतान और उत्तम पशु देवें। (ओदनस्य पक्ता सुकृतां लोकं एतु) अन्नका पकानेवाला पुण्यलोकको प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थ- जो जल उत्तम बल बढानेवाला हो वही लाया जावे। घर घरमें यजन होता रहे। यही मार्गदर्शक, ऐश्वर्यवर्धक, सुप्रजाकी उत्पत्ति करनेवाला, बल बढानेवाला, पशुओंकी वृद्धी करनेवाला, वीरभाव बढानेवाला है ॥ १५ ॥

यह अन्न प्रवित्र निर्मल और तेजस्विता बढानेवाला है, यह अन्न देवताओंको अर्पण किया जावे और इससे संगठित होकर अपना तपःप्रभाव बढावें ॥ १६ ॥

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥ १८ ॥
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२०॥ (२)

अर्थ-(ब्रह्मणा शुद्धाः उत घृतेन पूताः) ज्ञानसे प[illegible]
घीसे पुनीत हुए (सोमस्य अंशवः तण्डुलाः) ये सो[illegible]
हैं। हे (आपः) जलो ! (प्रविशत) तुम अन्दर प्रवि[illegible] जावो, (व[illegible]
चरुः प्रति गृह्णातु) तुम्हे यह अन्न प्राप्त हो, (इमं पक्त्वा सुकृतां लो[illegible]
एत) इसको पका कर पुण्यवानोंके लोकको जाओ ॥ १८ ॥

(उरुः महता महिम्ना प्रथस्व) बडा होकर बडे महत्त्वके साथ फैल जा। (सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके) हजारों पीठवाला होकर पुण्य लोकमें विराज। (पितामहाः पितरः प्रजाः उपजाः) पितामह, पितर, संतानें और उनकी संतानें ऐसा क्रम चले। (अहं पक्ता पञ्चदशः अस्मि) मैं पकानेवाला पंद्रहवां होऊं ॥ १९ ॥

(सहस्रपृष्ठः शतधारः अक्षितः) हजारों पीठोंवाला सेंकडों धारोंवाला अक्षय (ब्रह्मौदनः देवयानः स्वर्गः) ज्ञान बढानेवाले अन्नसे प्राप्त होनेवाला देवयान स्वर्ग है। (ते अमून् आदधामि) तेरे लिये इनको मैं धारण करता हूं। (एनान् प्रजया बलिहराय रेषय) इनको संतानके साथ कर देनेके लिये सिद्ध कर। ये सब (मह्यं एव मृडतात्) मुझेही सुखी करें ॥ २० ॥

भावार्थ-ये स्त्रियां शुद्ध और पवित्र संमानके लिये योग्य हैं, ये उत्तम अन्न तैयार करें। हमें उत्तम संतान और बहुत पशु प्राप्त हों। उत्तम अन्न का प्रदान करनेवाला पुण्य लोक प्राप्त हो ॥ १७ ॥

यह चावल पवित्र और उत्तम हैं, जल उनके साथ मिले। सब मिलकर पकाया जावे। सब लोग इससे आनंद प्राप्त करें ॥ १८ ॥

बडा महत्त्वका स्थान प्राप्त कर और पुण्यलोकमें विराजमान हो। पितामह, पिता

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥ २२ ॥
ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसध्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥

(उदेहि वेदि) वेदिको उठाओ,(एनां प्रजया वर्धय) इसकी प्रजासे [बढाओ, (रक्षः] नुदस्व) शत्रुओंको भगा दो, (एनां प्रतरं धेहि) इनको विशेष रीतिसे धारण कर। (समानान् सर्वान् श्रिया अति स्याम) सब समानोंसे धनसे अधिक हम हों। (द्विषतः अधः पदं पादयामि) शत्रुओंको नीचे गिराता हूं ॥ २२ ॥

(एनां पशुभिः सह अभि आवर्तस्व) इस स्त्रीको पशुओंके साथ प्राप्त हो। और (एनां देवताभिः सह प्रत्यङ् एधि) इस स्त्रीको देवताओंके साथ प्रत्यक्ष मिलो। (त्वा शपथः मा प्रापत)तुझे शाप न मिले।(अभि-चारः मा) वध न प्राप्त हो। (स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज) अपनी भूमिमें नीरोग होकर प्रकाशित हो ॥ २२ ॥

(ऋतेन त्वष्टा) सत्यसे बनाई, (मनसा हिता) मनसे रखी, (एषा ब्रह्म-ओदनस्य वेदिः) यह ज्ञान बढानेवाले अन्नकी वेदी (अग्रे विहिता) आगे बनाई है। हे नारि ! (शुद्धां अंसद्रीं उपधेहि) शुद्ध थालीको ऊपर रख, और (तत्र देवानां ओदनं सादय) वहां देवोंका अन्न तैयार कर ॥ २३ ॥

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, आदिक्रमसे अखंड वंशका विस्तार होता रहे। हरएकको अपने पंदरह वंशपुरुषोंका ज्ञान हो और वह कहे कि मैं फलानेसे पंद्रहवां हूं ॥ १९ ॥

यह अन्नही स्वर्ग है, इस अन्नसे इन सबका धारण पोषण होता रहे। ये सब सुखकी वृद्धी करें और उनकी संतानें अन्योंसे कर लेनेवाली वीर बनें ॥ २० ॥

यज्ञ करो, प्रजाकी वृद्धी करो, शत्रुओंको दूर भगाओ, स्त्रियोंको धारण करो, स्वजातीयोंको धनसे समृद्ध करके उनसेभी आधिक बन जाओ और शत्रुओंको दबा दो ॥ २१ ॥

अदि॑ते॒र्हस्तां॒ स्रुच॑मे॒तां द्वि॒तीयां॑ सप्तऋ॒षयो॑ भूत॒कृतो॒ याम॒कृ॑ण्वन् ।
सा गात्रा॑णि वि॒दुष्यो॑द॒नस्य॒ दर्वि॒र्वेद्या॒मध्ये॑नं चिनोतु ॥ २४ ॥
शृ॒तं त्वा॑ ह॒व्यमुप॑ सीदन्तु दै॒वा नि॒ःसृप्या॒ग्नेः पुन॑रेना॒न् प्र सी॑द ।
सोमे॑न पू॒तो ज॒ठरे॑ सीद ब्र॒ह्मणा॑मार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥ २५ ॥
सोम॑ राजन्त्सं॒ज्ञान॒मा व॑पैभ्य॒ः सुब्रा॑ह्मणा य॒त॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न् ।
ऋषी॑नार्षे॒यांस्तप॒सोधि॑ जा॒तान् ब्र॑ह्मौद॒ने सु॒हवा॑ जोहवीमि ॥ २६ ॥

अर्थ- (भूतकृतः सप्त ऋषयः) भूतमात्रको बनानेवा[illegible] (अदितेः हस्तां यां एतां द्वितीयां स्रुचं अकृण्वन्) अ[illegible] हाथ जैसा यह चमस बनाया है। (सा दर्विः ओदनस्य [illegible]ण विदुषी) वह कडच्छी अन्नके भागोंको जानती हुई (एनं वेद्यां अधि चिनोतु) इसको वेदीके मध्यमें रखें ॥ २४ ॥

(त्वा शृतं हव्यं देवाः उप सीदन्तु) तैयार हुए अन्नके पास देव आ बैठे। (अग्ने निः सृप्य पुनः एनान् प्रसीद) अग्निसे चलकर फिर इन देवोंको प्रसन्न कर। (सोमेन पूतः ब्रह्मणां जठरे सीद) सोमसे पवित्र होकर ज्ञानियोंके पेटमें जा, (ते प्राशितारः आर्षेयाः मा रिषन्) तेरा प्राशन करनेवाले ऋषिपुत्र दुःखी न हों ॥ २५ ॥

हे (सोम राजन्) राजा सोम ! (यतमे सुब्राह्मणाः त्वा उपसीदन्) जो उत्तम ब्राह्मण तेरे पास आ बैठेंगे, (एभ्यः संज्ञानं आवद) इनको उत्तम ज्ञान दे। (तपसः अधिजातान् आर्षेयान् ऋषीन्) तपसे उत्पन्न ऋषिपुत्र ऋषिजनोंको (ब्रह्मौदने सुहवा जो हवीमि) ज्ञान बढानेवाले अन्नमें उत्तम बुलाने योग्योंकोभी बुलाता हूं ॥ २६ ॥

भावार्थ-देवता और गौ आदि पशुओंके साथ स्त्रीको सुरक्षित रखो, शाप तुझे कष्ट न दें। वधसे तुम्हें दुःख न हो, अपनी मातृभूमिमें नीरोग होकर विराजते रहो ॥ २२ ॥

सत्यसे निर्मित, मनसे सुरक्षित, यह अन्नका स्थान है। यह अन्न शुद्ध पात्रमें रख और देवोंको अर्पण कर ॥ २३ ॥

जगत् बतानेवाले सप्त ऋषियोंने यह कडच्छी निर्माण की है। इस कडच्छीसे वारंवार अन्न लेकर वेदीपर रख ॥ २४ ॥

अन्न तैयार करके देवताओंको समर्पण कर, उससे वे प्रसन्न हों, सोमके साथ अन्न

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥ २७ ॥
इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥ २९ ॥

(…द्धाः पूताः यज्ञियाः योषितः) ये शुद्ध और पवित्र स्त्रियां …को (ब्रह्मणां हस्तेषु पृथक् प्रसादयामि) ब्राह्मणोंके …थोंमें अल… …ग अर्पण करता हूं। (यत्कामः अहं वः इदं अभिषिञ्चामि) जिस कामनासे मैं तुम देवताओंके उद्देश्यसे यह देता हूं, (मरुत्वान् सः इन्द्रः मे इदं ददात्) मरुतोंके साथ रहनेवाला वह इन्द्र मुझे वह देवे ॥२७॥

(इदं हिरण्यं मे क्षेत्रात् पक्वं अमृतं ज्योतिः) यह सुवर्ण मेरे खेतसे पका हुआ अमर तेजहि है। (एषा मे कामदुधा) यह मेरी इच्छाके अनुसार दुही जानेवाली गौ है। (ब्राह्मणेषु इदं धनं निदधे) ब्राह्मणोंको यह धन देता हूं (यः स्वर्गः पन्थां पितृषु कृण्वे) जो स्वर्गका मार्ग है उसे मैं पितरोंके लिये बनाता हूं ॥ २८ ॥

(जातवेदसि अग्नै तुषान् आ वप) जातवेद अग्निमें तुषोंको डाल, (कंबूकान् दूरं अपमृड्ढि) छिलकोंको दूर फेंक दो, (एतं गृहराजस्य भागं शुश्रुम) यह श्रेष्ठ गृहस्थके घरका भाग है ऐसा हम सुनते हैं। (अथो निर्ऋतेः भागधेयं विद्म) इससे विपरीत अधोगतिका भाग है ऐसा हम समझते हैं ॥ २९ ॥

ब्राह्मण खावें और खानेवाले पुष्ट हों ॥ २५

जो उत्तम ब्राह्मण हों, उनको सोम और अन्न दिया जावे। तप करनेवाले ऋषिलोगोंका सत्कार उत्तम अन्नसे किया जावे ॥ २६ ॥

शुद्ध पवित्र संमानयोग्य स्त्रियोंको ब्राह्मणोंके हाथमें अलग अलग दिया जाय। अर्थात् एक एक ब्राह्मण एक एक स्त्रीका पाणिग्रहण करे। जो जिसकी इच्छा हो वह उसकी पूर्ण हो ॥ २७ ॥

यह सुवर्ण है और यह खेतमें पका हुआ उत्तम धान्य है। यह मैं ब्राह्मणोंको देता

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

(१) यजुर्वेद। विनाजिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥)
कागजी जिल्द २) "
कपडी जिल्द २॥) "
रेशमी जिल्द ३) "

(३) संस्कृतपाठमाला १ अंकका मू.।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥।=)

४ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू. १) ।)

(५) अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।
१ प्रथम काण्ड २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड २) ॥)
३ तृतीय काण्ड २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड २) ॥)
५ पंचम काण्ड २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड २) ॥)
७ सप्तम काण्ड २) ॥)
८ अष्टम काण्ड २) ॥)
९ नवम काण्ड २) ॥)
१० त्रयोदश काण्ड १) ।=)
११ चतुर्दश कांड १) ।)
१२ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(६) छूत और अछूत।
१-२ भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

(७) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से ८ प्रत्येकका मू० ॥) डा०व्य० =)

(८) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(९) वेदका स्वयंशिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(१०) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन।(सचित्र) २) ।≡)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
३ सूर्यभेदन-व्यायाम। " ॥) =)
४ योगसाधनकी तैयारी। ।॥) ।)

(११) यजु.अ.३६ शांतिका उपाय ॥=) ।)

(१२) शतपथबोधामृत ।) -)

(१३) देवतापरिचय ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१४) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक ≡) -)

(१५) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ।॥) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) ॥)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता ।॥) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

१६ उपनिषदमाला। १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद्। १) ।-)

(१७) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) ॥)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
५ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
6 Sun Adoration १) ।=)

Regd.N.B. 1463

गीता।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०
"वैदिक धर्म" का" " म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) "
दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
" " " " " " वी. पी. से ५॥) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं हैं, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है-
आदिपर्व ६॥≡) रु.; सभापर्व २॥) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५॥=) रु
भीष्मपर्व ४॥≡) रु.; द्रोणपर्व ८॥) रु.; कर्णपर्व ३॥) रु.; शल्यपर्व २॥-) रु.; सौप्तिकपर्व ॥।-
स्त्रीपर्व ।॥-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६॥≡) रु.; आश्वमेधिकपर्व २।।-) रु.
आश्रमवासिकपर्व १) रु; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ॥।-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री-स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक-श्री०दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध (जि०सातारा)

चैत्र
संवत् १९९२
अप्रैल
सन १९३५
वर्ष १६
अंक ४
क्रमांक
१८४

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृत-पाठ-माला"

२४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये । २४ भागोंका मूल्य ६॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य १) हर एक भागका मू० ॥) । वी०पी०द्वारा ।) चार आने अधिक मूल्य होगा।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

वर्ष १६] विषयसूची [अंक

वैदिक प्राणविद्या (नया संस्करण)

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है। मूल्य ॥) और डा० व्य०=) है।

मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ब्रह्मचर्यका विघ्न

मूल्य =) दो आने। डा० व्य-) डा० व्य० सहित मू०=) तीन आनेकी टिकट भेजकर पुस्तक मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

नया संस्करण! नया संस्करण

योगसाधनकी तैयारी

योगसाधनसे हमारी शक्ति बढती है, इसलिये योगविषयक अत्यन्त आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है।

अच्छी जिल्द मू० ॥) बारह आने। डा०व्य० ।) इस लिये १) एक रु० म० आ० से या टिकट द्वारा भेजकर शीघ्र ही यह पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि०सातारा)

YOGA

An International Illustrated Practical Monthly on the Science of Yoga edited by Shri Yogendra

Specimen Copy As. 8.;
Annual Subscription Rs. 3

YOGA INSTITUTE.
P. B. 481 BOMBAY

आविष्कार-विज्ञान

लेखक उदय भानु शर्माजी। इस पुस्तकमें अ[illegible] जगत् और बहिर्जगत्, इंद्रियां और उनको [illegible] ध्यानसे उन्नति प्राप्त करनेकी रीति, मेधावर्ध[illegible] उपाय, इत्यादि आध्यात्मिक बातोंका उत्तम वर्णन जो लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके इच्[illegible] हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये। पु[illegible] अत्यंत सुबोध और आधुनिक वैज्ञानिक पद्ध[illegible] लिखी होनेके कारण इसके पढनेसे हरएकको [illegible] हो सकता है। पूर्वार्धका मूल्य॥=) और डा.व्य.[illegible] द्वितीयार्धका मू०॥)और डा०व्य०=) है।

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० साता[illegible]

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य [illegible] रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे होनेसे देखनेलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जात[illegible] जादह हकीकत के लिये लिखो।

मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोद[illegible]

वैदिक संपत्ति।

स्वाध्यायमंडल,
औंध (जि० सातारा)
ता०

मंत्री ________________

श्रीमानजी, नमस्ते।

इस पत्रके साथमें आपके पास 'वैदिक संपत्ति" का विज्ञापन भेजता हूं। आप इसको एक वार पढिये। **श्री आचार्य रामदेवजी आदि अनेकानेक विद्वान् आर्य भद्र पुरुष इसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठसे कर रहे हैं।** इससे आपको इस पुस्तकका महत्त्व ज्ञात हो सकता है। यह पुस्तक ऐसी है कि प्रत्येक आर्यसमाजके साप्ताहिक अधिवेशनमें इसका पाठ हो। **यदि आपकी आर्य-समाजमें आप इस पुस्तकका पाठ साप्ताहिक अधिवेशनमें करेंगे अथवा करवायेंगे, तो आपके सदस्योंमें आप वैदिक वायुमंडल सचमुच और निःसंदेह बना सकते हैं।**

यह पुस्तक करीव आठ सौ पृष्ठोंकी है। प्रतिसप्ताह इसका पाठ करनेपर दो वर्षतक इसकी कथा हो सकती है। इसमें एकभी पृष्ठ ऐसा नहीं है जो पढा जाने योग्य न हो। हरएक पंक्ति पढने और ध्यानमें धारण करने योग्य है।

मैं आपको विश्वासके साथ कहता हूं कि **आर्यसमाजके ग्रंथभंडारमें इस प्रकारकी पुस्तक यही एक है।** आप एक वार पढेंगे तो आपकीभी यही संमति होगी, इसमें मुझे संदेह नहीं।

इस **'वैदिक संपत्ति'** का मूल्य ६) रु० है और डा० व्य० १।) है। यह पुस्तक डाकव्यय बहुत होनेके कारण वी. पी. से नहीं भेजी जायगी। अतः आप ७।) म० आ० द्वारा भेज दीजिये। आपसे यह मूल्य आतेही हम यहांसे रजिस्ट्री द्वारा यह पुस्तक आपके पास भेज देंगे।

मैं इस बातका विश्वास आपको दिलाता हूं कि यदि आपकी समाज-में इसका निरंतर पाठ एक दो वर्ष होनेपर आपके सदस्योंने अथवा श्रोताओंने कहा कि यह पुस्तक पाठके लिये अयोग्य है, तो उसी समय मैं आपके ७।) आपके पास भेज दूंगा और यह पुस्तक वापस मंगाऊंगा। यह विश्वास इसलिये दिलाता हूं कि मेरा निश्चय यह है कि यह पुस्तक अपना प्रभाव श्रोताओं और पाठकोंके हृदयोंपर स्थिर किये विना नहीं रहेगी। इसके पाठसे पाठकों और श्रोताओंके हृदय उच्च वैदिक भावोंसे परिपूर्ण होंगे और इसके अतिरिक्त उनको अनंत लाभ होंगे।

अतः मुझे आशा है कि आप इस पुस्तकका मूल्य ७।) रु० भेजकर शीघ्र खरीद लेंगे और इसका पाठ उक्त प्रकार करेंगे और करवायेंगे। इसमें आपकी कोई हानि नहीं है। क्यों कि हानिकी जिम्मेवारी मैंने ली है।

कृपया उत्तरसे मुझे कृतार्थ कीजिये।

भवदीय

श्री० दा० सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)
Post AUNDH (Dt. Satara)

अपूर्व पुस्तक !　　　आर्य सभ्यताका दर्शन !　　　आर्य आदर्श !

वैदिक संपत्ति।

लेखक श्री० स्व० पं० साहित्यभूषण रघुनन्दन शर्माजी।

इस अपूर्व पुस्तकके विषयमें विद्वान् लोगोंकी संमति देखिये--

श्री० स्वा० स्वतन्त्रानन्दजी महाराज, आचार्य उपदेशक--महाविद्यालय लाहौर, की संमति--

" यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। वेदकी अपौरुषेयता, वेदका स्वतःप्रमाण होना, वेदमें इतिहास नहीं है, वेदके शब्द यौगिक हैं इत्यादि विषयोंपर बडी उत्तमतासे विचार किया है। और मेरी संमतिमें इस विषयमें लेखकको सफलता भी प्राप्त हुई है। सृष्टि उत्पति, विकासवाद पर भी प्रकाश डाला है। ··· ··· मैं सामान्य रूपसे प्रत्येक भारतीयसे और विशेष रूपसे वैदिक धर्मियोंसे प्रार्थना करता हूं वह इस पुस्तकको अवश्य क्रय करें और पढें। इस पुस्तकका प्रत्येक पुस्तकालयमें होना अत्यंत आवश्यक है। यदि ऐसा न हो सके तो भी प्रत्येक समाजमें तो एक प्रति होनीहि चाहिये। "

श्री० आचार्य रामदेवजी, गवर्नर कन्यागुरुकुल देहरादून की संमति।

(' प्रकाश ' में प्रकाशित, २० मई १९३४)

" मैं प्रकाशकके इन विचारोंके साथ पूर्णतया सहमत हूँ कि इसके लेखकके वैज्ञानिक, भौतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य, पुरानेशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, नानालिपिविज्ञान, तथा भाषा आदि अनेक विषयोंका दिग्दर्शन इस पुस्तकने हमें कराया है। और भिन्न भिन्न विषयोंपर लिखे गये अनेक पाश्चात्य तथा पूर्वीय विद्वानोंके विविध ग्रंथोंकी विवेचना करके आर्यसिद्धान्तोंको युक्ति और प्रमाणोंसे पुष्ट किया है।

इसमें विकाससिद्धान्तकी समालोचना बडी उत्तम रीतिसे की गयी है। युरोप और अमेरिकाकी वर्तमान वैज्ञानिक किन्तु भोगवाद सभ्यताके गुणदोष विवेचनापूर्वक युक्तियोंद्वारा यह स्थापना की गयी है कि यद्यपि वर्तमान युरोपीयन सभ्यताने समस्त पृथ्वीकी प्राचीन सभ्यताओंको बदल दिया है और जहांतक हो सका है भौतिक उन्नति तथा बाह्य आडंबर द्वारा सारे विशाल संसारको ही युरोप बना डाला है, तथापि स्वयं युरोप अपनी इस उन्नतिसे संतुष्ट नहीं है। क्योंकि इस सभ्यतासे उत्पन्न विलास रोग स्पर्धा और युद्धोंसे भयभीत होकर त्राहि त्राहि पुकार रहा है। सुख और शान्तिकी खोजमें आदिम कालीन वैदिक अवस्थाकी ओर दृष्टि लगाने लगा है, इस बातको बडी स्पष्ट रीतिसे स्थापित किया गया है।

वेदोंकी प्राचीनता स्थापित करते हुए, अर्वाचीन उदाहरण देकर जो वेदोंमें अनित्य इतिहास सिद्ध करनेका अशक्य प्रयत्न किया करते हैं इसका खण्डन आपने बहुतसे युक्तियोंद्वारा उत्तम प्रकार किया है। ... इस प्रकार अनेकानेक प्रमाणोंसे वेदमें अनित्य इतिहासकी स्थापना खण्डित की गई है। इसके अतिरिक्त प्राचीन आर्योंके कलाकौशलके ज्ञानके संबंधमें नयी नयी खोज करके विद्वान् लेखकने अपनी खोज संबंधी योग्यताका बडा उत्तम परिचय दिया है। ... ...

इसके बाद यज्ञमें पशुहिंसाका निषेध बडी बडी अकाट्य युक्तियोंसे किया गया है। वेदमें आये हुए मांस यज्ञसंबंधी द्रव्यके शब्दोंका विवेचन बडी उत्तम रीतिसे प्रमाणोंद्वारा किया है। ... ... इसी तरह वेदोंमें भी ऐसे संदिग्ध द्व्यर्थक शब्दोंका समाधान और स्पष्टीकरण परमात्माने भी कर दिया है ... इसके अनेक उदाहरण इस पुस्तकमें दिये हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ... यह पुस्तक बडीहि उपयोगी और नयी खोज और उपयुक्त प्रमाणोंसे युक्त है। इसलिये हरएक आर्यपुरुष, आर्य उपदेशक, अध्यापक और व्याख्यानदाताके मनन करने और पास रखने योग्य यह पुस्तक है।

सभासमाजोंमें इसकी कथा करनी चाहिये ताकि जनता विद्वान् लेखकके परिश्रमसे पर्याप्त लाभ उठा सके।"

श्री० पं० नरदेव शास्त्रीजी, वेदतीर्थ, की संमति।

मसूरी पर्वत, ३।९।३४

"वैदिक संपत्ति" पुस्तक हमारे हाथमें तब पडी जब कि हम मसूरीमें पर्वतयात्राके निमित्त आये थे। जब पुस्तक हमारे पास आई तब हमने इसको अनवरत आठ दिन तक पढा। हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह ग्रंथ 'यथा नाम तथा गुणाः' कोटी का है। कई प्रकरण तो इतने मनोरंजक हैं कि उनको बार बार पढनेपर भी तृप्ति नहीं होती। वस्तुतः ऐसेहि ग्रंथ वैदिक धर्म व आर्य संस्कृतिकी महत्ताको प्रसरित कर सकते हैं। ... ... यह ग्रंथ व्यापक दृष्टीसे पूर्ण गवेषणाके पश्चात् लिखा गया है, इसलिये संग्रहकी वस्तु है। प्रत्येक हिंदी पुस्तकालय व धर्ममंदिरमें रखनेकी वस्तु है। ... ...

नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

महाविद्यालय, ज्वालापुर यू. पी.

श्री० स्वामी व्रतानन्दजी महाराजकी संमति ।

श्री गुरुकुल, चित्तौडगढ, राजपुताना, २८।८।३४

" वैदिक संपत्ति " नामकी पुस्तक अपने विषयकी अद्वितीय पुस्तक है । आर्यसमाजके साहित्यमें इसकी समानताकी अन्य पुस्तक आजतक नहीं लिखी गई । इस पुस्तकका क्रम ऐसा रोचक है कि पढनेमें रुचि उत्तरोत्तर बढतीहि जाती है । इस पुस्तकमें यह सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया है कि सुखकी प्राप्तिके लिये वर्तमान सभ्यसंसारने जिन उपयोंका अवलंबन किया है वे घातक हैं । उनके स्थानपर संसार जब वैदिक सभ्यताका आश्रय लेगा तभी उसे सुख प्राप्त होगा ।

इस पुस्तकका वेदोंकी उपेक्षा-- नामक तृतीयखंड वैदिक साहित्य नामसे प्रचलित उपनिषदों आदिका कितना अंश वैदिक है इस बातमें निर्णयकेलिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । महर्षि दयानंदजीने जिन सिद्धान्तोंको सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें सूत्ररूपसे प्रगट किया है उनकी व्याख्या जाननेके लिये यह पुस्तक पढना परम आवश्यक है । मेरा विश्वास है कि इस पुस्तकको पढनेके पश्चात् कोईभी सत्यान्वेषक वेद और वैदिक सभ्यताका प्रेमी बने विना नहीं रह सकता । यह पुस्तक संसारके लिये इतनी उपयोगी है कि इसका अनुवाद संसारकी सब भाषाओंमें यथाशक्ति शीघ्रहि हो जाना चाहिये ।

व्रतानंद संन्यासी
आचार्य, श्रीगुरुकुल चित्तौडगढ

श्री० पं० देवराजजी विद्यावाचस्पतिजीकी संमति ।

बहुत दिन हुए आपकी भेजी हुई " वैदिक सम्पत्ति " नामकी पुस्तक मुझे संमत्यर्थ प्राप्त हुई थी । मैंने प्रायः सारी पुस्तकको पढ डाला । पुस्तकमें वैदिक सिद्धान्तोंका इतना अच्छा निरूपण किया है कि जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोडी है । ...... इस पुस्तकमें वैदिक सिद्धान्तोंके पुष्टिके प्रकारको देखकर हम परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि इस पुस्तक का हिंदुओंके घर घरमें प्रचार हो "

देवराज विद्यावाचस्पति

२६।९।३४

C/o पं. मधुसूदनजी विद्यावाचस्पति, जयपूर,

श्री० पं० भगवद्दत्तजी, M. A. की संमति ।

वैदिक -- रिसर्च इन्स्टीट्यूट मोडेल टाऊन

५।९।३४

" वैदिक संपत्ति " पुस्तक प्राप्त हुआ । तदर्थ अनेक धन्यवाद । मैंने पहिले भी किसीसे मंगा कर इसका यत्र-तत्र पाठ किया था । अब प्रायः साराही ग्रंथ देख गया हूं । ग्रंथ अत्यंत उपादेय और भूरि परिश्रमका फल है । अनेक विषयोंपर ग्रंथकारका लेख मार्मिक है । ग्रंथकार मेरे मित्र थे । उनकी स्मृति मेरे हृदयमें अन्ततक रहेगी । .... भाषा विज्ञानपर उनका लेख बहुत विचारपूर्ण है। ... पुस्तक मार्मिक है। मैं इसकी जितनी प्रशंसा करूं थोडी है । मैंने स्वयं इससे कई बातोंका लाभ उठाया है । ......

आपका

भगवद्दत्त

" वैदिक विज्ञान " मासिककी संमति ।

(अप्रैल स० १९३४)

पं० रघुनंदनशर्मा हिंदी साहित्यके क्षेत्रमें अपरिचित व्यक्ति नहीं है । आपने अक्षरविज्ञान पुस्तक लिखकर नागरी अक्षरोंकी प्रकृतिसिद्ध रचनाको बहुत उत्तम प्रतिभासे दर्शाया था। आपकी उसी प्रतिभाका दुसरा चमत्कार " वैदिक सम्पत्ति " है ।

आपने इस पुस्तकमें प्रायः वेदके संबंधमें उठनेवाली सभी समस्याओंपर अच्छा प्रकाश डाला है । वेदके काल-निर्णय, वेदकी रचनाका काल, वेदमें इतिहासकी सत्ता, वैदिक संस्कृति, तथा वेदपर योरोपीयनोंके आक्षेप और वेदमें उच्च सभ्यताके दिग्दर्शन आदि नाना विषयोंपर आपने बडीहि सुन्दर ललित और रुचिकर भाषा में विवेचन किया है । आपकी लेखन शैली विस्तृत और स्वतंत्र है । इसके बीचमेंसे गुजरनेवाला पाठक लेखकके मंतव्योंसे प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता । वेदकी बहुतही समस्याएं स्पष्ट हो जाती हैं। ... स्वाध्यायप्रेमीके लिये तो यह एक उत्तम और विशद मानसिक भोजन है।

" आर्यप्रकाश " की संमति ।

(आर्यप्रकाश ९।९।१९३४)

साहित्य भूषण पं० रघुनंदन शर्माना अनमोला परिश्रमना परिणाम स्वरूप " वैदिक संपत्ति " ये विद्वानोने माटे अमूल्य गवरो ग्रंथ छे. ... विद्वान् पाठक वर्गना हृदयागारमां एमनूं स्थान अने श्रम हमेशा-ने माटे स्थायी ज रहेशे.

आर्य प्रजाए आ ग्रंथनी एक एक नकल पोताना घरमां अवश्य राखवी ज जोइये. कपडां अथवा पान सोपारीनो खर्च कमी करी पण वैदिक संस्कृति प्रत्ये प्रेम दर्शावनारी व्यक्तिये आ पुस्तकने पोताना घरमां वसाविने पोताने प्रेममूर्त बनाववो जोइये.

भाषाशास्त्रनो अभ्यासक होय, वेदनो अभ्यासी होवा पुरातत्त्वनो अभ्यासु होय, विश्वासवादनो अभ्यासी होय, प्राणिशास्त्रनो अभ्यासक होय, के इतिहास शास्त्रनो शोधक होय अर्थात् विश्वना हर कोई विषयनु ज्ञान प्राप्त करवानी इच्छावाळाने माटे आ ग्रंथ बहुत उपकारक थई शकशे.

'वैदिक धर्म' मासिककी संमति ।

यदि इस समयतके संपूर्ण ग्रंथभण्डारमें किस एक ग्रंथमें संपूर्ण वैदिक सभ्यताका आदर्श बताया गया है, ऐसा कोई प्रश्न करे, तो हम उस प्रश्नका निःसंकोच उत्तर ऐसा दे सकते हैं कि श्री पं० रघुनन्दन शर्मा-रचित और श्री शेठ शूरजी वल्लभदास द्वारा प्रकाशित "वैदिक संपत्ति" नामक पुस्तकमें संपूर्ण वैदिक सभ्यताका आदर्श बताया है। पाठक इस एकही पुस्तकका उत्तम पाठ करेंगे तो उनको वैदिक सभ्यताका आदर्श स्पष्ट रीतिसे मिल जायगा और उनको इस सभ्यताकी उच्चताके विषयमें किसी प्रकार संदेह नहीं रहेगा।

इस पुस्तकसे आपके पासका वैदिकी संपत्तिका खजाना अनंत गुणा बढ जायगा और आप अपने आपको वैदिक संपत्तिसे युक्त पायेंगे। यह इस पुस्तकका महत्त्व है।

वैसे तो वैदिक विषयपर अनेक पुस्तक लिखे गये हैं, परंतु इस पुस्तकमें पृष्ठपृष्ठपर और पंक्तिपंक्तिमें जैसी वैदिक संपत्ति भरभर कर रख दी है, वैसी पुस्तक हमने इस समयतक नहीं देखी।

आपके सामने नास्तिकवादी, भौतिकवादी, विकासवादी तथा अन्यान्य आधुनिक विवाद स्वीकार करनेवाले अनेक लोग आते हैं, वे आपसे अपने अपने अवैदिक वादोंका पुरस्कार करते हुए वार्तालाप करना चाहते हैं, कई प्रसंगोंमें आपको चुप रहना पडता होगा। यदि आप एक दो वार इस "वैदिक संपत्ति" को पढेंगे, तो आप उन सब शंकाओंका मुंहतोड उत्तर दे सकते हैं।

इस ग्रंथमें वेद उपनिषद् स्मृति दर्शन इतिहास पुराण आदि सब ग्रंथोंमें वर्णित सत्य–धर्म–सिद्धान्तोंका ऐसा सरल और सुबोध प्रतिपादन किया है कि उसको पढनेसे आर्य संस्कृतिकी उच्चताका पता ठीक ठीक प्रकार लग सकता है।

इस अमूल्य ग्रंथमें प्रथमके दो विभागोंमें वेदोंकी प्राचीनता, अपौरुषेयता और श्रेष्ठताकी सिद्धि अनेक प्रमाणोंसे की है। वेदका प्रत्येक वर्ण अपना अपना स्वाभाविक अर्थ रखता है, यह ग्रंथकारका सिद्धान्त है और 'अक्षरविज्ञान' नामक पुस्तकमें इसकी सिद्धता की गई है। यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और उसका संक्षेपसे विवरण करना भी यहां असंभव है, परंतु यह बात इस ग्रंथके प्रथम दो भाग पढनेसे समझमें आ जायगी, और अपनी आर्य सभ्यताकी विशेषता भी ध्यानमें आ जायगी।

यद्यपि द्वितीय खण्डमें 'वेदोंकी अपौरुषेयता' बतानेका मुख्य उद्देश्य है, तथापि ईश्वर, चैतन्य, तुलनात्मक शरीररचनाशास्त्र, जन्तुशास्त्र, मानव जातिके मूल पुरुष, आदिसृष्टिका स्थान, आदिभाषा, वैदिक भाषा, आदिभाषाका संस्कृत, जन्द, फारसी, अंग्रेजी, मिश्र, अरबी, जपानी, द्राविड आदि भाषा-

ओंसे संबंध, वैदिक भाषाकी अपरिवर्तनशीलता, अक्षरार्थ और लिपि इत्यादि प्रकरण बडे हि उद्‌बोधक हैं। यज्ञोंमें आयुर्वेद, ज्योतिष, भूगोल, वास्तु, पदार्थविज्ञान, पशुपालन, सार्वभौमराज्यशासन आदि संपूर्ण शास्त्रोंका संबंध कैसा है, यह सुयोग्य प्रमाणोंसहित इस द्वितीय खंडमें पाठक देख सकते हैं।

इस अपूर्व ग्रंथका तृतीय विभाग बहुतहि मनन करके पढने योग्य है। इसमें 'वेदोंकी उपेक्षा' होनेसे मानव जातिका अधःपात होनेका स्वरूप स्पष्ट किया है। आर्योंके विदेशगमनका व्यापक स्वरूप बतलाकर एशिया, यूरप, अमरिका और आस्ट्रेलियामें दिग्विजयी आर्योंके प्रवेश कैसे हो गये, इसका मनोरम वर्णन यहां पाठक देख सकते हैं। पश्चात् विदेशियोंका भारतमें आगमन कैसा हुआ, इसका दुःखदायी वर्णन है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह सब पाठक देखेंगे तो उनको बडा बोध प्राप्त हो सकता है। इसमें आर्य शास्त्रोंके साथ जो ईसाई और मुसलमान आदिकोंके शास्त्रोंकी तुलना की है, वह विशेष पढने योग्य है।

चतुर्थ खण्डमें 'वेदोंकी शिक्षा' कही है। इसलिये यह वैदिक संपत्तिका उज्ज्वल रत्न कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वेद ब्राह्मण आदिमें जो गृहस्थाश्रम, सदाचार, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी व्यवस्था कही है, वेदके अनुसार जो सब प्रकारकी धर्ममर्यादा है, उन सबका यथायोग्य वर्णन इस विभागमें है। इस विभागका हरएक पृष्ठ पढने योग्य है और मननपूर्वक स्वाध्याय करने योग्य है।

आगे ६० पृष्ठोंका उपसंहार है, जिसमें अच्छीं बातोंका पुनः संक्षेपसे कथन किया है और बहुतसी नवीन बातें भी हैं। इस ग्रंथका संक्षेपसे स्वरूप कथन करना अशक्य है, क्योंकि इस ग्रंथमें पहिलेहि सब बातें संक्षेपसेहि कहीं हैं। इतनी बातोंका और इतने उपदेशोंका संग्रह इस ग्रंथमें है कि इनका संक्षेप कैसा किया जा सकता है? पाठक कोई पृष्ठ खोलकर देखेंगे तो उनको वहीं नवीन बात ऐसे जोरदार और स्पष्ट शब्दोंमें कही मिलेगी कि जिसके ज्ञानसे उनके मनमें आर्य धर्मकी श्रेष्ठताकी स्थापना निःसन्देह हो जायगी।

ऐसे अपूर्व ग्रंथका हम स्वागत करते हैं और प्रत्येक वैदिक धर्मीसे हम सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वह इस ग्रंथको अपने घरमें रखे और इस ग्रंथका पाठ प्रत्येक भारतवासीके घरमें होता रहे।

'सार्वदेशिक' देहली की संमति।

यह ग्रन्थरत्न श्रीमद्दयानन्द अर्धशताब्दी अजमेर के अवसर पर प्रकाशित कराया गया था। इस में ४ खण्ड हैं जिन में सुयोग्य लेखक महोदय ने क्रमशः वेदोंकी उपेक्षा, वेदों की शिक्षा इन विषयोंका, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, भूगर्भ शास्त्र, विज्ञान शास्त्र, इत्यादि की सहायता से बडा उत्तम विवेचन किया है 'वेदों में इतिहास है इस प्रश्न का बडी योग्यता से विद्वान लेखक महोदय ने खण्डन किया है। ज्योतिष द्वारा पाश्चात्य तथा लोकमान्य तिलकादि जिन भारतीय विद्वानों ने वेदों के समय निर्धारण का यत्न किया है उनके विचारों की बडी विद्वत्ता से समालोचना करते हुये सुयोग्य लेखकने दिखाया है कि उनका मत ठीक नहीं है तथा वेद नित्य और अपौरुषेय हैं। विकासवाद की भी विस्तृत आलोचना करते हुये विद्वान लेखक ने उस को अमान्य सिद्ध किया है। वैदिक भाषा सब भाषाओं की जननी वा मूल है, इस बात को सिद्ध करने के लिये सुयोग्य लेखक महोदय ने जन्द, फारसी, अंग्रेजी, मिश्र भाषा अरबी, चीनी,

अफ्रीका की स्वाहिली भाषा, अमेरीकन भाषा आदि के अनेक समता सूचक शब्दों के उदाहरण दिए हैं। कोई भी निष्पक्ष पाठक लेखक की विद्वत्ता, गम्भीरता और परिश्रम पर मुग्ध हुये बिना नहीं रह सकता। वैदिक सिद्धान्तों पर इस ग्रन्थ रत्न में बहुत ही उत्तम प्रकाश डाला गया है जिससे स्वाध्यायशील सज्जनों के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही अधिक उपयोगी होगा इस में संदेह नहीं हो सकता। वैदिकधर्म और सभ्यता सम्बन्धी अनेक आवश्यक विषयों का यदि इसे विश्वकोष कहा जाए तो भी मेरे विचार में कोई अत्युक्ति न होगी। चतुर्थ खण्ड के वैदिक शिक्षा सम्बन्धी प्रकरण में जीवनोपयोगी विषयों पर वेद मन्त्रों का भी अर्थ सहित अच्छा संग्रह किया गया है। ऐसे उत्तम ग्रन्थ को प्रकाशित करके श्री सेठ शूरजी वल्लभदास जी ने आर्य जनता-विशेषतः स्वाध्यायशील विद्वन्मण्डली—का बडा भारी उपकार किया है। प्रत्येक विषय का बडी योग्यता से इस ग्रंथ में सप्रमाण विचार किया गया है। प्रमाणों और युक्तियों से विषयों को खूब पुष्ट किया गया है। कागज छपाई आकार प्रकारादि सब उत्तम हैं। इस पुस्तक की एकेक प्रति प्रत्येक उत्तम पुस्तकालय में अवश्य रहनी चाहिये जिस से स्वाध्यायशील निर्धन सज्जन भी लाभ उठा सकें।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति बङ्गलौर.

अर्जुन (ता. ४ अक्तूबर १९३४) की संमति।

लेखकने इस पुस्तक में यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि यूरोप में भौतिकवाद वहां की जनता को सुखी और संतुष्ट नहीं रख सका, इसीलिये आज हमें कई स्थानों पर-प्रकृति की ओर दौडो-की आवाज सुनाई दे रही है। वर्तमान सभ्यता यूरोप के लिए भी इतनी असह्य हो गई है कि वही उसे लेकर डूब सकती है। संसार की समस्यायें अधिकाधिक उलझती जाती हैं। इसका उपाय केवल आर्यों के त्यागवाद की सभ्यता में है।

वैदिक संस्कृति का विस्तृत परिचय देने से पूर्व लेखक ने प्रथम दो खण्डो में यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि वेद अत्यन्त प्राचीन और आदि सृष्टि में बने हुए हैं। लेखक की प्रतिपादनशैली उत्तम और विद्वतापूर्ण है। आजकल के प्रचलित मतों का योग्यता-पूर्वक निराकरण किया गया है।

इसी प्रसंग में डारविन के विकास वाद पर ७५ पृष्ठोंमें विचार किया है और अनेक युक्तियों से उसे भ्रांत ठहराने का यत्न किया है। बहुत सम्भव है कि विकास वाद के प्रेमी इससे मतभेद रखें परन्तु हम उनको यह सलाह अवश्य देंगे कि लेखक के लेखसे उसके दूसरे पहलू पर भी अच्छा प्रकाश पडता है, जिसे पढने से लाभ ही होगा। आगे आदि सृष्टिमें भाषाओं के विकास आदि अनेक गम्भीर विषयों पर लेखक ने ऐसा सुन्दर प्रकाश डाला है कि लेखक की प्रकाण्ड विद्वत्ताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

तीसरा खण्ड ऐतिहासिक है, जिसमें बाहर से आनेवाले विदेशियों के संसर्ग से आर्य संस्कृति में जो हेरफेर हुए उनका जिक्र है। प्राचीन शास्त्रों में कहां-कहां परिवर्तन किये गये, इस सम्बन्ध में विद्वान लेखन ने कम प्रकाश नही डाला।

चतुर्थ खण्ड में वेद और उसकी शाखाओं पर विचार करने के अनन्तर वैदिक संस्कृति का आदर्श बताने की चेष्टा की गई है। वर्णाश्रम व्यवस्था, त्यागवाद का आदर्श और मोक्ष का परम उद्देश्य आदि पर जो विचार किया गया है, वह केवल धर्मशास्त्रीय चर्चा करनेवाले के लिये ही नहीं, परन्तु इतिहास के विद्यार्थी के लिये भी उपयोगी है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में लेखक की शैली इतनी विद्वतापूर्ण है कि लेखक के बहुगुप्त, बहुज्ञ और मननशील होने में कोई सन्देह नही रहता । लेखक आर्य सामाजिक विद्वान् हैं, परन्तु उसमें उनका सा हट नहीं है। वे कहते हैं कि वेदों से तार, रेलगाडी निकालना व्यर्थ है, शब्दों की खेंचातानी है । वैदिक सभ्यता त्याग की सभ्यता थी, उनमें वर्तमान भौतिक उन्नति को बहुत महत्व कभी नहीं दिया गया ।

हम अन्तमें प्रत्येक आर्यसामाजिक विद्वान्, शास्त्रीय चर्चा के प्रेमी और प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थी से इस अमूल्य ग्रन्थ को पढने का अवश्य अनुरोध करेंगे ।

कृष्णचन्द्र ।

इत्यादि अनेकानेक महानुभावोंने इस पुस्कको मुक्तकण्ठसे प्रशंशित किया है, इसलिये आप इसे लेकर एकवार पढिये.

पृष्ठसंख्या ८२० है और मूल्य केवल ६) छः रु० है और डाकव्यय १।) है । शीघ्र लीजिये ।

म. आ. से ७।) वी. पी. से ७॥=) विदेशके लिये ८)

प्राप्तिस्थान-

१ सेठ शूरजी वल्लभदास, कच्छ केसल, सँडहर्स्ट ब्रिज समीप, बंबई.

२ शूरजी वल्लभदास स्वदेशी बजार लि० झवेरी बाजार, बंबई २.

३ स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

४ हरएक पुस्तक विक्रेताके पास मिलेगा ।

वर्ष १६
अंक ४
क्रमांक १८४

वैदिक धर्म

चैत्र संवत् १९९२
एप्रैल सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

सबका आधार.

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परि भूरेष्यादिवम् ॥

ऋग्वेद १।५२।१२

हे ईश्वर! (अस्य रजसः व्योमनः पारे) इस अन्तरिक्ष और आकाश के परे तू (स्वभूति-ओजाः) अपना महिमाके बलसे युक्त (धृषन्-मनः) धैर्यशाली मनसे युक्त है, तू (अवसे) हमारी रक्षाके लिये इस (भूमिं चकृषे) भूमि की रचना की है तू (ओजसः प्रतिमानं) तूही शक्तिका आदर्श है और (अपः दिव परि भूः स्वः आपषि) जल और द्युलोक को व्यापक हो कर सर्वत्र फैला है।

परमेश्वर जैसा यहां है वैसा ही इस आकाश के परे भी है। अपनी शक्तिसे वह सर्वत्र फैला है। मनको वही धैर्य देनेवाला है और सबकी रक्षा के लिये वही भूमि आदि सब सृष्टीकी रचना करता है। प्रबलताका नमूना सबोंके सामने वही है और वही सर्वत्र उपस्थित होकर सबको आधार देता है॥

ओ३म् तत्सत्

हंस-तत्त्व

लेखक- श्री पं० वेदनिधि शर्मात्मज ब्र० सच्चिदानन्द, राँची (बिहार-प्रान्त)
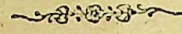
वैदिक साहित्यमें 'हंस' शब्द 'प्राण' और 'आत्मा' का वाचक माना गया है। यह 'हंस' शब्द 'सोऽहम्' अथवा 'अहं सः' के वर्ण-विपर्यय से बना है। इस (हंस) शब्दमें 'अह व्याप्तौ' और 'अस ...वि' इन दो धातुओं का समावेश हुआ है। इसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकारसे किया जाता है—

'अ'-हम्, 'अ'-सः

ये दो शब्द 'हंस' शब्दमें सम्मिलित हैं। इनके अकार का लोप करनेपर 'हम्+सः' = 'हंसः' ऐसा रूप बना। विचारशील पाठक स्वयं विचार कर देखें कि 'अहम्-असः' इन दोनों शब्दों के अन्दर कितना गूढ वैदिक-अध्यात्म-रहस्य छिपा हुआ है? इसी लिए वेदोंमें 'हंस' शब्द 'त्रिकालानवच्छिन्न सर्वव्यापक आत्मा' का वाचक माना गया है। इस 'हंस' शब्दके अनन्त अर्थ हैं। यद्यपि उन समस्त अर्थमय भावों का वाणी तथा लेखनी से वर्णन करना सर्वथा दुःसाध्य है; परन्तु फिर भी सहृदय पाठकों के उपकारार्थ 'हंस' शब्दपर निम्न प्रकारसे यत्किञ्चित् विचार किया जाता है—

(१) सः+अहम् [1] = वह [आत्मा] सर्वव्यापक है।

(२) सः+अ-हम् = वह अहिंसनीय अर्थात् अविनाशी, अजर, अमर, अक्षर, अच्छेद्य, अभेद्य, अक्लेद्य, अदाह्य, अशोष्य, अव्यक्त, कूटस्थ, अजन्मा, अनादि, स्वयंभू, निर्विकार, निराकार, अचल, सर्वगत, स्थाणु, सनातन, शाश्वत, नित्य, अचिन्त्य, अशब्द, अस्पर्श, निरञ्जन, सच्चिदानन्द इत्यादि अनन्त विशेषणों से वाच्य है।

(३) सः+अ-हम्=वह अत्याज्य है। तथा—

(४) सः+'अहर'-म्=वही दिन का संचालक है। अतएव- 'अहं सः' 'हम्+सः' 'हं-सः'='हंसः' इत्यादि विशेषणों से वाच्य ब्रह्म मैं ही हूँ।

इस प्रकार की भावना को 'सोऽहं भावना' कहते हैं। इस 'सोऽहं भावना' का समस्त अध्यात्म-रहस्य केवल एक 'हंस' शब्द में छिपा हुआ है। यह 'हंस' शब्द 'अ-हम्' शब्द से वाच्य परब्रह्म का अभिव्यञ्जक है। उद्गीथ, प्रणव, ओङ्कार, पुरुष, यज्ञ,

---

(१) अहम्= 'अह व्याप्तौ' 'हन हिंसागत्योः' 'ओहाक् त्यागे' 'ओहाङ्गतौ'–विस्येतैर्धातुभिर्विनिष्पन्नमिदं रूपम्। 'आत्माऽज्ञेयोऽगम्योऽनिर्वचनीयोऽत्याज्योऽन्तर्यामी सर्वव्यापकश्चेति धातूद्भवार्थाः।' तत्र प्रमाणम्–
'स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु' य० ३२।८
'अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥' (अथर्व १०।८।३२)
'न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाङ् न मनः (इति उपनिषद्)

(२) 'अहन्' इति दिनस्य नामधेयम्, तेदधीश्वरोऽहस्त्युच्यते।

पुरुषोत्तम, पुराण-पुरुष, यज्ञपुरुष, अधियज्ञ, हिरण्यगर्भ, विराट्, प्रजापति, ईश्वर, जीव, प्रकृति इत्यादि शब्दों का रहस्य निम्नलिखित एकाक्षर वैदिक शब्दोंमें संनिहित है—
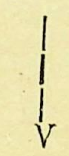
इन समस्त एकाक्षर शब्दों का रहस्य 'ओम्' (जिसे सामवेदी उद्गीथ और ऋग्वेदी प्रणव नाम से पुकारते हैं) के अन्दर गुप्त रूपेण संनिहित है, तथा इस ओङ्कार का रहस्य—

सोऽहम् = [स्]-'ओ'-[ह]-'म्'

के अन्दर गुप्त है। यदि इस 'सोऽहम्' के अन्दर कोई अद्भुत-रहस्य भरा हुआ न होता तो आज वेदान्ती 'हंसः' 'सोऽहम्' 'अहं सः' 'सोऽहमस्मि' 'अहमस्मि' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'पुरुषमिदं ब्रह्म' (अ० ११।८.३२)

'पुरुष एवेदᳪसर्वम्' (यजुः ३१।२) इत्यादि वैदिक-सिद्धान्तों को मानने के लिये कभी भी तैयार न होते। यदि इस 'सोऽहम्' अथवा 'अहमस्मि' के अन्दर कोई गुप्त-तत्त्व न होता तो भगवान् श्रीकृष्ण महाभारतीय-सङ्ग्राम के अवसर पर अर्जुन से यें वचन न कहते—

'वासुदेवः सर्वमिति' (गी० ७।१९)
'अहमात्मा गुडाकेश' (गी० १०।२०)
'अक्षराणामकारोऽस्मि' (गी० १०।२३)
'अश्वत्थः[1] सर्ववृक्षाणाम्' (गी० १०।२६)
'बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्' (गी० १०।३५)

'यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव च ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥'
(गी० १०।४१)

पूर्वोक्त कथनों का अभिप्राय यह है कि- 'जो योगी पुरुष होते हैं वे इस 'हंस-तत्त्व' के महत्त्व को भलीभाँति समझते हैं। अर्थात् वे अपने मनमें ऐसी धारणा कर लेते हैं कि— 'मैं ही अविनाशी परब्रह्म हूँ।' योगी इस प्रकार की धारणाओंसे अपने उत्कर्ष-पथ पर विचरण करने लगता है। अतएव वह निकृष्टतम कर्मों अथवा निकृष्ट भावोंका

[1] (पिप्पलमित्यर्थः । "अश्वत्थ" शब्दस्याश्वारोहीति वैदिकोऽर्थः । अश्वे तिष्ठत्यारोहतीति व्युत्पत्तिः । 'अश्व, 'अश्वत्थ' 'आश्वत्थ' इति नामत्रयं ब्रह्मणो जीवात्मनश्च बोध्यम् । तदुक्तमुपनिषदि-
"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख; एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म, तदेवामृतमश्नुते ॥" (कठ उप. ६।१)
गीतायाम्-"ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥" (१५।१)
इति विशेषः पाठः । तदेव शुक्रमित्यत्र यजुर्वेदे (३२।१) पाठः ।

आश्रय कदापि नहीं कर सकता। वह सदा मध्याह्न के प्रखर तेजवाले सूर्यके समान तेजस्वी बनकर अपने मनमें नाना प्रकार के उच्च विचारोंका विकास करता हुआ अपने उच्च-पदकी अभिसिद्धिमें संलग्न रहता है। अतएव उस अवस्थामें वह अपने आपको "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा अवश्य कह सकता है। दूसरी बात यह है कि वेद, उपनिषद्, गीता, दर्शन, पुराणादि धर्मग्रन्थोंमें प्रायः सर्वत्र सर्वात्मभाव तथा एकात्मभाव का उल्लेख पाया जाता है– अतएव इस दृष्टिसे भी अथर्वादि वेदोंका मनन करनेवाला 'अथर्वायोगी,' अपने को "मैं परब्रह्म हूँ" ऐसा कह सकता है। उपनिषदोंमें लिखा हुआ है कि जो ब्रह्मका विचार करता है, वह ब्रह्म ही बनता है। इस विषयमें अथर्ववेद भी वेदान्तियोंके 'सोऽहम्' तत्त्वकी पुष्टि करते हुये कह रहा है कि—

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
(अथर्व ११।८।३२)

"योगी तथा विद्वान् पुरुष इस पुरुषको-'यह ब्रह्म ही है,— ऐसा समझता है।" कहनेका अभिप्राय यह है कि योगी तथा विद्वान् पुरुष ही 'सोऽहं तत्त्व' के मर्म को भलीभाँति समझ सकते हैं, अन्य नहीं।

पुरुष को ब्रह्म सिद्ध करने का सबसे अच्छा प्रमाण यही अथर्ववेदीय मन्त्र है। जो लोग पुरुष को ब्रह्म कहनेसे हिचकिचाते हैं, उनकी शङ्काओं का समाधान करनेके लिये उक्त मन्त्र में 'पुरुषमिदं ब्रह्म' ऐसा स्पष्ट कहा है। 'पुरुष' और 'अहम्' ये दोनों आत्माके पर्यायवाचक शब्द हैं। इनका अर्थ है- "सर्वान्तर्यामी आत्मा।" अधियज्ञ भी उसी का नाम है, प्रणव, ओङ्कार और उद्गीथ आदि नाम भी उसीके हैं—

अधियज्ञोऽहमेव......... (गी. ८।४)
य उद्गीथः सोऽधियज्ञः, योऽधियज्ञः सोऽहम्।
पुरुषो वाव यज्ञः...... (छा. ३।१६)
यज्ञो वै पुरुषः...... (शतपथ ब्रा. ३।२)

उपर्युक्त उद्गीथ, प्रणव, अधियज्ञ, पुरुष, यज्ञ इत्यादि सहस्रों वैदिक शब्द केवल 'सोऽहम्'अथवा 'अहम्' इन दो शब्दोंके व्याख्यान रूप हैं। इस दृष्टिसे 'अहं ब्रह्म' के व्यतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सिद्धि नहीं होती। गीता और उपनिषदोंमें भी केवल 'अहं ब्रह्म' की ही सत्ता दिखाई दे रही है–

'वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।'
(गी० ७।२६)
'वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।'
(गी० १०।२२)
'महर्षीणां भृगुरहम्' 'देवर्षीणां च नारदः।'
(गी० १०।२५-२६)
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।
(गी० १०।३६)
सिद्धानां कपिलो मुनिः। (गी० १०।२६)

गीता के उक्त वचनों की तुलना उपनिषदों के निम्नलिखित वचनोंके साथ कीजिए–

'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्। तदात्मानमावेद—

'अहं ब्रह्मास्मीति।' तस्मात्तत्सर्वमभवत्। तद्यो देवानां प्रत्यबुध्यत, स एव तदभवत्– तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम् तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे–'अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति' (ऋ० ४।२६।१) तदिदमप्येतर्हि य एवं वेद- 'अहं ब्रह्मास्मी'–ति स इदं सर्वं भवति। तस्य ह न देवा नाभूत्या ईशते। आत्मा ह्येषां स भवति। अथ योऽन्यां [1]देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद, यथा पशुरेवं स [2]देवानाम्। (बृ० उ० १।४।१०)×

'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्- तत्सत्यम्' (छा०६।८।७)

(१) प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां, ज्ञानिनां न कदाचन। इति भावः—

× अहं मनुरिति— (बृ. १।४।१०)

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवानृषिरस्मि विप्रः। अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा॥ (ऋ.४।२६।१)

(२) 'न प्रतीके न स:' इति वचनान्निराकारोपासना सिद्धिकरीति ज्ञायते। (वेदान्त द. ४।१।४)

आरम्भ में यह जगत् ब्रह्म अर्थात् ब्रह्ममय था। कारण उस समय प्रत्येक व्यक्ति 'अहं ब्रह्मास्मि' इस तत्त्व को भलीभाँति जानता था। इसी कारण उस समय यह समस्त जगत् ब्रह्म अर्थात् ब्रह्ममय था। इस प्रकार देवर्षि और मनुष्योंमें जिस जिस को इस 'अहं तत्त्व' का बोध होता गया, वह वह व्यक्ति ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मरूप बना। दृष्टान्त के लिये वामदेव ऋषि को लीजिए उन्होंने- 'अहं मनुरभवं ऋ० ४।२६।१ इत्यादि ऋचा का मनन करने पर यह बोध प्राप्त किया था कि- 'मैं' ही प्रारंभ में मनु, सूर्य, मेधावी कक्षीवान् ऋषि, कुत्स, आर्जुनेय और उशना कवि था।' (ऋ० ४।२६।१) अतएव जो कोई भी विद्वान् व्यक्ति इस दृश्यमान जगत् को 'अहं ब्रह्मास्मि' इस भावना से देखने की कोशिश करेगा, वह निःसंशय परब्रह्म बन जायगा। देव और असुर भी उसका पराभव न कर सकेंगे, और वह इस दृश्यमान सचराचर जगत्का 'आत्मा' बन जायगा। जो सर्वाधार-स्तम्भ 'स्कम्भ' नामक मूल केन्द्रित-शक्तिको छोडकर अन्यान्य देवी-देवताओंकी उपासना करता है, वह परब्रह्म नहीं बन सकता-अर्थात् ब्रह्मज्ञान शून्य पुरुषोंमें उसकी गणना करनी चाहिए, कारण वह 'अहं ब्रह्मास्मि' के तत्त्व को भली भाँति नहीं समझ सकता। जैसे आकाशस्थ चन्द्रमाको छोडकर तारोंकी उपासना करनेवाला पुरुष पशुओंके समान मूढ समझा जाता है, वैसेही एक मूल-केन्द्रित-शक्ति के व्यतिरिक्त अन्यान्य देवोंकी उपासना करनेवाला पुरुष मूढ है। जैसे प्राणियोंमें पशु निकृष्ट समझा जाता है, वैसे भी ब्रह्म-ज्ञानियोंके समाजमें निकृष्ट तथा परिहार्य है। (देखो बृ. उ. १।४।१०)

यद्यपि यह समस्त जगत् शास्त्रीय-दृष्टिसे ब्रह्ममय और त्रिकालानवच्छिन्न है (श्वे. ६।८।७) और ब्रह्ममय होनेसे इसकी उपासना करनेमें कोई दोष प्रतीत नहीं होता-परन्तु फिर भी उसी एक निराकार अखण्ड 'सोऽहम्' तत्त्वकी उपासना करनी चाहिए-जिससे शीघ्र सिद्धि प्राप्त होवे। अन्यान्य सहस्रों देवी देवताओंकी उपासना करके मनुष्य सहस्रों जन्मोंसे भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव सिद्धि प्राप्त करनेका मुख्य-द्वार, 'निराकारोपासना' है। वेद भी इस विषयमें अपनी निष्पक्ष-सम्मति दे रहा है कि— 'न तस्य प्रतिमा अस्ति, उसकी प्रतिमा नहीं है, अतएव सम्पूर्ण प्राणियोंमें ओत-प्रोत उसी एक निराकार 'हंस-तत्त्व' की उपासना करनी श्रेयस्कर है।'

अब यहाँ एक शङ्का पाठकोंके मनमें उत्पन्न हो सकती है कि— 'यदि यह समस्त सचराचर जगत् निराकार ब्रह्मका ही विश्वरूप है तो इसकी उपासना [साकारोपासना] करनेमें क्या दोष है?' इसका उत्तर यह है कि— 'जगत् की उपासना करनेमें दोष तो कुछ नहीं है, परंतु सिद्धि कुछ देरमें प्राप्त होने की संभावना है। मनुष्योंका यह स्वभाव है कि वह सुखशान्ति—मय स्थलोंको शीघ्र ही ढूँढा करता है। केवल यही नहीं, वह उस काम्य वस्तुकी प्राप्तिके लिये सर्व श्रेष्ठ उपायोंका भी अवलम्बन करता है एतदर्थ जिस उपाय का अवलम्बन करनेसे उसे देरमें सिद्धि प्राप्त होती है— उसकी वह उपेक्षा कर देता है। जैसे आकाशस्थ चन्द्रमा को छोडकर जो एक-एक तारे की उपासना करके सिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करता है, करोडों कल्पान्तोंमें भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता—वैसे ही जो एक मूल 'हंस-शक्ति' को छोडकर अन्यान्य देवोंकी उपासना करता है, वह पशुके समान मूढ पुरुष कोटी कोटी कल्पान्तमें भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये उपनिषत्कारोंने कहा है कि- 'योऽन्यां देवतामुपास्ते······ (देखो बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।१०)

दूसरा प्रश्न यह उठ सकता है कि- 'ईश्वर, जीव, जगत्' सबको ब्रह्म कहने का अभिप्राय क्या है?' इसका उत्तर यह है कि- 'ईश्वर की तो 'ब्रह्म' संज्ञा है ही अब रही 'जीवात्मा' और 'जगत्' को 'ब्रह्म' कहने की बात! इसका समाधान यह है कि- 'ईश्वर सर्व व्यापक है। वह जीवात्मामें भी है- जगत्में भी। अतएव इसकी सर्व व्यापकता

की अभिव्यञ्जना करनेके लिये वेदान्तियोंने 'जगत्' और 'जीव' दोनोंको ही 'ब्रह्म' कहा है। वस्तुतः वे दोनों 'ब्रह्म' नहीं हैं। अर्थ-दृष्टिसे वे 'ब्रह्म' सिद्ध होते हों तो यह दूसरी बात है। 'ब्रह्म' का अर्थ है 'बडा।' 'बडा' वही है, जो जीवात्मा और जगत् में व्याप्त हो, अतएव इस तात्विक-दृष्टि से एक निराकार ईश्वर के व्यतिरिक्त कोई 'ब्रह्म' सिद्ध नहीं हो सकता। पूर्वोक्त पृष्ठोंमें- "एक ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ की सिद्धि नहीं होती" ऐसा जो कहा है, वह सिर्फ ईश्वर की महत्ता, अखण्ड-शक्तिमत्ता, निराकारता और सर्व व्यापकता को सिद्ध करनेके लिये कहा गया है। अस्तु-

अब हम पुनः अपने पूर्वोक्त प्रकृत-मूल-विषय पर आते हैं। उपनिषदोंके 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'आत्मैवेदं सर्वम्' 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' इत्यादि मूल-सिद्धान्तों का संङ्केताभिव्यञ्जक उल्लेख महाभारत के निम्नलिखित श्लोकोंमें भी पाया जाता है—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां, 'सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।'
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि, कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥
(म० भारत, शान्ति पर्व ७२)

एकवर्णमिदं पूर्वं, विश्वमासीद् युधिष्ठिर !
कर्म-क्रिया-विभेदेन, चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥
(म० भारत, वनपर्व अ० १४२)

इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है कि- "प्रारम्भमें यह जगत् ब्रह्ममय था। उस समय वर्ण-व्यवस्था नहीं बनी थी। अतएव परब्रह्म से पहिले रचे गये वे समस्त ब्रह्मवित् पुरुष उपनिषदोंके कथनानुसार 'ब्रह्म' १ इसी वर्णमें सम्मिलित थे। कालान्तरमें धीरे धीरे कर्म-प्रक्रिया का विच्छेद होनेसे चारों वर्णोंकी स्थापना की गई।"

ऊपरके श्लोकमें "सर्वं ब्राह्ममयं जगत्" ऐसा स्पष्ट कहा है। इसी भावका दिग्दर्शन 'वेदान्त-दर्शन के "अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा" इस सूत्रमें स्पष्टतया किया गया है। गीताका "वासुदेवः सर्व २ मिति" (७।१९) यह वचन भी उपनिषदों और वेदोंमें प्रोक्त—

'ईशावास्यमिदं सर्वम्' (यजु ४०।१),
(ईशोपनिषत्) मं. १।
'पुरुष एवेदं सर्वम्' (पुरुष-सूक्त ३१।२)
'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' (छा. ६।८।७)
'ओङ्कार एवेदं सर्वम्' (छा. २।२३।४)
'परञ्चापरञ्च ब्रह्म ओङ्कारः (प्रश्न. ५।२)
'भूतं भवद्, भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव'
(मा.।१)

इत्यादि वचनोंके 'सर्वात्मभाव, सोऽहं भाव और एकात्मभाव' की स्पष्टतया सूचना दे रहा है।

ऊपरके कथनोंका सारांश यह है कि- 'जो 'हंस' अर्थात् 'ब्रह्म'के स्वरूपको यथावत् जाननेकी चेष्टा करता है, वह निःसंदेह 'हंस-वाहन योगी' कहाता है। यदि असन्दिग्ध-रीतिसे उसे 'परब्रह्म' ही माना जाय तो भी कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि ज्ञानी पुरुष तो प्रत्येक वस्तुको परमेश्वरका अवतार मानता है --

सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः (यजुः ४०।७)
'विज्ञान—शील पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंको विश्व-रूप परात्पर परमात्मा का ही रूप समझता है। इसी लिये वह 'हंस' स्वरूप बन जाता है। इस विषयमें श्रुति भी कहती है कि—

यः परमं ब्रह्म वेद, स ब्रह्मैव भवति (मुण्डक ३।२।९)
अभयं वै ब्रह्म...(बृहदारण्यक. ४।४।२५)
(नृसिंह उ. ८)

'जो अभय-कर्ता परब्रह्मको जानता है- वह निःसंशय 'परब्रह्म' बनता है।' इन्हीं एकात्म-

---

(१) जो 'ब्रह्म' का विचार करता, है, वह 'ब्रह्म' बनता है। (देखो. बृ. उ. १।४।१०)
(२) ये समस्त-प्रमाण एक-स्वरसे 'अहं ब्रह्म' 'सोऽहम्' 'हंसः इत्यादि तात्त्विक-सिद्धान्तों उद्बोधक, अनुमोदक और समर्थक हैं। इनका मनन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है, मानो एक 'ब्रह्म' के व्यतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ है ही नहीं।

भावोंका निरूपण भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें[1] 'सोऽहम्' भावसे किया है। यद्यपि गीता में आदि से अन्तलों विविध-विषयोंका निरूपण किया गया है, पर मुख्यतया उसमें 'सोऽहम्' 'अहमस्मि' एवं 'अ-हम्' का ही गूढ एवं मार्मिक तत्व पाया जाता है।

इस कूट 'अहं-तत्व' का वाणी तथा लेखनी से वर्णन किया जाना सर्वथा असंभव है। भगवान् श्रीकृष्ण को इस कूटाक्षर-संज्ञक अव्यक्त 'हंस-तत्व' का पूर्ण विवेक था। अतएव वे 'हंस-वाहन' संज्ञा के पूर्ण अधिकारी थे। गीतामें उन्होंने केवल एक 'अ-हम्' शब्द द्वारा अर्जुन को अविनाशी 'हंस-तत्व' का रहस्य समझा दिया है! इससे उनकी ज्ञान-शक्ति की गहराई का आश्चर्यजनक अनुमान लगाया जा सकता है!!! उन्होंने अपनी महायोग-शक्ति का विकाश भी इसी ज्ञान-शक्ति के बल से किया था। वे गीतामें स्वयं अपनी अद्भुत-ज्ञान-शक्ति की विवेचना करते हुये कहते हैं कि—

'नहि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योग-संसिद्धः, कालेनात्मनि विन्दति॥'
(गी० ४।३८)

भगवान् श्रीकृष्ण का ज्ञान-शक्ति का विकाश इतना अधिक किस प्रकार हुआ? इस रहस्य को समझने के लिये छा० ३।१७।६ के निम्नलिखित उपाख्यान का वास्तविक तत्वान्वेषण करना विद्वानोंको अत्यन्त आवश्यक है—

"अङ्गिरा ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न हुए 'घोर' नामक किसी पूर्ण-आत्म-वेत्ता ऋषिके पास जाकर भगवान् श्रीकृष्णने उपनिषदोंके 'सोऽहम्' तत्वका मर्म समझा था। यही कारण है कि उन्होंने गीतामें समस्त उपनिषदोंका आध्यात्मिक रहस्य 'अहम्' शब्दमें ही भर दिया है। (देखो छा० ३।१७।६)

भागवतकार आदि का कहना है कि- 'श्रीकृष्ण-जीने सन्दीपनी ऋषीके पास जाकर बाल्य कालही में समस्त वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन किया था। इसके विरुद्ध उपनिषत्कार कहते हैं कि नहीं,उन्होंने 'घोर' ऋषि के पास जाकर ये निम्नलिखित विद्याएँ पढीं थीं—

(१) ऋक् (२) यजुः (३) साम (४) अथर्व (५) उपनिषत् (६) दर्शन (७) इतिहास (८) पुराण (९) पितृ-विद्या (१०) राशि-विद्या (११) दैवी-विद्या (१२) ब्रह्म-विद्या (१३) भूत-विद्या (१४) निधि-विद्या (१५) शिल्प-विद्या (१६) देव-विद्या (१७) एकायन-विद्या (१८) वाकोवाक्य-विद्या (१९) भूगर्भ-विद्या (२०) विज्ञानशास्त्र (२१) नृत्य, वाद्य, गायनादि-विद्या (२२) क्षत्र-विद्या (२३) नक्षत्र-विद्या, (२४) रथ-संचालन-विद्या (२५) सर्पदेव-जन-विद्या।

बुद्धिमान् पाठक इस बात का स्वयं निर्णय करें। हम तो इस विषयमें पाठकोंको यही निष्पक्ष-सम्मति देते हैं कि उन्होंने उक्त दोनों ही गुरुओंके पास जाकर ये विद्याएँ पढी होंगी। दूसरे शब्दोंमें यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने प्रत्येक विचार शील आत्म-वेत्ता ऋषि-महर्षियों के पास जाकर उक्त विद्याओंका मर्म समझा होगा! क्योंकि बडे-

---

(१) 'गीता' के निर्माता महर्षि 'वेदव्यास' हैं। ये पूर्ण ब्रह्मज्ञानी थे। इनके बनाये हुए ये तीन ग्रन्थ अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं— (१) गीता (२) वेदान्त-दर्शन (३) महाभारत। इनके अन्दर ब्रह्म-ज्ञान का रहस्य कूट कूट कर भरा गया है। सोऽहम्' का तत्व इनके उक्त ग्रन्थोंमें आदिसे अन्तलों व्याप्त है। इससे इनकी यौगिक-शक्ति की विकाश-प्रणाली का अनुमान लगाया जा सकता है। इन्होंने अपने कालमें अथर्वादि चारों वेदोंका प्रचार किया था, यही कारण है कि आज समस्त जगत् इन्हें 'कृष्ण द्वैपायन व्यास, न कह कर 'वेदव्यास' इस नामसे सम्मानित कर रहा है। हम इनकी प्रशंसा के विषयमें अधिक न कहकर सिर्फ इतना ही बता देना चाहते हैं कि जनक-गुरु शुकदेव, श्रीवत्स, तुम्बुरु, देवल इत्यादि महर्षि भी इनके ही शिष्य थे। राजा जनकके विषयमें उपनिषदोंमें एक उपाख्यान लिखा हुआ है कि ये ८८००० ऋषियोंके ब्रह्मज्ञानोपदेष्टा थे। इनके गुरु थे सकल-शास्त्र-पारंगत महर्षि वेदव्यास के शिष्य श्री शुकदेव जी! जो कि उस समय वेदव्यासके सम्पूर्ण शिष्योंमें अग्रणी थे।

भारी गुणी और कर्मवीर पुरुष थे, अतएव उन्होंने अवश्य ही अनेक सद्गुरुओं के पास जाकर उक्त विद्याओंका रहस्य समझा होगा । अन्यथा वे 'महाभारतीय संग्राम के अवसर पर रथ चलानेकी निपुणता' 'युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों का पैर धोना' 'शिशुपाल की गाली सहना' 'अभिमानियों और दुष्टों का मान-मर्दन करके मानियों के मान की रक्षा करना' 'द्वारकामें राज्य-शासन-पद्धति की नींव डालना' 'शिल्प-विद्या का प्रचार करना' इत्यादि लाखों सराहनीय कर्म करके अपनी गुणग्राहिता का परिचय न देते । भगवान् श्रीकृष्ण के अन्दर गुण-ग्राहिता और कर्मवीरता का भाव बचपन से ही विद्यमान था, यही कारण है कि आज गीता के अन्दर उनके कर्मयोग का ही रहस्य पाया जाता है । इसी कर्मयोग का रहस्य बताकर उन्होंने मोहित हुए- धनुर्धर पार्थ को युद्ध-पथ पर अग्रसर कराया था । इस के अतिरिक्त उनका गो-चारण रूप कर्म वर्तमान समय के 'चरवाहे' और 'गडेरिये' कहलानेवाले लोगों की प्रशंसा का सूचक और यूरोपीय फैशनेबिल सभ्यता के रङ्ग में रँगे हुए तथा सर्प के समान कुटिल स्वभाव वाले गोघातियों की निन्दा का सूचक है । कहने का अभिप्राय यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण सर्वगुण-सम्पन्न थे । वे यशस्वी और बलिष्ठ थे, इसी कारण उन्होंने 'सोऽहम्' के कर्मको खूब समझा । श्रुतियोंमें कहा भी है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (श्रुतिः)

'बल-हीन पुरुष इस-तत्त्व' को नहीं पहचान सकता, अर्थात् बलवान् पुरुष ही आत्मिक-तत्त्व को पहचान सकता है ।'

पूर्वोक्त विद्याओंका उल्लेख छान्दोग्योपनिषद् में है । श्रीकृष्णजीने उन समस्त विद्याओंका अध्ययन किया था । 'नारद ऋषिने भी इन विद्याओं का अध्ययन किया था । महर्षि सनत्कुमारने एकबार नारद ऋषिसे पूछा कि- 'हे नारद ! तुमने कौन कौनसी विद्याएँ पढी हैं ? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि-

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं, पित्र्यं, राशिं, दैवं, निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं, देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्र विद्यां, सर्प-देव-जनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि ।
(छा० उप० ७।१।२)

'भगवान् ! मैंने ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, वेदार्थ-विधायक ग्रन्थ, पित्र्य-राशि, दैव-निधि, वाकोवाक्यएकायन, देव-विद्या, ब्रह्म-विद्या, भूत-विद्या, क्षत्र-विद्या, नक्षत्र-विद्या तथा सर्प-देव-जनविद्या का अध्ययन किया है ।'

पाठकवृन्द ! हमारे इन कथनोंका अभिप्राय यह है कि 'प्राचीन कालमें इन विद्याओंका अध्ययन अवश्यमेव बहुत से ऋषि-मुनियोंने किया होगा, और अपने अनुभवात्मक ग्रन्थ भी बनाये होंगे- परन्तु आज दुर्भाग्यवश कालचक्रके फेर से वे समस्त ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं । ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) चार वेद (२) छः दर्शन (उपाङ्ग), (३) छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प आदि) (४) उपनिषत् (५) ब्राह्मणग्रन्थ (शतपथ, निघण्टु आदि) (६) संहिता अथवा स्मृतियाँ (मनु, भृगुसंहिता आदि) (७) सूत्र-ग्रन्थ (आश्वलायन, गृह्य-सूत्र इत्यादि) (८) धर्म-ग्रन्थ (गीता, पुराणादि) (९) ऐतिहासिक ग्रंथ (रामायण, महाभारत इत्यादि) (१०) आयुर्वैदिक ग्रन्थ (चरक, सुश्रुत आदि)

इनके अतिरिक्त कुछ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ अत्याचारी मुसलमान बादशाहों के जमानेमें नष्ट भ्रष्ट किये गये । धनुर्वेद किस समय नष्ट किया गया यह हम नहीं कह सकते । आज प्राचीन समय के 'भूगर्भ-विज्ञान-शास्त्र' 'खगोल-शास्त्र' 'आदि सृष्टि विज्ञान' इत्यादि सहस्रों अनुपम ग्रन्थ अलभ्य हैं । इस प्रकार अनन्त धार्मिक, साहित्यों का विलोप होनेके कारण ही आज भारतवर्ष पतित अवस्थामें पडा हुआ है । अस्तु—

प्राचीन-भारत समस्त संसार का धर्मगुरु था। उस समय वह सभ्यताके उच्चतुङ्ग-शिखर पर चढा हुआ था। अध्यात्म-ज्ञान का अधिक विकाश होनेके कारण उस समय यह गौरवान्वित भारत मनुजी के निम्न आदेशानुसार समस्त संसारको धार्मिक-शिक्षा देता था।

'एतद्देशप्रसूतस्य, सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'
मनुः—

'ईसामसीह' जिसे ईसाई 'कृष्ण का क्राइस्ट' अथवा 'जीजस क्राइस्ट' बताते हैं, वह भी किसी समय इसी भारतवर्ष की शरणमें आया था, और आर्योंसे उसने वेद विद्याओंका अध्ययन किया था। इतिहासोंसे पता चला है कि वह भी हिन्दु ही था! 'कुछ ही वर्ष हुए कि रूस के किसी 'नोटविच' नामक यात्री को तिब्बत के 'हीमिस' नामक मठमें ईसामसीह का अत्यन्त पुराना एवं जीर्ण-शीर्ण पत्रों वाला एक हस्तलिखित बृहदाकार जीवन-चरित्र मिला है। वह 'पाली' भाषामें लिखा हुआ है और बडी बडी दो जिल्दोंमें समाप्त हुआ है। ईसाइयों का कथन है कि 'ईसा' ईश्वर का पुत्र था। वह 'मरियम' नामकी एक कुँआरी लडकी के पेट से उत्पन्न हुआ था, परन्तु इस जीवनी से विदित हुआ है कि वह 'इसराइल' में पैदा हुआ था। इसी कारण उसका 'ईसा मसीह' ऐसा नाम रक्खा गया। 'मरियम' और 'याकुब' उसके माता-पिता थे। ये दोनों इतने निर्धन थे कि अपने शिशु 'ईसू' का पालन-पोषण करने में असमर्थ थे। दैववशात् १३,१४ वर्ष की अवस्था में वह अपने माता-पिता से क्रोधित होकर अपने घर से भाग निकला और आर्यावर्त में आया। यहाँ आकर वह काशी, मगध, जगन्नाथ पुरी, राजगृह, सोरों, अयोध्या, मिथिलापुरी, मथुरा, द्वारका इत्यादि प्रेक्षणीय स्थानों में कई वर्षों तक घूमता रहा और आर्यों से वेदाध्ययन करता रहा। उस समय इसने 'ईशावास्योपनिषत् (यजुर्वेदके ४० वें अध्याय) का खूब मनन किया। इसके मनन करने पर उसे 'ओऽम्' का तत्व कुछ कुछ विदित हुआ, और उस दिनसे उसने अपने को 'ईसा' अर्थात् ईश्वर का पुत्र कहना आरम्भ कर दिया। [इन्हीं कारणों से आजकल ईसाई उसे ईश्वर का पुत्र मानते हैं] तदनन्तर उसने तिब्बतमें जाकर पाली भाषा सिखी, और वहाँ उसने 'नालन्द विहार' 'ग्यहरखड् विहार' इत्यादि अनेक दर्शनीय स्थानोंमें विहार किया। वहाँ के 'हीमिस' नामक मठमें एक बौद्ध-धर्म-प्रचारक भिक्षुने कई वर्षों तक तपस्या की थी। वहाँ जाकर इसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली, और शुद्ध बौद्ध बन गया। तदनन्तर इसने अपने देशमें जाकर अपने नामका स्मारक रूप एक नया 'ईसाई' धर्म चलाना चाहा। इसी बखेडेमें उसे फाँसी की सजा दी गई।' (देखो ईसा का प्राचीन हस्त-लिखित जीवन चरित्र)

यदि 'ईसामसीह[१]' अपने नाम और इज्जत का ख्याल छोडकर अपने धर्म का प्रचार करता तो कभी भी उसे फाँसीके तख्ते पर न लटकना पडता-परन्तु उसने अपने धर्मप्रचार के कार्य में अज्ञानवश कामना-रूप विष-बीज बोकर स्वयं अपना विनाश किया। ईसा विद्वान् और त्यागी था, परन्तु उसके अन्दर एक यह अवगुण था कि- 'स्वार्थ और कामना' की मात्रा उसके हृदयमें यत्किञ्चित् जमी हुई थी। इसी कारण उस की अधोगति हुई। अस्तु—

पाठक वृन्द! ऐसे सहस्रों उदाहरण हैं- जिनसे भारतीय ऋषि-मुनियों की सभ्यता, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, शिक्षा-दीक्षा, राज्य शासन निर्माण-पद्धति, धर्म-प्रचार, ग्रन्थ-लेखन इत्यादि बहुत सी बातोंका तत्वान्वेषण किया जा सकता है। स्वाध्याय-शक्ति का जितना विकाश उस समयमें

(१) कोई कोई विद्वान् 'ईसा' 'यशोदा कृष्ण' का अपभ्रंश है, ऐसा बताते हैं। परन्तु यह बात नहीं है- 'इसराईल' में पैदा होनेके कारण उसका यह नाम रक्खा गया था।

हुआ था. उतना वर्तमान-समयमें दिखाई नहीं देता। नमूने के लिये योगिराज भगवान् श्रीकृष्ण की गीता को उठाकर देखिये कि उसमें कितने अचिन्त्य एवं अननुभूत अध्यात्म-रहस्योंकी भरमार है। इसी प्रकार वेदादि-शास्त्र आपके सन्मुख उदाहरण रूप प्रस्तुत हैं, उन्हें उठाकर देखिए कि उनमें कितना गूढ-रहस्य छिपा हुआ है! जिस रहस्य का लाखों वर्षोंमें भी विशद रूपसे स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता।

'गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण ने जगत् के उपकारार्थ वेद, उपनिषद् और दर्शनों का सार निचोड कर रख दिया है। यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की अद्भुत-स्वाध्याय-शक्तिका परिचायक है। भगवान् ने अर्जुनको गीतोपदेश देनेका बहाना करके मानों आज जगत् को ही गीता मर्म समझा दिया है। यही कारण है कि आज विद्वत्समाज उनके इस श्लाघ्य-कर्म की मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहा है। आज गीता का घर घरमें प्रचार है। प्रायः प्रत्येक भाषामें इसका अनुवाद भी हो चुका है। आज गीता को इतनी सर्व मान्यता क्यों दी जा रही है? यह बात छान्दोग्योपनिषद् के निम्नलिखित उद्धरणसे स्पष्ट विदित हो जायगी—

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येत— 'अक्षितमसि' 'अच्युतमसि' 'प्राणसंशितमसी'-ति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः—

'आदित्प्रत्नस्य रेतसो. ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवा ॥ १ ॥ (ऋ० ८।६।३०)
'उद्वयं[1] तमसस्परि, ज्योतिः[2] पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म, ज्योतिरुत्तमम् ॥२॥
(ऋ० १।५०।१०) (छा० ३।१७।६-७)

'अङ्गिरा ऋषि के गोत्रमें उत्पन्न हुए 'घोर' नामक किसी आत्म-वेत्ता ऋषिने देवकी पुत्र श्रीकृष्णको समस्त औपनिषदिक तथा वैदिक अध्यात्म-ज्ञान का रहस्य बताने के अनन्तर कहा कि-'हे कृष्ण! मुमुक्षु पुरुष मरण-काल में इन तीन पदों का क्रमशः जप करे- (१) अक्षय (२) अच्युत और (३) प्राणसंशित। इस विषयमें निम्नलिखित दो ऋचाओं का मनन करना अत्यावश्यक है—

(१) प्रथम ऋचा का अर्थ —

मुक्त पुरुषों की उक्तिः-हम (प्रत्नस्य रेतसः) पुरातन परमाण-रूप सृष्टि के संचालक [परब्रह्म] की (वासरं ज्योतिः) सुविस्तृत ज्योति को (आत् इत्) सब प्रकार से देखते हैं (यत्) जो (परः) उत्कृष्ट ज्योति (दिवा) देदीप्यमान ब्रह्म द्वारा (इध्यते) अभि-प्रज्वलित की जा रही है ॥१॥

(२) द्वितीय ऋचा का अर्थ—

(वयम्) हम (तमसः) अन्धकार से (परि) परे (उत्) हटकर (उत्तमं ज्योतिः अगन्म) उत्तम ज्योति के समीप पहुँच गये हैं, और (उत्तरम्) उद्गततर (ज्योतिः) ज्योति का (पश्यन्तः) साक्षात्कार कर रह हैं ॥२॥

घोर ऋषि इन ऋचाओंका आशय श्रीकृष्णाको समझाते हुये कहते हैं कि- 'हे कृष्ण! जिस उत्तम ज्योतिको योगी, ऋषि, महर्षि और ब्रह्मचारी देखनेकी कामना करते हैं; तुम भी उसी दिव्य-ज्योति का साक्षात्कार करने के लिये सन्नद्ध रहो।' श्रीकृष्ण उनके इस उपदेश को सुनकर परम-तृप्त हुए। 'अपिपास एव स बभूव०' देखो छा०३।१७।६

पाठक गण! छान्दोग्य उपनिषत् के इस उपाख्यानके लिखनेका मेरा यह अभिप्राय है कि— 'श्रीकृष्णने गीताके अन्दर जो तमाम उपनिषदोंका सार दुहा है, वह उनकी औपनिषदिक-स्वाध्याय

(१) उद्वयं तमसस्परि, स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म, ज्योतिरुत्तमम् ॥ (यजुः २०।२१)
उद्वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्। (शेषं पूर्ववत्)........ (अ. ७।५३।७)

(२) मूले छा. उ. 'स्वः पश्यन्त उत्तरं ज्योतिः पश्यन्त उत्तरमिति' पाठः। 'स्वः पश्यन्त' इत्यस्य 'ज्योतिः पश्यन्त' इतिछायानुवादः (छा. ३।१७।६)

शक्तिका एक नमूना है। उपरोक्त उपाख्यानके पढने से ऐसा विदित होता है कि 'उन्होंने बाल्या-वस्थामें घोर ऋषिकी 'उपासना' करके उपनिष-दोंके आध्यात्मिक-रहस्यों का गूढ-दृष्टिसे निर्मथन किया था।' इसी कारण उन्होंने महाभारतीय-संग्रामके अवसर पर अर्जुन को गीतोपनिषद् (गीता) का रहस्य सुनाया।' अस्तु—

वाचकवर्ग! आपने श्रीकृष्ण की स्वाध्याय शक्ति का परिचय पा लिया-अबउनके 'सोऽहम्' तत्त्वका मर्म विस्तार-पूर्वक समझ लीजिए—

'सोऽहम्' अथवा 'हंस' यह द्व्यक्षर शब्द श्वास प्रश्वासको बाह्याभ्यन्तर गतिका सूचक है। कहा भी है—

'हकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः।
'हंसः 'सोऽहं'– मंहं सेति, जीवो जपति नित्यशः।

'हकारका उच्चारण करने पर श्वासका बहिर्ग-मन और सकारका उच्चारण करने पर अन्तर्गमन होता है। इस प्रकार जीव प्रतिदिन 'हंसः' 'सोऽहम्' अहं सः' का जप करता है।'

हम पहले कह चुके हैं कि- 'हंस' शब्द 'प्राण' का भी द्योतक है। इसके दो पैर हैं—(१) श्वास और (२) प्रश्वास। "जैसे हिमालयके मानस-सरोवर में 'हंस' अहर्निश स्नान करते हैं, वैसे ही इस शरीर-स्थानीय हृदयरूपी मानस सरोवरमें यह प्राणरूपी हंस अहर्निश स्नान करता है। श्वास गतिसे प्राण रूपी हंस हृदयरूपी मानस सरोवरमें जाकर खूब तेजीके साथ गोता लगाता है, तत्प. श्चात् उच्छ्वास द्वारा झटपट बाहर निकल आता है। बाहर आनेके समय वह अपना एक पैर अर्थात् श्वास, हृदय रूपी मानस सरोवरके जलमें ही रखता है, और दूसरे पाँव अर्थात् उच्छ्वास की सहायतासे बाहर निकल आता है। जिस समय यह श्वासोच्छ्वास-रूपी दोनों पैरोंको हृदय रूपी मानस सरोवरके जलमेंसे हटाता है, उसी समय 'देहावसान' हो जाता है- अर्थात् जिस समय श्वासोच्छ्वास रूपी दो पैरोंका 'जीवन-यज्ञ समाप्त हो जाता है, उसी समय मनुष्य 'मृत्यु' का शिकार बन जाता है। तदनन्तर उसकी 'दिन-रात्रि-सायं-प्रातः-मध्याह्न-आज-कल-परसों' इत्यादि शाब्दिक-भावनाएँ भी लुप्त हो जाती हैं। कारण उस समय सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने अपने व्यापारको छोड देती हैं—अर्थात् आँख कान, नाक, मुख, त्वचा, हस्त—पादादि समस्त इन्द्रियाँ क्रमशः दर्शन, श्रवण, गन्ध, भक्षण, स्पर्श, कर्म तथा गति आदि समस्त क्रियाओंको छोड देती हैं, और शरीर काठ की तरह निर्जीव अवस्था में पडा रहता है।' इस रहस्य का सुमनोरम वर्णन निम्न लिखित दो अथर्ववेदीय-मन्त्रोंमें किया गया है -

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः-स्यान्न रात्रि॰
नाहः स्यान्न व्युच्छेत्कदाचन ॥१॥ (अ० ११।[illegible])

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र-पुरो नि पश्चा। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२॥ (अथर्ववेद ११।८।६) [पाठक इन मन्त्रों का अर्थ स्वयं विचार कर देखें।]

'हं'=बीजम्,- 'सः'=शक्तिः। 'बीज-शक्ति' अथवा 'शक्ति-बीज' का नाम 'हं+स' है। वैदिक-दृष्टि से जीवात्मा, परमात्मा, बुद्धि, मन, वचन, अन्तःकरण, प्राण और स्थूल जगत् ये सभी 'शक्ति-बीज' अथवा 'बीज-शक्तियाँ' कही जा सकती हैं। अतएव इनके विज्ञान का ही नाम 'हंस-तत्त्व-विज्ञान' है। 'हंस-तत्त्व' के अन्दर इतना गूढ-रहस्य होनेके कारण ही हमारे विचारशील ऋषि-मुनियों और विद्वानोंने 'अजपा-जप' का विधि-विधान किया। परन्तु शोक के साथ कहना पडता है आज हम इस 'अजपा-जप' की विधि को

'मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि-पूर, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि आज्ञा, सहस्रार' शरीरमें ये आठ चक्र हैं। देखो 'अष्टचक्रा नवद्वारा' (अथर्व १०।२।३१।)

अवैदिक ठहराकर अपनी हठधर्मिता का परिचय दे रहे हैं। यदि हमने उपनिषदों के 'सोऽहं' तत्त्व को अच्छी प्रकार समझकर निम्न लिखित वैदिक-मन्त्र का स्वाध्याय किया होता तो 'अजपा-जप' की विधि को अवैदिक न समझते--

'हꣳसः' शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद्-तिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ यजु:० १०।२४

अर्थः- एक (बृहत्) अत्यन्त मनन करने योग्य (ऋतम्) त्रिकालाबाधित-तत्व है, उसका नाम है (हंसः) 'हंस-तत्व वह (होता) सर्व प्रकाशक अथवा सत्कर्म-यज्ञका होता, (शुचि-सत्) परम-पावनीय स्थानोंमें विहार करनेवाला, (अन्तरिक्ष-सत्) हृदय अथवा अन्तरिक्ष लोक में स्थित, (वेदि-सत्) प्रत्येक मनुष्यों की बुद्धिमें स्थित (दुरः-नसत्) दुरित-विनाशक (अतिथिः) प्रगति-शील (वसुः) तेजस्वी (ऋत-सत्) वैदिक ज्ञान का प्रवर्तक (वर-सत्) श्रेष्ठ आत्म-तत्वमें वास करने वाला (अब्जाः) इन्द्रियोंको जीवन शक्ति देनेवाला (गो-जाः) ब्रह्मज्ञानियों की वाणीमें प्रादुर्भूत होनेवाला (व्योम-सत्) व्योमके समान अनिर्वचनीय सत्ता वाला (नृ-सत्) मानव-शरीर में रमण करनेवाला (ऋत-जाः) ऋत अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंमें प्रत्यक्ष दीखाई देनेवाला तथा (अद्रि-जाः) सृष्ट्युत्पादक अथवा आदरणीय वस्तुओंमें प्रत्यक्ष जानने योग्य है।

इस मन्त्र में 'हंस' शब्दका स्पष्ट उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के 'सलिलाद्स उच्चरन्' (११।४।६) इस मंत्रमें भी 'हंस' शब्द का स्पष्ट उल्लेख है। इसी 'हंस' के व्याख्यान-रूप वेद, उपनिषद् दर्शन गीता, पुराणादि शास्त्र हैं। क्या अब कोई दावेके साथ यह कह सकता है कि 'हंस' शब्द की 'अजपा-विधि' वैदिक नहीं है? 'हंस' शब्द की महत्ता को व्यक्त करनेके लिये ही हमारे प्राचीन परमार्थ-दर्शी ऋषियोंने 'अजपा-जप' का विधि-विधान किया है !!!

पाठकवृन्द! आपको इस 'हंस' शब्दकी 'अजपा-विधि' मालूम है या नहीं? यदि न हो तो निम्नलिखित 'अजपा-विधि' का गम्भीर-दृष्टिसे मनन कीजिएगा। हम उसका लौकिक-स्वरूप आपको दिखा देते हैं—

अजपा-जप की विधि

ॐ अस्य श्री अजपागायत्रीमन्त्रस्य 'हंस' ऋषिः, परमहंसो देवताऽव्यक्तगायत्रीच्छदो 'हं' बीजं 'सः' शक्ति ह्सौं कीलकं सकलमन्त्राङ्गत्वेन मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

(अथाङ्गस्पर्शः)

(१) हंसऋषये नमः— (शिरसि)
(२) अव्यक्तगायत्रीच्छन्दसे नमः—(मुखे)
(३) परमहंसदेवतायै नमः— (हृदि)
(४) 'हं' बीजाय नमः— (गुह्ये)
(५) 'सः' शक्तये नमः - (पादयोः)
(६) 'ह्सौं' कीलकाय नमः - (नाभौ)
(७) हंसः सूर्यात्मनेऽङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
(८) हंसः सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः।
(९) हंसो निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां नमः।
(१०) हंसो निराभासात्मनेऽनामिकाभ्यां नमः
(११) हंसोऽतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः
(१२)हंसः प्रचोदयात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

इत्यङ्गस्पर्शः

अथ हृदयादिन्यासः

(१) ॐ हंसः सूर्यात्मने हृदयाय नमः।
(२) ॐ हंसः सोमात्मने शिरसे स्वाहा।
(३) ॐ हंसो निरञ्जनात्मने शिखायै वषट्।
(४) ॐ हंसो निराभासात्मने कवचाय हुम्।
(५) ॐहंसोऽतनुसूक्ष्मात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।
(६) ॐ हंसः प्रचोदयात्मनेऽस्त्राय फट्।

इति हृदयादिन्यासः

अथ ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे, द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के। वासान्ते बालमध्ये ड-फ-क ठस-हिते कण्ठदेशे स्वराणाम्, 'हंसं' तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ १ ॥

अथ सूर्योदयादारभ्य सूर्योदयपर्यन्तं श्वासोच्छ्वासमार्गेण जप्तं (१) षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रमजपागायत्रीजपमाधारादिषट् (२) चक्रगतानां लम्बोदरादिगुर्वन्तानां यथाभागं निवेदनमहं करिष्ये ॥ तत्र मूलाधारे, आधारचक्रे व-श-ष-स-वर्णाङ्कितेऽनलवर्णे चतुर्दले कमले तत्कर्णिकामध्ये स्थिताय सिद्धिबुद्धिसहिताय गणाधिपतये गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलाद्युपचारयुतं षट्शतमजपागायत्रीजपं निवेदयामि ॥

श्लोक— 'व-' 'श-' 'ष-' 'स ' दलयुक्ते सम्यगाधारपद्मे,
तरुणमरुणगात्रं वारणास्यं त्रिनेत्रम् ।
अभयवरदहस्तं चारुपाशाङ्कुशाद्य,—
त्करयुगलसरोजं चिन्तयेदादिदेवम् ॥२॥

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्—तस्योपरि लिङ्गस्थाने स्वाधिष्ठानचक्रे ब-भ-म-य-र-ल-वर्णाङ्किते सिन्दूरवर्णे षड्दले कमले तत्कर्णिकामध्ये स्थिताय गायत्रीसावित्रीसहिताय १ ब्रह्मणे गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलाद्युपचारयुक्तं षट्सहस्रमजपागायत्रीजपं निवेदयामि ॥

श्लोक- ब-' 'भ-' 'म-' 'य-' 'र-' 'ल' संख्यैरक्षरैः पद्मपत्रैः,
ललितमुपनिविष्टं पङ्कजे पद्मयोनिम् ।
अभयवरदहस्तं कुण्डलं चाक्षमालाम्,
विधृतममलनित्यं चिन्तयेदादिमूर्तिम् ॥३

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्- तस्योपरि नाभिस्थाने मणिपूरचक्रे ड-ढ ण-त-थ-द-ध-न-प-फ-वर्णाङ्किते माणिक्यवर्णे दशदले कमले तत्कर्णिकामध्ये स्थिताय लक्ष्मीसरस्वतीसहिताय विष्णवे गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलाद्युपचारयुतं षट्सहस्रमजपागायत्रीजपं निवेदयामि ॥

श्लोक- डाद्यैः फान्तगतैः प्रकल्पितदलाम्भोजे निविष्टं हरिम्, मार्तण्डद्युतिमादिपूरुषमजं नारायणं चिन्तये । हस्ताम्भोजगदारिशङ्खममलं पीताम्बरं कौस्तुभम्, ग्रैवेयाङ्गदहारनूपुरकिरीटाद्यैरतीवोज्ज्वलम् ॥ ४ ॥

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्—तस्योपरि हृदयेऽनाहतचक्रे क-ख-ग-घ-ङ-च-छ-ज-झ-ञ-ट-ठ-वर्णाङ्किते श्वेतवर्णे द्वादशदले कमले तत्कर्णिकामध्ये स्थिताय गौरीपार्वतीसहिताय शिवाय गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलाद्युपचारयुतं षट्सहस्रमजपागायत्रीजपं निवेदयामि ॥

श्लोक- काद्यैष्ठान्तगतैः प्रकल्पितदले पङ्केरुहे पार्वती- कान्तं कान्तिशशाङ्ककोटिगुणितं प्रख्यं कपर्दोज्ज्वलम् । शान्तं टङ्कमृगाभयावरकरं हस्तैर्धृतं कङ्कणम् ग्रैवेयाङ्गदहारनूपुरधरं चर्माम्बरं चिन्तये ॥ ५ ॥

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्- तस्योपरि तालुमूले विशुद्धिचक्रे 'अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ॠ-ऌ-ॡ-ए-ऐ ओ-अं-अः' इति षोडशवर्णाङ्किते चन्द्रवर्णे षोडशदले कमले तत्कर्णिकामध्ये स्थितायाविद्याशक्तिसहितायेन्द्रजीवात्मने गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलाद्युपचारयुतं सहस्रमेकमजपा गायत्री-जपं निवेदयामि ॥

श्लोकः— मूर्त्यङ्गेषु निविष्टमङ्गरहितं शान्तं रुचा भास्वरम्'
व्याप्ताशेषचराचरं गुणगणाभावैकसच्चिन्मयम् मूर्तामूर्तममूर्तिरेवममलं ज्योतिः प्रदीपोपमम्, साक्षात्षोडशवर्णयुक्तममलं जीवं सदा भावये ॥ ६ ॥

---

(१) एकस्मिन्नहोरात्रे जीवः श्वासोच्छ्वासमार्गेण षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रं (२१६००) 'हंसः' 'सोऽहं'—मित्यजपागायत्रीजपं जपति ।

(२) षट्चक्रमिदं शरीरमिति नावगन्तव्यम् । वेदेषु – 'अष्टचक्रा नवद्वारा' (अ. १०।२।३१) 'अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमिः ।' (अ. ११।४।६) इत्यादिवचनप्रामाण्यादष्टचक्रं नवद्वारमिदं वपुरिति विज्ञेयम् ।

(३) अत्र गायत्रीशब्दः सावित्र्या विशेषणार्थत्वेनोपन्यस्त इति । तेन गायन्तं त्रायत इति व्युत्पत्तिर्विधेया ।

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्-तस्योपरि भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रे ह-क्ष-वर्णाङ्किते रक्तवर्णे द्विदले कमले तत्कर्णिकामध्ये स्थिताय विद्याशक्तिसहिताय गुरुमूर्तये गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलाद्युपचारयुतं सहस्रमेकमजपागायत्रीजपं निवेदयामि ॥

श्लोकः- हंसाभ्यां पदवृत्तपत्रकमले दिव्ये जगत्कारणे,

विश्वाकीर्णमनेकदेहकुहरं स्वच्छन्दयात्मेच्छया ।
तत्तद्योगतया स्वदेशिकतनुं भावैकदिव्याङ्कुरम्।
प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्विबाहुं प्रभुम् ॥७॥

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्-तस्योपरि ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रदलकमलेऽजरामरस्थानेऽनन्तपृथ्व्याकाशे तत्कर्णिकामध्ये स्थिताय गणेशब्रह्माविष्णुशिवजीवात्मने 'लं' पृथिव्यात्मकं गन्धं 'हं' आकाशात्मकं पुष्पं 'यं' वाय्वात्मकं धूपं 'रं' तेजसात्मकं दीपं 'वं' रसात्मकं नैवेद्यं 'ह सः' ॐ सर्वात्मकं ताम्बूलं 'ह्रीं' विद्यात्मकं नमस्कारं सहस्रमेकमजपागायत्री जपं निवेदयामि ॥

श्लोकः- विश्वव्यापि नमामि देवममलं नित्योदितं निष्कलम् ।

नित्यं वृद्धसहस्रपत्रकमले दिव्ये जगत्कारणैः ।
नित्यानित्यमनन्तपूर्णपरिचित्सत्तास्पदं नास्पदम्,
स्मृत्वात्मानमरूपविश्वकुहरं स्वच्छन्दमात्मेच्छया॥८

ॐ हंसः शिवः सोऽहम्- ॐ सोऽहं' विद्महे अस्य 'हं+सः' धीमहि । हंसो हंसः प्रचोदयात् ॥ इत्यजपागायत्रीमन्त्रः । 'सोऽहमिति शब्दः प्रच्छ्वासोच्छ्वासयोर्बाह्याभ्यन्तरगतिसूचकः। तदुक्तम्-

सकारेण बहिर्याति, हकारेण विशेत्पुनः ।
हंसोऽहं सेति मन्त्रेण, जीवो जपति नित्यशः ॥ ८ ॥

इत्यजपाविधिः

इस 'अजपा-गायत्री' का विशुद्ध मनसे जप करनेसे अपने 'हंस' स्वरूप अर्थात् 'मैं कौन हूं?' इस बातका यथावत् ज्ञान हो जाता है; और उस अविनाशी हंस-तत्त्वके स्वरूपका यथावत् ज्ञान होनेसे ही 'नैःश्रेयस-सिद्धि' प्राप्त होती है जरा कान खोलकर सुनिये इस विषयमें श्रुति क्या कहती है-

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'

'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः१' (श्रुतिः)

'वैदिक विज्ञान' अथवा 'हंस-तत्त्व-विज्ञान' बिना मुक्ति मिलनी असंभव है। यदि मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा तुम्हारे मनमें जागृत हो तो 'मन्त्र-द्रष्टा ऋषि' बनो।' इससे यह सिद्ध हुआ कि- 'मुक्ति प्राप्तिके लिये मन्त्रद्रष्टा-ऋषि होना अत्यन्त आवश्यक है- अब यहाँ एक जटिल प्रश्न यह उपस्थित होता है कि- "किन किन लक्षणों से युक्त पुरुषको मन्त्र-द्रष्टा ऋषि कहा जाय, और मन्त्र-द्रष्टा ऋषि होनेके कौन कौनसे साधन है?" इस महत्व-पूर्ण प्रश्न का यह उत्तर है—

(१) 'जो मन्त्रों के गूढ भावों को ओजस्वी, विज्ञान-पूर्ण, सरल, सुबोध एवं सीधे सादे शब्दों में व्यक्त करने की योग्यता रखता हो'—

(२) 'वैदिक छन्द, ऋषि देवता, स्वर, वर्ण-वाक्य-पदविन्यास, भाषा-शैली इत्यादि का जिसे पूर्ण विवेक हो'-

(३) 'वेदोक्त आचार-विचार, रीति-नीति, शिक्षा-दीक्षा, तात्कालिक प्रचलित सामाजिक-सभ्यता, राज्य-शासन-पद्धति, वैदिक-ऐतिहासिक-भौगोलिक तथा वैज्ञानिक-तत्त्व-विज्ञान की वृद्धि तथा स्वाध्याय-प्रवचन इत्यादि अनन्त विषयोंपर जिसकी तीव्र दृष्टि पडी हुई हो'—

(४) 'आयुर्वैदिक तथा समस्त वेदानुकूल ग्रन्थोंका जिसे पूर्ण विवेक हो'-

(५) 'जो तेजस्वी, बुद्धिमान्, सदाचारी तथा त्रिविध-शक्ति-सम्पन्न अर्थात् स्थितप्रज्ञ हो'— और……

(६) 'वैदिक-ज्ञान की विकाश-प्रणाली की ओर जिसकी नजर पडी हुई हो'-

वही पुरुष 'मन्त्र-द्रष्टा ऋषि' कहलानेका अधिकारी यानी हकदार है। इन लक्षणोंसे विपरीत

(१) मन्त्र-समीक्षक इत्यर्थः । अर्थात् मन्त्राशयव्यक्तकर्ता मन्त्र-द्रष्टेत्युच्यते ।

लक्षणवाला पुरुष 'मन्त्र-द्रष्टा ऋषि' कहलाने का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता। अतएव 'मन्त्र-द्रष्टा ऋषि' कहलानेका हकदार वही है, जिसमें पूर्वोक्त लक्षण पूरा पूरा घटते हों।

इन पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त 'मन्त्रद्रष्टा ऋषि'के नामान्तमें जो 'परमहंस' संज्ञा जोड दी जाती है, उसका भी अत्यंत गूढ रहस्य है। नमुनेके लिये श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की परहंस पदवी पर विचार किजिए। 'हंस'=आत्मा का और (१) 'परमहंस'=परमात्मा का नाम है। जिसे 'आत्मा' और 'परमात्मा' दोनोंके स्वरूप का यथावत् ज्ञान हो, वह 'परम-हंस' 'हंस-वाहन' 'ब्रह्मज्ञानी' 'आत्म-ज्ञानी' 'अध्वायन' 'वेदवित्' इत्यादि शब्दोंसे व्यवहृत होता है। वेदार्थ-वित् योगी संन्यासियोंको 'अविनाशी हंस-तत्त्व' का पूर्ण विवेक रहता है, अतएव वे ही उक्त कथनानुसार 'परमहंस संज्ञा या उपाधिके अधिकारी हैं। आजकलके संन्यासियोंकी नामावलीमें जो 'परम-हंस' संज्ञा जोड दी जाती है, वह वृथा ही है। कारण उन्हें अभी 'आत्म-तत्त्व' का विवेक तो हुआ ही नहीं है-अतएव वे 'परम-हंस' इस उत्तम तथा सम्मानार्ह नामके अधिकारी कैसे कहे जा सकते हैं? इस संज्ञाके वास्तविक अधिकारी तो महर्षि दयानन्द आदि हमारे पूर्वज ऋषि ही थे। कहनेका अभिप्राय यह है कि— 'परमहंस' शब्द 'मन्त्र-द्रष्टा ऋषि' का पर्याय बोधक है। अतएव परमहंस वही है 'जो वेदोंके भावोंको सुबोध भाषामें जनताके सामने उपस्थित करनेकी योग्यता रखता हो।' ब्रह्माको 'हंस(२)-वाहन' क्यों कहा जाता है?। इस बातका स्पष्टीकरण हमने 'वैदिक धर्म'के पूर्व प्रकाशित लेखोंमें कर दिया है। अतएव वहीं इस शब्द का रहस्य देख लेना चाहिए। आजकल जो लोग 'हंसवाहन' शब्दका 'हंस पक्षीके ऊपर चढनेवाला ब्रह्मा' ऐसा अर्थ करते हैं, वे कितने भारी अज्ञान रूपी तम-पङ्कमें फँसे हुए हैं? इस बातका निर्णय विद्वन्मण्डली स्वयं करे। रूपक-दृष्टिसे तो 'हंस' शब्दका 'जीवात्मारूपी पक्षी' ऐसा भी अर्थ सिद्ध किया जा सकता है। जैसा कि वेदका प्रमाण भी है- 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' ऋ० १।१६४।२० इत्यादि- परन्तु वे तो इस आलङ्कारिक अर्थ को मानने के लिये सर्वथा तैयार नहीं हैं। वे तो कहते हैं कि 'हंस' शब्दसे 'एक हंस नामक पक्षी' के व्यतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थका बोध नहीं होता। यह शब्दार्थ-विभेदोत्पादक मत वेदानभिज्ञ पुरुषों का है। आज इसी शाब्दिक-अर्थ-भेद-बुद्धि के कारण समस्त वैदिक तथा लौकिक साहित्योंमें गडबडी मची हुई है; जिसका निःशेषतया निराकरण करना आज समस्त भारतवर्षीय ऐतिहासिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक रहस्य-लेखकों को महादुस्तर हो गया है। यदि इस प्रकारकी विभेद-भावना मयी-बुद्धि पहिले से ही उत्पन्न न हुई होती तो आज भारतवर्ष की पौरस्त्य सभ्यता कलङ्क-कालिमासे दूषित न होती। अतएव पूर्व ही भगवान् श्रीकृष्ण जी ने कहा था कि-

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥गी० ३।२६

परन्तु उनके इस आदेश को आज भारतवर्ष के किसी भी विचारशील व्यक्तिने न सुना। इसी कारण भारतवर्ष का निरन्तर अधःपतन होता चला जा रहा है। आज भगवान्‌की स्वर्गीय आत्मा नभोमण्डलसे सबको पुनः इस बातका सन्देश सुना रही है कि- 'यदि यहाँ के 'परम-हंस' 'हंस' के समान नीर-क्षीर-विवेकशालिनी अपनी परम-पावनी अभेदबुद्धिद्वारा 'हंस-तत्त्व' (आध्यात्मिक-तत्त्व) का विकाश करेंगे, तो अवश्य ही भविष्यमें भारतवर्ष की पौरस्त्य-सभ्यता दृष्टिगोचर होगी।' अतएव परमहंसों को उचित है कि वे अपने परम-

(१) परमश्चासौ हंस इति विग्रहः।

(२) अध्यापयामास 'पितॄन्', शिशुराङ्गिरसः कविः। पुत्रका इति होवाच, ज्ञानेन परिगृह्य तान्॥मनु॥
यह श्लोक ब्रह्मा की 'हंस-वाहन' संज्ञाका परिचायक है।

हंस अर्थात् हंस के समान टेढीमेढी चालों को छोडकर 'हंस-तत्त्व' का विकाश और प्रचार करने में उद्यत हो जायँ ।

'साधुओं और ब्राह्मणों की वर्तमान अवस्था' आज सहस्रों नामधारी भिखमङ्गे साधु और ब्राह्मण ज्ञान-शून्य, अकर्मण्य और व्यवसाय-हीन दिखाई दे रहे हैं, इसका क्या कारण है? इसके उत्तर में शोकसे यही कहना पडता है कि- 'उन्होंने अजरामर हंस-तत्त्व के महत्त्व को भुला दिया, इसी कारण उनका इतना अधःपात हुआ ।'

पाठक वृन्द ! आज साधुओं और ब्राह्मणोंकी इतनी गिरी हुई अवस्था है कि हम कुछ कह नहीं सकते। अतएव हमारी समझमें इनका यहाँ वर्णन करना अप्रासङ्गिक न होगा; क्योंकि इनको तीव्र शब्दोंमें उद्बोधित किये बिना वैदिक-हंस-तत्त्व-विज्ञानका विकाश होना सर्वथा असंभव है ।

सम्प्रति कुत्ते और बिल्लियोंके समान अनपढ साधुओं और ब्राह्मणोंकी संख्या बढती जा रही है । इनका अनुद्योगी और स्वाध्याय-हीन जीवन भारत को और भी गारत कर रहा है। जो पहले ईश्वर पूजक थे, वे आज उदर-पूजाके निमित्त कुत्ते और बिल्लियोंकी तरह द्वार-द्वार घूमते हुए दिखाई देते हैं। जो पहले ज्ञानामृतका पान किया करते थे, वे आज बकरे आदि निरपराध जन्तुओंका खून, मदिरा, भाँग, धतूरा, तमाकू, सिगरेट, बीडी, इत्यादि आसुरी तथा मादक वस्तुओंका सेवन करके हतवीर्य और नरकगामी बन रहे हैं। जो पहले सादा जीवन व्यतीत करते थे, वे आज फैशनेबिल बन रहे हैं। इनके पूर्वकालिक और साम्प्रतिक जीवनमें आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है !!! यह बात निम्नलिखित कविताओंसे स्पष्टतया विदित हो जायगी-

(ब्राह्मण) (मनहरण छन्द)

हैट, कोट, बूट-सूट, स्वीटरके लीडर हैं,
आज द्विज-वृन्द यहाँ नेही नकटाई के ।
पायजामें, कुरते कमीज बिन चलैं नाहिं,
फैशन-पियारे धन रखि हैं जटाईके ।
आत्म-हित-कारन जे लोक-हित-कारन थे,
भव-भीर-हारन वे कारन ढिठाईके ।
छूआछूत-भूत हू को देखि भागैं सौ कदम,
वंश-अभिमान नाक बूडैं रगडाई के ॥ १ ॥

(साधु-सन्त)

जटाजूट झूठमूठ धारि सिर कर गहि,
चिमटा मठोंमें घूमैं ठाठ-बाठ साथमें ।
भसम रमाय अङ्ग गङ्गतीर बेघडङ्ग,
नाचैं नङ्गधडङ्ग वे ले त्रिशूल हाथमें।
आजु तिन माहिं कोऊ साँचे बिरागी न दीखैं,
बड रागी, सदा चढे भूत तिन माथ में ।
अविधि के पुरोहित घूमैं गली गली सब,
कलह-कलङ्क-नेही राख मलि गाथमें ॥ २ ॥
सन्त ये अनङ्ग-सम सहित उमङ्ग अङ्ग,
नङ्ग-भिखमङ्ग-अङ्ग भङ्ग की मनकमें ।
मगन है नाचत है गङ्गतीर नामधारी,
गङ्गधारी-सनेही जे सिङ्घिया-सनकमें ।
दिनरात शङ्करके मिस ते जपत भङ्ग,
भङ्ग भङ्ग भङ्ग भङ्ग धतुर रनकमें ।
दङ्गा करैं गङ्गा-माई-पूत पिङ्ग-जटाजूट,
"नङ्गे हर" उचारैं वे गाँजे की झनकमें ॥ ३ ॥
सन्त-वंश-पतंग पिशंग-जटाजूट-धारी,
गङ्गके किनारे बसि नारे श्रुति-मन्त्रके ।
लगाते थे नितप्रति परकाज-साधक जे,
मन माँहि गंग के तरंग-सम मन्त्रके ।
उठते थे अगणित-तरंग समूह सदा,
कला-विद रहे थे जो जीवन-सुयन्त्र के ।
हाय आज मूढ-सम गुण्डों के पुजारी बने,
दर-दर फिरते वे प्रेमी जन्त्र-मन्त्र के १ ॥४॥
जीवन के प्रश्न से जो कभी न हुये थे तङ्ग,
आज उन्हें देखकर सभी लोग दङ्ग हैं ।
किया था न खल-सङ्ग, जिन्होंने सुसङ्ग सदा-
किया, खल-सङ्ग-बल, बल-हीन-अङ्ग हैं ।

(१) जैसे गारुड, भुजङ्ग, वृश्चिक, मोहिनी विश्रुति इत्यादि ।

कङ्गालों की तरह जो रहे न कदापि दीन,
आजु तऊ साधु-सन्त नङ्ग भिखमङ्ग हैं ।
जल बिनु तिमगङ्ल-मङ्गल न होय जिमि,
अमङ्गल सहैं तिमि हीन-बुध-सङ्ग हैं ॥५॥

अन्तमें हम वैदिक धर्मियों से साग्रह, सानुरोध और सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे उपरोक्त पाखण्डी ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तों की कुरीतियों का तीव्र प्रतिवाद करने की चेष्टा करें। अन्यथा भविष्यमें इनके अज्ञान पूर्ण व्यवहारसे महान् विघ्न उपस्थित होने की संभावना है।

सर्व प्रथम ब्राह्मणों और साधु-सन्तोंका चरित्र-संशोधन और वैदिक-विज्ञान की वृद्धि करना वैदिक धर्मियोंको उचित है। ऐसा करने से यह विशाल भारत भविष्यमें सभ्यताके प्रोत्तुङ्ग शिखर पर पहुँच कर 'हंस-तत्त्वविज्ञान' का विकाश कर सकेगा-अन्यथा सैकडों वर्षोंमें भी भारतीय-सभ्यता का विकाश होना दुस्तर है।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ।

(कविता)

(कवि श्री० हलियाराम कश्यप ऐम. ऐससी.)

सृष्टि कर्त्ता देवजी, प्रेरक बुद्धि प्राण ।
ओ३म्‌कार व्यापक प्रभु, रक्षक जीवन जान ॥ ॥
दुःख सकल दुर्गुण सभी, दूर भगाइए आप ।
सकल भद्र कल्याणसुख, हमें दिलाइए आप॥२॥
विद्यमान् थे पूर्व ही, ज्योति वीर्य्य सुमहान् ।
प्राणि अप्राणी जन्मसे. जगरक्षक भगवान् ॥३॥
एकानन्दस्वरूप वह, द्यौः भूमि रहे थाम ।
श्रद्धा आहुतिसे उन्हें, करूं सभक्ति प्रणाम ॥४॥
देते आत्मज्ञान हो, बल शारीरिक साथ ।
देव उपासें आपको, सभी मानते शास ॥ ५ ॥
आश्रय अमृत आपके, उत्तम मोक्ष सुस्वाद ।
मृत्युः अकृपा आपकी, जनता पावे विषाद् ॥६॥
आनन्द रूप उन देवको, भजूं मैं सहित अनुराग।
सुख दाता भगवान् को, दूं उत्तम हवि भाग ॥७॥
श्वास खींचते छोडते, नेत्र खोलते मीच ।
ऐसे प्राणी समूह पर, राज्य करें जो ईश ॥ ८ ॥
अपनी महिमासे बनें, राजा कुल संसार ।
प्रभु अकेले स्वयं ही, सब जग पालनहार ॥ ९ ॥
दो पगवाले खगमनुज, चौपाए गो अश्व ।
इत्यादि सब राज्यमें, विचरें उनके सहर्ष ॥१०॥
उन सुखस्रोत सुभद्रको, भजूं न क्यूं दिन रैन ।
श्रद्धा भक्ति प्रेमसे, आहुति सहित् सुबैन् ॥११॥
तीक्ष्णस्वभाव आदित्य अरु, विस्तृत् भूमि कठोर
रचे लोक आकाशमें, उत्तम मध्यम घोर ॥ १२ ॥
दो परमाणु बीच जो, व्याप रहा आकाश ।
स्वर्ग तथा अपवर्ग भी, ईश करें प्रकाश ॥ १३ ॥
उन सुखमय भगवान् को, ध्यावें हम सप्रेम ।
घृत समिधा हवि आहुति दिया करें नित्यनेम्॥१४
नहीं घेरे सब ओरसे, तुम विन अन्य हे देव ।
प्रजापते परमात्मन् ! सभी भूत सत्यमेव ॥१५॥
इस प्रसिद्ध उत्पन्न सब, प्रजाको तुम रहे धार ।
रयि उत्तम ऐश्वर्य्य धन, दीजिये जगकर्त्तार॥१६॥
आवाहन करें आपका, जिस इच्छा को धार ।
सिद्ध हमारी हो वही, कृपा करो दातार ॥ १७ ॥
वही बांधता प्रेम में, भ्राता जनक समान ।
अपने, हमें, सुबन्धुवर, स्नेही मात समान ॥१८॥
धारे रीति विशेषसे जाने जन्मस्थान ।
नाम धाम सब जानता, तीनों लोक महान् ॥१९॥
देव जहां सुखी विचरते, भोगें मोक्षानन्द ।
उसी तीसरे स्थानमें, पाइये ब्रह्मानन्द ॥ २० ॥
रयि निमित्त चलाइये, सुपथ सर्वज्ञ !
सकल हमारे कर्मको, जाने देव सुप्रज्ञ ॥ २१ ॥
पाप हमारा फूंकिये, तथा कुटिल आचार ।
नमः कथन उच्चारते, हम तव बारम्बार ॥२२॥

परमात्मध्यान

अर्थात् परा विद्याके चमत्कार

(५)

(ले०– श्री० छलिया रामजी कश्यप एम. एससी.)

इस विषय के पहिले तीन भागोंमें एक ही भक्त से सम्बन्धित घटनाएँ वर्णन की गई थीं और चौथेमें उसी व्यक्ति के स्वप्नों का वर्णन किया गया था। अब इस पांचवें विभागमें लेखक को जो किन्हीं महात्माओं के सङ्गमें आनेसे उनके चमत्कार प्रतीत हुए हैं उनका वर्णन किया जाता है यथाः—

एक महात्माने लगभग १५ दिन हुए कि शरीर छोडा है उनकी महिमा वर्णन् करना लेखक अपना कर्तव्य समझता है।

(१) जब लेखक उनके सत्सङ्गमें जाता था तो ऐसे प्रतीत होता था कि कोई महान् आकर्षक शक्ति उसको खींचे लिये जा रही है और वह लगभग वायु पर ही उडा जा रहा है उसकी गति उसकी साधारण चालसे अवश्य कई गुणाधिक हो जाती थी। जब सत्सङ्गकी समाप्तिपर लेखक वापिस घर लौटता था तो वही शक्ति उसे दूर तक इतनी ही फुरती से पहुंचा जाती थी।

(२) जब भी लेखक का मन कुछ भी एकाग्र होता चाहे लेख लिखनेके आरम्भमें चाहे वैसेही चुप बैठनेमें तो तुरन्त उसका शरीर झूलने लग जाता और उसे ऐसा प्रतीत होता कि कोई अन्य बाहरकी आत्मा उसे इस प्रकार प्रभावित कर रही है जब उक्त महात्मा सहस्रों मीलोंपर भी जा रहे तब भी यह बराबर जारी रहा, अन्तमें उसकी मृत्यु के तीन चार दिवस पीछे एक रात्रि बहुत बल पूर्वक तथा चिरकाल तक झूला रहकर मानों उन की मृत्यु की सूचना दे कर बन्द हो गया फिर नहीं हुआ।

(३) इस मिनट के लिये ध्यान जमानेका कार्यक्रम पीछे से उनके सत्सङ्गमें आरंभ कर दिया गया था। उसमें मैं ने यह विचित्र बात देखी कि आंखें बन्द होते हुए भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे बहुत आकर्षक चिकनासी सुई जैसे लोहेको अपनी ओर खींचती है वैसे ही मेरे मस्तिष्क पर बडी आकर्षिक ज्योतिकिरण अथवा चिकनातीसी या विद्युत किरण प्रभाव डाल रही है और फिर मुझे छोड आगे चल देती है यह अनुभव बडा स्फुट था ठीक जैसे घडी की सुई घडी के डायल पर प्रत्यक अङ्ग पर हो हो कर आगे जाती है ठीक उसी प्रकार मानों उस महात्मा की आत्माकर्षक किरण बारी बारी प्रत्येक उपस्थित व्यक्तिके मस्तक पर पड मेरी बारी आनेपर मेरे मस्तक पर भी पड आगे मुझ से अंगलों पर जा पडती है॥

(४) एक रात्रि लेखक उस से रुष्ट होकर आने लगा तो उस ने उपस्थित व्यक्तियोंमें उसके जाते जाते ही कह डाला कि देखो यह अपना आहार भी ठीक नहीं करता अर्थात् भोजन के विषयमें भी यह अपने मनको वशमें नहीं करता। लेखिक कि-

स्मित् हुआ कि उसको यह कैसे पता लगा क्यूंकि जहां तक मुझे ज्ञान है न मैंने और न मेरे किसी जानकारने उसे यह बताया हो सकता है।

(५) लेखकने उसे कहा कि क्या आप किसी की आन्तरिक आध्यात्मिक दशाका पता स्वयमेव लगाकर उसे आगे चलानेका यत्न करना पसंद करेंगे? उसने कहा यह आशा न करो कि कोई अपनी सिद्धि शक्तिसे तुम्हारे अन्दर की अवस्था जान तुम्हें आगे चलाएगा। मैं ने कहा मैं परीक्षा नहीं करता मेरी वास्तवमें दशा यही है कि मैं स्वयं ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकता, कभी मैं अपने को बहुत उच्च और कभी नीच समझता हूं। उसने कहा क्या तुम उसके आदेशानुकूल आचरण करना चाहोगे। मैं ने कहा इसके लिये भी शक्ति वह स्वयं ही देगा। तब उसने कहा अच्छा अलग समय ले लो। आठ बजे का समय मुझे स्यात् आगामी मंगलवारका मिल गया। मैं उनसे उस समय मिला तो उन्होंने कहा "तुम उनकी न्याईं नहीं हो जिनमें शक्ति नहीं होती वरञ्च शक्ति तुममें है परन्तु तुम उसे वशमें नहीं रखते इस लिये तुम जब एकान्तमें ध्यान आदिके निमित्त बैठो तो अपनेको सर्वथा अपने वशमें करो, अनुभव करो कि मेरा शरीर मन आदि सब मेरे वशमें है और वास्तवमें उसे वश करो केवल कहने मात्रकी आवश्यकता नहीं वास्तवमें ऐसा करो। दूसरी बात यह कि तुम केवल उसीसे मिलो जिससे अपनी सम्मतिमें तुम कुछ सीख सकते हो और उससे वही विषय सीखनेके लिये ही उसके पास जाओ और उससे उस विषयसे अतिरिक्त अन्य विषयका कुछ न पूछो' अन्य विषयके ज्ञातासे अन्य ही भिन्न विषयका प्रश्न न पूछो। तीसरा यह कि उद्यानादि में भ्रमणादिके निमित्त गये हुए तुम सर्वथा स्वतन्त्र विचर सकते हो वहां तुम्हें खुली छुट्टी है तब उस प्रकृति (Nature) से (Divinity) परमात्मानुभव तुम्हारे अन्दर अपने आप घुसेगा।

मैं उसके मुखसे अपना यह चिकित्सा सूत्र सुनकर विस्मित रह गया कि किस प्रकार इसने मेरी आन्तरिक अवस्थाको जान कर यह चिकित्सा सूत्र प्रस्तुत किया है जो मेरे विषयमें सोलह आने सच्चा है।

वह महात्मा प्रत्येक व्यक्तिको उसकी दशाके अनुकूल भिन्न भिन्न साधन परमात्म ध्यानके बत लाया करता था।

(६) उस महात्माकी सबसे विचित्र बात यह थी कि लगभग दो घण्टे कभी प्रतिदिन और कभी तीसरे चौथे दिन वह सत्सङ्गमें जो प्रश्नकर्ताओंके प्रश्नोंके उत्तर देता था वह ऐसी फुरतीसे, शान्तिसे, बिना सोचे, और सच्च देता था कि उपस्थित् मुग्ध हो जाते थे कि न जाने इसने सरस्वति सिद्ध कर रक्खी है क्या। इस लोक परलोक सम्बन्धि. कोई प्रश्न आध्यात्मिक विषयका चाहे कितनाही गहरा पूछो उत्तर तुरन्त उतनाही स्वच्छ, निर्मल, सत्य, गम्भीर मिलता था। सभी विस्मित् रह जाते थे।

(७) जिस रात्रि मैं उनसे रुष्ट होकर आया मेरा पक्का विचार अगले दिन भरमें होगया कि अब मैं इन के पास नहीं आया करूंगा। परन्तु सन्ध्या समय जब मैं भ्रमण के लिये अपने घर से निकल माल रोड हाल रोडके चौरस्ते पर मोटरें गुजर लेने देनेके लिये एक मिन्टके लिये ठहरा तो दिलने हाल रोड की ओर ही पांओं चला दिये और मैं महात्माके पास ही प्रतिदिनसे सात मिनट पूर्व पहुंच गया और अन्य साथी प्रायः २४ मिन्ट देर कर के आये। उस दिन महात्मा ने व्रत भी किया हुआ था ऐसे समय इस प्रकार जो प्रायः ३१ मिन्ट का उनका सत्सङ्ग मुझे उस रात्रि मिला वह वास्तवमें भाग्य की ही बात थी। बडा आनंद उस रात्रि आया वह भी पूरे प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे उस समय आनन्द अपने अन्दर से बाहर भेजने, बाहर से अपने अन्दर लेजाने, अपने अन्दर

ही विद्यमान अनुभव करने, औरोंको आनन्द बाटने आदिके परीक्षण सभी करवा डाले और आदेश किया कि इसे अब अन्यों को बाटना नहीं तो इसे गंवा बैठोगे। मैंने बाटनेका यत्न किया पर कुछ अशुद्धि रह गई सो मुझे भय पडा कि कहीं मस्तिष्क न फट जाय। मैंने तुरन्त बाटना छोड दिया। चाहिये तो यह था कि उनसे इसका पूरा वर्णन करके अशुद्धि ठीक करवाता पर वह मैंने न किया और अन्य प्रकार ही करता रहा जैसे चुप रहना जिससे शरीर भूलता और उसीमें मस्त रहना। इस लिये एक बार उसने सत्सङ्ग में यह कहा भी कि मैंने इसे आनन्द दिया और कहा कि बाटना इसने नहीं बाटा और गवा बैठा है। वास्तवमें उस रात्रि उसने चित्त मेरा टिका दिया, आनन्द दिया, बाहरसे शक्ति शान्ति (Peace) अन्दर आता, अन्दरसे बाहर जाता, अन्दर ही उठ अन्दर ही रहता, और न अन्दरसे उठता न बाहर जाता, अन्दर बाहर एक रस भर रहा अनुभव करा दिया। वास्तव में वह उच्च कोटी का महात्मा था।

(८) अन्तिम दृश्य वह स्वप्न अथवा दिव्यदर्शन है जो उनकी मृत्युके तीन चार दिन पीछे एक रात्रिको मुझे हुए उस समय मैंने समझा नहीं या अशुद्ध समजा पर प्रातः ही जब मैं भ्रमण के लिये गया तो एक उनके सत्सङ्ग में जाने वाले साथी ने मुझे उनकी मृत्यु का शोक समाचार सुनाया तब मुझे ऐसा लगने लगा कि स्यात् यह स्वप्न इसीके सूचक हों क्यूं कि एक में तो लम्बी पतली टांगों भुजाओं वाला व्यक्ति मरोडा तरोडा हुआ एक ओर फैका मृतक पडा है। यह तो आधे लेटे हुए अर्द्ध निद्रित अवस्था में दिखाई पडा। और दूसरा सूर्य से कही अधिक तेजोमय हिरण्यगर्भ का केवल एक किरण दिखाई पडा जिससे बडी प्रकाशमान किरणों छूट रही थीं। यह दर्शन बैठे हुए हुआ जब मैं भक्तिमें भरकर भगवान् पतञ्जलि हिरण्यगर्भ भोज महाराज व्यास भगवान् वाचस्पति मिश्र विज्ञानभिक्षु आदि योगप्रवक्ताओं को बारम्बार नमस्कारकर रहा और सभी को हिरण्यगर्भ का ही अवतार समझ कर आनन्द लूट रहा था।

(९) उन महात्माके सत्सङ्गमें जानेका एक यह लाभ भी अनुभव किया गया कि स्वप्न अथवा दिव्यदर्शन बहुत होते थे दूसरी चौथी रात कोई न कोई आनन्ददायक अथवा सच्चा स्वप्न अवश्य आ जाता था और आत्मा प्रातः जागनेपर उसका स्मरण कर बडा प्रसन्न होता था।

(१०) उनकी सत्सङ्गतिमें यह सब कुछ, मेरे अनुभवमें आया अन्य साथियोंके अनुभवमें जो आया तथा जो ज्ञान प्रश्नोंके उत्तरमें उन महात्माने बाटा वह सब मैं यहां नहीं लिखता। वह एक पुस्तक की सामग्री अंग्रेजीमें पीछे छोड गये हैं जो आशा तो है कि उनके प्रेमी छपवायेंगे पर ठीक नहीं कहा जा सकता।

इन महात्मा का शुभ नाम बुडाऽरेश था, लाहौर में अमेरिकन स्वामि करके भक्तोंमें प्रसिद्ध थे, २४ वर्षकी आयुमें अमरीकासे भारत आये केवल ब्रह्मविद्या बाटने। अपने माता पिताके एक ही पुत्र थे उनसे प्रायः विरुद्ध हो ही आये थे पर अब माता पिताने आज्ञा दे दी थी कि यदि तुम यही समझते हो कि भारतमें तुम अधिक उत्तम कार्य्य कर रहे हो तो वहीं रहो, हम अब तुम्हारे पथमें अडचन न डालेंगे पर उन विचारोंको क्या पता था कि उनका बालसन्न्यासी भक्तराज पुत्र ब्रह्मचारी ही प्राणत्याग देगा। वह एक आध रुपया ही रखते थे वह भी आवश्य नहीं था। बतलाया करते थे कि एक दो सन्तरे आदि ही खाकर भी कई दिन बिताए पहाडोंमें लंगोटबन्द रूपमें भी विचरे। व्रत भी महात्मा गांधीके व्रत कालमें एक बार किया। पालिटिक्स पर सर्वथा नहीं बोलते थे, हां यदि कोई महात्मा गांधीकी असिद्धि (failure) कह बैठता तो कहते कि शताब्दियोंके वर्णनमें भारत भाग्य वर्णन

करते समय पता लगेगा कि कितना महान् कार्य इन्होंने किया है इत्यादि।

अवश्य ऐसा ब्रह्मचारी भक्त परमात्माको मिला हुआ होता है वह सच्चे अर्थमें वेदान्ति थे नवीन वेदान्तके कट्टर विरोधी। यही कहते है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' कह कर ही भारतवासियोंने अपना सर्व नाश कर डाला है, वेदान्त के दुरुपयोगनेही सब तबाहा कर दिया है वह अकर्मण्यताके घोर विरोधी थे, परमात्माका कार्य करने की आज्ञा अवश्य करते थे "Simply let go" तथा 'Be alert' अर्थात् केवल अपने विचार यत्न आदिको त्याग कर सर्वथा शान्त हो जाओ यही ध्यान है और चेतन रहो अतीव चेतन जिससे कि जो भी विचार उसके जालमें उलझन पूर्व ही उसे तुरन्त वहीं रोक दो उठनाही उसको बन्द कर दो। यह दो सूत्र परमात्मध्यानके विषयमें मानों उनके गुरुमन्त्र थे। ध्यान समय सर्वथा अपनेको भगवद् अर्पित् कर दो।

एक और महात्मा का अब मैं वर्णन करता हूं। वह मुझे रेलमें मिले थे और मेरा पता लिखकर कहा कि मैं स्वयं ही तुम्हें मिलूंगा। कुछ वर्ष पीछे लाहौर मुझे आढूंडा मैंने उन्हें भोजन आदि कराया दोपहर को अपने अपने पासही लिटा छोडा और शामको उनकी इच्छानुकूल उनको छोडने भी उन के स्थान पर गया जो ४–५ मील दूर था। वहां बैठे बातें कर रहे थे तो मैं रह रह कर अपनी बायें हाथ की हथेलीको दाहिने हाथकी अङ्गालयोंसे दबाता था तो आप बोले "ज्यादह दुःखदा है" (क्या बहुत दर्द करता है) मैं तुरन्त बोल उठा आप ज्यादह दर्द की बात पूछते हैं मैं दस दिन से स्नान भी नहीं कर पाया। वह बोला "कोईने राम आजाऊ" अर्थात् कोई बात नहीं आराम आजायगा। जब मैं लौटने लगा तो मुझे छोडने नीचे तक गये और बाहर रास्ता पर विदाई के समय पीठ पर हाथसे थपकी देकर बोले 'देह काया नीरोग' मैंने तो कहा कि इतनेसे ही काम नहीं चलता वरञ्च महात्माजी हमें तो और बहुत कुछ चाहिए परन्तु मुझे इस आशीर्वाद के अर्थ तब पूरे समझ पडे जब मेरा एक १६–१७ वर्षका पुराना दुःख दायी रोग तक जाता रहा। हाथ तो अगले दिनसे ही काम करने लग गया और मैंने अगली प्रातःही स्नान पूरे आनन्दसे कर लिया फिर खलता खुलता ५–७ दिनमें हाथ ठीक हो गया। यह वही हाथ था जिस पर प्रति दिन ऐन्टीफ़्लैजिस्टीनकी पुलटिस प्रतिदिन उबालकर दस आठ दिन तक बांधते रहनेसे कुछ नहीं बना था और हाथकी हथेली प्रायः दो ओरसे भीतरसे कुचली सी गयी थी वास्तव में उस महात्मा का मुझसे बडा प्रेम है वह प्रायः ६०–६५ वर्षका श्वेत दाढी जटायें रखे भस्म रमानेवाला महात्मा है।

एक और महात्मा इसी आयुःके बडे सुन्दर सुडौल मुझ पर कृपा करते रहे हैं उनकी अब तक तो यही बात देखी है आगे जब खूल खलेंगे तो सम्भव है कुछ दिखलाएं वह बात निम्न है—

मैं उनसे मिला, बातें हुई आज्ञा हुई कि कोई प्रोग्राम (समय विभाग) बनाकर आठ दिन तदनुकूल आचरणकर फिर मिलना इससे पहिले न मिलने आना, नहीं तो आगे बताएंगे भी नहीं। मैं तो चला आया, अगली सायं मैं अपनी लगभग ३ वर्षकी बच्चीको गोदमें लिये घरसे निकला कि टैम्पल रोड लारैंस रोडके चौरास्ते पर टैम्पल रोडसे आते वह दिखाई पडे साफ था कि मिलना चाहिये दो तीन घन्टे पासके ही एक चौबारेमें उनके हरीकीर्तनका आनन्द उठाया उन्होंने कहा कि मैं ने तो कहा था कि आठ दिनसे पहिले मत मिलना मैंने उत्तर दिया कि आप ही मिले हैं मैं तो नहीं मिला इत्यादि। अगले दिन या एक दो दिन पीछे फिर वही बात। मालपर छाओंनी की ओरसे वह आरहे थे मैं घरसे निकल माल पर आया था कि भेंट हुई। फिर भी लारैंस बागमें एक दिन भ्रमणके लिये गया तो वह स्यात् छाओं-

नी की ओरसे ही लौट रहे थे कि फिर भेंट हुई। मैं प्रातः भ्रमणके लिये गया कि लाट साहिब की कोठी के इधर ही भेंट हुई। मैं विस्मित था कि कौनसी ऐसी सिद्धि है जिसके द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों भिन्न भिन्न कालोंमें मुझे वह इस प्रकार अचानक मिलते हैं बिना पहिलेसे आपसमें समझौता होनेके कि अमुक स्थान अमुक काल तुम आ जाना मैं तुम्हें मिल सकूंगा। अवश्य हार्दिक आकर्षण ही यहां कारण है।

इस हार्दिक् आकर्षणके कुछ उदाहरण और देता हूं। जो दो इसी रस्ते के पथिक व्यक्तियोंमें घटे हैं। मैं दो तीन बार भ्रमणके लिये निकला तो भ्रमणके स्थानमें एक मित्रके घर चला गया, जिसने बताया कि अमुक कारण वश आपको स्मरण किया था और आप आगये। इन साथी का नाम स० भरपूर सिंघ है। एक और मित्र स० अमर सिंघको मिलने गया तो उन्होंने बतलाया कि कल मैं आप को मिलनेको बहुत ही उत्सुक रहा स्यात् मेरी उसी इच्छाका फल है कि आप आगये इसीसे पता चलता है कि जब यहां पर ऐसा हो सकता है तो परमात्मा से की गई प्रार्थना कब व्यर्थ जा सकती है केवल हम घबरा जाते हैं। अमेरीकन स्वामिने लाहौर अन्तिम बार त्यागने समय एक लाहौर निवासी भक्तके साथ एकत्र ब्रह्मानन्द अनुभव करनेके पीछे विदायगीके समय उससे प्रेमालिङ्गन् किया। मेरा तभीसे उस भक्तको मिलनेको बहुत दिल चाहता था परन्तु उसका नाम धाम मैं कुछ नहीं जानता था। एक दिन मैं उससे मिलने की तीव्र उत्कण्ठाके कारण स० अमर सिंघसे उसके मकान का पता पूछने गया कि वहां जाकर उससे मिलूं। मैं विस्मित् हुआ जब मैं ने उस भक्तको ही स० अमरसिंघ जी के बैठा पाया। मैं ने कहा आप चलेंगे वह चल पडा अस्तु हम कई घण्टे एकत्र रहे जिस का वर्णन मैं इस लिये नहीं करता कि वह सर्वथा गुप्त रहना चाहते हैं। उसके पीछे मुझे भ्रमण करते वह मिले। ऐसे एक दोबार मिले। पर एक दिन मैं और एक मित्र उनकी तलाशमें नहर पर घन्टाभरके लगभग ढूंडते फिरे जब निराश लौटे तो अगले दिन भ्रमणमें मुझे अचानक मिल बोले कि जब मैं इतने प्रेमसे आपको खींचता हूं तो यह कैसे हो सकता है कि तुम न खिचो। यह इस लिये कहा क्यूंकि मैं ने उन्हें उपालम्भ दिया था कि कल आपकी तलाशमें हम नहर पर भटकते फिरे। एक और मित्रके विषयमें मुझे विचार आया कि उन्हें बुलाऊं वह थोडी ही दूर अपने मकान पर थे कि चले आये और बतलाने पर बोले कि मुझे भी अभी विचार आया था कि आपसे मिलूं। एक और मित्रका घर उधर है जिधर मैं भ्रमणके लिये जाता हूं। बहुधा मैं उन्हें जा घर पर मिल आता हूं। एक बार मुझे वह बहुत दूर आगे आ मिले और कहीं जा रहे थे। एक बार उनको मकान पर न पाकर मैं लौट रहा था कि वह कहींसे मोटार में लौटते मुझे मिल गये और वापिस घर ले गए इत्यादि। आकस्मिक भेंट जो दो की परस्पर इच्छा से अथवा एककी ही तीव्र उत्कंठासे भिन्न भिन्न काल तथा देशकी परिस्थितिमें पहिले परस्पर समझौता होनेके बिना होती है इससे भी यह अवश्य पता चलता है कि कुछ न कुछ आत्मिक जागृति अवश्य हो चुकी है अथवा दिलका खिचाव दो व्यक्तियोंका परस्पर अथवा एकका ही दूसरेके प्रति अवश्य है।

इसी प्रकार की एक और बात यह भी होती है कि जहां आप का प्रेम अधिक हो वहां चिट्ठियें Cross बहुत करती हैं अर्थात् आपने इधरसे चिट्ठि लिखी है उसी समय उधरसे उत्तरमें चिट्ठि लिखी गई है जैसे कि आप की चिट्ठिका भाव मानसिक विद्युत द्वारा ही वहां पहुंच कर उत्तर ले आया हो। मुझे इस में यह अडचन पडती है कि इस तरह चिट्ठियां Cross हो जानेसे सांसारिक रूप में उत्तर न वह मेरे पत्र का दे पाते हैं और न मैं

उनके का। दोनोंके पत्रों का उत्तर ही दोनोंके सिर रहता है। यह सांसारिक दशामें वहां होता है जहां प्रेम अधिक हो और हार्दिक् आकर्षण प्रभाव कर रहा हो। साधुओंकी दशामें तो प्रायः पत्र-व्यवहार होता ही बहुत कम है।

इस लेख में महात्माओं तथा भक्ति मार्गपर पदार्पण करनेका यत्न करनेवालोंका चारु चरित्र वर्णन कर मैं इस लेख को समाप्त करनेके लिये परमात्मध्यानके कुछ सरल उपाय वर्णन करनेही उत्तम समजता हूं वह यह हैं—

एक सरल उपाय परमात्मा का अनुभव लेने का यह है कि परमात्माके किसी एक नाम का अर्थ विचारा जाय। जैसे परमात्मा का एक नाम सर्व व्यापक है इसके अर्थ हैं सबके अन्दर बसा हुआ। अब इस एक भाव को अनुभव करने का यत्न करना चाहिये। जैसे जो भी पदार्थ सामने हों उनमेंसे अकेले अकेलेमें उसे विद्यमान विचारना चाहिये। उदाहरणार्थ लिखते समय कापीमें कलममें निबमें लिखनेवालेके हाथमें उसके विचारमें तथा उसके लेखमें परमात्मा विद्यमान है यह भाव अपने अन्दर उत्पन्न करना चाहिये। इस प्रकार करने से भी मनुष्य के अन्दर आत्मज्योति जग जाति है क्योंकि ऐसा करते करते किसी शब्दके विचारमें मनुष्य इतना गहरा चला जाता है कि उसको रस मिलने लग जाता है यही परमात्मानुभव है।

इस प्रकारका एक उपाय यह भी है कि मनुष्य सृष्टिकी विविध विचित्र रचनाका वर्णन करता सुनता हुआ उसमें परमात्माका अनुभव लेजैसे एक ही भूमि भागमें उगा हुआ ईख उस भूमिमेंसे मिठास उत्पन्नकारक द्रव्य चूस लेता है और उसीमें वहीं पास ही उगी लाल मिर्च उसीमेंसे तीखापन उत्पन्नकारक द्रव्य चूसती है यह उस भगवान् की ही सत्तासे है। नीमके पत्ते कड़वे होते हैं कच्चा फल भी कड़वा होता है परन्तु पक्का फल मीठा हो जाता है। उसी पृथिवी माताके अन्दर जल तथा आग विद्यमान है। पत्थर और अबरक एक दूसरेसे सर्वथा विभिन्न एकत्र मिलते हैं अबरक की बारीक तहें खुलती जाती हैं पत्थर एकही लम्बी चौडी मोटी शिलाके रूपमें होता है एकसे दूसरे तक दर्जे मिलते हैं विचित्र लीला है उस भगवान् की जो पद पद पर ऐसा विपरीताचरण दिखला रहा है। वही जमीन अपने अन्दरसे शीत कालमें उष्ण जल स्नानके लिये देती है और गर्मीमें शीतल जल। वह महान् प्रभु मानो सर्दियोंमें भूमि को ही हमाम बना देता है कि आलसी पुरुषों की भी स्नानमें रुचि बनी रहे। भगवानकी विचित्र माया देखो कि वैसे अन्तरिक्ष खाली प्रतीत होता है पर जब एक छेदमेंसे सूर्य किरण अन्दर आती हैं तो उसी आकाशमें अन गिणत् त्रसेणु नाचते दृष्टिगोचर होते हैं। सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे देखते हैं तो पत्तेके बाहर की एक ओरकी झिल्ली (बारीक) जो रूपरंगसे रहित ही साधारण आंखसे दीखती है वही वहां एक लम्बी चौडी चादर जिसमें अनेक कोठडियां हैं ऐसी प्रतीत होती है यह उसका वास्तविक रूप है केवल कई गुण बडा होकर दीख रहा है। तब पता चलता है कि भगवान्ने बनाया हुआ कुछ है और हमें दिखा कुछ और ही रहा है तब उसको मायावी छलिया कहे बिना रहा ही नहीं जाता तब संसार मिथ्या मायामय है यह सर्वथा सत्य प्रतीत होता है। (नोट) [फिर इससे भी आगे उन कोठडियोंकी दीवारोंकी वास्तविक रचना कुछ और ही है सो भगवान् ही जानता है।] चाहे कितनी भी बडी शक्तिवाला सूक्ष्म दर्शक् यन्त्र प्रयोगमें लाओ मनुष्यके बीज अर्थात् स्त्रिके अण्डे (विज्ञानाऽनभिज्ञ इससे घबराएंगे कि मुर्गियोंके तो अण्डे सुने हैं स्त्रियोंके कैसे?) की रचनामें अन्य प्राणियोंके इन्हीं तत्वोंकी अपेक्षा बहुत ही नाम मात्रका भेद दृष्टिगोचर होता है उसके विरुद्ध वह जिन प्राणियोंको जन्म देते हैं उनमें जो महान् अन्तर होता है वह देखनेके लिये केवल एक

बार विडियाघर हो आना भी काफी हो सकता है, परन्तु इन प्राणिबीजोंमें इतना महान् अन्तर उस विचित्र महिमामय देवने कौन जान सकता है कि कैसे कर दिया । यहां फिर मनुष्यकी दृष्टि उसे सर्वथा धोका देती है भगवान्‌की माया उसे मायावी कहाती है कि दिखाता एकसे है पर न जाने कहां भिन्नता तथा परस्पर विरोध भर रखा है कि वैसे ही बीजसे मनुष्य, शेर बकरी, गौ कुत्ता, गीदड भेडिया आदि परस्पर भक्षक भक्ष्यरूपमें तथा सर्वथा विपरीत् गुणोंवाले उपज उठते हैं, बडी विचित्र लीला उस लीलामय भगवान् की है । इस प्रकारके सृष्टि सम्बन्धि विचारोंसे कभी गहरा उत्तरा जा सकता है । भगवान् वास्तवमें हृदयको छू जाता है ।

एक उपाय परमात्मा के आनन्द लेनेका यह भी है कि सर्वथा मनुष्य सब क्रियाओं तथा विचारों तथा वृत्तियों को रोक दे और कुछ भी न सोचे बिल्कुल स्वस्थ हो जाए आरामसे दिल चाहे लेट जाय चाहे आराम कुर्सीपर बैठ जाय इस प्रकार सर्वथा शान्त हो जाए तो भी अन्दर से शान्ति, सुख, आनन्द आने लग जाता है वह परमात्मानुभव होता है ।

इस प्रकार भी कभी कभी हो जाता है कि मनुष्य अपनी प्रियतमा अथवा प्रिय बन्धुसे प्रेममें मस्त है उस समय उसका चित्त अचानक बातों बातोंमें भगवान् की ओर जाकर उसको भगवान् का आनन्द आने लग जाता है ।

कभी पुस्तक पढते ही आदमी की टिकी हुई वृत्ति अचानक परमात्मा का विचार आजाने से उस में उलझ कर ब्रह्मानन्द भोगने लग जाती है ।

वेदोंके पुरुष सूक्त, अथर्वका स्कम्भसूक्त, ऋग्वेद के वाग् तथा इन्द्र वैकुण्ठ सूक्त, नासदीय सूक्त, [illegible] सूक्त इत्यादि, श्वेताश्वतरका उपनिषत् काव्य, गुरुदत्तकी माण्डुक्योपनिषत् व्याख्या तथा आत्मविचार, इत्यादि पवित्र पाठ भी आत्मतत्त्व से भेंट करा देते हैं, मनुष्य को वास्तविक आनन्द दे देते हैं ।

सूर्य भगवान्‌के दर्शन करते हुए हिरण्यगर्भ सविता आदित्य महान् आदि की स्तुतिका [illegible] पाठ आनन्द में भर देता है ।

विज्ञान के किसी भी विभाग की [illegible] एम्. ए. की थ्यूरी (उसके दर्शनविभाग) को मस्तक पर कर उसे वास्तविक अनुभवमें [illegible] का प्रयत्न करनेसे परमात्मविश्वासी को भगवान् [illegible] स्मरण हो आता है विशेष कर जब सृ[illegible] रचना का वर्णन विज्ञान वत्ता करते हैं और उ[illegible] कारणों की खोज करते करते सब सूक्ष्मातिसू[illegible] पारदर्शी यन्त्रोंका पूरा प्रयोग करनेके पीछे [illegible] कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि जितना विज्ञान अधिक बढता है उतना ही वैज्ञानिक अपनी अज्ञानता घटने के स्थानमें और बढी हुई पाते हैं उस समय आ[illegible] वैज्ञानिकोंके सामने श्रद्धासे सिर झुक जाता है और जिह्वा कह उठती है कि जो भगवद् दर्शन यह वैज्ञानिक करते हैं वह विद्याविहीन जन स्वप्न में भी नहीं कर सकते ॥

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला. चित्र ७

स्व० श्री० लाला लाजपतरायजी

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला. चित्र ६

स्व० श्री० ला० लाजपतरायजी

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला. चित्र ७

श्री० विजयराघवाचार्यजी

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला. चित्र ८

श्री० वीर वामनरावजी

आम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्।
येन रोहात् परमापद्य यद् वयं उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३० ॥ (३)
बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१ ॥
बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥

अर्थ- (आम्यतः पचतः सुन्वतः विद्धि) परिश्रमी, अन्न पकानेवाले और [illegible]सधिरस निकालनेवालोंको तू जान। (एनं स्वर्गं पन्थां अधिरोहय) इसको [illegible]के मार्गपर चढाओ। यह (येन परं वयः आपद्य) जिससे परम [illegible]को प्राप्त होकर (उत्तमं नाकं परमं व्योम रोहात्) उत्तम स्वर्गरूप पर[illegible] आकाशपर जा पहुंचे ॥ ३० ॥

हे [illegible]ध्वर्यु! (बभ्रेः एतत् मुखं विमृड्ढि) इस बर्तनका यह मुख स्वच्छ कर [illegible] प्रविद्वान् आज्याय लोकं कृणुहि) जानता हुआ घीके लिये स्थान बना[illegible] (घृतेन सर्वा गात्रा विमृड्ढि) घीसे सब गात्र स्वच्छ कर। (यः स्वर्गः पंथा[illegible] पितृषु कृण्वे) जो स्वर्गका मार्ग है उसको मैं पितरोंके लिये करता हूं ॥ [illegible]१ ॥

हे [illegible] बभ्रे) बर्तन ! यतमे ब्राह्मणाः त्वा उपसीदान्) जो ब्राह्मण तेरे पास अ[illegible]कर बैठते हैं (एभ्यः स-मदं रक्षः आवप) इन सबसे घमंडवाले राक्षसों[illegible]भी दूर कर। (ते प्राशितारः पुरीषिणः) तेरेमेंसे प्राशन करनेवाले अ[illegible]वाले (प्रथमानाः आर्षेयाः पुरस्तात् मारिषन्) यशस्वी ऋषिपुत्र कभी न नष्ट हों ॥ ३२ ॥

हूं। यह स्वर्गकाही मार्ग है ॥ २८ ॥

अग्नि[illegible] तुषोंको रख और छिलकोंको दूर फेंक। शेष उत्तम धान्य घरका राजा है, उसको सुरक्षित रख। अन्यथा विनाशका समय प्राप्त होगा ॥ २९ ॥

परिश्रम करो, अन्न पकाओ, औषधियोंका रस निकालो, इससे स्वर्गसुख मिलेगा, आयू बढेगी और श्रेष्ठ आनंद प्राप्त होगा ॥ ३० ॥

बर्त[illegible] स्वच्छ करके उसमें घी भरकर रखो। घीसे सब गात्र स्वच्छ होकर उत्तम सुख प्रा[illegible] होगा ॥ ३१ ॥

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३ ॥
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

अर्थ- हे (ओदन अन्न) ! (आर्षेयेषु त्वा निदधे) ऋषिपुत्रोंमें तुम्हें रख[illegible] हूं। (अनार्षेयाणां अपि अत्र न अस्ति) जो ऋषिसंतान नहीं हैं उ[illegible] भाग यहां नहीं है। (मे गोप्ता अग्निः) मेरी रक्षा करनेवाला अग्नि[illegible] (सर्वे मरुतः विश्वे देवाः च पक्वं अभि रक्षन्तु) सब मरुत् और सब[illegible] इस परिपक्वकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

(यज्ञं दुहानं प्रपीनं सदं इत्) यज्ञ करनेवाला सदा समृद्ध; ([illegible]यीणां सदनं धेनुं) संपत्तिका घर ऐसी गौ है। (त्वा पुमांसं) तुझ पुरुष[illegible] पास (पोषैः प्रजाऽमृतत्वं उत दीर्घं आयुः) पुष्टियोंसे प्रजाकी पुष्टि[illegible] और उनकी दीर्घ आयु (रायः च उप सदेम) और धन लेकर आते हैं ॥ ३४ ॥

(वृषभः असि) तू बलवान् है, तू (स्वर्गः असि) सुखदा[illegible]क है। (आर्षेयान् ऋषीन् गच्छ) ऋषिपुत्रों और ऋषियोंके पास जा, (सुकृतां लोके सीद) पुण्यवानोंके स्थानमें रह। (तत्र नौ संस्कृतं) वह हम[illegible] दोनोंका सुसंस्कृत कर्म फल रहे ॥ ३५ ॥

भावार्थ- जो ब्राह्मण आवेंगे उनसे शत्रुओंको दूर भगा दो। उन ब्राह्म[illegible]णोंको अन्न समर्पण करो, जिससे वे पुष्ट हों ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणोंको अन्न दो, यहां दूसरोंका काम नहीं है। इससे सबकी रक्षा होगी ॥ ३३ ॥

गौ सब संपत्तियोंका घर है, इससे प्रजाकी पुष्टि और दीर्घायु करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

बलवान् बनो, स्वर्ग प्राप्त करो, ऋषियोंके पीछे चलो, पुण्य लोक प्राप्त [illegible] और अपने आपको सुसंस्कृत करो ॥ ३५ ॥

समाचीनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ (४)

अर्थ-हे अग्ने ! (सं आ चिनुष्व) संगठना कर, (अनुसंप्रयाहि) अनुकूलताके साथ मिलकर जा। (देवयानान् पथः कल्पय) देवोंके जाने योग्य मार्गोंको तैयार कर। (एतैः सुकृतैः सप्तरश्मौ नाके तिष्ठन्तं) इन पुण्यकर्मोंके साथ सात किरणोंवाले स्वर्गस्थानमें रहनेवाले (यज्ञं अनुगच्छेम) यज्ञके अनुकूल होकर जायेंगे ॥ ३६ ॥

(येन ज्योतिषा देवाः द्यां उदायन्) जिस ज्योतिसे देव स्वर्गको पहुंचे, (ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकं) ज्ञान बढानेवाला अन्न पकाकर पुण्य लोकको प्राप्त हुए (तेन स्वः आरोहन्तः) उससे स्वर्गपर चढते हुए (उत्तमं नाकं सुकृतस्य लोकं) उत्तम सुखमय पुण्य लोकको (गेष्म) प्राप्त हो। ॥ ३७ ॥

भावार्थ-संगठन करो, अनुकूल बनो, देवमार्गोंसे जाओ, सुकृत करो, सूर्यकिरणोंके स्थानमें रहो, यज्ञ करो, यही सुखदायक मार्ग है ॥ ३६ ॥

तेजके साथ पुण्यलोक प्राप्त करो, स्वर्गपर चढो, इसीसे कल्याण प्राप्त होगा ॥३७॥

प्रथम सूक्त समाप्त।

ज्ञान बढानेवाला अन्न ।

ब्रह्मका अर्थ ज्ञान है और ओदनका अर्थ अन्न है । विशेषतः चावलोंका पका अन्न ओदन है । मनुष्यकी ज्ञानशक्तिकी वृद्धि करनेवाला यह अन्न है, इस कारण इसको ब्रह्मौदन कहते हैं । चावलोंके साथ उत्तम जल, उत्तम दूध, सोमादि औषधियोंका रस मिश्रित करके यह अन्न बनता है । बुद्धिवर्धक औषधियोंके रस इसमें संमिलित होते हैं, इससे ज्ञानकी वृद्धि और दीर्घ आयुकी प्राप्ति होकर पुष्टिभी मिलती है। गृहस्थियोंके लिये यह अन्न अत्यंत उत्तम है, क्यों कि इससे वीर्यकी वृद्धि होनेके कारण गृहस्थसुखकी प्राप्ति करनेवाला यह अन्न है ।

गृहस्थियोंको सुप्रजा निर्माण करनेका मुख्य कार्य होता है । उसके लिये स्त्रियोंको " पुत्रकामा अदिति " का आदर्श पालन करना चाहिये । सुपुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा धारण करके तदनुसार दीनताके सब भाव हटाना चाहिये । घरमें और [illegible]ने राज्यमें अदीन होकर विराजना चाहिये । अदितिका आदर्श संपूर्ण आर्य स्त्रियोंके संमुख है । उसमें केवल सत्पुत्रोंकीहि कामना है । उनके कल्याणके लिये जो अन्न खाना चाहिये वही अन्न वह खाती है, वही अन्न पकाती है । अपने पुत्रोंके कल्याण के लिये ही वह सुयोग्य अन्न पकाती है। सुपुत्रोंके ज्ञानकी वृद्धि हो, उनकी बुद्धि विकसित हो एतदर्थ वह पर्याप्त परिश्रम करती है । यही आदर्श आर्य स्त्रियोंको अपने सामने रखना चाहिये ।

सात ऋषि इस संपूर्ण विश्वकी रचना करते हैं, सात ऋषि आकाशमें हैं, उनमें सात तत्त्व प्रधान हैं, जिनके मेलसे सब जगत् बनता है । सात ऋषि प्राणादि तत्त्वोंके वाचक हैं जो सब विश्वके निर्माता सुप्रसिद्ध हैं । इनकी प्रसन्नतासे संतानकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है । यह एक महत्त्वका विज्ञान है । इन सात ऋषियोंका वर्णन इस सूक्तमें अनेक वार आ गया है । अतः इसकी खोज करके निश्चय करना चाहियेकि ये विश्वकी रचना कैसी करते हैं ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि यज्ञके लिये अग्नि प्रदीप्त करो, द्रोहरहित भाषण करो । यह वाग्यज्ञ है और दूसरा हवनयज्ञ है । इन दोनों यज्ञोंसे मानवोंकी उन्नति होती है ।

151443

द्रोह न करनाही बडाभारी यज्ञ है। इन सब प्रकारके यज्ञोंसे सुपुत्र ऐसे बनेंगे कि जो (पृतनाषाड् सुवीरः) समरमें विजय करनेवाले और उत्तम वीर हों। जो अपने शत्रुओंको परास्त कर सकते हैं।

शत्रुओंको परास्त करना।

अपने शत्रुओंको परास्त करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य इस संसारमें है। जिसके विना मनुष्य क्षणमात्र जीवित रह नहीं सकता। मनुष्यके शत्रु आध्यात्मिक, बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें होते हैं। उन सबको परास्त करनेसे मनुष्य उन्नत हो सकता है। इसलिये वेद यहां शत्रुनिर्दलनपर इतना जोर दे रहा है। [illegible]क इसका विचार करें, और शत्रुको परास्त करनेका महत्त्व जानें।

तीसरे मंत्रमें कहा है (महते वीर्याय अजनिष्ठाः) मनुष्य बडा पुरुषार्थ करनेके [illegible] यहां उत्पन्न हुआ है। पुरुषार्थ करके अपने सब शत्रुओंको दूर भगा देवे। और (सु[illegible]रं रयिं) सब प्रकारके वीरताके भावोंसे युक्त धन प्राप्त करे। यहां वेदका मह[illegible] इस बातमें है कि वह केवल धन कमानेको नहीं कहता, परंतु धनके साथ वीरत्वक[illegible] प्राप्त करनेकोभी कहता है, क्यों कि वीरताके विना धनकी रक्षा नहीं हो सकत[illegible]। अतः जिस धनके साथ वीरता न होगी वह धन स्थिर नहीं रह सकेगा।

आगे चतुर्थ मंत्रमें कहते हैं कि यज्ञके योग्य देवोंको यज्ञमें बुलाओ। यहां सहायकोंको और सन्मान्योंको बुलाने तथा अपने पास करनेकी सूचना मिलती है। जो सहायता करनेवाले नहीं हैं उनको बुलाना नहीं है। जैसे (सातघ्नो देवान् निषेध। अथर्व ३।२५।५) लाभका नाश करनेवाले देवोंका निषेध करनेको कहा है। इससेभी सहायकोंको पास करने और विरोधकोंको दूर करनेकी सूचना मिलती है।

पंचम मंत्रमें कहा है कि अन्नमें देवों, पितरों और मानवोंका भाग होता है। वह जिसका उसको देना मनुष्यका कर्तव्य है। एकका भाग दूसरेको लेना उचित नहीं, वही अन्याय और अधर्म है। मनुष्य अपने अन्नमेंसे इनका भाग उनको देवे और पश्चात् शेषका स्वयं भोग करे।

षष्ठ मंत्रका कथन है कि मनुष्य (सहस्वान्) बलवान बने, बलिष्ठ सशक्त बने, (अभिभूः) शत्रुका पराभव करनेवाला बने। और (सपत्नान् नीचः न्युब्ज) शत्रुओंको नीचे दबाकर रखे, उनको उठने न दे, इतनाही नहीं परंतु उनको (बलिहृतः) करभार देनेवाले बनावे। अर्थात् जो पहिले शत्रुता करते थे वे अब इसको कर

देनेवाले बने। इतनी शक्ति इसको अपने अंदर बढानी चाहिये।

सप्तम मंत्रमें (महते वीर्याय) बडा पराक्रम करनेके लिये फिर सूचना दी है। तृतीय मंत्रमें यही बात कही थी, वह फिर यहां दुहराई है। क्यों कि मानवी जीवनमें पराक्रमका स्थान बडाही ऊंचा है। (पयसा) दूध पीकर बलवान् बनना और बडा पराक्रम करना हरएकको उचित है। इसी तरह स्वर्गलोकका मार्ग खुल जाता है।

आगेके तीन मंत्रोंमें पत्थरोंद्वारा सोमरस निकालनेका वर्णन है। यह सोमरस सब प्रकारसे मनुष्योंका स्वास्थ्य बढानेवाला और उत्साह बढानेवाला है। यज्ञाग्निमें इसका हवन करके सब लोग इसका पान करते हैं। यह रस पीया जाता है, दूधके सा[थ] मिलाकर पीते हैं और भूने आटेके साथ मिलाकरभी खाते हैं। अनेक रीतिसे इ[स] रसका सेवन किया जा सकता है।

शूरपुत्रा स्त्री।

ग्यारहवें मंत्रमें आदर्श स्त्री 'शूरपुत्रा' होती है, ऐसा कहा है। स्त्रियोंको यह स्मरण रखना चाहिये। पुत्र बडे शूर होने चाहिये। भीरु और डरनेवाले नहीं चाहिये। गृहस्थियोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये। क्यों कि (सर्ववीरा रा[यः]) सब वीरताके गुणोंके साथ धन प्राप्त करना गृहस्थीका धर्म है। वीर पुत्र होनेपरही वीर युक्त धन प्राप्त होना संभव होसकता है।

बारहवें मंत्रमें दो मंत्रभाग मुख्य हैं। (श्रिया सर्वान् अतिस्याम) संपत्तिसे सबसे बढकर हों और (द्विषतः पदं अधः आपादयामि) शत्रुओंका स्थान नीचे करता हूं। आगे २१ वे मंत्रमेंभी यही कहा है। संसारी मनुष्यको यही उपदेश सदा ध्यानमें धारण करने चाहिये। हरएक समय यही मार्ग मनुष्योंको अपने सन्मुख रखना चाहिये।

स्त्रियोंका कर्तव्य।

घरमें पानी भरना प्रथम कर्तव्य है। उत्तमसे उत्तम पानी घरमें भरना चाहिये। घडा लेकर उत्तम जल भरनेका यत्न स्त्री करे, स्त्रियां मिलकर पानी भरनेके लिये जांय। उत्तम जल घरमें लाना यह (वः ऊर्जः भागः) बल देनेवाला भाग है। संतान, पशु आदिके लिये इसकी बडी आवश्यकता होती है। यह उपदेश मंत्र १६ तक किया है।

सोलहवें मंत्रमें (चरुः) चावल आदि अन्न पकानेकी आयोजना करनेका उत्तम उपदेश है, (ऋतुभिः) ऋतुओंके अनुकूल अन्न तैयार किया जाय। जिसका सेवन करके सब आयुके लोग सुदृढ और दीर्घायु बनें।

सतरहवें मंत्रमें कहा है कि स्त्रियां शुद्ध पवित्र और सुंदर वस्त्र आभूषणादिसे युक्त होकर घरमें पानी लावें और अन्न पकावें, यज्ञमें उपस्थित हों, सबका आतिथ्यसत्कार करें, पशुओं और संतानोंको तृप्त करें और घरकी सब सुव्यवस्था करें। किसी तरह न्यूनता रहने न दें।

अठारहवें मंत्रमें चावल, घी, सोमरस आदिसे उत्तम पक्व अन्न तैयार करनेका उपदेश है। उत्तम अन्न पकाना स्त्रियोंका मुख्य गृहकृत्यही है।

उन्नीसवें मंत्रमें कहा है कि पितामह, पिता, पुत्र आदि १५ पुरुषोंतक अविच्छिन्न [illegible] हो। घरमें ऐसा खानपान रहना चाहिये और ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिये कि, [illegible] [illegible]चमें न टूटे, पुरुष दीर्घायु हों और अटूट वंश हो। पंदरह पुरुषोंतक कमसे क[illegible] [illegible]ंश अटूट रहे, आगे जितना रहेगा उतना अच्छाही है, परंतु कमसे कम इतना त[illegible] अवश्य रहे। यह सब ब्रह्मौदन अर्थात् ज्ञान बढानेवाले अन्नसे होता है। ब्रह्मौदन क[illegible] अर्थ बुद्धिवर्धक अन्न है। इससे बुद्धि बढती है और बुद्धिसे यह सीधा मार्ग दी[illegible]ता है। इससे मनुष्य (रक्षः नुदस्व) राक्षसोंको दूर कर सकता है और अपने आ[illegible]को आगे बढा सकता है।

[illegible]गे बाईसवें मंत्रमें कहा है कि (शपथः अभिचारः मा प्रापत्) शापों और हमलोंसे यह [illegible] रहे। शरीरमें रोग न हों। सब प्रकारसे कुशलता रहे। पाठक जान सकते हैं कि शरीरकी नीरोगिता शरीर शुद्ध रहनेसे होती है, वाणीकी नीरोगिता शाप गालि[illegible] आदि न होनेसे होती है और समाजकी नीरोगिता वधादिके अपराध न होने[illegible] हो सकती है। शरीर, वाणी और समाज नीरोग रहने चाहिये। यदि यह इच्छ[illegible] है तो सर्वत्र निर्दोषता रखना चाहिये। कुपथ्यसे शरीरमें रोग होते हैं, अपशब्दसे वाणी रोगी होती है और अपराधकी वृत्तिसे समाज रोगी होता है। पाठकोंको उचित है कि वे अपना इन सब क्षेत्रोंमें स्वास्थ्य रखनेका यत्न करें।

तेईसवें मंत्रमें चावल आदि अन्न तैयार होनेपर उसको परोसनेका विधि बताया है [illegible]चोवीसवें मंत्रमें कडछीका उपयोग करके चावलोंको ठीक करनेको कहा है। पच्[illegible]वें मंत्रमें कहा है कि—

प्राशितारः मा रिषन्।

अन्न भक्षण करनेवाले कृश या रोगी न हों। अन्न ऐसा उत्तम हो कि जिसे खानेवाले तृप्त होकर पुष्ट होते जांय। पकानेवालेका यही चातुर्य है कि खानेवाले उसे आनंदसे खाय और हाजम करें और पुष्ट हों। ऐसा अन्न पकाकर उत्तम विद्वानोंको खिलाना चाहिये। यह सूचना २६ वें मंत्रमें कही है।

विवाह।

सताईसवें मंत्रमें विवाहका विषय संक्षेपसे कहा है। स्त्रियां (शुद्धाः पूताः योषितः यज्ञियाः) शुद्ध पवित्र और पूज्य हैं, यह वाक्य यहां बहुतही महत्त्व रखता है। स्त्रियोंकी निंदा नहीं करनी चाहिये, उनकी घर घरमें पूजा होनी चाहिये। जहां इनकी पूजा होगी वहां पवित्रता रहेगी और पवित्रतासे उच्चता साध्य होगी। यह वर्णन स्त्रियोंका दर्जा समाजमें कैसा उच्च है, इसका स्पष्ट निर्देश कर रहा है।

इन स्त्रियोंका विवाह ज्ञानियोंके साथ करना चाहिये। (ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि) ज्ञानियोंके हाथमें पृथक् पृथक् एक एकके हाथमें एक एक स्त्री [illegible] योग्य है। एक पुरुष अनेक स्त्रियां न करे, एक स्त्री अनेक पुरुषोंके साथ संबंध न करे। एक स्त्री एकही पुरुषके साथ रममाण हो और एक पुरुष एकही स्त्रीके साथ आनंदके साथ रहे। यह आदर्श गृहस्थाश्रमका वर्णन यहां अति संक्षेपके साथ किया है। इस मंत्रका ' पृथक् ' शब्द बडा महत्त्वका है। इसी शब्दके कारण विवाहका नियम स्पष्ट हो जाता है।

आगे अठाईसवें मंत्रमें गृहस्थाश्रममें ' कामधेनु ' (कामदुघा) रखनी चाहिये यह आदेश है। घर घरमें गौकी पालना होनी चाहिये। कामधेनु वह है कि जो इच्छा होनेके समय दूध देती है। घरमें छोटे बालक, वृद्ध और रोगी होंगे, उनकी पालना इस गौके दूधसे होगी। इस गौमाताका यह महत्त्व है। गृहस्थियोंको तीन बातोंका ख्याल करना चाहिये। (ज्योतिः अमृतं हिरण्यं) तेजस्वी जीवन, अमरत्व और सुवर्ण। सुवर्ण अर्थात् सोनेका महत्त्व हरएक जानता है, गृहस्थीके हरएक व्यवहारमें इसका काम लगता है। सबही दैनिक और सार्वकालिक व्यवहार धनसे साध्य होते हैं। अमृत नाम मोक्षका है, यही अमरत्व है। सब जगत् मृत्युसे घेरा गया है। उस मृत्युके पाशको तोडकर अमरत्व प्राप्त करना मनुष्यका जीवनोद्देश्य है। सब धर्म कर्म इसी उद्देश्यसे किये जाते हैं। इसी तरह तेजस्वी जीवन यहां व्यतीत करना

चाहिये । इसी तरह (स्वर्गः पन्थाः कृण्वे) स्वर्गीय मार्ग बनता है । स्वर्गमार्गके तीन पहलू हैं । धन यहांके सुखके लिये चाहिये, तेजस्वी जीवन यहांके सन्मानके लिये चाहिये और अमरपन पारमार्थिक उन्नतिके लिये चाहिये । स्वर्गका यह स्वरूप यहां पाठक देखें ।

गृहराज ।

उनतीसवें मंत्रमें ' गृहराजस्य भागं ' गृहराजके कार्यभागका वर्णन है। गृहराज [illegible]का स्वामी है, अथवा घरोंमें जो श्रेष्ठ घर है उसमें कौनसा कार्य होना चाहिये ? [illegible] और छिलकोंको अलग करके स्वच्छ चावलोंको अपने पास रखना चाहिये। यही [illegible]म सर्व व्यवहारको करनेके समय ध्यानमें रखना चाहिये । छिलकोंको हटाना अ[illegible]ारद्रव्यको अपने पास रखना चाहिये । पाठक जिस व्यवहारमें देखेंगे उस व्य[illegible]रमें उत्तम सिद्धिका यही एकमात्र नियम है । पढाईमेंभी देखिये तत्त्वज्ञानको स्वी[illegible]रना चाहिये, कच्चे ग्रंथोंको दूर हटाना चाहिये ।

[illegible]क भाग निर्ऋतिका अथवा नाशका होता है और दूसरा उन्नतिका होता है । विन[illegible]श करनेवाले भागको दूर करो और उन्नतिके भागको अपने पास रखो, यही सीधा सादा नियम है । जो इसको पकडेंगे वे उन्नत होंगे इसमें संदेह ही नहीं [illegible] ।

(श्रम्यतः, पचतः, सुन्वतः विद्धि) परिश्रम करनेवाले, पकानेवाले और रस निकाल[illegible]वाले कौन हैं,इसको जानो । परिश्रम करनेसेहि मानवोंकी उन्नति होती है, अतः परिश्रम करनेका स्वभाव मनुष्यको अपनाना चाहिये, परिपक्क बनानाभी चाहिये हरएककी परिपक्क अवस्था उत्तम होती है,वही प्राप्त करनी चाहिये, तथा रस ग्रहण करनेका यत्न करना चाहिये । वनस्पतिमें सारभूत रस होता है, उस सारभूत रसक ग्रहण करना चाहिये और अवशिष्ट साररहित भागको फेंक देना चाहिये । यह उपदेश व्यापक दृष्टिसे विशेषही उपयोगी है । स्वर्गपर चढनेके लिये ये तीन उपदेश अत्यन्त महत्त्वके हैं ।

(घृतेन गात्रानु सर्वा विमृड्ढि) घीसे सब गात्रोंकी मालिश करो । शरीरावयवों-

की सुस्थितिके लिये घीकी मालिश आवश्यक है। घीकी मालिश पावोंके तलोंपर करनेसे आंख उत्तम अवस्थामें रहते हैं, संधिस्थानोंपर मालिश करनेसे संधिरोग न होते, सिरपर मालिश करनेसे मस्तिष्क शान्त रहता है और गरमी हटती है, इसी तरह अन्यान्य अवयवोंपर मालिश करनेसे अनेक लाभ होते हैं। इसके अतिरिक्त विविध औषधियोंसे घृतको सुसंस्कृत करनेसे घीके गुण बढ जाते हैं। जैसा ब्राह्मी घृत बनानेसे उसकी मस्तकपर मालीश बुद्धिसहायक और गर्मी हटानेवाली होती है। इसी तरह आमलक्यादि घृत तथा अन्यान्य घृत वैद्यशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं। इनकी शरीरपर मालिश बडी लाभदायक है। यह बात इकत्तीसवें मंत्रमें कही है।

पोषक अन्न ।

अन्न घर घरमें पकाना चाहिये, वह पोषक अन्न होना चाहिये (प्राशिता[र] रिषन्) उस अन्नको खानेवाले कभी दुखी नहीं होने चाहिये, कभी हिंसित न[हीं होने] चाहिये, कभी क्षीण नहीं होने चाहिये। ऐसा अन्न गृहस्थीके घरमें पकाया ज[ाय, यह] सूचना ३२ वें मंत्रमें की है।

जो अन्न परिपक्व किया हो वह (आर्षेयेषु निदधे) ऋषिप्रणालीके अ[नुसार] चलनेवालोंके लिये समर्पित करना चाहिये। न कि (न अनार्षेयाणां) ऋषिप्र[ण]ाली को छोडनेवालोंको कुछ समर्पण करना है। ऋषिप्रणालीको संजीवित रखनेके लिये ही हरएकको प्रयत्न करना चाहिये।

घर कैसा हो ?

घर ऐसा हो कि जहां (यज्ञं दुहानं) सदा यज्ञ होते रहें, (सदनं र[यी]णां) ऐश्वर्योंका स्थान हो, (प्रपीनं सदं) पुष्टि और समृद्धिका केन्द्र हो, (पोषैः प्रजा-अमृतत्वं) अनेक पुष्टिके साधनोंके साथ प्रजाजनोंको अमृतत्व देनेवाला हो। जहां (धेनुं) गौ होती हो और धनसंपत्तियोंके साथ (दीर्घ, आयुः) दीर्घायु लो[ग] हों, घर ऐसा हो। घरमें ये बातें रहें। घरमें धनकी कमी न हो, ऐश्वर्य की समृद्धि हो, गौवें दूध देनेवाली हों, हरएक हृष्टपुष्ट हो, सत्कारसंगतिज्ञानात्मक यज्ञ होता रहे, सब लोग आनंदप्रसन्न रहें, कोई दुखी कष्टी न हो। यह उपदेश ३४वें मं[त्र]में है।

३५ वें मंत्रमें (वृषभः असि) तूं बलवान् है, तू निर्बल नहीं है, तू (स्वर्गः असि) [illegible]र्गका अधिकारी है, तू सुखात्मक स्थानका अधिकारी है। अतः जिस मार्गसे ऋषि-[illegible] गये और जिस मार्गसे ऋषियोंको सुखसे स्थान प्राप्त हुए उस मार्गसे तू जा। वही सुकृतियोंका लोक है, वहां जाकर रह, हमारी संस्कृतिका वही ध्येय है।

आगेके मंत्रमें कहते हैं कि (देवयानान् पथः कल्पय) देवोंके आनेजानेके मार्गों-को सुदृढ कर, वे ही मार्ग तुम्हारे लिये आनेजानेके लिये हैं,(एतैः सुकृतैः यज्ञं अनु-गच्छेम) इन सुकृतोंके साथ हमको यज्ञकी ओर जाना चाहिये। सुकृत करते करते [illegible]गे बढना चाहिये। सुकृत करनेमें पीछे हटना उचित नहीं है। सदा सत्कर्म ही [illegible]ष्यमात्रका मार्गदर्शक हो। मनुष्य उससे पीछे न रहे।

[illegible]आज जो स्वर्गमें देव हैं वे इसी मार्गसे तेजस्वी बने हैं। अतः मनुष्यको इसी यज्ञ-म[illegible] अवलंबन करना चाहिये।

[illegible] तरह अनेक प्रकारका उपदेश इस सूक्तमें किया है,जिसका मनन करनेसे पाठकों को [illegible]मार्ग सुस्पष्ट रीतिसे दीख सकता है।

रुद्र देव।

[२]

[ऋषिः- अथर्वा । देवता-भव-शर्व-रुद्र]

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥

शुने क्रोष्टे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥

अर्थ- हे (भवाशर्वौ) भव और शर्व ! हे उत्पादक और संहारक! आप दोनों (मृडतं) हम सबको सुखी करो। (मा अभियातं) हमपर हमला न करो। आप दोनों (भूतपती, पशुपती) भूतोंके पालक और पशुओंके पालक हो। (वां नमः) आप दोनोंको नमस्कार है। (प्रतिहितां आयतां मा वि स्राष्टं) धनुषपर रखे और खेंचे गये बाणको हमपर न छोडो, (नः द्विपदः चतुष्पदः मा हिंसिष्टं) हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंकी हिंसा न करो ॥ १ ॥

जो (कृष्णाः अविष्यवः) काले और हिंसक कृमि हैं, उन (शुने क्रोष्टे) कुत्ते और गीधडोंके लिये तथा (अलिक्लवेभ्यः गृध्रेभ्यः) करूर शब्दकनेवाले गीधोंके लिये (शरीराणि मा कर्त) शरीरोंको मत काटो। हे (पशुपते) पशुओंके पालक ! (ते मक्षिकाः ते वयांसि) तेरी मक्खियां और कौवे (विघसे मा विदन्त) खानेके लिये उन कटे शरीरोंको न प्राप्त करें, अर्थात् आप हमारे शरीरोंका इस तरह नाश न करो ॥ २ ॥

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥

अर्थ-हे (भव) सबके उत्पन्नकर्ता देव! (ते क्रन्दाय प्राणाय) ते शब्दरूपी प्र[illegible]के लिये नमस्कार हो। (ते याः रोपयः) तेरे जो शक्तिप्रभाव हैं, हे ([illegible]र्त्य रुद्र) अमर रुद्रदेव! (सहस्राक्षाय ते नमः कृण्मः) सहस्र ने[illegible]ाले तुझ देवके लिये नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

[illegible] ते पुरस्तात् उत्तरात् उत अधरात् नमः कृण्मः) तुझे आगेसे ऊपरसे औ[illegible] नीचेसे नमस्कार करते हैं। (अभीवर्गात् दिवः परि अन्तरिक्षाय ते नम[illegible]) सब ओरसे द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक रूपी तेरे रूपके लिये नम[illegible]ार करते हैं ॥ ४ ॥

हे पशुपते! हे भव! (ते मुखाय नमः) तेरे मुखके लिये नमस्कार है। (या[illegible] ते चक्षूंषि) जो तेरे आंख हैं, उनको नमस्कार है। तेरे (त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय नमः) त्वचारूप, दर्शन और पीठके लिये नमस्कार है ॥ ५ ॥

([illegible] अंगेभ्यः उदराय जिह्वायै आस्याय) तेरे अंगों, उदर, जिह्वा और मुख[illegible] लिये नमस्कार है, (ते दद्भ्यः गंधाय नमः) तेरे दांतोंके लिये और गन्धके लिये नमस्कार है ॥ ६ ॥

(नीलशिखण्डेन वाजिना अस्त्रा) नील शिखावाले बलवान् अस्त्रसे (सहस्राक्षेण अर्धकघातिना रुद्रेण) हजारों आंखोंवाले सबके विनाशक रुद्र[illegible] (मा समरामहि) हम कभी न विरुद्ध रहें ॥ ७ ॥

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्व१न्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥ (५)
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः । स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्य१ः ॥ ११ ॥

अर्थ-(सः भवः विश्वतः नः परिवृणक्तु) वह उत्पत्तिकर्ता सब ओरसे ह[illegible] सुरक्षित रखे। (आप इव अग्निः) जल जैसे अग्निको घेरता है, वैस[illegible] (भवः नः परिवृणक्तु) उत्पत्तिकर्ता हमें घेर रखे। (नः मा अभि मां[illegible] हमें मत नष्ट करे, (अस्मै नमः अस्तु) इसको नमस्कार हो ॥ ८ ॥

हे पशुपते ! (भवाय चतुः अष्टकृत्वः नमः) उत्पत्ति करनेवाले [illegible] चार वार तथा आठ वार नमस्कार हो। (ते दशकृत्वः नमः) तेर[illegible] दसवार नमस्कार हो। (इमे पञ्च पशवः तव विभक्ताः) ये पांच पशु[illegible] तेरे लिये रखे हैं, (गावः) गौवें, (अश्वाः) घोडे, (पुरुषाः) पुरुष, (अजा[illegible]यः) बकरीयां और भेडें हैं ॥ ९ ॥

(तव चतस्रः प्रदिशः) तेरी ये चारों दिशाएं हैं, (तव द्यौः, तव पृथिवी) तेरा द्यु और पृथ्वी लोक है, (तव इदं उग्र उरु अन्तरिक्षं) तेरा ही यह बडा तेजस्वी अन्तरिक्ष है। (इदं सर्वं आत्मन्वत् तव) तेराही यह सब चेतनावाला है, (यत् पृथिवीं अनु प्राणत्) जो पृथिवीप[illegible] जीव धारण करता है, वह सब तेरा ही है ॥ १० ॥ (५)

(यस्मिन् इमा विश्वा भुवनानि अन्तः) जिसमें ये सब भुवन [illegible], वह (वसुधानः अयं उरुः कोशः) वसुओंका निवासस्थानरूप यह वि[illegible]रूपी बडा कोश (तव) तेराही है। हे (पशुपते) पशुपालक ! (सः न मृड, ते नमः) वह तू हमें सुख दे, तेरे लिये नमस्कार हो। (क्रोष्टारः अभिभाः श्वानः परः) सियार गीदड कुत्ते सब दूर हों। (अघरुद्रः विकेश्यः) बुरे स्वरसे रोनेवाली बालोंको खोलकर चिल्लानेवाली स्त्रियांभी दूर हों, [illegible]र्थात् ये शोकके प्रसंग हमारे पास न आवें ॥ ११ ॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीऽइतः ॥ १२ ॥
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीऽइतः ॥ १४ ॥
नमस्तेस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥

अर्थ- हे (शिखंडिन्) कलगी धारण करनेवाले ! तू (सहस्रघ्नि शतवधं हिरण्ययं हरितं धनुः बिभर्षि) हजारोंका नाश करनेवाला, सेकडोंका वध करनेवाला, सुवर्णमय धातुका धनुष्य धारण करता है। (रुद्रस्य इषुः देव-हेतिः चरति) रुद्रका बाण देवोंका शस्त्र विचरता है, वह (इतः यतमस्यां दिशि) जिस दिशामें हो, (तस्यै नमः) उसको नमस्कार हो। १२ ॥

हे रुद्र ! (यः अभियातः निलयते) जो हमला होनेपर छिप जाता है और (त्वां नि चिकीर्षति) तुझे नीचे करना चाहता है, (विद्धस्य पदनीः इव) घायलके पदक्षेपके समान (तं पश्चात् अनु प्रयुंक्षे) उसके पीछेसे तू उसका बदला लेता है ॥ १३ ॥

(भवारुद्रौ सयुजौ संविदानौ) उत्पत्ति करनेवाले और संहार करने-वाले देव मिलकर रहनेवाले ज्ञानी हैं। (उभौ उग्रौ वीर्याय चरतः) ये दोनों तेजस्वी पराक्रमके लिये विचरते हैं। (इतः यतमस्यां दिशि) वे यहांसे जिस दिशामें हों वहां (ताभ्यां नमः) उन दोनोंको नमस्कार हो ॥ १४ ॥

हे रुद्र (आयते परायते तिष्ठते आसीनाय) आनेवाले जानेवाले ठहरने-वाले और बैठनेवाले (ते नमः) तुझे नमस्कार हो ॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥
मा नोभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥ (६)

अर्थ— (सायं प्रातः रात्र्याः दिवा नमः) शामको सवेरे रात्रिके और दिनके समय नमस्कार हो (भवाय शर्वाय च उभाभ्यां नमः) भव और शर्व इन दोनोंको नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥

(सहस्राक्षं विपश्चितं बहुधा अस्यन्तं रुद्रं) सहस्रनेत्र ज्ञानी बहुत प्रकारसे शस्त्र फेंकनेवाले रुद्रको (पुरस्तात् अति पश्यं) आगे देखता हूं। (ईयमानं जिह्वया मा उपाराम) उस गतिमान्‌को हम अपनी जिह्वासे धर्षित न करें ॥ १७ ॥

(श्यावाश्वं कृष्णं असितं मृणन्तं) अश्वयुक्त, आकर्षक, बन्धनरहित, सुखदायी (भीमं केशिनः रथं पादयन्तं) किरणोंवालोंके बडे भारी रथको भी परास्त करनेवाले (पूर्वे प्रतीमः) पहिले प्राप्त करते हैं और (अस्मै नमः अस्तु) इसको नमस्कार हो ॥ १८ ॥

हे पशुपते! (मत्यं देवहेतिं नः मा अभिस्राः) जान बूजकर फेंका हुआ देवोंका शस्त्र हमारे पास न आवे। (नः मा क्रुधः, ते नमः) हमपर क्रोध न हो, तेरे लिये नमस्कार हो। (अस्मत् अन्यत्र दिव्यां शाखां विधूनु) हमसे दूर दिव्य शाखाको फेंक ॥ १९ ॥

(नः मा हिंसीः) हमारी हिंसा न कर, (नः अधि ब्रूहि) हमें उपदेश कर, (नः परिवृंग्धि) हमारी रक्षा कर, (मा क्रुधः) क्रोध न कर, (त्वया मा समरामहि) तेरे साथ हम विरोध न करें ॥ २० ॥ (६)

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

(१) यजुर्वेद । बिना जिल्द मू. १॥) डा॰व्य॰॥)
कागजी जिल्द २) "
कापडी जिल्द २॥) "
रेशमी जिल्द ३) "

(३) संस्कृतपाठमाला १ अंकका मू. ।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥=)

४ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू. १) ।)

(५) अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।
१ प्रथम काण्ड २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड २) ॥)
३ तृतीय काण्ड २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड २) ॥)
५ पंचम काण्ड २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड २) ॥)
७ सप्तम काण्ड २) ॥)
८ अष्टम काण्ड २) ॥)
९ नवम काण्ड २) ॥)
१० त्रयोदश काण्ड १) ।=)
११ चतुर्दश कांड १) ।)
१२ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(६) छूत और अछूत।
१-२ भाग दोनोंका मू॰ १॥।) ॥)

(७) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से ८ प्रत्येकका मू॰ ॥) डा॰व्य॰ =)

(८) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(९) वेदका स्वयं शिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(१०) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन। (सचित्र) २) ।≡)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
३ सूर्यभेदन-व्यायाम। " ॥) =)
४ योगसाधनकी तैयारी। ।॥) ।)

(११) यजु. अ. ३६ शांतिका उपाय ॥=) ।)

(१२) शतपथबोधामृत ।) -)

(१३) देवतापरिचय ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१४) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक ≡) -)

(१५) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ।॥) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) ॥)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता ।॥) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

१६ उपनिषदमाला। १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद्। १।) ।-)

(१७) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) ॥)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
५ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
6. Sun Adoration १) ।=)

Regd.N.B. 1463

गीता।

संपादक– पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०

"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) "

दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

" " " " " " वी. पी. से ५।।) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रेलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं हैं, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है-

आदिपर्व ६।।≡) रु.; सभापर्व २।।) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५।।=) रु भीष्मपर्व ४।।।≡) रु.; द्रोणपर्व ८।।) रु.; कर्णपर्व ३।।।) रु.; शल्यपर्व २।।-) रु.; सौप्तिकपर्व ।।।-) रु.; स्त्रीपर्व ।।।-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६।।≡) रु.; आश्वमेधिकपर्व २।।-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु.; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ।।।-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक-श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध (जि०सातारा)

वैशाख
संवत १९९२
मई
सन १९३५
वर्ष १६
अंक ५
क्रमांक
१८५

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृतपाठमाला"

२४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये । २४ भागोंका मूल्य ६ ॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य१) प्रत्येक एक भागका मू० ॥) । वी०पी० द्वारा ।) चार आने अधिक मूल्य होगा ।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

वैदिक प्राणविद्या (नया संस्करण)

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है । मूल्य ॥) और डा० व्य० =) है ।

मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ब्रह्मचर्यका विघ्न

मूल्य =) दो आने । डा० व्य-) डा० व्य० सहित मू०≡) तीन आनेकी टिकट भेजकर पुस्तक मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

नया संस्करण! नया संस्करण

योगसाधनकी तैयारि

योगसाधनसे हमारी शक्ति बढती है, इसलिये योगविषयक अत्यन्त आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है ।

अच्छी जिल्द मू० ।||) बारह आने । डा०व्य० ।। इस लिये १) एक रु० म० आ० से या टिकट द्वारा भेजकर शीघ्र ही यह पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि०सातारा)

YOGA

An International Illustrated Practical Monthly on the Science of Yoga edited by Shri Yogendra

Specimen Copy As. 8.;
Annual Subscription Rs. 3

YOGA INSTITUTE
P. B. 481 BOMBAY

आविष्कार-विज्ञान

लेखक-उदय भानु शर्माजी । इस पुस्तकमें अन्तर्जगत् और बहिर्जगत, इंद्रियां और उनकी रचना ध्यानसे उन्नति प्राप्त करनेकी रीति, मेधावर्धनका उपाय, इत्यादि आध्यात्मिक बातोंका उत्तम वर्णन है। जो लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके इच्छुक हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये ।पुस्तक अत्यंत सुबोध और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे लिखी होनेके कारण इसके पढनेसे हरएकको लाभ हो सकता है । पूर्वार्धका मूल्य॥=) और डा.व्य. ≡)है द्वितीयार्धका मू०॥)और डा०व्य०≡) है ।

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा.)

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य २॥) रखा गया है । उत्तम लेखों और चित्रोंसे पूर्ण होनेसे देखनेलायक है । नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता । वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। जादह हकीकत के लिये लिखो ।

मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोदा।

३

वर्ष १६ अंक ५ क्रमांक १८५

वैशाख संवत् १९९२ मई सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

प्रजासमिति।

ध्रुवोऽच्युतः प्रमृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान्पादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥

अथर्ववेद ६। ८८। ३

" राजन्! तू (ध्रुवः) अपनी राज गद्दीपर स्थिर रह, (अ-च्युतः)अपने स्थानसे भ्रष्ट न हो, (शत्रून् प्रमृणीहि) अपने शत्रुओंका नाश कर, और (शत्रूयतः अधरान् पादयस्व)शत्रुके समान आचरण करनेवालोंको नीचे दबा दे,(सर्वाः दिशः संमनसः सध्रीचीः) सब दिशाओंमें रहनेवाले प्रजाजन एक विचारसे युक्त और मिलजुल कर रहनेवाले हों, ऐसा तू यत्न कर। (इह) इस राष्ट्रमें (ते ध्रुवाय समितिः कल्पतां) तेरी स्थिरताके लिये प्रजाकी समिति समर्थ होवे। "

राजा अपनी राजगद्दीपर स्थिर रहे, वह ऐसा कोई कार्य न करे कि जिससे उसको स्थानभ्रष्ट होना पडे। राष्ट्र के सब शत्रुओंका निःपात राजा करे, सब प्रजाजन सबकी उन्नतिके लिये मिलकर प्रयत्न करते रहें, तथा राज्यव्यवस्थाके लिये एक प्रजासमिति स्थापन करे, जिससे जनताका विचार राज्य चलानेमें मिले और इसकी सहायतासे राजाका स्थान सुस्थिर हो सके।

हम और हमारी [illegible]

(ले०- श्री० वसिष्ठ)

जिस बातको हम आज 'वैदिक' बनाये बैठे हैं कभी समय था कि उसके श्रवण मात्रसे हमारे वास्तविक पुरखा कानोंपर हाथ रखा लेते थे। यदि आजसे कुछ सहस्र वर्ष पूर्व किसी आश्रमवासीको नौकरी करके वेद, उपनिषद आदि की कथा द्वारा धर्म प्रचारके लिए आकर्षित किया जाता, तो तत्कालीन मुनियोंके आश्रमोंमें धिक् धिक् की ध्वनि गूंज उठती।

हम कह सकते हैं कि आज कलके वेतन भोगी उपदेशक गौत्तम कणादके समान सुयोग्य, सुचरित्र तेजस्वी वक्ता कहां हैं? हमारे उपदेशक भी कह सकते हैं कि आज राम, कृष्ण, जनक और विदुरके समान श्रद्धालु श्रोता भी नहीं हैं। और शायद इसी अभावकी भित्तीपर हम सचेतन ग्रामोफोनकी मशीनोंके द्वारा वैदिक संदेशके प्रचारको महत्व दे देते हैं। हम प्रधान व मन्त्रियोंके निमन्त्रणमें रहकर हमारे उपदेशकोंने वैदिक धर्मकी प्रचार इतर व्यक्तियोंमें करना है। क्यूंकि हमारे ये उपदेशक गौत्तम कणादके समान सत्यनिष्ट नहीं हैं अतः जनकादिके समान विवेकशील न होते हुए भी हम वकील आदि प्रधान व मन्त्रियों के नियन्त्रणमें रहनेसे इन उपदेशकों की गौरव ही है। हमारे आधीन होते हुए भी ये उपदेशक पथ भ्रष्ट इत्तर व्यक्तियोंके श्रद्धाके भाजन बन सकते हैं।

किन्तु हमारी श्रद्धाका भाजन कौन है? उपदेशक तो हमारी कृपाओंके आश्रित हैं। यदि हम उनसे संतुष्ट रहे तो उनके वेतन आय और प्रतिष्ठामें वृद्धि होने की सम्भावना हो सकेगी। अतः आजीविकाके कारण हमही उनकी श्रद्धाके भाजन है वे हमारी श्रद्धाके भाजन नहीं।

पुरोहित हमारे संस्कारों का सम्पादन करते हैं वे हमारे यज्ञोंके ब्रह्मा आदि बनते हैं। हमारे बालकों की स्त्रियों की तथा हमारी श्रद्धा ईश्वरके बाद पुरोहितमें ही स्थिर होती है किन्तु आर्य समाजोंने इन्हे भी नौकर रख लिया है। जिन्होंने इन्हे नौकर रक्खा है, अपने वेतनके लिए उन्हे प्रसन्न रखना इनका भी एक मुख्य कर्तव्य हो गया है। प्रमुख यजमान संतुष्ट रहेंगे तो पुरोहित की वेतन वृद्धि हो जायगी। यजमानके असंतुष्ट रहनेसे पुरोहित पदच्युत भी किया जा सकेगा। अतः ये पुरोहित भी हमारी श्रद्धाके भाजन नहीं अपितु हम ही पुरोहितके उपास्य देव हैं।

हमारे साधारण भृत्योंके समान ही हमारा वेतनभोगी पुरोहित हमारे कर्म काण्डको कर जाता है। इस प्रकार प्रथाकी लकीर को पीटनेके लिए हमारा पुरोहित हमारा आश्रित बनकर हमारे अग्निहोत्रादि संभाले रहता है। अन्नपूर्णा और दुर्गाको संतुष्ट रखनेके लिए पौराणिकों का पुरोहित अपने यजमान बाबूके घर ईमानदारीसे नित्य दुर्गा पाठ कर जाता है और हमारा पुरोहित संस्कारोंमें अग्निहोत्र। श्रद्धा और भक्तिसे अत्यल्प वा अपरिमित धन कभी 'दक्षिणा' शब्दसे विभूषित था किन्तु हमने उसी 'दक्षिणा' को परिमाणमें बांध फीसके समान पुरोहितकी श्रमिक (Labour) स्थिर कर दिया है ताकि वह उस निश्चित राशिमें ही हमारे धार्मिक कृत्यों की सिद्धि कर दे और इसी मनोवृत्तिको बुढिया गायकी पूंछ पकड कर वैतरणी पार उतरना कहा जाता है।

हमारी श्रद्धाके भाजन यदि कुछ हैं तो इने गिने संन्यासी तथा दो चार योगाभ्यासी संन्यासी

...र पोस [illegible] और उ[illegible] ...
...स्त[illegible] ...
...म देकर संन्यासियोंके भी उपार्द [illegible] ...
...योगाभ्यासियोंसे भी सुकुमार ट्यूशन करालें।
...भौतिक पूंजीवादका कितना विषाक्त प्रभुत्व है यह बडी उदारतासे हममें व्याप्त होता जा रहा है।

मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ईश्वर, महात्मा, विद्वान त्यागी तपस्वी का भक्त बननेमें अपना गौरव समझता है किन्तु भौतिक जीवनमें वह किसीसे घटकर रहना नहीं चाहता! वह लक्ष्मीका भक्त नहीं अपितु लक्ष्मी–पती बननेको उन्मत्त हो जाया करता है। इसी लिए हमारे पुरोहित व उपदेशकों के हृदय को यही दृष्टिकोण व्यथित किया करता है कि आर्षग्रन्थोंका अनुशीलन करते हुए भी हम अपने निर्वाह के लिए, अनृतकी कमाई करनेवाले, शास्त्र-के रहस्यों से अनभिज्ञ लाला बाबू प्रधान मन्त्रियों-के हाथ की कठपुतली बने हुए हैं। यदि किसी प्रकार वह लक्ष्मी, जिसके लिए हम इनके नियन्त्रण में बंधे हुए हैं, हमारे घर आ जावे तो हम भी ऐसी ही प्रभुता का रसास्वादन करलें। इसी लिए हमारे उपदेशकों, पुरोहितों का दृष्टिकोण वह ... चाहिये था। केवलादी पूंजीवाद ... ऋजु पंथ के विरुद्ध उनसे गुप्त ...य करा रहा है।

मनुष्य का हृदय चिरकाल तक नीरवतामें नहीं रह सकता। अनृत जीवन व्यतीत करने पर तो उसमें एक अविराम संताप की वेदना उत्पन्न हो जाया करती है जिससे छुटकारा पाने के लिए वह किसी उपास्य देवका शरणागत बननेको आतुर हो जाता है। हम प्रधान और मन्त्री किसी की शरणमें जावें? उपदेशक और पुरोहित तो हमारे ही भक्त, हमारे ही शरणागत हैं। संन्या-सियों और साधक योगियों को भक्त बनानेकी सम्भावना है। हम किस की शरणमें बैठकर उक्त वेदना से बचें? केवल 'नास्तिकता' व 'अन्धभक्ति' की मूर्छा ही हमें उक्त वेदना से बचा सकती है।

यदि हमने योरोपीय-चर्च-मिशन की व्यवस्था से अपने वैदिक धर्म के गिर्जाघरोंको शीघ्र ही मुक्त न किया तो 'नास्तिकता' और 'अन्धभक्ति' ही काल रात्रि बनकर हम और हमारे उपदेशक व पुरोहितों को प्रलय की मूर्छा का रसास्वादन करायेगी।

हमारे वेतनभोगी कुल-गुरु।

(लेखक- श्री० वसिष्ठ)

अर्थशास्त्र का यह सहज न्याय है कि क्रीत वस्तु या तो क्रयकर्ता के निजी उपयोगमें आनी चाहिये अथवा वह क्रयकर्ता द्वारा व्यापारिक दृष्टि से कुछ लाभ पर बेच दी जानी चाहिये। जब लिपि वा भाषाबोध मूल्य देकर क्रय किया गया है तब ग्राहक की यह प्रवृत्ति कि 'वह उसे अपने निजी स्वार्थ साधन के निमित्त काममें लावे अथवा व्यापारिक दृष्टिसे कुछ लाभ लेकर बेच दे' स्वा-भाविक ही है।

जिन्होंने लिपि व भाषा का ज्ञान विद्यार्थियों के हाथ बेचा है उनकी आत्मा व मन विद्यार्थियों के साथ नहीं था। उनका सब कुछ उस द्रव्यमें केन्द्र-भूत हो रहा था जिसके निमित्त वे विद्यार्थियों को भाषा व लिपि ज्ञान बेच रहे थे। बाजार के दूकानदार के हृदयमें यह भावना नहीं थी कि उसकी दूकान की पेटियें उसके ग्राहक के शरीरमें शुद्ध

*

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह
सुखी, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवे
भावना, अभिलाषा तो मां, बहन और प
कर सकती हैं। बाजार में रोटियां बेचनेवाले दूकानदार से इसका क्या सरोकार? उसका दृष्टिकोण तो भोजन को देखनेमें सुंदर तथा खानेमें स्वादु बनाने का है।

वनवासी वानप्रस्थ निर्वाह के लिए कुछ नहीं कर रहा है, निर्वाह समस्या तो वनस्थित गौवों के दूध व कंद मूल फलों से स्वतः सिद्ध हो रही है। कुछ विद्यार्थी उसके चतुर्दिश एकत्रित हो गये हैं। वानप्रस्थ को गत २५ वर्षों का कटु, मृदु अनुभव है। यौवन कालमें वह अनेक बार काम, क्रोध, लोभ मोहादि से आहत हो चुका है। बार बार आहत होकर उसने स्वास्थ्य लाभ किया है। यह अनुभूत अनुभव ही विद्यार्थियों के लिए एक निश्चयात्मक शिक्षा है जो उनके आजीवन का पथ प्रदर्शन करेगी।

वेतन भोगी गृहस्थ गुरू काम क्रोधादि के आखेट हो रहे हैं। वे किस कारण से आखेट हुए, इनसे कैसे बचें तथा इन आक्रमणों का कैसा प्रभाव तथा क्या परिणाम होता है इसका उन्हें स्वयं पता नहीं तब वे इनके विषयमें आगे आनेवाली संतान को क्या परिचय दे सकते हैं? दूसरे वे सरकस के जन्तुओंकी नट कला के समान अपने साहित्य, गणित, भूगोल इतिहासादि की कलाओंको बेचनेके लिए बाजारमें उतरे हैं। वे दूकानदार हैं। दूकानदारका कर्तव्य ग्राहक के हाथ अपना माल बेचना है। दूकानका माल स्वयं पसंद हो या न हो किन्तु ग्राहकों के सामने उस मालकी वे शक्ति भर स्तुति गाते हैं। उन्हें स्वयं खादी प्यारा नहीं, किन्तु ग्राहकों के सामने खादी कीर्तन करना उनकी दूकानदारी, नौकरी का मुख्य अंग है। स्वयं हरिभजनमें विश्वास न हो किन्तु ब्रह्मचारियोंको ड्रिल की तरह संध्या हवन कराना पडता है। जिस प्रकार मदारी का बन्दर डण्डेके आतन्क से सब

... कराते और स्वयं अप
चित होकर भी 'वैदिक जीवन' का रहस्य
असंतुष्ट विद्यार्थियों के कंठ में उतार ही देते हैं।

मनोविज्ञान का यह एक प्रबल सिद्धान्त है कि हम किसी व्यक्ति के प्रिय विषय का भी परिज्ञान उससे बलात् प्राप्त नहीं कर सकते। कोई व्यक्ति संगीत कलामें परम प्रवीण तथा उसका अनन्य रसिक हो किन्तु कोई भी व्यक्ति उससे बलात् गायन नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा करायेगा भी तो वह गायन कला व माधुर्यकी दृष्टि से बहुत ही तुच्छ होगा। गानेवाला हृदय होता है, कंठ का मधुर स्वर नहीं। फिर अरसिकों से, जिनका वह मनोनीत विषय नहीं, उस कला को बलात् वा आजीविका का लोभ देकर शिक्षा दिलाने से उस शिक्षामें कितना पोलापन होगा यह विचारने की बात है।

हमारे गुरुकुलों के वेतन भोगी (क्रीत) गृहस्थ 'कुल गुरु' आजीविका के लोभवश 'मैं राजा का जय करूं' के आधार पर लौकिक और पारलौकिक परा और अपरा विद्याओंको बालकों के कंठमें उतरा देते हैं यद्यपि इस व्यवस्थामें न उनकी श्रद्धा होती है न रुचि।

इस प्रकार यम नियमोंमें अनभ्यस्त,
'कोऽहं, किं करोमि, क्व गच्छामि' का संतोष जनक, युक्ति युक्त, प्रत्यक्ष उत्तर न पाकर संदेह के झूलेमें झूलता हुआ स्नातक संसार सागरमें आ पडता है। जनता उसमें कुछ भी प्राकृत न पाकर गुरुकुलों से निराश हो जाती है।

संसार के कर्म प्रत्यक्ष व परोक्ष, भौतिक व आध्यात्मिक हुआ करते हैं। आध्यात्मिक कर्मों का सूक्ष्मतम भाग 'श्रद्धा' होता है और स्थूल तर भाग 'अभ्यास' कहलाता है। प्रत्यक्ष वा परोक्ष, भौतिक वा आध्यात्मिक कर्म जब सहर्ष स्वकर्तव्य समझ कर किया जाता है तब वह निर्मल, विशुद्ध

...र पोस लिए और उ...

...स्तवाई... ...कुल-मु... चित्रमाला ...

...व इसका फल अल्पायु ... ...ता है। शारीरिक व्यायाम आदि कर्म भौतिक कहलाते हैं। स्व कर्तव्य समझकर न करनेपर इनका बलात् कराया जाना भी अच्छा है यद्यपि इस बलात् कर्म विधान का फल उतना सुन्दर नहीं होता। आध्यात्मिक कर्मोंमें 'सत्य भाषण' आदि कर्म 'अभ्यास' कहलाते हैं। इनका भी बलात् कराया जाना हितकर ही है किन्तु आध्यात्मिक कर्म 'श्रद्धा' बलात् कराये जानेवाला कर्म नहीं है। यह बल प्रयोग करनेपर विद्रोही होकर नास्तिक बन जाता है। संध्या और हवन 'श्रद्धा' कर्म हैं। इनके सम्पादनमें बल प्रयोग नास्तिकता का सूत्रपात करता है। ये तो 'श्रद्धा' से प्रवाहित किये जानेवाले सूक्ष्म तम प्रवाह हैं। यही कारण है कि गुरुकुलों में बलात् कराये जानेवाले 'संध्या हवन' विद्रोही होकर अविश्वासको मूर्तकर देते हैं।

रोगका निदान

आशा के प्रतिकूल फल को देखकर सहसा शंका होती है इसका कारण क्या है? यदि हम कसौटी की परख के अनुसार कारण ढूंढें, तो वे हमें गुरुकुलों की आधार शिलामें एक एक करके सब मिल जांयगे।

गुरुकुलों का शैशव– गुरुकुल ऐसे व्यक्तियों द्वारा आरम्भ किये गये जो उनकी मूर्ति से अनभिज्ञ थे, जो लगभग १५ वर्ष की आयुमें ही पिता बन चुके थे, जो नगरों के दूषित वातावरणमें उत्पन्न हुए, पले और पढाये गये थे। उनके लिए गुरुकुल एक न सुना, न देखा और न चला मार्ग था। अतः उनकी सब त्रुटियें परीक्षण-रूप होने से स्वाभाविक थीं। माता पिता भी 'गुरुकुल' को अपनी संतान के लिए एक नवीन कष्ट दायक काला पानी समझते थे, किन्तु शनैः शनैः कोमल चरण कठोर अवनि पर चलते चलते कठोरता अर्चन कर लेंगे ऐसा सब को विश्वास था। लाला बाबुओंके

...का जीवन, वेश भूषा, खान पान ... ...कृत ऋजु तपस्वी होगा, उनके शिष्य उनसे अधिक तपस्वी होंगे। इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास करते करते इस कंगाल दुर्भिक्ष पीडित भारत के होनहार तपस्वी स्नातक उत्तरोत्तर मननिष्ठ, ऊर्ध्वरेता, कोपीनधारी, योगी मुनि होकर निकला करेंगे किन्तु, हुआ इसके बिल्कुल प्रतिकूल। तपस्या का अभ्यास करते करते स्नातक विलासप्रिय बन गये। कंगाल भारत का उद्धार करनेवाले पीत वस्त्रधारी कोपीन की तलाशमें फैशनेबिल बाबू बन बैठे। कठोर पृथ्वी पर चलने का अभ्यास करने से पगतल कठोर न बन कर उत्तरोत्तर कोमल बनते जा रहे हैं जिससे प्रतीत होता है कि कठोरता का अभ्यास न करके कठोरता का अभिनय किया गया है। गुरुकुल तपस्या के अभ्यासके शिक्षा केन्द्र नहीं अपितु तपस्या के अभिनय की नाट्यशालाएं हैं जहां बालकों को तपस्वि का स्वांग खेलना सिखया जाता है और सिखानेवाले हैं तपस्या से विरक्त किन्तु पैसे के लोभमें तपस्या का बलात् कीर्तन करने वाले 'वेतनभोगी' कुलगुरु।

दूध पीनेवाले मजनू

मजनू (पागल) बनना तो क्या कोई मजनू कहलाना भी पसंद नहीं करता किन्तु जब बाजार में मजनू (पागल) की मांग हुई, 'दूध उसे मिलेगा जो मजनू (पागल) हो' ऐसी घोषणा की गई तो दूध के लोभसे अनेक भले चंगे मजनू (पागल) का अभिनय करने लगे। खून देनेवाले (आत्म त्याग करने वाले) मजनू की मांग नहीं थी। यदि रक्त देनेवाले मजनू की मांग होती तो वास्तविक दीवानेका पता लगता। 'वैदिक धर्म के दीवानों को दूध मिलेगा' ऐसी घोषणा गुरुकुलों की ओर से की गई। दूध के रसिक, अनृत जीवन के पथिक, दुर्व्यसनग्रस्त गुरुकुलों की ओर महाशय बनकर

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह
...खी, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवें
रेज ...ना, अभि...
से च... मूल्य, कोई कड़ी कसौटी नहीं, ...
जोखिम का सामना नहीं, सुकुमार, सुखमय सम्पन्न जीवन के लोभमें कौन आभागा होगा जो अपने को 'वैदिक दीवाना' न घोषित कर दे। वहां शर्त भी तो केवल कह देने मात्रकी है। अतः 'कुल गुरुओं' में न त्याग था न तप और न श्रद्धा। उन्हें दूध मिलता है तो वे अपनेको त्याग, तप, सत्य-निष्ठा और श्रद्धा का वैदिक दीवाना बताते हैं।

पैसेको होंठ से पकड़ने वाला, कौडी कौडी पर जान देनेवाला काशी से 'वेदान्त' का प्रमाण पत्र प्राप्त करके अपनी जीवन चर्या के प्रतिकूल विद्यार्थी को ब्रह्म की श्रेष्ठता तथा जगत के मिथ्यापन का मिथ्या पाठ पढ़ाता है। पढ़नेवाला गुरुकी पोथी से गुरु की जीवनचर्या और आचरण को अधिक प्रामाणिक समझता है। वह अपने को 'कुल गुरु' का सपूत प्रमाणित करने के लिए 'कुलगुरु' के कृत्रिम, धनलोलुप जीवन से कहीं अधिक कृत्रिम, धनलोलुप जीवन बना लेता है किन्तु बाह्य रूप को ही देखने वाली जनता तथा अपनी कालिमा को छिपाने वाले 'कुलगुरु' उस अभाग स्नातक के दुर्भाग्य से सारा दोष उसके जन्मान्तरों के कुसंस्कारों पर पोत देते हैं। तनिक से वैर के प्रतिशोध के लिए जो धनलोलुप द्रोण द्रुपदका आधा राज्य छीन लेता है उसी द्रोण के लोभी गुरुकुल के स्नातक दुर्योधन के मस्तक में कलंक कालिमा पोतने को सब उन्मत्त हो जाते हैं यद्यपि उसी लोभी द्रोण के शिष्य, धर्मराज कहलाने वाले युधिष्ठिरने मुफ्त का माल बटोरने के लोभमें छोटे भाई की स्त्री को जू के दांव पर लगा दिया था।

जनता फल को देखती है कारण और कार्य को नहीं खोजती। आर्य जनता को जो आशायें गुरु कुलों से थीं उनको कुछ भी रूप देखा न पा कर जनता गुरुकुलों से विरक्त हो गई। केवल सैर सपाटे के लिए गुरुकुलों के आसपास घूम जाने

...नीता।

...त्रुटियों को ढूंढ ढूंढकर दूर किया करता किन्तु जिसे सत्य का सहारा लेकर सत्य के आ...रण द्वारा किसी भिन्न उद्देश्यको सिद्ध करना होता है वह युद्ध स्थल में भटकते हुए सैनिक की तरह अनेक विचित्र दांव खेला करता है।

कभी पत्थर की प्रतिमा में अलौकिक शक्तियें मानी जाती थीं किन्तु जब जनता पर यह कपट खुल गया तो उन प्रतिमाओंकी अलौकि चर्चा बन्द करके प्रतिमापूजा को दार्शनिक रूपसे प्रमाणित किया जाने लगा। कुछ दिनों बाद यह युक्ति-स्तम्भ भी धराशायी हो गया तब प्रतिमा पूजा के न्यून होने के कारण घटी हुई आय को बढ़ाकर संतुलन करने के लिए महन्तों ने दूकान व मकान बनाकर किरायेपर चढ़ाने शुरु कर दिये। भावुक जनता की कृतज्ञता प्राप्त करने के लिए होटलों को रूपान्तर अतिथिशाला, सेवाभाव आदि मार्ग निकाल लिए जिससे कृतज्ञ जनता से आर्थिक आय हो।

आर्य जनता के विरक्त होनेपर गुरुकुलों ने भी कार्य क्षेत्रमें अन्यत्र हाथ पांव मारने आरम्भ कर दिये। उन्होंने अपनी समस्त तर्क शक्ति को बटोर कर 'उदारता' की नवीन परिभाषा बना डाली। दूकानदार की नीति के अनुसार वे 'सर्व प्रिय' बनने की धुनमें लग गये। 'सर्व प्रियता' से उनका अभि प्राय जनता का प्रिय बनना न था अपितु प्रतिष्ठित, धनवान तथा विख्यात् पुरुषोंमें 'प्रिय' बनना था। आर्य जनता को शान्त रखने तथा दूसरों की आलोचनासे बचने के लिए उन्होंने 'उदारता' की परिभाषा बनाई, दूसरोंमें मिलकर उनमें प्रेम से आर्यत्व की स्थापना करना' मानो 'आर्यत्व' 'वैदिक जीवन' एक अत्यन्त सुकुमार स्वादु मिठाई है जिसे दयानन्दी साहित्य के थालमें चखते ही वह नव प्रतिष्ठित, धनवान, विख्यात अभ्यागत लीडर, लेखक वा वक्ता, जो कल तक तरह तरह के मांस रसों का स्वाद लेता था।

[illegible] ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बना हुआ था, [illegible] यंकर मुकदमों में हरिश्चन्द्र के सत्य का विश्लेषण कर रहा था, एक दम 'लहराती है खेती दयानन्द की' में दीक्षित होकर गुरुकुल व आर्य परिवार का अंग बन बैठेगा।

चायवालों को अपनी चाय की बिक्री से प्रेम है। गुरुकुल वालों को पैसे वालों की आवश्यकता है। चायवाले किसी विख्यात लीडर की आव भगत करके उससे चाय की प्रशंसा का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेते हैं ताकि उनकी चाय की प्रामाणिकता का विश्वास जनता में घर कर जावे। कुलपति भी विख्यात् वक्ता, लेखकों तथा प्रतिष्ठित लीडरों के सर्टीफिकेट के लिए लालायित रहते हैं ताकि जनतामें उनकी ख्याति हो। सभ्यता के नाते आमन्त्रित अभ्यागत, राजाओंके समान आदर और सत्कार पाकर गुरुकुलों की प्रार्थना स्वीकार करके कुछ लिखने व बोलनेको सहमत हो जाते हैं। अपने मेजवान के अतिथ्य के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए वे नाच घर से लौटकर ब्रह्मचर्य पर, मांस रस का स्वाद लेकर अहिंसा पर, डारविन की थ्योरीमें श्रद्धा रखते हुए भी वेदों की अपौरुषेयता पर ओजस्वी लेख, हृदयस्पर्शी व्याख्यान फटकार देते हैं, हम इसी को विधर्मियों के हृदयमें वैदिकधर्म की विजय मानलेते हैं। इस प्रकार दयानन्द और वैदिक धर्म का परलोक सुधर कर आर्य संस्कृति के गुरुकुलों का मुख उज्ज्वल और प्रख्यात हो जाता है।

आज वैदिक धर्म व गुरुकुल का माननीय मानदण्ड (Standard) इतना गिर गया है कि उसे ग्राहक प्रिय बनाने के लिए हम अवैदिक, असंयमी, दुर्व्यसनग्रस्त किन्तु प्रतिष्ठित, विख्यात व्यक्तियों के प्रमाण पत्र बटोरा करते हैं! आज भुवन भास्कर अपनी किरणों के लिए बिजली की बत्तियों से प्रमाण पत्र मांगकर अपने बडप्पन के गीत गाता [illegible] होता है कि शृगाल एक अजेय [illegible] और सिंह एक तुच्छ जन्तु। बिजलीका लट्टू एक अविराम ज्योति स्रोत है और सूर्य की किरण एक क्षीण मंद आभा!

आर्य जगत में जब इस रहस्य की आलोचना होती है तो उसे रुढिवाद के नाम से हेय प्रमाणित कर दिया जाता है। यम नियम तक रुढिवाद की विभूतियां बता दी जाती हैं। राग द्वेष से लिप्त रहकर भी हमारे वाक् शूर अपने को कर्मफल से विरक्त कहकर लीडरी के लिए सब कुछ कर डालने को ही वेदोक्त कर्म सिद्ध करने लग जाते हैं किन्तु जब गहराईमें उतरकर देखा जाता तो पता लगता है कि न हमें उदार नीति से अन्य सभ्यताभिमानानियों तथा भिन्न धर्मावलम्बियों में घुसकर प्रेम द्वारा वैदिक संस्कृति का बीज बोने की चाह थी और न उन्होंने वैदिक संस्कृति की श्रेष्ठता को स्वीकार किया था। न मीरजाफर को महोम्मद के एकेश्वर वाद के फैलाने की धुन थी न क्लाइव को ईसा के विश्व प्रेम को बांटने की और न जगत सेठ श्री अमीचन्द को 'अहिंसा परमोधर्म' के प्रचार की। भिन्न सभ्यताभिमानी, अलग अलग धर्मों के माननेवाले तीन देशी विदेशी किसी गुप्त स्वार्थ के लिए एकत्रित हुए थे।

हम असंतुष्ट रहते हुए भी यह कह कर संतोष कर लेते हैं कि कुछ न कुछ तो हो ही रहा है किन्तु यह हमारा दिवाला क्यों निकला? मांगते मांगते तो कुछ न कुछ पूंजी जमा होनी चाहिये थी, यह ऋण और कंगाली क्यों आगई? वैद्यके विष और मादक द्रव्यों ने हमारे रोगी की बची खुची शक्ती को भडका कर समाप्त करना आरम्भ कर दिया तो हम समझने लगे रोगी स्वास्थ्य लाभ कर रहा है किन्तु अब रोगी की आंख क्यों मिचती जा रही हैं?

आज हमारे रोगी की अबतब लगीहै। आज

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह ... सुखी, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवें ... रोगों... अपूर्व शक्ति को उत्तेजित ... कर दिया था, किन्तु वह चेतना जीवन शक्ति का अन्तिम सर्वस्व व्यय थी।

वह मौलिक उद्देश्य, जिसके कारण आर्य जनता आकर्षित हुई थी, नियमावली की सम्पत्ति बना रहा और कर्णधारों ने 'विचार स्वतन्त्रता' तथा 'आध्यात्मिक उदारता' का आश्रय लेकर मीर-जाफर, क्लाइव तथा जगतसेठ के स्वार्थों के समान अपने कार्यों की जोड तोड लगानी आरम्भ कर दी। नियमावली का मौलिक उद्देश्य कार्य क्षेत्रमें अवतीर्ण ही नहीं होने पाया फिर उसकी पूर्ति किस प्रकार मूर्त होती। जनता के असंतोषका उत्तर दिया गया 'ब्रह्मचारियों की आत्मा के जन्मान्तर के कुसंस्कारों ने मनोवाञ्छित बल नहीं दिया, योग्य कार्य कर्ता नहीं मिले, हमें

किंतु नामधारी गुरुकुलों से निराश होकर जिन्होंने यह समय लिया है कि 'कुसंस्कारों से लिप्त मलीन आत्माएं ही दुर्भाग्यसे गुरुकुलमें प्रविष्ट की जाती हैं जो गुरुकुलों में भी संस्कृत नहीं हो सकतीं, गुरुकुल इस बीसवीं शताब्दीमें एक अव्यवहारिक माध्यम है जो अनुपयुक्त है, विदेशी राज्य का कठोर विधान गुरुकुल उपनिवेशों में निमन्त्रण कर रहा है, जिसके कारण प्राकृत स्नातक बनाये ही नहीं जा सकते' उनसे हमारा अनुरोध है कि वे तनिक वैदिक धर्म के लक्षणों, प्राकृत जीवन की विभूति के आधार पर अपने शिक्षाकेंद्रों का आंतरिक निरीक्षण करें तो उन्हें पता लगेगा कि उनके आर्य जगतमें अभी तक गुरुकुल का आरम्भ भी नहीं हुआ।

अध्यापनकी शैली।

[ले०- श्री. पं. जयदेवशर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ]

वर्तमान अध्यापन प्रणालीसे शिक्षित जन यह सुलभतया कल्पनाही नहीं कर सकते कि प्राचीन ऋषि जन अपने गुरुकुलोंमें किस प्रकारसे छात्रोंको पढाते थे। स्कूल, विद्यालय वा क्लासरूम की कल्पना आतेही वर्तमानके अध्यापक और विद्यार्थी, कुर्सी और मेज, बैञ्च और उनपर पैर लटकाकर बैठनेवाले स्कूल बायज (School boys) की कल्पनाके अतिरिक्त दूसरी कल्पनाही नहीं। और जो भी नया स्कूल, कालिज, या विद्यालय खुलता है वह भी इसी परिपाटीपर नानाप्रकारके उपकरण (Furniture) खोज करता है। यह एक भारी बोझा शिक्षादेवी की पीठपर लदाही रहता है।

(२)

प्राचीन ऋषिजन गुरु और शिष्यके अध्यापन-अध्ययन कालमें किस स्थितिकी कल्पना करते थे इस सम्बन्धमें उनके विधि-विधान क्या हैं वह भी बहुत दर्शनीय हैं।

आर्यग्रंथोंमें स्थान स्थानपर उसका आभास मिलता है। इस लेखमें हम उसीपर प्रकाश डालेंगे।

शौनक ऋषिप्रणीत ऋग्वेद प्रतिशाख्य (१५पटल) में गुरुशिष्यके अध्ययन-अध्यापन की शैलीपर इस प्रकारसे विधान किया है—

(१) पारायणं वर्जयेह ब्रह्मचारी
गुरुः शिष्येभ्यस्तदनुव्रतेभ्यः।
अध्यासीनो दिशम् एकां प्रशस्तां
प्राचीम् उदीचीम् अपराजितां वा॥

गुरु स्वयं ब्रह्मचारी होकर अपने ही अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करनेवाले शिष्यों को पूर्व

...पोस विचार और उ...

...स्कूल-मुद्रित चित्रमाला...

...का काय करें।

(२) एकः श्रोता दक्षिणतो निषीदेद्, द्वौ वा। एक अथवा दो श्रवण करनेवाले शिष्य दक्षिणमें नीचे आसन पर बैठें।

भूयांसस्तु यथाऽवकाशम्॥

इसी प्रकार बहुत से विद्यार्थी भी बैठ सकते हैं, यदि बैठने का स्थान पर्याप्त हो।

अब विचार उठता है कि गुरु और शिष्य दोनोंमें से प्रथम अपना मुंह कौन खोले? वर्तमान शिक्षा के वातावरण के शिक्षित तो कहेंगे कि टीचर लडकों को आज्ञा दे कि-खोलो पुस्तक पढो पाठ। फिर स्वयं ही पढ और समझावें आदि। परंतु आर्षक्रम ऐसा नहीं है।

शौनक ऋषि कहते हैं—

तेऽधीहि भोः इत्यभिचोदयन्ति
गुरुं शिष्या उपसंगृह्य सर्वे॥

वे सब शिष्यगण प्रथम गुरुका चरणस्पर्श कर के प्रार्थना करते हैं—

'अधीहि भोः'

'भगवन् पढाइये'

आजकल की शिक्षा के वातावरणमें गुरु के चरणस्पर्श करनेवाला विनय तो गधेके सिरपरसे सींगके समान सर्वथा ही उठ गया है। या तो लठमार 'नमस्ते' या दण्डवत सीधा खडा हो जाना यह देखावा मात्र रह गया है। विनयका तो विद्यार्थी-जीवनसे लोप होता जा रहा है। चाहे मानवजीवन की सहज-स्वभावसिद्ध कृतज्ञता और विनयका लोप तो नहीं हो सकता, तो भी उसपर विशेष प्रेम, विनय और नम्रता, शीलका दैनिक परिष्कार होना रुक गया है। आन्तरिक सहृदय-प्रेमका कोई स्थान नहीं रहा, उस सम्बन्धको भी न बांधनेका उपाय रह गया है और न वे परस्पर अपनेको बंधा अनुभव करते हैं। वे तो स्कूल कालिजके फीस, वेतन और डिसिप्लिनसे बंधते हैं! उसमे प्रेमका ...वेतन ... और विद्यार्थीको जुरमाना ये दोनों अर्थद...वा हैं। अस्तु।

विद्यार्थी जनोंके प्रार्थना करनेपर गुरुमहानुभाव किस प्रकार प्रारम्भ करें इस सम्बन्धमें शौनक कहते हैं—

'स ओ३म् इति प्रस्वरति त्रिमात्रः।' गुरु महोदय उत्तरमें 'ओ३म्' इस प्रकार त्रिमात्रिक ओंकारसे अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। वह ओंकार—

प्रस्वारस्थाने स भवत्युदात्तः
चतुर्मात्रो वाऽर्धपूर्वोऽनुदात्तः।
षण्मात्रो वा भवति द्विस्वरः सन्।

प्रस्वारस्थानमें वह ओंकार, उदात्त होता है, या उसका पूर्व आधा स्वर अनुदात्त होकर वह चतुर्मात्रिक होता है। अथवा उसमें दो स्वर होकर छः मात्रावाला हो। अर्थात् उस समय 'ओ३म्' बोला जाय। या—

'अ ओ४म्' उच्चारण किया जाय या 'ओ२ ओ२ ओ२म्' ऐसा ६ मात्रावाला दो स्वरयुक्त उच्चारण किया जावे।

इस ओंकार के कहने का तात्पर्य क्या है—शौनक बतलाते हैं—

अध्येतुरध्यापयितुश्च नित्यं
स्वर्गद्वारं ब्रह्म वरिष्ठमेतत्
मुखं स्वाध्यायस्य भवेत्।

यह 'ओ३म्' सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्म परमेश्वर का नाम, पढने और पढानेवाले दोनों के लिये स्वर्ग का द्वार है। यही स्वाध्याय का भी मुख अर्थात् मङ्गल सूचक प्रारंभिक पद होना उचित है।

तद् ब्रह्म।

न चैतत् संदध्यात् स्वाध्यायगतं परेण॥

इस ओंकार की आगे उच्चारण करने योग्य मन्त्र के पादसे संधि न मिलावें। यज्ञकर्ममें जो मन्त्र के प्रारंभमें 'ओं' का उच्चारण किया जाता है, उसके मंत्र के आदि अक्षरसे संधि करके बोला

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह ... सुखी, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवे ... ला, अभि ... और ...

इस के पश्चात् गुरु-

प्रचोदितोऽभिक्रान्तं यथास्य
क्रमः परस्ताद् विहितस्तथैव ॥

इस प्रकार प्रेरित होकर गुरु, जैसा स्वाध्याय का क्रम आगे कहा है, उसी प्रकार स्वाध्याय कराना प्रारंभ करता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या गुरु कहता जावे, शिष्य सुनता जावे? या परस्पर और भी कोई स्वीकृति आदि का संकेत आवश्यक है कि नहीं? इस संबंधमें शौनक कहते हैं कि-

अभिक्रांते द्विपदे वाऽधिके वा
पूर्वं पदं प्रथमः प्राह शिष्यः ॥

गुरु जब दो पद या दो से अधिक पद कह ले तो उसके अभ्यासार्थ वही वेदवाक्य शिष्यों को दोहराना चाहिये, परन्तु उसका प्रथम पद मुख्य शिष्य कहे और शेष वाक्य शेष शिष्य भी दोहरावें।

जिस वेद के पद का निर्वचन करना आवश्यक हो वहाँ गुरु को ठहर जाना आवश्यक है। शिष्यों का ध्यान खेंचने के लिये उसे कुछ संबोधन भी करना आवश्यक है। इसके लिये शौनकजीने यह रीति लिखी है-

निर्वाच्ये तु भो३ इति चोदना स्यात्
निरुक्तं ओं भोः इति चाभ्यनुज्ञा ॥

यदि गुरु चाहता है कि वेद के पदका निर्वचन शिष्य करे तो गुरु शिष्य को 'भोः' ऐसा प्रेरित करे। जब शिष्य उसका निर्वचन कर चुके तो स्वीकृति दर्शाने के लिये 'ओम् भोः' ऐसा कहे।

'भोः' इस पद में कितना आदरभाव है यह समझना चाहिये। हिंदी में 'आप' शब्द का प्रयोग आदरणीय पुरुषके लिये किया जाता है। संस्कृत में 'भवान्' शब्द का प्रयोग होता है। सामान्यतः 'त्वं' (तू) का प्रयोग होता है, परंतु 'तूंकार।' में ... तर है। यह व्यवहा... बतलाता है कि ऐसा पारस्परिक आदर भाव गुरु शिष्य में पहले ही से स्थापित ह... चाहिये।

इस प्रकार गुरु—

दक्षिणाय प्रथमं प्रश्नम् आह ॥

'दक्षिण में बैठे शिष्य के प्रति गुरु प्रथम प्रश्न का उपदेश करता है।'

प्रदक्षिणं तत ऊर्ध्वं परीयुः ।

'इसी प्रकार दक्षिण में बैठकर उसके अनन्तर भी अन्य अधिक संख्या के शिष्य भी गुरुको घेर कर बैठे।' और वेदके प्रश्न अर्थात् नियत पाठका अभ्यास करें। अंग्रेजीमें लैसन (Lesson) या पाठ प्राचीन कालमें 'प्रश्न' कहाता था।

प्रश्नस्तृचः । पंक्तिषु तु द्वौ वा । द्वे च पंक्ते रधिकाक्षरेषु ॥ एका च सूक्तम् ।

'तीन ऋचाओंका एक प्रश्न कहाता है। पंक्ति छन्दकी ऋचाओंमें दो ऋचाका एक छन्द होता है इस लिये दो दो पंक्तिका एक प्रश्न होता है। अधिक अक्षर हों तो एकही ऋचाका सूक्त वा प्रश्न हो जाता है।

अध्याय आदि समाप्त हो या पाठ समाप्त हो तो उसका शिष्टाचार यह है-

एवं सर्वे प्रश्नशोऽध्यायमुक्त्वा उपसंगृह्य-तिसृष्टा यथार्थं ।

इस प्रकार सब शिष्यगण प्रश्न प्रश्न करके अध्याय कहें और अनन्तर गुरुका चरणस्पर्श करके छुट्टी पावें और अपने अपने कार्यमें लग जावें।

प्रारम्भ में भी गुरुके चरणस्पर्श और समाप्ति में भी चरणस्पर्श यह एक बडाही उत्तम शिष्टाचार था। शिष्यका अर्थ ही है शासन अर्थात् गुरुपदेश प्राप्त करनेवाला शिष्य और अनुशासन करनेवाला गुरु। इन दोनोंके बीचमें जो परस्परका शिष्ट आचार है वही शिष्टाचार है। जिसमें बडे और छोटे दोनों सुव्यवस्था और प्रेममें बर्ताव करें और

...र पोस [illegible] और उ...

...स्त... [illegible]

अध्यायके अन्तमें—

भो३ इत्यर्धर्चे गुरुणोक्त आह शिष्य ओं भो३ इत्युचितामृचं च ॥

'अन्तिम आधी ऋचाको जब गुरु कह चुकें तो 'भोः ३' इस प्रकार सम्बोधन करें। और शिष्य भी 'ओं भो३' इस प्रकार कहकर अंतमें उचित निश्चित की हुई कोई ऋचा पढकर पाठ समाप्त करे। यह निश्चित ऋचा ऋग्वेदियोंमें यह है- 'नमो ब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये' इसी प्रकार अन्य भी भिन्न ऋचाएं समाप्ति पर कहने योग्य मिलती हैं। प्रायः संप्रदायों में जो पूर्वमंगलार्थ ऋचाका पाठ है, वही अन्तमें भी पाठ किया जाता है।

... पारायण प्रवचनं प्रशस्तं ॥

'इसी प्रकार के शिष्टाचार का पालन वेदपारायण, वेदप्रवचन के अवसर पर भी प्रत्येक संहिता में करना चाहिए।'

इसी प्रकारके परस्पर प्रेम वंदन से बंधे शिष्टाचारकी श्रृंखलासे बंध कर गुरुशिष्योंमें परस्पर के व्युत्क्रम तथा अपरोतगी भाव नहीं हुआ करते थे। और इसी शिष्टाचारसे वैदिक संस्कृतिकी अभीतक रक्षा हुई है। आर्य संस्कृतिकी रक्षाके लिये हमें पुनः इसी प्रकारके शिष्टाचारका क्रम अपने शिक्षणालयोंमें प्रचलित करना चाहिये।

वानप्रस्थ और पेन्शन।

(लेखक- श्री० वसिष्ठजी)

देशी अथवा विदेशी भाषा तथा लिपि के बोध को शिक्षा नहीं कहा जा सकता और ना ही गणित आदि का ज्ञान शिक्षा कहला सकता है। इस प्रकार का लिपि तथा भाषा बोध तो विद्यार्थी-ट्यूटरों (Student-tutors) द्वारा भी प्राप्त कर लिया जाता है। हममें अनेक स्वयं या अपने बालकों के लिए सस्ते बाजारू गरीब विद्यार्थियों का अध्यापक-रूप से क्रय करके अंगरेजी भाषा, गणित आदि की कला का प्रबन्ध उसी प्रकार कर लिया करते हैं जिस प्रकार किसी शिल्पी को नौकर रखकर उसकी कला का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

'किस भाषा के पढने से सुकुमार जीवन की पूर्ति के लिए अच्छा वेतन मिल सकेगा? बाजार में किन किन विषयों के पंडितों की मांग है?' आदि बातें बाजारू सौदे हैं। वणिक बाजार में मनुष्योपयोगी जड वस्तुओं को बेचता है और हम अपने आपको। तभी तो हम अपनी संतान को सस्ते महंगे विद्यार्थी ट्यूटरों, बाजारू व स्कूली अध्यापकों द्वारा, बाजारमें बिकने लायक कांट छांट करा कर मंडी में विक्रयार्थ भेज देते हैं।

पेट तो पशु भी पाल लेते हैं, किन्तु हम पेट पालने के लिए नहीं प्रत्युत कृत्रिम तथा विपाक वासना की पूर्तिके साधन संग्रह करनेके लिए अपनेको बिकने योग्य तैयार करते हैं ताकि पैसे की मंडीमें हम अपने को महंगसे महंगा बेच सकें।

विद्यार्थी तथा अध्यापक ट्यूटरों अथवा अध्यापकोंको पैसे की जरुरत थी। उन्होंने शब्द' को हमारे हाथ बेच दिया और हमने उस 'शब्द भण्डार' को बाजारमें लाभसहित बेचनेके लिए क्रय कर लिया।

बाजार पराये हाथमें हैं और बिकना हमारे हाथमें। हमने अपने को बेचना जरूर है क्यों कि इसी विक्रयके लिए हमने अपने को कांट छांट कर बाजारमें विक्रय योग्य तैयार किया है। आज मंडी

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह [illegible]
[illegible], स्वस्थ व दीर्घजीवी होवें [illegible]
बनाना, [illegible] दते हैं। इस [illegible]
(मुसलमान) सौदागर के हाथमें थी तब हम अपने को उर्दू-फारसी खिलौना बनाते थे। आज सौदागरके बदल जाने पर वह उर्दू-फारसी का खिलौना मिट्टीके टूटे घड़ेके भाव भी नहीं बिकता। यदि कलको अंगरेजी सौदागर बदलकर चीनी सौदागर बाजार पर अधिकार कर ले तो हम अंगरेजी भाषासे अलंकृत "अंगरेजी खिलौने" इस चीनी बाजारके घूरे पर पड़े रहेंगे।

इस प्रकार अपनी अप्राकृत वासनाओं की पूर्तिके लिये अपनेको बाजारू मांगके योग्य बनाकर विनिमय करना एक प्रकारसे वेश्यावृत्ति ही है। यह शिक्षा नहीं, यद्यपि इसे शिक्षा ही माना जाता है।

इस अनुदार दृष्टिकोणमें भी आज हम विक्रयार्थ खिलौनों का इतना बाहुल्य बाजारमें हो गया है कि हम अपने को बेचकर भी उस अधम विचारके विषयी जीवनका आंशिक भाग भी प्राप्त नहीं कर सकते।

शिक्षा क्या है ?

शिक्षा एक ऐसा अनुभवगम्य रहस्य है जो मानवजीवन को अन्तराय-मुक्त कर देता है।

हम जीने के लिये खाते हैं किन्तु खाने के लिए ही नहीं जीते हैं। हम जीते हैं कर्म करने के लिए। वह कर्म है काया की, जीवन की प्राकृत चर्या और इसी का नाम जीवनचर्या है। जीवनचर्या का जानना ही 'शिक्षा' है। जीवनचर्या को न बाजार की आवश्यकता है और न ग्राहककी। वह आरम्भ से स्वावलम्बन चाहती है। उस जीवनचर्या को केवल वानप्रस्थ ही सिखा सकता है, क्यों कि उसने बनकर बनाना सीखा है और बना भी चुका है। इस विषय पर 'वैदिक धर्म' के मई मास के अंक में प्रकाशित 'ब्रह्मचारीका प्राकृत जीवन' शीर्षक लेखमें पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

'वन' शब्द के अनेक अर्थ होनेपर भी लोकमें [illegible] वृक्षमूलनि[illegible] यह स्पष्ट कर दिया कि वानप्रस्थ 'वनवासी' को ही कहा जा सकता है।

पुत्र कलत्रवाले महन्तोंके चरित्रोंको देखकर, जो परिव्राजक का परिधान व नाम उपयोगमें लाते हैं, हम मनुके राज्य और तत्कालीन आर्ष विधानकी दुहाई दिया करते हैं, किन्तु हम वनवासी न बनते हुए भी 'वानप्रस्थ' उपाधिका दुरुपयोग अपने पेन्शन जीवनके साथ निर्दयतासे कर लिया करते हैं। क्या मनुका नीतिविधान पुत्रकलत्रवाले महन्तों को दण्ड देकर, विशेषताशून्य हमारे आश्रमोंके लिए हमारे द्वारा 'वानप्रस्थ' विशेषणोंका अनुचित उपयोग होनेपर हमको 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नाविक समझकर क्षमा प्रदान कर सकता था?

मनुष्यजीवनके तृतीय भाग अर्थात् विश्रामकालको इङ्गित करनेके लिए हमारे साहित्यमें अनेक उपयुक्त शब्द मिल सकते हैं या बनाये जा सकते हैं। बुढापेमें 'जरा आराम' से रहनेके लिए वृक्ष-विहीन कोठी बंगलोंके समान गृहसमुदायको 'वानप्रस्थ आश्रम' घोषित करके 'वानप्रस्थ' शब्दके साथ प्रतारणा करना है क्योंकि जब वननिवास ही नहीं तब 'वानप्रस्थ' कैसा? ऐसे आश्रमों के लिए तो 'विश्राम आश्रम' या 'पेन्शनर हाउस' प्रभृति शब्द ही उपयुक्त हो सकते हैं।

अतः हमारे 'वानप्रस्थ आश्रम' उतने ही शब्दार्थानुकूल तथा वैदिक हैं जितना महन्तों व नांगों की संपत्तिशाली जीवन व प्रतिमापूजा। केवल सांप्रदायिक मोहके कारण हम उन्हें हेय और इन्हें श्रेय मानते हैं।

किंतु पौराणिककालीन वेदों में मांसपरक अर्थ की प्रथा के समान आज वयोवृद्ध सुकुमार बाबूओंके सुभीते व मनोरंजन के लिए 'वृक्षमूलनिकेतनाः' के अलंकारिक अर्थ किये जाते लगे हैं। अब रूपक की शरण लेकर 'वृक्ष-मूल' का अर्थ

...र पोस [illegible] और उस [illegible]
...स्त [illegible]
...श्रम, विलासमय, सुकुमार [illegible]
...ज के सहारे केवल वेदपाठ करके अपनेको 'वानप्रस्थ' परिभाषित कर सकें।

वानप्रस्थ क्या है?

बालक को शारीरिक, मानसिक एवं मस्तिष्क-संबंधी परिवर्धन, परिपोषण तथा परिपक्वता प्राप्त करनी थी। इन सब के लिए आय की आवश्यकता थी। उसके पास व्यय के लिए-देने के लिए कुछ नहीं था। वह सब ओरसे अपने शरीर, मन, मस्तिष्क के लिए 'आयात' ही चाहता था। यह उसके विकासकाल की प्राकृत मांग थी।

परिपक्व होकर उस वयोवृद्ध बालक (पुरुष) को आविष्कार, उत्पत्ति करनी थी। अब उसे अपने समान वस्तु को अपने ही अंगों से प्रथक्-करण करके बनाना था, इसलिए उसे इसकाल में दो कार्यों के लिए पुष्ट आहारादि की आवश्यकता थी। बालकपन में परिवर्धन व परिपोषण था, तो यौवन में संरक्षण व उत्पत्ति। दोनों अवस्थाओं में अग्नि तीव्र थी, रस धातु प्रचुरता से बन सकते थे, अतः खूब पुष्ट, स्निग्ध भोजन प्रचुरता से वांच्छनीय था।

अब वृद्धावस्था के आने पर जठराग्नि अन्यान्य इंद्रियों व अंगों के समान शिथिल होने लगी, परिवर्धन का कार्य चिरकाल पूर्व समाप्त हो चुका। उत्पत्ति के कार्य में अशक्यता हो गई। 'आयात' किस लिए किया जावे? न अग्नि ही पुष्ट अन्न को अधिक मात्रामें पचा सकता है, न परिवर्धन के लिए ही रस, रक्त, धातु की आवश्यकता है और न अब उत्पत्ति के कार्य में व्यय होनेवाले रसरक्तादि की स्थानपूर्ति के लिए आवश्यक नवीन रस रक्त के लिए पुष्ट भोजन की आवश्यकता है। अतः प्राकृत नियम ही नहीं चाहता कि वृद्धावस्था में शरीर को पुष्ट, वृष्य, स्निग्ध भोजन दिया जाय क्योंकि शरीर को न उसकी आवश्यकता है और न वह (शरीर) उसको पचाने में समर्थ है। यौवनकाल में पुरुष [illegible] ... सब प्रकार से [illegible] शक्ति हो जाने के कारण उतना बडा दीर्घकालिक, पूर्ण-श्रम अपेक्षित कार्य नहीं कर सकता, अतः आर्थिक न्याय की दृष्टि से भी वह वृद्ध अब राष्ट्रकी, प्रकृति की सम्पत्ति का उतना भाग अपने लिए व्यय नहीं कर सकता जितना वह अपने यौवन कालमें करने का अधिकारी था, जब वह राष्ट्र के लिए उत्पत्ति, संरक्षण, पालन पोषण का कार्य कर रहा था।

प्राकृतिक नियम व आर्थिक न्याय इस बात की अनुमति ही नहीं देते कि वानप्रस्थ अपनी वृद्धावस्थामें पुष्ट, वृष्य व स्निग्ध भोजन का अल्प मात्रा में तथा अन्य भोजनों का प्रचुर मात्रा में उपयोग कर सके। ४ अंगुल की रसना के व्यभिचार के लिए अनियमित रूपसे भोजन करते रहना राष्ट्र के धन की चोरी तथा प्राकृतिक नियम के साथ अत्याचार है। क्यों कि वानप्रस्थ स्वाद के लिए खाकर जितने पुष्ट, स्निग्ध व वृष्य भोजन का विष्ठा बना डालता है उतने भोजन के अभाव से राष्ट्रके अनेक दुध-मुंहे बच्चे परिवर्धन, परिपोषण व परिपक्वता से वंचित रह जाते हैं। इसी प्रकार मकान, वस्त्रादि अन्य वस्तुएं हैं जिनकी आवश्यकता-वानप्रस्थको अत्यल्प होती है।

आवश्यकता और योग्यता (सेवा-कार्य) ही किसी व्यक्ति के अधिकार की मात्रा निर्धारित कर सकती हैं। प्राकृतिक नियम आवश्यकता के अनुसार तथा आर्थिक न्याय योग्यता के (सेवा-कार्य) के अनुसार संपत्ति का अधिकार देता है। आर्थिक न्यायपर राष्ट्र तथा प्राकृतिक नियमपर जीवन अवलम्बित है। इसीलिए वानप्रस्थका भोजन, वस्त्र व निवास सब ऐसा रखा गया है जो शरीरके लिए अपव्ययी तथा राष्ट्र-संपत्तिपर भारस्वरूप न हो और वह है मनु के शब्दों में:—

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह [illegible]
[illegible]श्री, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवें [illegible]
'वेदखा, अभि[illegible] नाचे' करना पड[illegible] औ[illegible]
है। यदि वानप्रस्थ खूब पुष्ट, स्निग्ध भोजन खा कर पचा सकता है शरीर पुष्ट व श्रम योग्य है तो वह पिछले कार्यक्षेत्र "गृहस्थ" को क्यों छोड आया जहां वह राष्ट्र के लिए उत्पत्ति व संरक्षण का कार्य करता?

अतः आधुनिक वानप्रस्थ "वानप्रस्थ आश्रम" नामक रम्य नगरोंमें स्वर्गारोहणके लिए सुशोभित होते हैं किन्तु वे यहां वेदकी वाणी में 'केवलादी' बनकर राष्ट्र तथा प्रकृतिकी चोरी करके 'केवलाघो भवति केवलादी' के समान परलोक बना पाते हैं।

पेन्शन।

पेन्शन अंगरेजी भाषा का शब्द है जो लेटिन भाषाके Pensionem शब्दसे बना है, जिसका अर्थ है Payment, to pay, अर्थात् किसी ऋण आदि का चुकाना वा किसी वस्तु वा कार्य के बदलेमें किसी को कुछ देना। कार्य करलेनेपर कार्यकर्ता को श्रमका मूल्य देना ही पेन्शन है, किन्तु आज कल इस शब्द का उपयोग होता है कर्मचारी की वृद्धावस्थामें 'निर्वाहार्थ सहायता' के लिए।

वृद्धावस्था में शरीर थोडा काम कर सकता है और थोडा ही निर्वाह चाहता है किन्तु पेन्शन उस वृद्ध शरीर से थोडा काम भी न लेकर उसको राष्ट्र के सिरका व्यर्थ बोझा बनाकर लाद देती है। हम प्राकृत विधान में देखते हैं कि शरीर उसी अंगको भोजन देता है जो उसका कुछ न कुछ कार्य करता है। जो अंग कार्य करना छोड देता है शरीर उसे भोजन देना बंद कर देता है। यदि कोई अंग रोगादि के कारण अपनी शक्तिको खो देता है, तो शरीर-द्वारा उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाता है। यदि भुजा को बांधकर एक लम्बे कालके लिए छोड दिया जावे ताकि वह कोई कार्य कर ही न सके तो पता लगेगा कि शरीरने बाहु को भोजन देना बन्द

[illegible] यौवनमें जैसा कार्य किया था वैसा उसका वेतन पाया। विशेष दक्षताके कारण वेतन-वृद्धि मिली। फिर वृद्धावस्थामें यह पेन्शन कैसी? बिना कार्य कराये निर्वाह-प्रदान क्यों? थोडा निर्वाह दिया जाता है तो उससे थोडा काम भी लिया जाना चाहिये। यौवनमें पैरोंने बराबर शरीरका बोझा ढोया किन्तु वे वृद्धावस्थामें भी उसे कुछ कम दूर ले हो जाते हैं। वृद्धावस्थामें पैर निर्बल हो जाते हैं बिल्कुल अशक्त नहीं हो जाते, अतः वे अल्प निर्वाह लेकर अल्प सेवा करनेके लिए तैयार रहते हैं। इसी प्रकार अन्य अंगों का कार्य है।

किंतु पेन्शन लेनेवाला व्यक्ति कर्म-शील सदस्य की स्थिति से राष्ट्रसे पृथक् हो चुका मर चुका। राष्ट्र के कार्यकर्ता, कमाऊ सदस्य की कमी हो चुकी किंतु व्यय करनेवाले, खाऊ सदस्य के रूप में वह राष्ट्र की छातीपर भारस्वरूप बना हुआ है ही। इस प्रकार पेन्शनर व्यक्ति राष्ट्र के कमाऊ भाग से पृथक् होकर राष्ट्र को खाता है। वह मृत होकर भी राष्ट्रको खानेवाला प्रेत है।

यह दूसरी बात है कि अपनी दया से पेन्शनर महानुभाव किसी सार्वजनिक कार्य को आनरेरी रूप से करके समाज के सिर पर यदा कदा दो चार लात अहसान की लाद दिया करे, किंतु वास्तव में राष्ट्र के हाड मांस का एक बहुत बडा भाग अपने भक्षण के लिए सुरक्षित करके वह राष्ट्र की सहायता करनेका उत्तरदायी नहीं रहा अपितु भक्षण करने का अधिकारी बन बैठा है। क्या ऐसा अन्यायपूर्ण विचित्र विधान हम अपने इस शरीर-राष्ट्र में पाते हैं? क्या शरीर-राष्ट्र के नेत्र पेन्शन रूप में कुछ आहार अपने लिए निश्चित वा सुरक्षित करके वृद्धावस्था में शरीर को 'अंधा' भटकनेके लिए छोड देते हैं? और क्या शरीर इस पेन्शन विधान को स्वीकार कर लेता है? क्या वह चिकित्सा से नेत्र की

…ए पोस ने और उन्… …कल-सूत्र… चित्रमाला

तापस जीवन ।

यदि मनुष्य-जीवन इन्द्रियों के भोगों, रसना की चखौतियों के लिये नहीं है, तो उसे वृद्धावस्था में किस मात्रा तक तपस्वी (द्वन्द्व-सहन-शील) बनने की आवश्यकता है इसे मनुमहाराज गृहस्थ-सुकुमार जीवन की सहन-शक्ति के अनुसार क्रमशः निर्धारित करते हैं-

(१) अप्रयत्नः सुखार्थेषु
(२) धराशयः
(३) वृक्ष-मूल-निकेतनः

सुख-संग्रह में कदाचित् भी प्रयत्नशील न हो-नाही अनेक सुखों का अभाव करके द्वन्द्व-सहन शील बनाता चला जायगा।

भूमिशयन का अभ्यास स्वाधीनताके लिये परमोत्तम है। वन के अनेक प्रकार के तृण, जिनमें धान (चावल) का तृण पुआल मुख्य है, शैयाको सुखद बनाने में रुई से किसी प्रकार कम नहीं। केवल कृत्रिम तथा व्यभिचारी नागरिक सभ्यता की दृष्टि में यह व्यवस्था 'अभागापन' व 'जंगलीपन' है।

वृक्ष के मूल में बनी हुई पर्णकुटि से श्रेयस् कौन सा स्थान हो सकता है जो आवश्यकताओं के लिए सर्वांगपूर्ण और व्यय में न्यूनतम हो? कला की पूर्ण सफलता इसी में हो सकती है कि 'आवश्यकता' की पूर्ति में कोई बात रह न जावे और केवल 'सजावट' के लिए उस पर व्यय का कोई बिंदु तक न पडा हो। न्यूनतम व्यय में अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति का नाम ही सात्विक सौंदर्य, कला की पूर्णता है। और इसी आर्थिक महत्व, कलाश्रेष्ठता के कारण अतीत काल के कोविद आरण्य-कुटीरोंके सौंदर्यपर मोहित हुआ करते थे। उन्हें बरबस किसी बात को आदर्श बनानेका दुर्व्यसन न था और ना ही उस प्राचीन भारत में, आधुनिक भारत की तरह, जहां छाछ

…होने 'शाकमूलफलन वा' के अकिंचन जी… …गीत गाये हों।

धनसंग्रह ।

राष्ट्रके लिए तो धनसंग्रह किया जाना युक्ति-युक्त है किन्तु अपने लिए धनसंग्रह करना राष्ट्र से पृथक् होना है। हमारे शरीरमें जो अंग, विकार-संग्रह करके रसौली आदि अधिक अंग बना डालता है वह शरीर राष्ट्र के लिए कुरूपता का कलंक तथा सम्बन्धी अंग के लिए भारस्वरूप हो जाता है। नेत्र जब आहारमें से अनुचित संग्रह कर लेता है अथवा जब फालतू आहार नेत्रकोषमें संग्रह हो जाता है तो वह संग्रह मोतिया बिन्दु प्रभृति रोग बनकर दृष्टिको रोक लेता है। तब शरीर-राष्ट्र की तरफ से यह योजना होती है कि नेत्र का शल्य-कर्म कराकर उसे पुनः कार्य पर लगाया जावे ताकि शरीर से आहार लेनेवाला पेन्शनर नेत्र शरीर का कर्म-शील सदस्य भी हो जावे। अतः मानवराष्ट्रमें भी किसी व्यक्ति का धन-संग्रह करना नेत्र के मोतिया बिन्दु के समान है जो शल्य-कर्म अपेक्षित है।

हमारा राष्ट्र ।

वास्तवमें हमारा कोई राष्ट्र नहीं है इसीलिए हमारी किसी को आवश्यकता नहीं, यद्यपि हमारा समुदायही इस समाज के अस्तित्व को बनाये हुए है।

जब शरीर के प्राकृत दांतों की उपेक्षा होने लगती है, झट पुराने दांत को उखाड कर नया कृत्रिम दांत लगा दिया जाता है और फिर कृत्रिम दांत के स्थान को दूसरा नया कृत्रिम दांत घेर लेता है तब दांत का कोई मूल्य नहीं रहता। शरीर उसे जब चाहे इधर उधर कर सकता है। इसी प्रकार अन्य अंगों की भी कल्पना की जा सकती है, यदि उनके प्रतिनिधि आविष्कृत किये

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह

सुखी, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवे

गीता

व [illegible] था, अभि[illegible] और [illegible] ताजा [illegible] के लिए शरीर नवजीवन (भोजन) देता था। कर्तव्य उनका स्वभाव था। वे भोजन के लिए कार्य न करते थे, भोजन तो उन्हें कार्य-क्षम बनाये रखनेके लिए मिलता था। भोजन न मिलनेपर भी अंग तब तक मंद गतिसे कार्य करता था जब-तक उसमें (अंगमें) जीवन रहता था। मृत्यु (शक्ति-शून्यता) ही कर्तव्यपालनको समाप्त कर सकती थी। किन्तु अब शरीर बाजारू अंग क्रय कर लेता है। शरीरराष्ट्रके अंग तो जड हैं, किन्तु हमारे इस कृत्रिम विधानवाले मानव-राष्ट्रके अंग चेतन हैं। वे काम करते हैं तो राष्ट्र नौकरी देता है। काम न कर सकने पर वे भूखों मरनेको छोड दिये जाते हैं। राष्ट्र निर्वाह देता है तो हम अंग काम करते हैं। राष्ट्रके पास निर्वाह न रहने पर हम सब अंग तत्क्षण राष्ट्रको पंगू बनाकर छोड भागते हैं। अतः न राष्ट्र हमारा है और न हम राष्ट्रके। हमारे गैरपनने हमें विवश कर दिया कि हम राष्ट्र द्वारा पृथक् किये जानेपर बेकारीमें खानेके लिए वा रोगी होनेकी असमर्थ दशामें काम आने योग्य धनका संग्रह कर लें और इसी दृष्टिकोणको लेकर राष्ट्र और पूंजीपती अपना कार्य करानेके लिए निर्वाहका सग्रह किये बैठे हैं ताकि निर्वाहके अभाव-में हम कार्य को न छोड भागें। यदि हम राष्ट्रके और राष्ट्र हमारा हो जावे तो हमें निर्वाहकी और राष्ट्रको कायकर्ताओंकी चिन्ता न रहे। जब तक राष्ट्रके पास निर्वाह रहेगा, हमें घर बैठे हमारा दाय-भाग मिलता रहेगा और जबतक हममें जीवन व कार्य-क्षमता रहेगी तबतक आहार न मिलनेपर भी हम राष्ट्रका काम करते रहेंगे। अतः प्राकृत धम वैदिक पद्धतिके अनुसार बैंक, कोश तथा प्रोवीडेण्ट फण्ड आदि सब योजनाएं प्रतिमा-पूजाके समान अवैदिक, कृत्रिम तथा भीषण हैं।

कौन वानप्रस्थ हो सकता है ?

जीवन-विज्ञानके सिद्धान्तपर यदि गंभीर विचार किया जाय तो प्रत्येक प्राणी वानप्रस्थ होता है। [illegible] है, जो [illegible] [illegible] के राष्ट्रों में अपने चार वर्ण (Classes) बनाये हुए हैं। वे चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) ही वानप्रस्थ हो सकते हैं।

यों तो साधारणतया कह दिया जाता है कि ब्राह्मणको काम वेद (ज्ञान) पढना, वेद पढाना, यज्ञ (सर्वोपकारी कर्म) करना, यज्ञ कराना, दान (उपयोगी द्रव्य) लेना तथा दान देना है। किंतु ब्राह्मण में उपरोक्त बातें तीन रूपों में पाई जानी अनिवार्य हैं। वे हैं—

(१) स्वभाव, (२) गुण, (३) कर्म।

ब्राह्मण का स्वभाव ही ज्ञान-संग्रह तथा ज्ञान-प्रदान, यज्ञ (सर्वोपकारी-कर्म) करना तथा दूसरों से कराना, दान (उपयोगी पदार्थ) देना तथा लेना होना चाहिये। जिस का ऐसा स्वभाव है वही ब्राह्मण-स्वभाव है। गुण, योग्यता, कार्य-क्षमता को कहते हैं। जिसमें उपरोक्त ६ कर्म करने की निर्दोष क्षमता है वही व्यक्ति ब्राह्मण गुण-युक्त है। उपरोक्त स्वभाव व गुण से युक्त होकर जो व्यक्ति उक्त ६ कर्मों को मूर्त करता रहता है, वही ब्राह्मण कर्मठ है।

हमारे शरीर में शिर (ब्राह्मण) की पांचों ज्ञानेंद्रियें तथा मन और मस्तिष्क जो कार्य करते हैं वही कार्य राष्ट्र के ब्राह्मणसमुदाय का है। किंतु हम देखते हैं कि शिर उदर (वैश्य) से रक्त का पोषण पाकर उस रस रक्तसे मांस, मेद, मज्जा, अस्थि की रचना अपने ही घर में अपने पित्त व वायु के सहयोग से करता है। उसके (शिर के) समस्त अंग ब्राह्मण कर्म (संचालन, निरीक्षण, अनुभव, मनन तथा चिंतन कार्य) में अपनी योग्यतानुसार सहायता करते रहते हैं, तथा अपने अपने शरीर के लिये मांस, मज्जा, मेद, अस्थि की रचना स्वतः करते हैं। अतः प्रत्येक को दो कार्य करने पडते हैं- (१) शरीरराष्ट्र के लिये ज्ञान और मनन, (२) अपने लिये पोषण व संरक्षण। पहले

...र पोस ... और उ...

...है, उन्होंने कोई सेवक नहीं र...

शरीर के ब्राह्मण (शिर) की उपरोक्त प्राकृत व्यवस्था के समान ही राष्ट्र के ब्राह्मण-समाज की व्यवस्था निर्दोष, निभ्रान्त हो सकती है। अतः राष्ट्र के ब्राह्मण के निजू कार्य (उसकी निजी निर्वाहादि की पूर्ति) के लिए किसी प्रकार इतर व्यक्ति की सेवक-रूपमें होने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, चाहे वह ब्राह्मण किसी सम्पन्न राज्य का प्रधान सचिव हो या किसी कंगाल ग्राम की पाठशाला का निर्धन अध्यापक।

इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को अपने निजी कार्यों के लिए किसी सेवक की आवश्यकता नहीं। चारों वर्ण अपने निजी प्रबन्ध का भार अपने ऊपर ही लेकर राष्ट्र का कार्य अपने स्वभाव, गुण के अनुसार करें और राष्ट्र से निर्वाह लें। जो व्यक्ति जिस वर्ण को उसके स्वधर्म (bona-fide duties) में सहायता देता है, वह व्यक्ति उसी वर्ण का है, सेवक अथवा शूद्र नहीं। तब—

सेवक और शूद्र कौन हैं?

शूद्र समाज का वह सम्प्रदाय है जो समाज के उस कार्य को करता है जो केवल शारीरिक श्रम से साध्य है। वह भी इसलिए कि इससे उच्चतर कार्य कर सकनेकी दक्षता इस समुदायके मस्तिष्क को प्राप्त ही नहीं। हमारे पैर शरीरराष्ट्र का बोझा ढोने के लिए हैं, न कि शिर (ब्राह्मण) उदर (वैश्य) कुल की निजी सेवा शुश्रुषा करने के लिए। कृषि, शिल्प, भवननिर्माण, कूप, तडाग, सडकें तथा अन्यान्य सर्वोपकारी कार्य, आयुध आदिकी रचना आदि राष्ट्र के कार्य हैं। इन कार्योंकी पूर्तिके लिए राष्ट्रके जिन अवशिष्ट व्यक्तियोंसे सहायता ली जावे वे शूद्र हैं, क्यों कि इससे अधिक चातुर्य-पूर्ण कार्यमें उनका मस्तिष्क नहीं चलता।

इस समुदायसे निजी सेवा का कार्य कराने की घृणित प्रवृत्ति पूंजीवाद व प्रभुत्वने उत्पन्न की।

...शूद्रों से कराने ... उत्तरोत्तर प्रमाद की वृद्धि के कारण तथा पूंजीवाद की बढती के साथ साथ उन्होंने कुछ न करने को ही शालीनता बनाकर अपने व्यक्तिगत कार्यों, अपनी शारीरिक सेवाओं तक को भी इन सेवकों के ऊपर लाद दिया। मुखप्रक्षालन जैसे चार पांच सुकुमार कार्य अपने लिए रख लिये और अन्तमें इस पूंजीवाद व प्रभुत्व की क्रूरता इतनी बढ गई कि इस सम्पन्न सुकुमार पूंजीपति-समुदायने मलविसर्जन तक का कार्य भी घरमें ही करना आरम्भ कर दिया जिसके शौच का भार भी इसी के भोले भाई शूद्र के सिर मढा गया। दास, दासी, नाई (अंगों को दबानेवाला), धोबी, मेहतर आदि की रचना पूंजीपतियों तथा प्रभुओं के घृणित जीवन के आविष्कार हैं, ये सब राष्ट्र की आवश्यकताएं नहीं।

'दूसरोंसे वही व्यवहार करो जैसा अपने प्रति चाहते हो' इस बातको लेकर यदि हम गम्भीर विचार करें तो हमारा स्वाभिमान व स्वालम्बनप्रिय अन्तःकरण हमें बतायेगा कि राष्ट्रके छोटेसे छोटे कार्यको सेवाभावसे करनेमें बडेसे बडे व्यक्तिका गौरव है, किन्तु अपने पेटके लिए किसी व्यक्तिविशेष की कोई भी सेवा करना अपमानजनक तथा असह्य है। जो स्थिति हम अपने लिए नहीं चाहते उस स्थितिमें हम दूसरोंको रहने के लिए विवश करते हैं। हमारा यह व्यवहार कहां तक उचित है, यह भी चिन्तनीय है।

यदि ब्राह्मण की जीवनचर्या शरीरके ब्राह्मण (शिर) के समान प्राकृत है, चाहे वह राष्ट्रका प्रधान सचिव ही क्यों न हो, तो उसके लिए मनु का तापस-वानप्रस्थ-जीवन गृहस्थकालसे ही अभ्यस्त होनेके कारण सहज पालनीय है। पूंजीवादपंथमें आये कृत्रिम सुकुमार ब्राह्मणोंके लिये वह एक विडम्बना है। क्षत्रियका जीवन तो तलवार की धार है। उसके लिए तो वानप्रस्थ जीवन युद्ध

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह ... नहीं, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवें ... कृष्ण, अभिमन्यु के लिए मनुका प. औ... जे... सुकुमार है न कठोर और इसी प्रकार वह शूद्रसे भी सहज पालनीय है।

क्षत्रिय व वैश्य भूमि व धनका परिग्रह करके पूंजीपती बन गये तो उनके पुरोहित ब्राह्मण भी धन और प्रभुतासे वंचित न रहे और इस प्रकार इन तीनों वर्णोंको सुकुमारताने आ घेरा। वानप्रस्थ-जीवन एक प्राचीन नैसर्गिक नियम था। इसका मिटाना न इन्हें रुचिकर था न राष्ट्रको। अतः 'काशीवास', 'हरिभजन' जैसे सुकुमार वानप्रस्थोंने जन्म लिया। सम्पन्न सुकुमार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने अपने वित्तानुसार काशीमें अपने भवन बनाने लगे। कुछ पंडोंके घर पर रहने लगे। जो इतना भी न कर सके वे अपने नगर, ग्रामसे बाहर अपनी अपनी बगीचियोंमें मकान बनाकर रहने लगे। इनका कार्य-क्रम था:—

(१) नामजपन व स्वाध्याय।
(२) अपनी अपनी संतान को सांसारिक घृणित दांव घात की शिक्षा देना।
(३) राष्ट्र का अन्न आदि खाना।
(४) राष्ट्र का कुछ न करना।

पौराणिक प्रतिमा-पूजा के लिए और हम आर्य-समाजी शब्द-पूजा के लिए काफी लांछित हैं। हमें वानप्रस्थ जीवन प्यारा नहीं अपितु 'वानप्रस्थ' शब्द पूज्य था। इसीलिए 'काशीवास' पौराणिक शब्द को ग्रहण न करके उसके स्थान पर 'वानप्रस्थ' प्राचीन शब्द ला रक्खा किंतु रूपरेखा 'काशीवास' की ही रक्खी और नन्ही नन्ही नगरियों के समान 'वानप्रस्थ आश्रम' बना डाले, जहां हम राष्ट्र के कोढ बनकर राष्ट्र का भक्षण तो करते हैं, किन्तु राष्ट्रका काम कुछ नहीं करते।

वृद्धावस्था आ चुकी थी, पौत्रादि का जन्म हो चुका था, विद्वान् व स्वाध्यायशील भी थे किंतु पूंजीवादका ममतामय सुकुमार जीवन वनगमन न करने देता था। इसी कारण महात्मा विदुर, ... स न कर सके। जब पु... पौत्र, भानजे, भाई, भतीजे, नाती सब कुरुक्षेत्र ... राक्षस ने चबा डाले, हस्तिनापुर का राजमहल युवती विधवाओं का शिविर बन गया। माताएं निःसंतान हो गईं, तब इस रोमांचकारी दृश्य को न देख सकने के कारण, संताप के अतीव प्रहार से हतबुद्धि हो वही पंडित-प्रवर, स्वाध्यायशील महात्मा विदुर धृतराष्ट्र आदि को लेकर घर से भाग गये। शोक-संताप की पूर्वस्मृति ने इतना तपाया कि वे सूख सूख कर, निराहार रहकर निष्प्राण हो गए। यह वानप्रस्थ नहीं था। सर्व नाश को न सहकर घरसे भागकर सुदूर वनमें आत्महत्या करना था। एक अनिर्वचनीय क्रूर करुण, दुःखान्त दुर्घटना थी।

अभी भोग की लालसा शेष थी, यद्यपि भावुक युधिष्ठिर के हृदयमें गृह-दाहकी ज्वालाएं यदा कदा आत्महत्या के लिए उत्तेजना उत्पन्न कर दिया करती थीं, किन्तु द्वारिकामें सुकुमार-जीवन-प्रिय यादव प्रभुओंमें गृहयुद्ध छिड़गया, सर्वनाश की दुर्घटना हो गई। पांडवों के अनन्यमित्र, एक मात्र मन्त्रदाता कृष्ण एक व्याधके शर का आहार बन गये; द्वारिका से राजमहिषियों को हस्तिनापुर लाते हुए तुच्छ भीलों ने विख्यात धनुर्धारी अर्जुन को बुरी तरह लूट लिया। इस प्रकार सर्वनाश से संतप्त तथा हर ओर से हताश पांडवों को आत्म-हत्या की सूझी, क्यों कि शोक-संताप व सर्वनाश ने उनके हृदय को विदीर्ण कर दिया था। निदान पांचों पांडव राज्य का भार बालक परीक्षित पर छोड कर द्रौपदी सहित भाग खडे हुए और हिमालयमें जाकर गल गये। तब से समस्त भारत-वर्षमें हताश तथा शोक-संतप्त व्यक्ति के घर छोड़-कर भाग जाने की क्रिया का नाम 'पांडवों का हिमालयमें गलना' पड गया है।

हम इस विषयपर पर्याप्त प्रकाश डाल चुके कि पूंजीवाद का सुकुमार जीवन प्राकृत वानप्रस्थ को

...नेपर हतभाग्य बनकर विदुर व पाडवों ... आत्महत्या के समान हिमालयमें गल मरेगा।

हम नित्य देखते हैं कि जीव, जीवन और काया की दार्शनिकता को न जाननेवाला अपढ मजदूर शीतादि द्वन्द्वों को अभ्यास होने से सहर्ष सह लेता है, किंतु नित स्वाध्याय-रत दार्शनिक वेदान्ती ग्रीष्म के दिवाकर की आतप से अधीर हो उठता है।

ज्ञानेंद्रियों के भोगों के समान ही स्वाध्याय भी मनोरंजन का एक विषय ही बन जाता है, यदि वह शारीरिक-जीवन में कार्यरूप धारण नहीं कर लेता। यही कारण है कि हमारे श्रद्धेय पंडित-प्रवर स्वर्गीय श्री० पं० घासीराम जी किसी प्राकृत-वानप्रस्थ कुटीर में किसी होनहार दयानन्द ब्रह्मचारीको अपने जीवन का स्वाध्याय-प्रसाद प्रदान करनेका सौभाग्य प्राप्त न कर सके। यदि तुलना की दृष्टिसे देखा जावे तो स्वर्गीय पण्डित जी विद्वत्तामें महाभारतकालीन पण्डित-प्रवर महात्मा विदुरसे कम न थे।

आजकलका पूंजीवाद उससे भी बढ गया है। वह आजकल इतना लागू हो गया है कि उसने प्राचीन कालके 'सदाचार' प्रचार की तरह विलास और सुकुमारताको सर्वप्रिय बना दिया है। छोटीसी आयवाला व्यक्ति भी अपने शरीरको पुष्ट भोजन न देकर उसे (शरीरको) सुकुमार व फैशनेबिल बनानेमें लगा रहता है। हमारे समाज का दृष्टिकोण ...अंगी बनता जा रहा है। प्रचुर अयवा... विशेष कर सरकारी कर्मचारी यौवन कालका सुकुमार, कृत्रिम तामस जीवन बिता कर अब वृद्धावस्था में प्रवेश कर रहे हैं। सात्विक आहार से प्राकृत आहार पर आना तो सहज है, किंतु तामस आहार से प्राकृत आहार पर आना एकदम दूसरे लोक की बात है। तामस में मादकता होती है और मादकता का त्याग तो क्या न्यूनता भी असहनीय हो जाया करती है। अतः तामस से राजस पर, राजस से सात्विक पर और तब कहीं अन्त में सात्विक से प्राकृत आहार पर लौटने की संभावना हो सकती है। यह एक अप्रिय, क्लिष्टकष्टसाध्य योजना है। इसीलिये मैंने अपनी योजना में गृहस्थ व्यक्तियों को भी 'अर्धकुल' का कुटुम्बी होने का विधान रक्खा है, यद्यपि 'गुरु' पद के योग्य उपयुक्त व्यक्ति तो वानप्रस्थ ही है।

पेन्शनरों से इस अप्रिय कार्य में योग की आशा नहीं, क्योंकि उनकी सुकुमार काया सुकुमार भोगों में रहकर ही नामजपन कर परलोक सुधार में रत है।

जो यौवन भर अच्छी नौकरी वा धन की तलाश में हाथ पांव मारते मारते हताश हो चुके हैं वे अभागे वानप्रस्थ भी इस योजना में उत्फुल्ल कार्य न कर सकेंगे। इसके सफल और सजीव होने की संभावना उन्हीं पथिकों से होगी जो धन के प्रतिकूल दिशा में कदम बढाते ही स्वाधीनता के आनंद में मस्त हो जाया करते हैं।

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह ... स्वस्थ व दीर्घजीवी होवे ... अर्थात् ...

परमात्मध्यान

अर्थात्

पराविद्याके चमत्कार।

(लेखक-श्री० रुलियारामजी कश्यप, एम्. एस्सी.)

(६)

परमात्मध्यान के छठे भागमें पहिले कुछ ऐसी विचित्र बातें वर्णन की जाती हैं जिन से अगले पिछले जन्मों का पता चलता है। योगसिद्धियों में एक सूत्र आया है "संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्" कि संस्कारोंके साक्षात् करनेसे पूर्व जन्ममें कोई कौन था इस का पता लग जाता है। मुझे यह तो नहीं पता कि मैं पिछले जन्ममें कौन था और न मुझे यह ही पता है कि संस्कारों के साक्षात् करनेका तात्पर्य क्या है और उस की विधि कौनसी है पर मैं अपनी तथा अन्यों की कुछ घटनायें यहां लिखता हूं जिन पर टीका टिप्पनी पाठक अपनी रुचि तथा योग्यतानुसार करने का पूर्ण अधिकार रखते हैं।

(१) तीन चार वर्षकी एक लडकी अचानक एक दिन बोल उठी, "बीबीजी! काकेनूं दरया विच सुट आये" अर्थात् काके को नदीमें फैंक आये। उस की मांने उसे मारा झिडका पर क्या बनता था? एक मासके लगभग बीतने पर जिसको वह काका कहा करती थी वह उस की मासीका लडका मर गया और उसे नदीमें बहा दिया गया, क्योंकि लाहौर का यही रिवाज है।

कुछ महिने पीछे उसका मासड उस लडके का पिता उन के घर मिलने गया तो उसे हाथ से पकडकर वही लडकी बोल उठी, "मासडजी! थ्वाडा काका साडे आ वी गया" अर्थात् आपका पुत्र हमारे यहां आभी गया है। उस मनुष्यने उत्तर दिया कि अच्छा भई जीता रहे, यहां भी हमाराही है। उचित समय पर उसके भाई उत्पन्न हुआ जिसको परमात्मा दीर्घायु करे।

वह मनुष्य उस लडके को देखकर आनन्दित हो जाता है, लडका भी छोटी अवस्थासेही उसे प्रेम करता है। इन दो घटनाओंके फलस्वरूप वह अपने मृत पुत्र को मृत मानता ही नहीं केवल पुराने कपडे उतारकर नया सूट पहिन आया समझता है।

ये योगदर्शनवर्णित पूर्व जाति ज्ञान का उदाहरण है।

(२) एक लडकी की शादीपर एक डाक्टर आया हुआ था, जो पुरानी और दुःखदायी क्षयी सदृश व्याधियों की भी चिकित्सा अच्छी कर लेता था। उस लडकी की मासी की लडकी लगभग एक वर्ष से राजयक्ष्माग्रस्त थी। शादी से दो तीन दिन पूर्व उस बीमार के पास से तार पहुंची कि डाक्टरको ले आवें। सभी को बडी चिन्ता हुई कि अब कैसे करें। अस्तु। एक रात जिस लडकी की शादी थी उसके चचाने अपनी स्त्रीसे कहा कि यह जो बीमार लडकी है इसकी मृत्यु हो जायगी और जिस लडकी की शादी है उस के घर यह पुत्ररूपसे जन्म लेगी। कुछ ही दिनोंमें व्याधिता तो गुजर गयी और जिस लडकीकी शादी हुई थी उस के कालान्तरमें पुत्र उत्पन्न हुआ।

अब इस से आगे यह जानने का कोई साधन

[illegible] पीस [illegible]और उस[illegible]
वास्तवमें पिछले जन्म[illegible]
अथवा कोई और।

(३) एक छोटी लडकी को (Hydrophobia) जलोन्माद 'हो गया', यह रोग कुत्ते के काटने के परिणामस्वरूप होता है। बहुत इलाज कराया कुछ न बना। अन्तमें उसका पिता लाहौर लाया। क्योंकि वह बहकी हुईसी थी, इस लिये रास्तेमें उसे डाक्टरों की आज्ञानुसार रक्खा गया जिसे उस ने बहुत बुरा माना क्योंकि कभी कभी तो उस को होश ठीक हो ही जाती थी। अस्तु। लाहौर पहुंच जब वह अपने भाईसे मिली तो उसके गले से चिमट कर बोली कि अब मैं तुम्हारे घर आऊंगी पिताजी के नहीं। उचित समय पर गर्भ हुआ तो स्वप्न हुआ कि लो जी मैं आगई। समय पर वह उत्पन्न हुई। और अब अपनी पिछले जन्म की वस्तुओं को देखकर पहचानती है।

(४) एक लडकी का भ्राता १३-१४ मास का ही होकर गुजर गया था, उस की वस्तुएं एक बक्समें से निकाल निकालकर उसकी माता रख रही थी कि लडकी जो अब लग भग तीन वर्ष की है कहने लगी "यह केशो की है" "यह भी केशो की है" अनेक वस्तुएं जो केवल उस लडकेकी थीं उन्हीं उन्हीं को उठा उठाकर ही वह ऐसा कितनी देर कहती रही। बीजमें यह भी कह गई 'यहां केशो आई थी, चाचीके पाप केशो आइ थी।' उस के माता पिता विस्मित हुए कि यह केशो को कैसे जानती है। उस की मृत्यु तो इस के जन्म से बहुत पहिले हो चुकी थी, इस को कैसे पता चला कि अमुक वस्तु उस की है।

इस का कारण केवल यही है कि यहां बालिका की दृष्टिमें काल तथा व्यक्तित्व की सीमा नहीं थी। योगमें अतीत ज्ञानका वर्णन आता है, यह उसी-का उदाहरण है। यह दिव्य दर्शन का भी उदाहरण है।

इन चार घटनाओंमें से दूसरी के विषय में तो यह कहा जा सकता है कि स्यात् उस व्यक्तिने अनु-[illegible] अर्थात ३-४ वर्ष [illegible] योंने अपने अथवा अन्यों के अगले पिछले जन्मोंका सत्य वर्णन किया है उन पर कोई संदेह नहीं हो सकता है। उन का तो निर्णय केवल यही हो सकता है कि अभी दुनियां की हवा उन्हें सर्वथा ही बहुत कम लगी होने से अभी उनकी दृष्टि पूरी खुली है जो देश काल व्यक्तित्व आदिका व्यवधान बडे होने पर पड जाता है वह अभी इन्हें नहीं पडा। इसी विषयकी परिचायक एक और घटना नं. ४ वाली लडकीकी नीचे और देते हैं, यथा—

(५) एक तीन वर्ष छः दिवस की आयु की बालिका बडे कमरेमें खाट पर बैठी लिख सा रही थी। दीवार के उस ओर साथ का रसोई घर था। उसमें बर्तनों की अलमारीमें एक पीतलकी छलनी में मटरकी फलियां रक्खीं थी। रसोई की दीवार जिसमें वह अलमारी थी उत्तरदक्षिण थी तो मध्यवर्ती दीवार पूर्वपश्चिम थी। लडकीका मुंह पूर्व की ओर था। उस का पिता पश्चिम की ओर मुख किये मटरकी फली उठा दाने निकाल खा रहा था। इतनेमें लडकी बोल उठी "तुसीं मटर खाई जाओ मैं तां लिख दी आं" (अर्थात् आप मटर खाते रहें मैं तो लिखती हूं) उस का पिता विस्मित हो गया कि मुंह इसका दूसरी ओर है, मध्यमें दीवार है, लिख यह रही है और बोलती यह है।

प्रत्यक्ष है उस को दिव्य दर्शन हो रहा है जिस में दृष्टि सर्वथा खुली होती है। दृष्टिबन्धक कारण कोई जहां नहीं ठहरते दीवार उसके लिये आवरक नहीं, दिशाका वहां बंधन नहीं। परन्तु विचित्रता यह है कि वह अपने काममें लगी है, योग वा समाधि की सार वह क्या जाने? इसी कारण महात्मा उपदेश किया करते हैं की शिशु बन जाओ, तो सिद्धि पा सकते हो।

पुस्तकों के उद्धरण तो योगादि से अनेक प्रमाण रूप उद्धृत किये जा सकते हैं, परन्तु उद्देश

पवित्र रक्त को उत्पन्न करें। वह ... सुखी, स्वस्थ व दीर्घजीवी होवें ... लेखोंमें अभिज्ञ रहे हैं, पुस्तकार ... यहां नहीं करते। यदि सच्ची घटनायें भी रुचि-श्रद्धा आदि परमात्मध्यानमें उत्पन्न न करा सकें, तो पुस्तकों के उद्धरण क्या कर सकेंगे?

(६) इसी लडकी को एक दिन शीरीनी उस की माता ने अन्दर के कमरे से लाकर दी। इस ने कहा सारी लूंगी माता ने कहा सारी ही दे दी है। लडकी ने कहा वह जो बाटी में डाल कर रख आई हो? माता विस्मित हो गई, क्योंकि वह वास्तव में बाटी में डाल कर रख आई थी।

इन बच्चोंकी इस दशा से हमें पता लगता है कि वास्तवमें ऐसी खुली अन्दर की आंख प्राप्त करना हमारा योग के जिज्ञासुओंका एक ध्येय है। यह वह अवस्था है जहां हमने पहुंचना है। मेरा लिखने का तात्पर्य यह है कि जिस को यह भी न पता हो कि मैंने जाना कहां है, वह वहां क्या खाक पहुंचेगा? यह जरा जरा जितने बच्चे कोई दीवार से परे देख रहा है, कोई अगले पिछले जन्म बता रहा है, कोई कभी के गुजर चुके भाई की वस्तुएं अब पहचान रहा है, यह सब दर्शा रहे हैं कि वास्तविक आत्मतत्त्व वह है जिसके लिये व्यक्तित्व, देश, काल, कोई व्यवधान नहीं बन सके। अपनी आत्मा को उस अवस्थामें पहुंचाने के लिये हमने परमात्मध्यान करना है।

इस का एक अति सरल उपाय परमात्मध्यान नं. ५ में दिया जा चुका है। कपिल मुनि के सुन्दर शब्दोंमें इसे "ध्यानं निर्विषयं मनः" वर्णन किया गया है। भगवान् कृष्ण महाराज ने अपने मनोहर गीता में सिद्धोंमें अपनी विभूति कपिल मुनिमें ही दर्शायी है, अतः इन महात्मा को परम सिद्ध, सिद्धराज आदि उपाधियों से विभूषित यदि हम करें तो चाहे वह स्वर्गमें हों, चाहे मोक्ष धाममें हों, वहीं से उनकी आत्मा ब्रह्मात्मा, अवश्य हमारी ओर आकृष्ट होगी और हमें बिना इस लोक के गुरुओंकी सहायता के ध्यान सिद्ध हो जायगा।

... जावें ... क के बच्चा ऐसा कह ... कि हम ने उस उद्यान (परमात्मारूपी) के अन्दर जाकर देख लिया है, भ्रमण कर लिया है, इत्यादि। कपिल मुनिका उपरोक्त सूत्र ही वास्तविक गुरुमन्त्र है, जो सभी सच्चे गुरु अपने परम प्रिय शिष्य को साधारण जाप आदि कुछ चिर करवाते रहनेके पीछे, देते हैं संस्कृत न जाननेवाले अपने देश की भाषामें वही भाव समझा देते हैं और Practically एकवार करवा देते हैं इसे ही भेद खोलना कहा जाता है। स्थूल बुद्धि अविद्वानों को यह दुर्बोध है। हां पुराने जन्म के संस्कार एकबारगी भाग्यसे जग जायें तो पौबारां उन के भी हो जाते हैं, अन्यथा न जाने उन्हें कितनी चक्की पीसनी पडनेपर भी कार्यसिद्धि हो न हो न जाने कितने जन्मोंमें हो। मैं आधुनिक उच्च शिक्षा का यह फल अवश्य समझता हूं कि बुद्धि सूक्ष्म अवश्य हो जाती है, किसी किसी भाग्यहीन की न हो तो यह शिक्षाका दोष नहीं उसकी अपनी प्रारब्ध का है। साधारणतया यह सत्य है कि स्थूलबुद्धि शीघ्र ही परीक्षाओंमें अनुत्तीर्ण होने लग जाते हैं। मस्तिष्कमें कोई विशेष शक्ति अवश्य किसी न किसी प्रकार की उत्पन्न हुए बिना उच्च शिक्षाका अधिकारी मनुष्य नहीं बनता जैसे Research work अर्थात् अन्वेषण वा गवेषणा का कार्य किसी विषय में केवल वही कर सकता है जिस को उस विषय में तो अवश्य इतनी श्रद्धा अवश्य प्राप्त हो चुकी हो कि वह उस विषयसम्बन्धि अपने लेखोंमें सर्वथा असत्य का मिश्रण न होने दे, प्रमाणरहित कोई वाक्य न लिखे. ठीक श्रद्धा धर्म के सर्वथा आश्रित हो तब उसका लेख तद्विषयज्ञ वैज्ञानिकोंमें पढा जा सकता। है अन्यथा न तो यह लोग अपने पत्रोंमें साधारणतया त्रैमासिकोंमें उस लेख को स्थान ही देते हैं और न उस की ओर देखते ही हैं, रद्दी की टोकरीमें ही फैंक देते हैं।

"श्रद्धया सत्यमाप्यते" सत्य श्रद्धाद्वारा ही

[illegible]त होता है और उ[illegible]
यह श्रद्धा किसी न किसी [illegible]
उत्पन्न न हो तब तक कोई वैज्ञानिक अनुसन्धान
कर्ता नहीं बन सकता और न ही तद्विषयक नवीन
सत्य की प्राप्ति उस के द्वारा संसार को कदापि
हो सकती है। ठीक यही सिद्धान्त इसी रूपमें
ब्रह्मविद्या तथा योगसिद्धियों के विषयमें पूरा
सोलह आने सच्चा है। इसी लिये मैं कहता हूं कि
उच्च शिक्षा प्राप्त इस ओर आसानी से जा सकते
हैं। परन्तु वही विषय जिसमें वह नवीन आवि-
ष्कार कर रहे हैं उन के परमात्मा की ओर झुकनेमें
रुकावट हो जाता है। लेखक की भी यही दशा
है। कई दिनों "वेद और कृमि" शीर्षक लेखमें
यह इतना उलझा रहा कि परम देव भगवान्
मानों सर्वथा भूले हुए से हो रहे थे कि कल
वैदिक धर्मने पहुंचकर स्मरण कराया कि
परमात्मध्यान नं. ६ तो अधूरा ही पडा है। तुरन्त
वह विचार मस्तिष्क से बाहर किये जिसके लिये
एक रात और कुछ घण्टे लगे और यह लेख
पूरा करना आरम्भ किया। तात्पर्य यह कि उच्च-
शिक्षाप्राप्तों की बुद्धि सूक्ष्म हो चुकी होती है,
सत्यकी प्राप्ति का साधन श्रद्धा उनके पास
विद्यमान होता है, परंतु Orientation अशुद्ध
होती है, दृष्टिकोणमें अन्तर होता है, अपने विषय
की अपेक्षा परमात्मा शुष्क नीरस निरर्थक प्रतीत
होता है। अतः बहुधा कोरेके कोरे रह जाते हैं। मरने
तक भी जीवन मृत्यु प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर
नहीं पाते यह बडे दुःख की बात है। इस से
भी अधिक कष्टप्रद वार्ता यह है कि माया, विज्ञान,

[illegible]ओ
परमात्माकी ओर झांकने तक को भी [illegible] नहीं
होते। इसी कारण ईशोपनिषद्में इन्हें अज्ञानियों-
से भी गहरे अन्धकार में फंसनेवाला कहा है।
हां जिस का भाग्योदय हो वह स्वामि रामतीर्थ
समान Mathematics (गणित शास्त्र) का
Professor (उपाध्याय) होता होता ही भक्तराज
सिद्ध बन जीवन सफल कर जाता है। अस्तु।

सिद्धराज कपिल मुनि का गुरुमन्त्र ही सर्वो-
त्तम सर्वोपकारी औषध होनेसे हम अन्तमें
व्याख्यात् करके इस परमात्मध्यान (नं. ६) विषय
को समाप्त करना अपने लिये सौभाग्यवर्धक
समझते हैं तथा अपने पाठकों के लिये भी।
महात्मा कहते हैं कि ध्यान तो वास्तवमें मनका
निर्विषय होना मात्र है। मन का सभी विषयोंके
विचारोंसे शून्य होना ध्यान है। यदि पाठकोंमेंसे
एकने भी इसका यत्न किया तो उसे आगेका मार्ग
स्वयं खुला प्रतीत होगा। जिस समय मन खाली
हो जाता है, एक भी विचार इसमें नहीं रहता, तो
तुरन्त एक विचित्र शक्ति केन्द्रित प्रतीत होने
लगती है। एक बार इस शक्ति की प्रतीति हुई तो
साधक का नवीन जीवन आरम्भ हो जाता है।
इसे ही शक्ति का जाग्रत हो जाना कहा जाता है।
इसी के लिये बद्धपद्मासन आदि हठयोग के
साधन किये जाते हैं। एक बार यह जगी फिर
जिधर चाहो इसे चलाओ, आकाश पाताल लोक-
लोकान्तर सभीसे इच्छा मात्र से आपका सम्बन्ध
जुड जाता है॥ इत्यलम्॥

स्वप्नोंके अनुभव।

स्वाध्यायशील पाठकोंसे सानुरोध प्रार्थना।

हम यहां कई वर्षोंसे स्वप्नोंके अनुभवोंका अन्वेषण कर रहे हैं, इन से कई अनुभव निश्चित रीतिसे सिद्ध हो चुके हैं—

१ तीन चार दिनके बाद होनेवाली घटना का पहिले पता लगना,
२ दूरस्थ घटनाका पता लगना,
३ काल और स्थल का व्यवधान रहते हुए भी घटना का ठीक पता लगना।

इत्यादि अनुभव स्वप्नोंसे होते है। अतः इसी विषयकी अधिक खोज करनेकी इच्छा बढ गई है। यह कोई अंध विश्वास नहीं, यह शुद्ध शास्त्रीय खोज है। केवल शास्त्र के आधारपर इसका परीक्षण हो रहा है और पडताल भी शास्त्रीय रीतिसे ही देखी जाती है।

पाठकोंसे प्रार्थना।

इस खोजमें पाठकोंकी सहायता चाहिये। जो स्वप्न होंगे और अनुभवमें परिणत होंगे, उनका वृत्तांत जैसा हुआ वैसा लिखकर हमारे पास भेज दें। नाम गांव पता तिथि समय ठीक ठीक लिखा हो, उसमें न्यून अधिक घट वध कुछ भी न की जावे। केवल शास्त्रीय खोज करनेके लिये जैसा लेख शुद्ध चाहिये वैसा अनुभूत स्वप्नका अनुभव चाहिये। हमारे पास कईयों के अनुभव आ रहे हैं। जिनकी खोज होगी वे इसी पत्रिकामें प्रकाशित किये जांयगे।

उपनिषदोंमें कहा है, स्वप्नके समय इस मनुष्यको को अन्तरिक्षलोकमें प्रवेश मिलता है, भुवर्लोक का अनुभव आता है। यह कथन इन स्वप्नों के अनुभवसे सत्य प्रतीत होता है।

यदि पाठक अपने स्वप्न लिखकर रखेंगे और अनुभव आते ही उस अनुभव के साथ हमारे पास भेज देंगे, तो वह वृत्तांत हम सब क विचारार्थ स्वप्नविचारकों के सामने रखेंगे और जिनमें विशेषता होगी उनका प्रकाशन भी करेंगे।

हमें पूर्ण आशा है कि पाठक अपना पूर्ण सहयोग इस खोज में देंग। यह कार्य किसी एक व्यक्तिका नहीं है। यह तो सबका कार्य है। यदि सब पाठक इसकी सहायता के लिये कटिबद्ध होंगे तो निःसंदेह थोडेही वर्षोंमें इसकी खोजसे अद्भुत अनुभव प्राप्त हो सकेंगे।

प्रयत्न करनेसेहि विद्या सफल हो सकती है। अतः पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इसका अनुभव लिखकर हमारे पास भेजें।

संपादक 'वैदिक धर्म'

गुरुकुल-सू[illegible] चित्रमाला ।
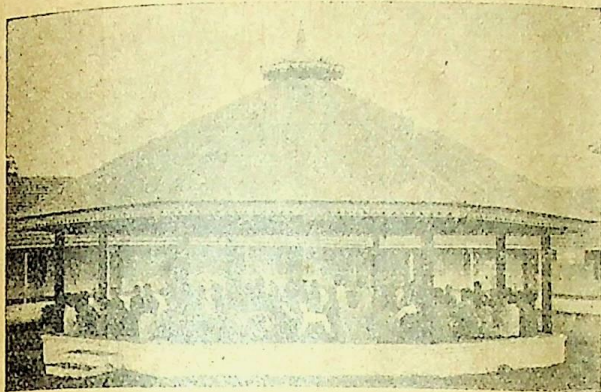
उपासनामंदिर ।
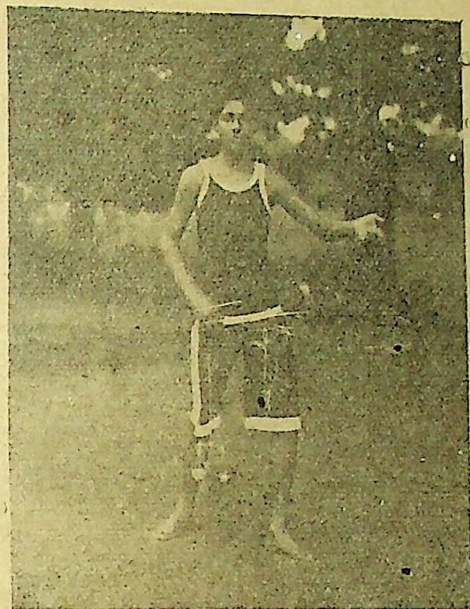
ब्र० वासुदेव पानीकी बनेटी घुमाता है ।

ब्रह्मचारियोंका अपूर्व मलखांब ।

ब्र०मतिमान १३५ पौंडका बोझ उठा रहा है।

ब्रह्मचारियोंका तलवार-मंडल।
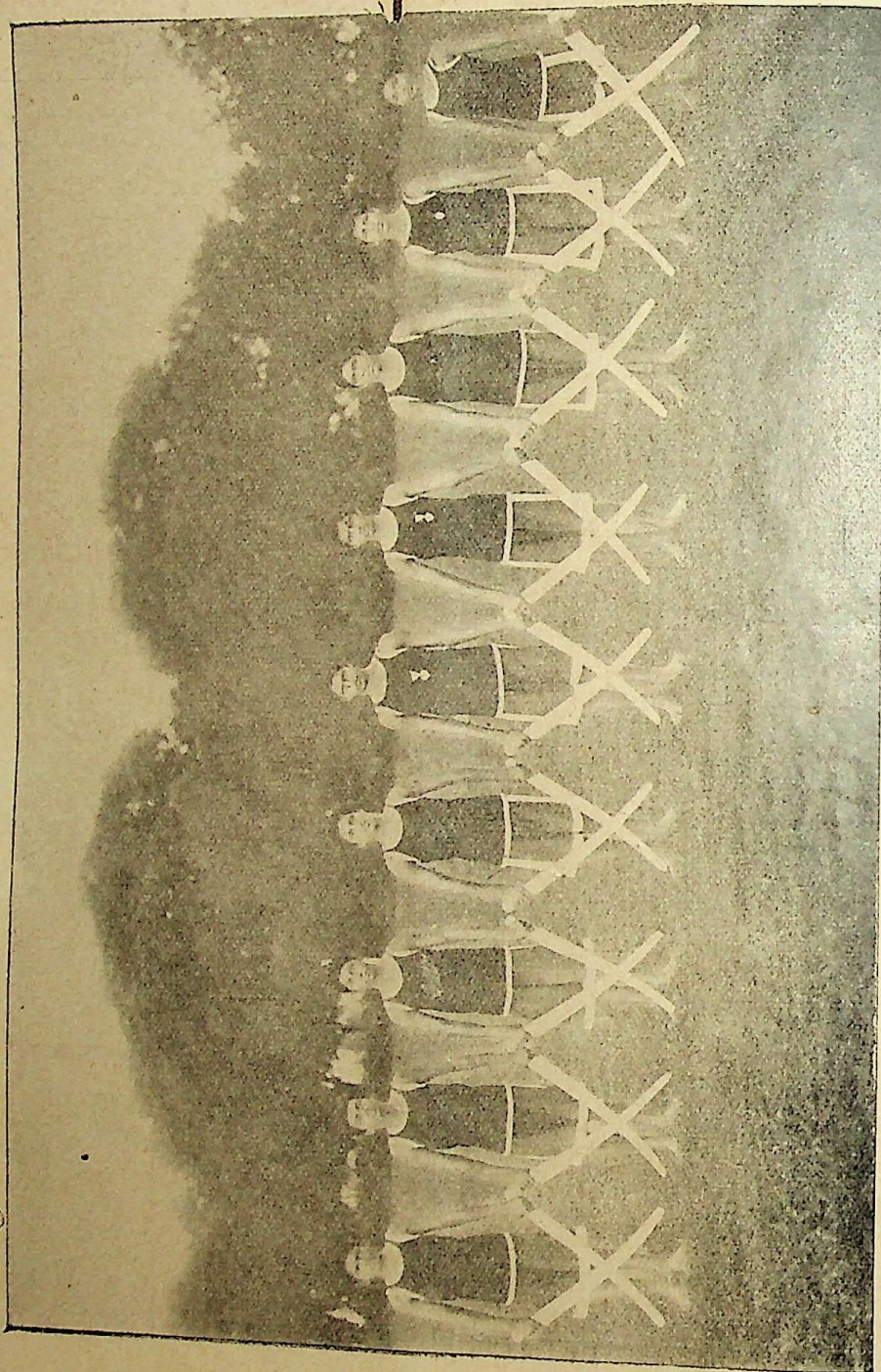
ब्र०रामदेव खांधेली बालोंवाला चक्र घुमाते हैं।
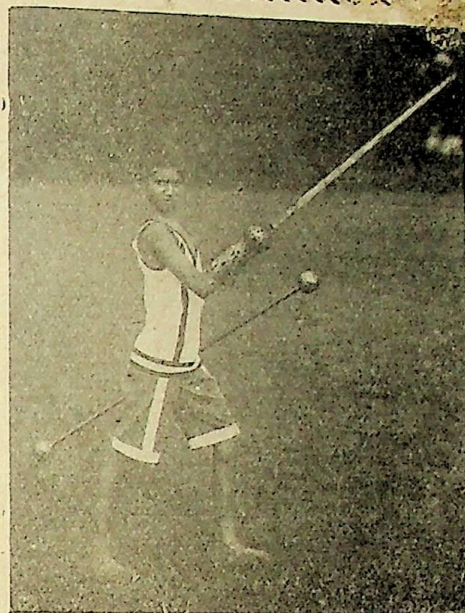
ब्र०रामदेव ७ म श्रेणी बनेटी साथ पटा
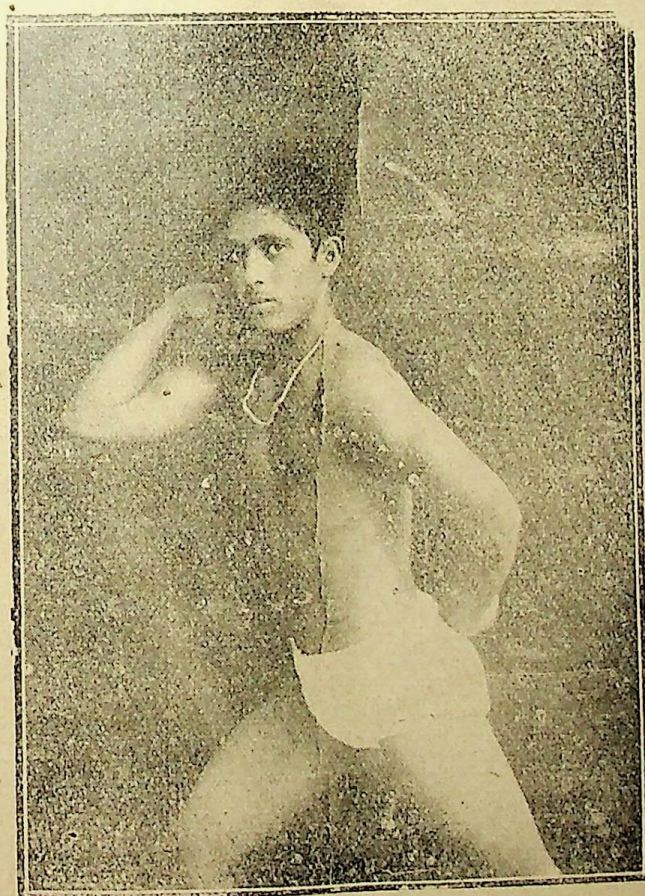
ब्र० सत्यभूषण (आयु १७) मांसपेशीका प्रभुत्व।

वीर ब्रह्मचारी गुरुकुल सूपा।

गुरुकुल सूपाका संमेलनमहोत्सव ।
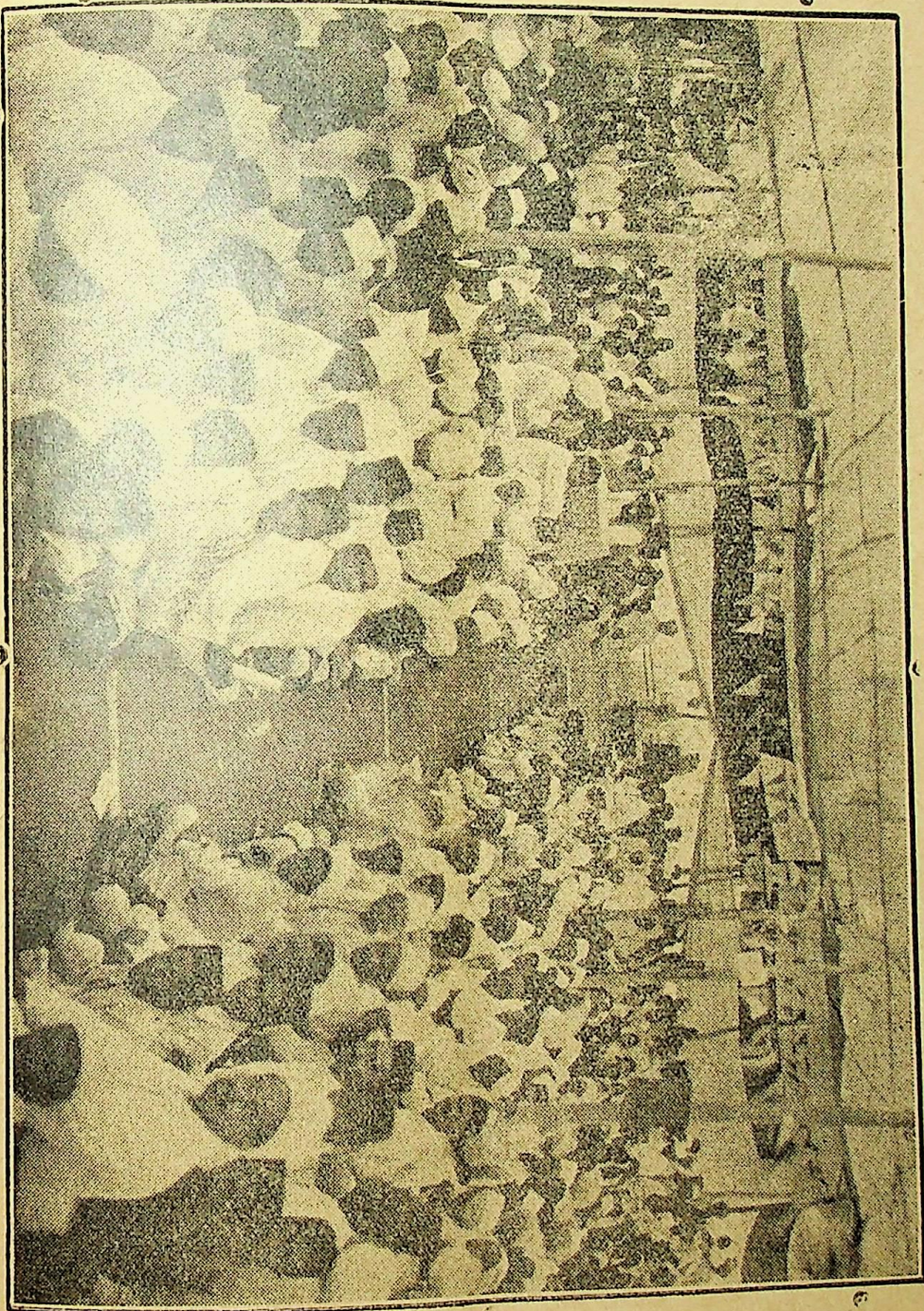
सूपागुरुकुल-महोत्सव।
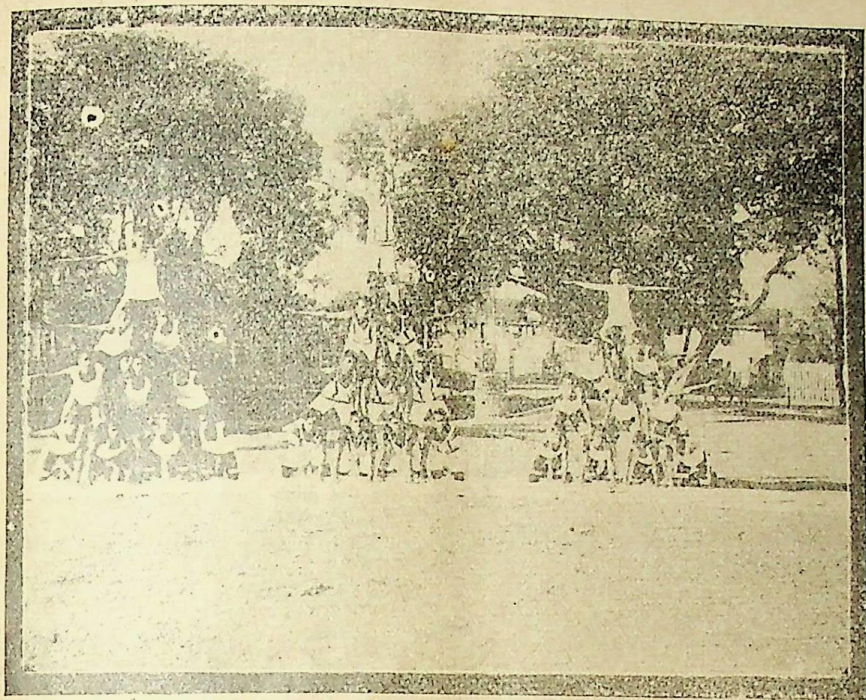
ब्रह्मचारियोंका वीरव्यायाम क्षेत्र
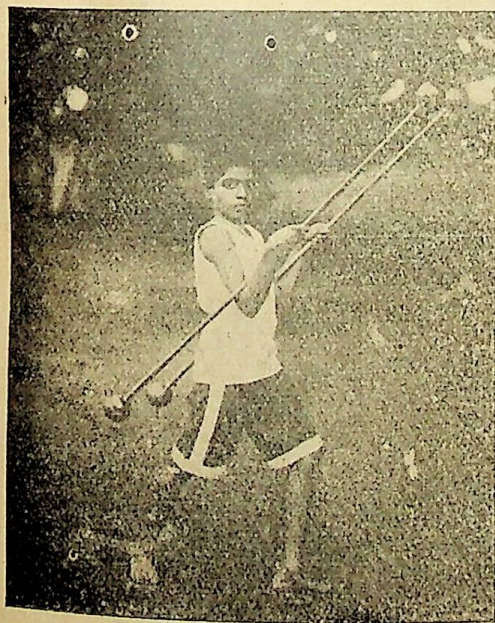
बनेटी
(ब्र० रामदेव ७ म श्रेणी)

ब्र० वासुदेवका व्यायाम ।

ब्रह्मचारियोंका वीर-मंडल ।
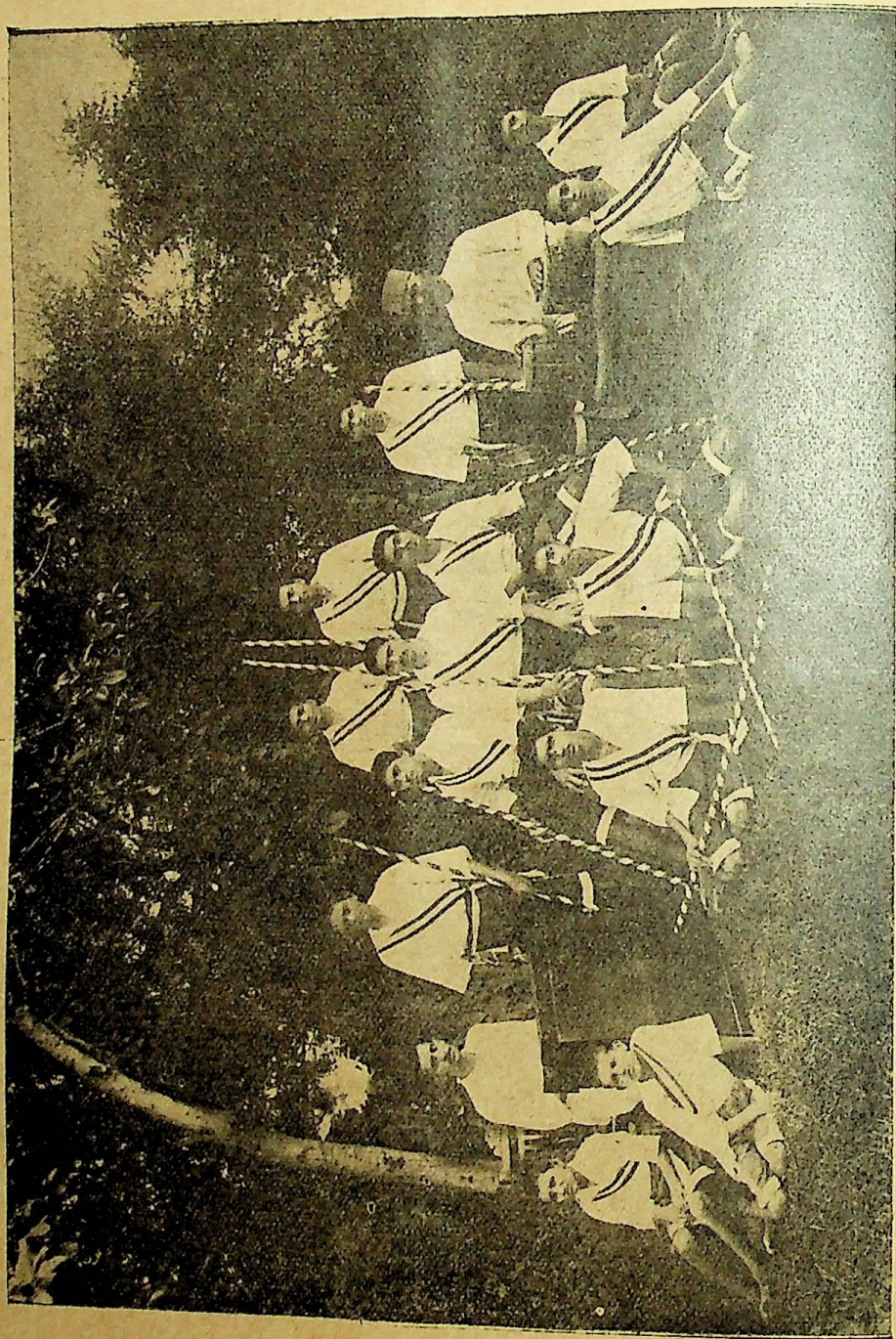
मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥
योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्व१न्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४ ॥

अर्थ— हे (उग्र) उग्रवीर! (नः गोषु पुरुषेषु अजाविषु मा गृधः) हमारी गौवें, मनुष्य भेड बकरियोंके विषयमें लालच न कर । (अन्यत्र विवर्तय) दूसरे स्थानपर भयको लेजा । (पियारूणां प्रजां जहि) हिंसकोंकी प्रजाका नाश कर ॥ २१ ॥

(यस्य तक्मा कासिका हेतिः) जिसके हथियार क्षयज्वर और खाँसी है, (वृषणः अश्वस्य क्रन्दः इव एकं एति) बलवान घोडेके हिनहिनाके स्वरके समान निःसन्देह एक पुरुषपर जिसका हथियार जाता है, (अभि पूर्वं निर्णयते) जो पहिलेही निश्चय करता है, (अस्मै नमः अस्तु) इसके लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥

(यः अन्तरिक्षे विष्टभितः तिष्ठति) जो अन्तरिक्षमें स्थिर रहता है और (अयज्वनः देवपीयून् प्रमृणन्) यज्ञ न करनेवाले देवोंके द्वेषकोंका नाश करता है,(तस्मै दशभिः शक्वरीभिः नमः) उसको दश शक्तियोंसे हमारा नमस्कार है ॥ २३ ॥

(आरण्याः पशवः वने हिताः मृगाः) अरण्यमें उत्पन्न जंगलमें रहनेवाले मृग आदि पशु तथा (हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि तुभ्यं) हंस गरुड शकुनि और अन्य पक्षीगण वे सब तेरेही हैं । हे पशुपते! (तव यक्षं अप्सु अन्तः) तेरा पूज्य आत्मा जलोंके अन्दर है, (तुभ्यं दिव्याः आपः वृधे क्षरन्ति) तेरे लिये दिव्य जल बधाईके लिये गिरते हैं ॥ २४ ॥

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जुषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि ।
पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व१न्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥ २७ ॥
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥

अर्थ-(शिशुमाराः अजगराः पुरीकयाः) घडियाल, अजगर, कच्छुए, (जषाः मत्स्याः रजसा येभ्यः अस्यसि) मच्छियां और जल जन्तु मालिन प्राणी जिनपर तू अपना शस्त्र फेंकता है। इनमेंसे (न ते दूरं, न ते परिष्ठाः) दूर कोई नहीं है, न कोई तेरेसे भिन्न स्थानपर है, तू तो (सर्वान् सद्यः परिपश्यसि) सबको एकही बार देखता है, और (पूर्वस्मात् उत्तरस्मिन् समुद्रे भूमिं हंसि) पूर्वसे उत्तर समुद्रतक व्यापनेवाली सब भूमिपर आघात करता है ॥ २५ ॥ हे रुद्र ! (तक्मना नः मा संस्राः) ज्वरसे हमें पीडा न हो, (विषेण मा) विषबाधा न हो, (दिव्येन अग्निना मा) दिव्य अग्निसे कष्ट न हों। (अस्मात् अन्यत्र एतां विद्युतं पातय) हमसे भिन्न दूसरे स्थानपर इस बिजुलीको गिरा ॥ २६ ॥

(भवः दिवः ईशे) भव द्युलोकका ईश्वर है, (भवः पृथिव्याः) भव पृथ्वीका स्वामी है। (भवः उरु अन्तरिक्षं आपप्रे) भव बडे अन्तरिक्षमें व्यापक है। वह (इतः यतमस्यां दिशि तस्मै नमः) यहांसे जिस दिशामें हो वहां हमारा नमस्कार उसके लिये है ॥ २७ ॥

हे (राजन् भव) उत्पादक देवराज ! (यजमानाय मृड) यजमानको सुखी कर, (पशूनां पशुपतिः हि बभूथ) तू पशुओंका स्वामी हो। (यः श्रद् दधाति) जो श्रद्धा रखता है, (देवाः सन्ति इति) देवताएं हैं ऐसा मानता है, (अस्य द्विपदे चतुष्पदे मृड) उसके द्विपाद और चतुष्पदोंको सुखी कर ॥ २८ ॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम् ।
मा नो॑ हिंसीः पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च॒ स्वां त॒न्वं॑ रुद्र॒ मा री॑रिषो नः ॥ २९ ॥
रु॒द्रस्यै॑लबका॒रेभ्यो॑ऽसंसूक्तगि॒लेभ्यः॑ ।
इ॒दं म॒हास्ये॑भ्यः॒ श्वभ्यो॑ अकरं॒ नमः॑ ॥ ३० ॥
नम॑स्ते घो॒षिणी॑भ्यो॒ नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः ।
नमो॒ नम॑स्कृताभ्यो॒ नमः॑ सम्भुञ्ज॒तीभ्यः॑ ॥
नम॑स्ते देव॒ सेना॑भ्यः स्व॒स्ति नो॒ अभ॑यं च नः ॥ ३१ ॥ (७)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(नः महान्तं मा हिंसीः) हमारे बडोंकी हिंसा न कर, (नः अर्भकं माः) हमारे बालकोंकी हिंसा न कर, (नः वहन्तं मा) हमारे समर्थ पुरुषकी हिंसा न कर (नः वक्ष्यतः मा) हमारे बलवान बननेवालोंकी हिंसा न कर। (नः पितरं मातरं च मा हिंसीः) हमारे पिता माताकी हिंसा न कर, हे रुद्र (नः स्वां तन्वं मा रीरिषः) हमारे शरीरोंको दुःखी न कर ॥ २९ ॥

(रुद्रस्य ऐलबकारेभ्यः असंसूक्तगिलेभ्यः) रुद्रके भयानक शब्द करनेवाले अस्पष्ट शब्द करनेवाले (महास्येभ्यः श्वभ्यः) बडे मुखवाले कुत्तोंको (इदं नमः अकरं) यह नमस्कार करता हूं ॥ ३० ॥

हे देव ! (ते घोषिणीभ्यः केशिनीभ्यः) तेरी बडा शब्दघोष करनेवाली केश रखनेवाली, (नमस्कृताभ्यः संभुञ्जन्तीभ्यः) नमस्कारोंसे सत्कृत और उत्तम अन्नभोग करनेवाली (ते सेनाभ्यः नमः) तेरी सेनाओंके लिये नमस्कार हो, (नः स्वस्ति अभयं च) हमारा कल्याण हो और हमारे लिये निर्भयता हो ॥ ३१ ॥ ॥ ७ ॥

प्रथम अनुवाक समाप्त ॥ १ ॥

भव और शर्वके सूक्तका आशय।

यह सूक्त " भव और शर्व " देवताके वर्णनपर है। कोई यहां यह न समझे कि भव और शर्व ये देवताएं परस्पर भिन्न हैं। ' भवाशर्वौ ' ऐसा द्विवचनी प्रयोग है, तथापि एकही देवताके ये दो गुण हैं। सर्व विश्वमें व्यापनेवाली एकही देवता है, वह सृष्टीकी उत्पत्ति करती है इसलिये उसका नाम ' भव ' है और वह सबका संहार करती है इसलिये उसी देवताका नाम ' शर्व है।

पुराणोंमेंभी भव और शर्व ये दो नाम एकही रुद्र देवके हैं, वही बात वेदके इस सूक्तमें है और अन्यत्रभी जहां जहां भव शर्व आदिनाम आये हैं वहां ऐसाही अर्थ समझना योग्य है। इस सूक्तमें रुद्र, भव, शर्व, पशुपति, आदि शब्द आये हैं, जो उस एकही परमेश्वरके वाचक हैं।

प्रथम मंत्रमें इस देवताके दो गुणोंका स्मरण कराया है। यहां सूचना मिलती है कि यदि दो गुणोंके कारण एकही देवताके दो देव माने जा सकते हैं, तो अनेक गुणोंके कारण एकही ईश्वरकी अनेक देवताएं मानना संभव है। वैदिक धर्ममें अनेक देवताओंकी कल्पना इस प्रकार एकही परमात्मापर अधिष्ठित है। एक ईश्वरके अनेक गुणोंकी अनेक देवताएं मानी गयीं हैं।

ईश्वरके मारक गुणको शर्व करके यहां कहा है, यह देवता अपना मारण हिंसन अथवा विनाशक कार्य जिन साधनोंसे करती है उनकी गिनती इस सूक्तके अनेक मंत्रोंमें की है – कुत्ते, गीदड, सियार मक्खियां, कौवे, अस्त्र, शस्त्र, धनुष्य, बाण, विद्युत अग्नि, ज्वर, क्षय ये मारणसाधन हैं। मक्खियोंको रुद्रके मारक साधनोंमें रखा है, यह बात पाठक विशेष रीतिसे स्मरण रखें। मक्खियोंके कारण अनेक रोग फैलते हैं और प्राणियोंका संहार होता है। अतः रोगोंसे बचनेके लिये चारों ओर स्वच्छता करनी चाहिये जिससे मक्खियां न होंगी, और मनुष्य रोगोंसे बचेंगे। इसी तरह अन्यान्य मरणसाधनोंके विषयमें जानना चाहिये। (मंत्र २ देखो)

आगे मंत्र ७ तक रुद्रके अंगप्रत्यंगोंको नमस्कार कहा है। यह एक मृत्यु देवताका उपासना प्रकार है। सातवें मंत्रमें रुद्रसे विरोध न हो ऐसी इच्छा प्रकट की है।

यही भाव आगेके कई मंत्रोंमें है (मा समरामहि) येही शब्द आगेके कई मंत्रोंमें वारंवार आगये हैं।

नवम मंत्रमें अनेकवार रुद्रके लिये नमन किया है। दशम मंत्रमें कहा है कि इस रुद्र-देवताके आधीनही संपूर्ण विश्व है। इसी कथनसे विश्वनियामक देवही मारकभावके मिषसे रुद्र नामसे यहाँ कहा है ऐसा स्पष्ट हो जाता है। क्यों कि सब विश्वका नियंता देव एकही है।

चौदहवें मंत्रमें भव और शर्व ये दो नाम फिर आये हैं। यहां द्विवचन देखनेसे ये दो देव परस्पर भिन्न हैं। ऐसी कईयोंको शंका होसकती है, परंतु ये दो देव गुणतः भिन्न परंतु स्वरूपतः एक हैं, इसका स्पष्टीकरण इसके पूर्व किया जा चुका है। आगे १९ वें मंत्रतक रुद्रदेवको नमनही किया है। आगे तीन मंत्रोंमें मृत्यु दूर करनेकी प्रार्थना है।

तेईसवें मंत्रमें रुद्र देव इस अन्तरिक्षमें व्यापता है ऐसा कहकर देवविरोधियोंका नाश करता है, यह भी कहा है। यह सर्वव्यापक देवका ही वर्णन निःसंदेह है। आगेके दो मंत्रोंमें सब प्राणी उसी एक देवके आधारसे रहते हैं, वह देव सबको समदृष्टीसे देखता है और विघातक शत्रुका नाश करता है इत्यादि वर्णन देखने योग्य है।

सताईसवें मंत्रमें यह देव संपूर्ण स्थिरचर जगत्का ईश है यह स्पष्ट शब्दोंसे कहा है। यह मंत्र पढते ही संपूर्ण विश्वका एक प्रभु है इसमें संदेह ही नहीं रह सकता। आगेके मंत्रमें यह देव (भव) विश्वका राजा है ऐसा कहा है। इसके अतिरिक्त (देवाः सन्ति) दैवीशक्तियां इस जगत्में कार्य कर रही हैं ऐसा जो (यः श्रद्-धाति) श्रद्धापूर्वक मानता है वही सुखी होता है, यह कथन विशेष महत्त्वका है। इस जगत् का प्रभु एक है और उसकी अनंत शक्तियां इस विश्वमें कार्य कर रहीं हैं। यदि यह कल्पना पाठकोंको ठीक तरह हो जायगी, तो मनुष्य दिव्य बन जानेमें कोई संदेहहीं नहीं है।

आगेके मंत्रोंमें सर्व साधारण निर्भयताकी प्रार्थना है। इस प्रकार इस सूक्तका आशय है।

विराट् अन्न ।

[३]

(ऋषिः- अथर्वा । देवता-ओदनः)

(१) तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२॥
चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोपाविनक् ॥ ४ ॥
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥
कब्रु फलीकरणाः शरोभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥

अर्थ- (तस्य ओदनस्य बृहस्पतिः शिरः) उस अन्न का बृहस्पति सिर है, (ब्रह्म मुखं) ब्राह्मण मुख है ॥ १ ॥ (द्यावापृथिवी श्रोत्रे) द्यु और पृथ्वी कान हैं, (सूर्याचन्द्रमसौ अक्षिणी) सूर्य और चन्द्र आंख हैं, (सप्त ऋषयः प्राणापानाः) सात ऋषि प्राण और अपान हैं ॥ २ ॥ (मुसलं चक्षुः, उलूखलं कामः) मुसल दृष्टी है और उलूखल काम है ॥ ३ ॥ (दितिः शूर्प) विभाग छाज है, (अदितिः शूर्पग्राही) अविभक्तता सूर्पको पकड-नेवाली है, (वातः अपाविनक्) वायु तुषोंको पृथक् करनेवाला है ॥ ४ ॥ (कणाः अश्वाः) अन्न के कण घोडे हैं, (तण्डुलाः गावः) चावल गौवें हैं, (तुषाः मशकाः) तुष मशक-मच्छर हैं, ॥ ५ ॥ (फलीकरणाः कब्रु) टुकडे ये दृश्य हैं, (अभ्रं शरः) मेघ ही ऊपरका छिलका है ॥ ६ ॥ (श्यामं अयः अस्य मांसानि) काला लोहा इसके मांस हैं, (लोहितं अस्य लोहितं) लाल लोहा इसका रक्त है ॥ ७ ॥ (त्रपु भस्म) टीन-कथिल इसका भस्म है, (हरितं वर्णः) हरा इसका वर्ण है, (पुष्करं अस्य गन्धः) पुष्कर इसका गन्ध है ॥ ८ ॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥
इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोऽभीन्धे ॥ १८ ॥

अर्थ- (खलः पात्रं) खल इसका पात्र है, (स्फ्यौ अंसौ) दोनों स्फ्य नामक यज्ञसाधन कंधे हैं, (ईषे अनुक्ये) ईषा नामक साधन हंसली की हड्डी हैं ॥ ९ ॥ (जत्रवः आन्त्राणि) रसियां आतें हैं और (वत्राः गुदाः) बैल जोडनेके चर्म गुदा हैं ॥ १० ॥ (राध्यमानस्य ओदनस्य) पकाये जानेवाले चावलोंके (इयं एव पृथिवी कुंभी भवति) यही भूमि डेगची होती है, और (द्यौः अपिधानं) द्युलोक ढक्कन होता है ॥ ११ ॥ (सिताः पर्शवः) हल पसुलियां और (सिकताः ऊबध्यं) रेत और मलस्थान है ॥ १२॥ (ऋतं हस्तावलेजनं) सत्य ही हाथ धोनेवाला जल है, (कुल्या उपसेचनं) नहरें जलसिंचन हैं ॥ १३ ॥ (ऋचा कुंभी अधिहिता) ऋग्वेदमंत्र द्वारा डेगची रखी गई है, (आर्त्विज्येन प्रेषिता) यजुर्वेदद्वारा हिलाई गई ॥ १४ ॥ (ब्रह्मणा परिगृहीता) अथर्ववेद द्वारा पकडी गई और (साम्ना पर्यूढा) सामवेदसे ढांकी गई है। ॥ १५ ॥ (बृहत् आयवनं, रथंतरं दर्विः) बृहत्साम मिलानेवाला है और रथन्तर साम कडच्छी है, ॥ १६ ॥ (ऋतवः पक्तारः, आर्तवः समिन्धते) ऋतु पकानेवाले हैं और ऋतुके दिन अग्नि प्रदीप्त करते हैं ॥ १७ ॥ (पञ्चबिलं उखं चरुं धर्मः अभीन्धे) पांच मुखवाले डेगचीमें रहनेवाले चावलको गर्मी उबालती है ॥ १८ ॥

ओ॒द॒नेन॑ यज्ञव॒चः सर्वे॑ लो॒काः स॑मा॒प्याः ॥ १९ ॥
यस्मि॑न्त्समु॒द्रो द्यौर्भूमि॒स्त्रयो॑ वर॒परं॒ श्रि॒ताः ॥ २० ॥
यस्य॑ दे॒वा अक॑ल्प॒न्तोच्छि॑ष्टे॒ षड॑शी॒तयः॑ ॥ २१ ॥
तं त्वौ॑द॒नस्य॑ पृच्छामि॒ यो अ॑स्य महि॒मा म॒हान् ॥ २२ ॥
स य ओ॑द॒नस्य॑ महि॒मानं॑ वि॒द्यात् ॥ २३ ॥
नाल्प॒ इति॑ ब्रूया॒न्नानु॑पसेच॒न इति॒ नेदं॑ च॒ किं चेति॑॥ २४ ॥
याव॑त् दाताभिमन॒स्येत॒ तन्नाति॑ वदेत् ॥ २५ ॥
ब्र॒ह्म॒वा॒दिनो॑ वदन्ति॒ परा॑ञ्चमोद॒नं प्राशी३ः प्र॒त्यञ्चा३मिति॑ ॥२६॥
त्वमो॑द॒नं प्राशी३स्त्वामो॑द॒ना३ इति॑ ॥ २७ ॥
परा॑ञ्चं चैन॒ं प्राशीः॑ प्रा॒णास्त्वा॑ हास्य॒न्तीत्ये॑नमाह ॥ २८ ॥

अर्थ-- इस (ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः) अन्नसे यज्ञद्वारा मिलनेवाले सब लोक प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ (यस्मिन् समुद्रः द्यौः भूमिः त्रयः) जिसमें समुद्र द्युलोक भूमि ये तीनों (अवरपरं श्रिताः) ऊपर नीचे आश्रित हुए हैं ॥ २० ॥ (यस्य उछिष्ट षट् अशीतयः देवाः) जिसके शेष भागमें छः गुणा अस्सी देव (अकल्पयन्त) समर्थ बने हैं ॥ २१ ॥ (त्वा ओदनस्य तं पृच्छामि) तुझे मैं उस अन्नकी उस महिमाको पूछता हूं (यः अस्य महान् महिमा) जो इसका महान् महिमा है ॥ २२ ॥ (सः यः ओदनस्य महिमानं विद्यात्) वह जो इस अन्नकी महिमाको जानता है ॥ २३ ॥ वह (अल्प इति न ब्रूयात्) थोडा है ऐसा न कहे, (अनुपसेचन इति न) जलका अभाव है ऐसा भी न कहे, (इदं च किं च इति न) यह थोडा है ऐसाभी न कहे ॥ २४ ॥ (यावत् दाता अभिमनस्येत् तत् न अतिवदेत्) जितनी दाताकी इच्छा हो उसे कम न कहे ॥ २५ ॥ (ब्रह्मवादिनः वदन्ति) ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि (पराञ्चं ओदनं प्राशीः प्रत्यञ्चं इति) दूरका चावल तुमने खाया अथवा समीपका खाया ? ॥ २६ ॥ (त्वं ओदनः प्राशीः, त्वां ओदनः इति) तू अन्नको खाया अथवा अन्नने तुझे खाया ? ॥ २७ ॥ (पराञ्चं ओदनं प्राशीः) यदि तू परला अन्न खाया है तो (त्वा प्राणाः हास्यन्ति इति एनं आह) तुझे प्राण छोड देंगे ऐसा इसे कहता है ॥ २८ ॥

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥३०॥ ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥३१॥ (८)

[२]

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । बृहस्पतिना शीर्ष्णा ॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥ सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३२ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ॥ तं वा० । द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।

अर्थ-(प्रत्यंचं च एनं प्राशी) यदि सन्मुख का खाया है तो (अपानाः त्वा हास्यन्ति इति एनं आह) अपान तुझे छोडेंगे ऐसा इसे कह ॥२९॥ (न एव अहं ओदनं) नहीं मैंने अन्नको खाया और (न मां ओदनः) न मुझे अन्नने खाया ॥३०॥ प्रत्युत (आदनः एव ओदनं प्राशीत्) अन्नने ही अन्नको खाया है ॥३१॥ (८)

(ततः च एनं अन्येन शीर्ष्णा प्राशीः) पश्चात् इसका अन्य सिरसे तू प्राशन करेगा (येन च पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्) जिससे पूर्व ऋषियोंने प्राशन किया था उससे न करेगा तो (ज्येष्ठतः ते प्रजा मरिष्यति इति एनं आह) ज्येष्ठको प्रारंभ करके तेरी संतान मर जायगी ऐसा इसे कह। (तं वा अहं न अर्वांचं न पराञ्चं) उसका मैंने नीचेसे, उरली ओर और परली ओर प्राशन नहीं किया, मैंने (ब्रहस्पतिना शीर्ष्णा) बृहस्पतिको मुखिया बनाकर (तेन एनं प्राशिषं) उससे इस अन्नका प्राशन किया, (तेन एनं अजीगमं) उससे इसको प्राप्त किया। अतः (एषः ओदनः सर्वांगः वै) यह अन्न परिपूर्ण है (सर्वपरुः सर्वततूः) सब अंगों और सब अवयवोंसे युक्त है। इस तरह (य एवं वेद सर्वांगः सर्वपरुः सर्वततूः भवति ऐसा जो जानता है वह सर्वांग और सब अंगों और अवयवोंसे युक्त होता है ॥ ३२ ॥

ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा० ॥ ३३ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ॥ तं वा० ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् । ताभ्यामेनं ०।०।० ॥ ३४ ॥
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा० । ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा० ॥ ३५ ॥ ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा० । अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् । एष वा० ॥३६॥

अर्थ— (याभ्यां च एतं पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्) जिनसे इसका प्राशन पूर्वऋषियोंने किया था उससे (अन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां ततः एनं प्राशीः) भिन्न दूसरे कानोंसे प्राशन करेगा तो (बधिरो भविष्यसि इति एनं आह) बधिर हो जायगा, ऐसा इसे कहे । (तं वा०... द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्यां) उसको मैंने...... द्युलोक और पृथ्वी लोकके कानोंसे (ताभ्यां एनं प्राशिषं) उनसे मैंने प्राशन किया,(ताभ्यां एनं अजीगमं) उनसे इसको प्राप्त किया० ॥ ३३ ॥

(याभ्यां च एतं पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्) जिनसे पूर्व ऋषियोंने प्राशन किया था, उससे भिन्न (ततः च एनं अन्याभ्यां अक्षिभ्यां प्राशीः) दूसरे आखोंसे तूने इसका सेवन किया तो (अंधः भविष्यसि इति एनं आह) अन्धा हो जायगा ऐसा इसे कहे । (तं वा० ... सूर्याचन्द्रमसाभ्यां अक्षीभ्यां ताभ्यां एनं० ...) उसका मैंने सूर्यचन्द्रमारूपी आंखोंसे सेवन किया इ० ॥ ३४ ॥ (येन च एतं पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्) जिससे इसका पूर्व ऋषियोंने सेवन किया उससे भिन्न (ततः च एनं अन्येन मुखेन प्राशीः) दूसरे मुखसे प्राशन करेगा तो (मुखतः ते प्रजा मरिष्याति इति एनं आह) मुखसे तेरी संतान मरेगी ऐसा इसे समझा दो । (तं वा० ... ... ब्रह्मणा मुखेन तेन एनं प्राशिषं तेन एनं अजीगमं) उसका ... ... मैंने ज्ञानके मुखसे सेवन किया और उससे इसको प्राप्त किया० ॥ ३५ ॥

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह । तं वा० । ऋतुभिर्दन्तैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् । एष वा ० । ० ॥ ३७॥ ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह । तं वा ० । सप्तर्षिभिः प्राणापानैः । तैरेनं ०। ०। ० ॥ ३८ ॥ ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा ० । अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ०। ० ॥३९॥ ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ तं वा ० । दिवा पृष्ठेन । तेनैनं ०।०।० ॥४० ॥ ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व

अर्थ-(यया एतं पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्)जिससे पूर्वके ज्ञानियोंने प्राशन किया था उससे भिन्न (ततः च एनं अन्यया जिह्वया प्राशीः) दूसरी जिह्वासे इसका सेवन करोगे तो (जिह्वा ते मरिष्यसि इति एनं आह) तेरी जिह्वा मरेगी ऐसा इसे कह । (तं वा० ... ... अग्नेः जिह्वया प्राशिषं०) उसका मैंने अग्नि की जिह्वासे प्राशन किया० ॥ ३६ ॥

जिनसे पूर्व ऋषियोंने उसका सेवन किया था उससे भिन्न (ततः च एनं अन्यैः दन्तैः प्राशीः) दूसरे अन्य दातोंसे तूने इनका सेवन किया (दन्ताः ते शत्स्यन्ति इति०) तेरे दांत टूट जांयगे ऐसा इसे कहो। (तं० ... ... ऋतुभिः दन्तैः०) उसका मैंने ऋतुरूपी दान्तों से प्राशन किया था॥३७॥ जिससे पूर्व ऋषियोंने इसका सेवन किया था उससे भिन्न (अन्यैः प्राणापानैः प्राशीः) प्राण अपानोंसे तूने इसका स्वीकार किया तो तेरे प्राण और अपान तुझे छोड देंगे ऐसा कह । उसे मैंने (सप्तर्षिभिः प्राणापानैः०) सप्त ऋषिरूप प्राण अपानसे मैंने सेवन किया था० ॥ ३८ ॥

जिससे इसको पूर्व ऋषियोंने सेवन किया था उससे भिन्न (अन्येन व्यचसा प्राशीः) दूसरे अन्य प्राणोंसे प्राशन करोगे तो (राजयक्ष्मः त्वा हनिष्यति) राजयक्ष्मा तेरा नाश करेगा, ऐसा इससे कह, (तं वै०... अन्तरिक्षेण व्यचसा तेन एनं प्राशिषं०...) उसे मैंने अन्तरिक्षरूप अन्तः प्राणसे सेवन किया और उससे प्राप्त किया० ॥ ३९ ॥ जिससे पूर्व ऋषि-

ऋषयः प्राश्नन् । कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ॥ तं वा० । पृथिव्यो-
रसा ॥ तेनैनं ०।०।० ॥ ४१ ॥ ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं
पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा ०
सत्येनोदरेण ॥ तेनैनं ०।०।० ॥४२॥ ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशी-
र्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ॥ तं वा ० ।
समुद्रेण वस्तिना । तेनैनं ०।०।० ॥ ४३ ॥ ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां
प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।
तं वा ० ॥ मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनम-
जीगमम् ॥ एष वा ०।० ॥४४॥ ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशी-

योंने प्राशन किया उससे भिन्न दूसरे (पृष्ठेन०) पृष्ठभागसे तू प्राशन करेगा तो तुझे (विद्युत् त्वा हनिष्यति) बिजुली तेरा नाश करेगी, ऐसा इसे कहो । (तं वा०...दिवा पृष्ठेन०...) उसको मैंने द्युलोकरूपी पीठसे प्राशन किया० ॥ ४० ॥ जिससे पूर्व ऋषियोंने सेवन किया उससे भिन्न (अन्येन उरसा) छातीसे सेवन करोगे तो (कृष्या न रोत्स्यसि इति०...) खेतीसे समृद्ध न होगा । (तं वै०...पृथिव्या उरसा०...) उसे मैंने पृथ्वी-रूप उरसे सेवन किया० ॥ ४१ ॥ जिसको पूर्व ऋषियोंने जिससे सेवन किया था उससे भिन्न (अन्येन उदरेण०) दूसरे पेटसे तुम सेवन करोगे तो (उदर-दारः त्वा हनिष्यति इति) पेटको फाडनेवाला अतिसाररोग तेरा नाश करेगा ऐसा इसे कहो । (तं वा०''' सत्येन उदरेण०...) उसे मैंने सत्यरूप पेटके द्वारा सेवन किया०... ॥ ४२ ॥ पूर्व ऋषियोंने जिससे सेवन किया था उससे भिन्न (अन्येन बस्तिना प्राशीः०...) दूसरे बस्तिसे तूने सेवन किया तो तू (अप्सु मरिष्यसि) जलमें मरेगा । (तं वै०... समुद्रेण बस्तिना०...) उसका मैंने समुद्ररूपी बस्तीसे सेवन किया०... ॥ ४३ ॥

जिससे पूर्व ऋषियोंने सेवन किया था उससे भिन्न (अन्याभ्यां ऊरुभ्यां प्राशीः) दूसरी जंघाओंसे उसका सेवन करोगे तो (ते ऊरू मरिष्यतः) तेरी जंघाएं नष्ट हो जांयगी, (तं वै०...मित्रावरुणयोः ऊरुभ्यां प्राशिषं०...) उसका मैंने मित्रवरुणकी ऊरुओंसे सेवन किया०... ॥ ४४ ॥ पूर्व ऋषियोंने

यांभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। स्रामो भविष्यसीत्येनमाह॥ तं वा०। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् ॥ ताभ्यामेनं ०।०।० ॥ ४५ ॥ ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं वा ०॥ अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं ०।०।० ॥ ४६ ॥ ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा ०। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं ०।०।० ॥ ४७ ॥ ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। तं वा ०। ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं ०।०। ॥ ४८ ॥ ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयै-

जिससे इसका सेवन किया था उससे भिन्न (अन्याभ्यां अष्ठीवद्भ्यां प्राशीः) दूसरे जानुओंसे सेवन करोगे, तो तू (स्रामः भविष्यसि) लंगडा हो जायगा ऐसा इसे कहो, (तं वै०...... त्वष्टुः अष्ठीवद्भ्यां०...) उसे मैंने त्वष्टाकी जानुओंसे सेवन किया०... ॥ ४५ ॥ जिससे पूर्व ऋषियोंने सेवन किया था उससे भिन्न (अन्याभ्यां पादाभ्यां०...) दूसरे पावोंसे सेवन करोगे तो (बहुचारी भविष्यसि) तुम्हें बहुत चलना पडेगा। (तं वै०... अश्विनोः पादाभ्यां०...) उसका मैंने अश्विदेवोंके पावोंसे सेवन किया०... ॥ ४६ ॥ जिससे पूर्व ऋषियोंने सेवन किया था उससे भिन्न (अन्याभ्यां प्रपदाभ्यां०...) दूसरे पंजोंसे तूने सेवन किया तो (सर्पः त्वा हनिष्यति०) सांप तुझे मारेगा। (तं वै०...सवितुः प्रपदाभ्यां०...) उसे सविताके पंजोंसे मैंने सेवन किया०... ॥ ४७ ॥ जिससे पूर्व ऋषियोंने सेवन किया उससे भिन्न (अन्याभ्यां हस्ताभ्यां०...) दूसरे हाथोंसे यदि तूने उसका सेवन किया तो (ब्राह्मणं हनिष्यसि०) तू ब्राह्मणका घात करेगा (तं वै०...ऋतस्य हस्ताभ्यां०...) उसे मैंने ऋतके हाथोंसे सेवन किया०... ॥४८॥ जिससे पूर्व ऋषियोंने इसका सेवन किया था उससे (अन्यया

नमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४९ ॥ (९)

[३]

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥ ५१ ॥
एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥५२॥
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥
स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४ ॥
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥
न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥ (१०)

प्रतिष्ठया प्राशीः०...) दूसरी प्रतिष्ठासे तूने सेवन किया, तो (अप्रतिष्ठानः अनायतनः मरिष्यसि) तू प्रतिष्ठारहित आधाररहित होकर मरेगा, ऐसा कहो। (तं वै०... सत्ये प्रतिष्ठाय तया एनं प्राशिषं०) सत्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त होनेके लिये सेवन किया जिससे मैं सब अंगों और अवयवोंसे युक्त हुआ। जो यह जानता है वह भी-सब अंगों और अवयवोंसे युक्त होगा ॥ ४९ ॥ ॥ ९ ॥

(यत् ओदनः एतत् वै ब्रध्नस्य विष्टपं) जो अन्न है वह सचमुच स्वर्ग-धाम है ॥ ५० ॥ (यः एवं वेद) जो ऐसा जानता है वह (ब्रध्नलोको भवति) स्वर्गलोकके लिये योग्य होता है, (ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते) स्वर्गलोकमें रहता है ॥ ५१ ॥ (तस्मात् ओदनात् प्रजापतिः त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत) उस अन्नसे प्रजापतिने तैंतीस लोकोंको निर्माण किया ॥ ५२ ॥ (तेषां प्रज्ञानाय यज्ञं असृजत) उनके ज्ञानके लिये यज्ञको निर्माण किया ॥ ५३ ॥ (सः य एवं विदुषः उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि) वह जो इसको जाननेवालेका निंदक होता है वह प्राणका नाश करता है ॥ ५४ ॥ (न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते) न केवल प्राण का ही नाश होता है, परंतु सब जीवनका नाश होता है॥५५ (न च सर्वज्यानिं जीयते) सर्वस्वनाश होता है ऐसाही नहीं परंतु (जरसः पुरा एनं प्राणः जहाति) वृद्धावस्थाके पूर्व इसको प्राण छोड जाता है ॥ ५६ ॥ (१०)

अन्नका महत्त्व ।

अन्नके महत्त्वका वर्णन इस सूक्तमें काव्यकी आलंकारिक भाषामें किया है । यह देखनेसे पता लगता है कि अन्नभी मनुष्यको स्वर्गधामका सुख देनेवाला है । संपूर्ण विश्व अन्नमय है । यह जो कुछ है वह सब अन्न ही है । यही अन्नका विश्वरूप है ।

अन्न सेवन करना हो तो जैसा ऋषिलोग उसका सेवन किया करते थे वैसाही करना चाहिये,अन्यथा मनुष्यका नाश होगा। यह सूचना इस सूक्तमें विशेष महत्त्वकी है।

पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका मनन करें। इस सूक्तके प्रारंभमें तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे कुछ बातें विचारणीय है । २७ वें मंत्रमें एक प्रश्न पूछा है—

त्वं ओदनं प्राशीः त्वां ओदनः इति ? (२७)

"तूने इस अन्नका प्राशन किया अथवा इस अन्नने तेरा भक्षण किया ?" यह प्रश्न बडाही विचारणीय है। हम जो अन्न खा रहे हैं वह हमें खा रहा है अथवा हम उस अन्नको भोग रहे हैं ? हम जो भोग भोग रहे हैं वे भोग हमारा उपभोग ले रहे हैं अथवा हम उन भोगोंका उपभोग ले रहे हैं ? कितना गंभीर प्रश्न है! हरएक मनुष्यको इसका विचार करना चाहिये । क्या हो रहा है ? मनुष्य भोगोंको बढा रहे हैं । उन भोगोंको बढानेमें कितनी शक्ति व्यय हो रही है ? इतनी शक्तिका व्यय करके मनुष्य भोगोंको भोग रहे हैं या वे भोगही मानवी जीवनको खा रहे हैं इसका कोई विचार नहीं करता ! कितना आश्चर्य है ?

मनुष्यके अन्न वस्त्र गृह स्त्री राज्य धन ऐश्वर्य ये भोग मनुष्यकोही खा रहे हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह इनका भोग करके आनंद प्राप्त करे। परंतु होता है यह कि मनुष्यका दुःखही बढ रहा है। क्यों ऐसा होता है, इसका विचार मनुष्यको करना चाहिये । इस मंत्रके प्रश्नमें यह महत्त्वपूर्ण आशय है। पाठक विचार करें कि वेदने एकहि प्रश्नसे कितने महत्त्वपूर्ण विचारपरंपराको चालना दी। जो विचार करेंगे और सोचेंगे उनके लिये यह प्रश्न जीवनका परिवर्तन करनेवाला है ।

इस प्रश्नका उत्तर कैसा होना चाहिये, यह बात इसी सूक्तने बतायी है। मंत्रही उत्तर देता है— न एव अहं ओदनं न मां ओदनः । (३०)

" न मुझे अन्नने खाया,न मैंने अन्नको खाया । " अर्थात् हम दोनों ऐसे निर्विकार भावसे एक दुसरेके पास आगये कि जिससे दोनोंमेंसे किसीका दुसरेपर बुरा प्रभाव नहीं हुआ । न मैंने अन्नको खा खा कर कम किया, अर्थात् आवश्यकताकी

अपेक्षा अधिक नहीं खाया और ना ही अपने पास भोग्य वस्तुओंका संग्रह करके दुसरोंसे वंचित रखा। और नहीं अन्नने मुझे खाया, अर्थात् न अन्नही मेरे ऊपर सवार होकर मेरा नाश करने लगा। मैं और अन्न साथ साथ रहे, एक दूसरेको सहायक हुए, एक दूसरेकी प्रतिष्ठा बढाने लगे, एक दूसरेकी महिमा बढाते हुए जगत् का उपकार करनेमें सहायक हुए।

पाठक इस उत्तरका विचार करें। क्या यह उत्तर पाठकोंके विषयमें सार्थ हो सकता है? पाठकोंके जीवनमें यह उत्तर घट रहा है या नहीं, इसका विचार पाठकही करें। भोग और भोग लेनेवाला एक दूसरेके पास आगये, तो परस्परके उपकारक होने चाहिये, यह नियम यहां बताया है, एक दूसरेकी शक्ति घटानेवाले नहीं होने चाहिये। कितना उत्तम उपदेश है, इसका मनन पाठक करें।

यहां ही इस जीवनके तत्त्वज्ञानकी समाप्ति नहीं हुई। आगे मंत्र सबकी एकरूपता कहता है—

ओदन एव ओदनं प्राशीत्। (३१)

" अन्ननेही अन्नको खाया है। " अर्थात् भोक्ता और भोग्य एकही तत्त्व है। जैसा भगवद्गीतामें कहा है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्॥ (गी० ४-२५)
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ (गी० ९-१६)

" ब्रह्मही अर्पणद्रव्य है और ब्रह्मही अर्पणकर्ता है। " यह जो गीतामें कहा वह इसी मंत्रके आधारसे कहा, अथवा हम यों कह सकते हैं, वेदके विचार और गीताके विचार यहां समान हैं।

हम खानेवालेभी अन्नही हैं और हम जो खाते हैं वह भी अन्नही है। पाठक विचार करेंगे तो उनको यह बात समझमें आ सकती है कि मनुष्यभी अन्नही है। मनुष्यका शरीर हिंस्रप्राणियोंका अन्न तो है हि, परंतु उच्छ्वास जो वायु मनुष्यादि प्राणी बाहर फेंकते हैं वह लेकर वनस्पतियां पुष्ट हो सकती हैं। इस तरह यह विचार अनेक रीतियोंसे अनुभवमें आसकता है।

एकतत्त्वका अभ्यास इस तरह यहां वेदमंत्रने पाठकोंको कराया है। आशा है इस तरह विचार करके पाठक इस सूक्तसे योग्य बोध ले सकते हैं।

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

(१) यजुर्वेद । बिना जिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥
कागजी जिल्द २) ")
कापडी जिल्द २॥) "
रेशमी जिल्द ३) "

(३) संस्कृतपाठमाला १ अंकका मू.।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥=)

४ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू १) ।)

(५) अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

१ प्रथम काण्ड	२)	॥)
२ द्वितीय काण्ड	२)	॥)
३ तृतीय काण्ड	२)	॥)
४ चतुर्थ काण्ड	२)	॥)
५ पंचम काण्ड	२)	॥)
६ षष्ठ काण्ड	२)	॥)
७ सप्तम काण्ड	२)	॥)
८ अष्टम काण्ड	२)	॥)
९ नवम काण्ड	२)	॥)
१० त्रयोदश काण्ड	१)	।=)
११ चतुर्दश कांड	१)	।)
१२ १५ से १८ तक ४ काण्ड	२॥)	॥)

(६) छूत और अछूत ।
१-२ भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

(७) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से ८ प्रत्येकका मू० ॥) डा०व्य० =)

(८) महाभारतकी समालोचना ।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(९) वेदका स्वयंशिक्षक । भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(१०) योगसाधनमाला ।

१ संध्योपासना ।	१॥)	।-)
२ योगके आसन ।(सचित्र)	२)	।≡)
३ ब्रह्मचर्य ।	१)	।-)
३ सूर्यभेदन-व्यायाम ।	" ॥)	=)
५ योगसाधनकी तयारी ।	॥।)	।)

(११) यजु. अ. ३६ शांतिका उपाय ॥=) ।)

(१२) शतपथबोधामृत ।) -)

(१३) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

१ रुद्रदेवतापरिचय	॥)	=)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता	॥=)	=)
३ ३३ देवताओंका विचार	≡)	-)
४ देवताविचार ।	≡)	-)
५ अग्निविद्या ।	१॥)	।-)

(१४) बालकधर्मशिक्षा ।

१ प्रथम भाग	-)	-)
२ बालकधर्मशिक्षा।द्वितीय भाग	=)	-)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक	≡)	-)

(१५) आगमनिबंधमाला ।

१ वैदिक राज्यपद्धति ।	।-)	-)
२ मानवी आयुष्य ।	।)	-)
३ वैदिक सभ्यता ।	॥।)	≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र	।=)	-)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥)	=)
६ वैदिक सर्पविद्या।	॥)	=)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय ।	॥)	=)
८ वेदमें चर्खा ।	॥)	॥)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता	॥।)	=)
१० तर्कसे वेदका अर्थ ।	॥)	=)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र ।	≡)	-)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने।	।-)	-)
१३ वेदमें कृषिविद्या ।	≡)	-)
१४ वैदिक जलविद्या ।	=)	-)
१५ आत्मशक्तिका विकास	।-)	-)
१६ वैदिक उपदेशमाला ।	॥)	=)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न	=)	-)

१६ उपनिषदमाला । १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद् । १।) ।-)

(१७) अन्य ग्रंथ ।

१ वैदिक अध्यात्मविद्या	॥)	॥)
२ गीता-समीक्षा	=)	-)
३ भगवद्गीता-लेखमाला	॥)	=)
५ गीताश्लोकार्धसूची	।=)	=)
6 Sun Adoration	१)	।=)

Regd. N. B. 1463

गीता।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अध्यात्म विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। कुल पृ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०

"वैदिक धर्म" का" " म० आ० से ३) रु वी०पी०से ३।=) "

दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

" " " " " " वी. पी. से ५।।।) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं हैं, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है।

आदिपर्व ६।।≡) रु.; सभापर्व २।।) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५।।=) भीष्मपर्व ४।।।≡) रु.; द्रोणपर्व ८।।) रु.; कर्णपर्व ३।।।) रु.; शल्यपर्व २।।-) रु.; सौप्तिकपर्व ।।।) स्त्रीपर्व ।।-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६।≡) रु.; आश्वमेधिकपर्व २।।-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु.; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ।।।-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक—श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध.

Received on 21th march 1935

वैदिक धर्म

माघ
संवत् १९९१
फर्वरी
सन १९३५
वर्ष १६
अंक २
क्रमांक
१८२

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृत-पाठ-माला"

के २४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये। २४ भागोंका मूल्य ६॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य१) और एक भागका मू० ॥) । वी०पी०द्वारा ।) चार आने अधिक मूल्य होगा।

— मंत्री,स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

वर्ष १६]

विषयसूची।

[अंक २

वैदिक प्राणविद्या
(नया संस्करण)

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है। मूल्य ॥) और डा० व्य० =) है।

मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ब्रह्मचर्यका विघ्न

मूल्य =) दो आने। डा० व्य-) डा० व्य० सहित मू० ≡) तीन आनेकी टिकट भेजकर पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

नया संस्करण! नया संस्करण

योगसाधनकी तैयारी

योगसाधनसे हमारी शक्ति बढती है, इसलिये योगविषयक अत्यन्त आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है।

अच्छी जिल्द मू० ॥।) बारह आने। डा०व्य० ।) इस लिये १) एक रु० म० आ० से या टिकट द्वारा भेजकर शीघ्र ही यह पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

YOGA

An International Illustrated Practical Monthly on the Science of Yoga edited by Shri Yogendra

Specimen Copy As. 8.;
Annual Subscription Rs. 3

YOGA INSTITUTE
P. B. 481 BOMBAY

आविष्कार-विज्ञान

लेखक-उदय भानु शर्माजी। इस पुस्तकमें अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्, इंद्रियां और उनकी रचना, ध्यानसे उन्नति प्राप्त करनेकी रीति, मेधावर्धनका उपाय, इत्यादि आध्यात्मिक बातोंका उत्तम वर्णन है। जो लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके इच्छुक हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये। पुस्तक अत्यंत सुबोध और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे लिखी होनेके कारण इसके पढनेसे हरएकको लाभ हो सकता है। पूर्वार्धका मूल्य ॥=) और डा.व्य. ≡) है। द्वितीयार्धका मू० ॥।) और डा०व्य० ≡) है।

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा.)

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य २॥) रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे पूर्ण होनेसे देखनलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। जादह हकीकत के लिये लिखो।

मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोदा

वर्ष १६
अंक २
क्रमांक १८२

वैदिक धर्म

माघ संवत् १९९१
फर्वरी सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

स्वराजकी उपासना

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अतिस्रिधः॥

ऋग्वेद १।३६।७

" (नमस्विनः) नमस्कार करनेवाले, अन्नवाले किंवा शस्त्रधारी जन (तं स्वराजं ईं घ इत्था उपासते) उस स्वराजकी ऐसी उपासना करते हैं, कि जिससे (स्रिधः अतितितिर्वांसः) शत्रुसे पास होनेकी इच्छा करनेवाले (मनुषः) लोग (होत्राभिः अग्निं समिन्धते) समर्पणोंसे तेजस्वी देवताकी प्रदीप्ति करते हैं ॥ "

जिनके पास अन्न है वे अन्नका दान करते हैं, जिनके पास शस्त्र हैं, वे रक्षाके लिये आत्मसमर्पण करते हैं और सब मिलकर स्वराज्यकी उपासना करते हैं। सबकी एकही इच्छा है कि स्वराजसे आत्माका प्रकाश प्रकट होवे। शत्रूको परास्त करना और कठिनताओंसे दूर होना यही एकमात्र उद्देश्य इनका रहता है। मानो ये आत्मसमर्पणोंसे सबके सब तेजस्वी देवकोही प्रकट करते हैं, क्यों कि उसी देवताका प्रकाश अपने अन्दर प्रकट होनेके वे इच्छुक हैं।

आर्यकुलोंकी आवश्यकता।

(ले०-श्री० वसिष्ठजी)

किसी व्यक्ति, समाज, जाति अथवा राष्ट्रके बालकोंका शारीरिक मानसिक एवं मस्तिष्कसम्बन्धी विकास किस प्रकार किया जावे ताकि उनका भावी जीवन प्राकृत स्वच्छन्द सदाचाररत होकर समाज, जाति, राष्ट्र एवं उन बालकोंके लिए यज्ञ-मय, कल्याणकारी, पथप्रदर्शक बने; यदि इतना न भी हो सके तो वह वयो-वृद्ध बालक अपने तथा समाज, जाति एवं राष्ट्रके लिये अनिष्टकर न हो, इस विषयपर 'वैदिक धर्म'के मई मासके अंकमें प्रकाशित "ब्रह्मचारीका प्राकृत जीवन" शीर्षक लेखमें पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

जिस प्रकार हम आर्यसमाजियोंने अपनी संतानको आर्यसमाजी बाबू बनाकर आधुनिक सभ्यताके अन्तर्गत प्रतिष्ठासे चार पैसा कमानेके लिये तथा लार्ड मिकालेकी गवर्नमेन्टको काले चमडेवाले आर्यसमाजी अंगरेज देनेके निमित्त अनेक आर्य स्कूल व कालेज खोले। अन्य सम्प्रदायोंको अपनी स्वच्छ तथा शांत संस्कृतिका पश्चिमीय-करण करता देखकर जिस प्रकार हमनेभी " तू करेसे मैं करूं ' की धुनमें आर्य स्कूल व कालेज खोलकर दूसरोंके बालकोंके साथ साथ अपनी संतानको भी प्रतिष्ठित गुलाम बाबू बनानेका घृणित स्वार्थ सिद्ध कर लिया ठीक इसी प्रकार अपना उच्च प्रशंसनीय स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए भी अब " आर्षकुल " खोलनेकी अनिवार्य आवश्यकता है, यदि हम अपनी अभागी सन्तानकी आत्मासे (जो शैशव-स्वभावसेही सौम्य तथा प्राकृत है) न कि उसके शरीरशृंगार सच्चा प्रेम करते हैं।

उपरोक्त कारण तथा आवश्यकताओंमेंसे प्रथम किसी सुव्यवस्थित तथा सदाचार-रत राष्ट्रके शिशु जीवन-विकास सम्बन्ध रखती है तथा दूसरी हम अव्यवस्थित, आर्यजीवनविहीन आर्योंकी अभागी सन्तानके अभ्युदयसे— हमारे प्रशंसनीय भावी स्वार्थसे।

उपरोक्त दो आवश्यकताओंसेभी कहीं महान्, अनिवार्य आवश्यकता है मनुष्यत्वकी रक्षा, ऋषि-ऋणकी वेदोंकी, नरमेध यज्ञके लिए यज्ञमय जीवन को मूर्त करना तथा संसारके लिए सार्व-भौम शान्ति की पुनःस्थापना जिसके लिए हमने महर्षि दयानन्दसे उत्तराधिकार पाकर " कृण्वन्तो विश्व-मार्यम् " का सूक्त (सु+उक्त) यज्ञोपवीतवत् धारण किया हुआ है।

अन्य सम्प्रदायोंके " श्रीगणेशाय नमः " आदि शीर्षकोंके समानही हमारा " कृण्वन्तो विश्व-मार्यम् " कहीं साम्प्रदायिक चिह्न न बन जावे, यदि इस भावी आशंकासे बचना है तो हमें इस सूक्तको अपने क्रियात्मक जीवनमें मूर्त बनानाही लाभप्रद होगा।

वेदोंका शाब्द-संदेश हम बहुत दूर तक पहुंचा चुके। हमारे गत ५० वर्षके परीक्षणने हमें यह अनुभव करा दिया कि सत्य-सोपानको पानेका दूसरोंको उपदेश देकर हमने खुद उसे चखकर उसका स्वाद नहीं जाना। जब वक्ताओं और श्रोताओंनेही उस रसको नहीं चाखा, जहांतक यह संदेश गया था वहांही उसको धारण नहीं किया गया तो आगे धारण करनेवाले मिल जायगे, यह कुछ आशाप्रद प्रतीत नहीं होता।

स्वीकार किया हुआ किन्तु धारण न किया गया ऋत् पन्थका वैदिक संदेश आगामी द्वादश वर्षीय कुछ युगोंमें निर्मूल हो जायगा ऐसा हम अपनी गई और वर्तमान दशाको देखकर अनुभव करने लगे हैं।

दुर्गुण भी तभी सफल तथा चिरस्थायी होता

है जब उसके व्यसनको जीवनके अभ्यासमें परिणत कर लिया जाता है। चाय और सिगरेटकी कम्पनियां कथन-प्रचारके बजाय उनके व्यसनोंका अभ्यास करा देनाही अपने हितमें अधिक सफल और चिरस्थायी समझती हैं। मनुष्य-जातिका शैशव कालही सर्वोत्तम उपजाऊ क्षेत्र है, जहां सद् तथा असद् व्यसनोंकी अमिट स्थापना की जा सकती है।

ऐतिहासिक अनुभव।

हम अन्य मतोंके इतिहासमें एक माननीय अनुभव पाते हैं कि जबतक उनके संचालक अपने अपने मतके मौलिक रूपको मानवजातिके शैशव कालमें वपन करते रहे, तबतक उनका मत विशुद्ध रूपमें फूलता फलता रहा और जब प्रमाद, दलबन्दी, संख्यावृद्धिके प्रलोभन तथा गुरुडमने साम्प्रदायिकताके प्रसारमें क्रियात्मक स्थापनाके बजाय "शब्द-संदेश"का रूप धारण कर लिया तभी वे मत दुर्व्यसनोंके गर्तमें गिरकर भिनकने लगे। उन मतोंका माननीय प्राण केवल "विधान" बनकर "वाणी" और "पुस्तक"का श्रृंगार मात्र रह गया!

मतोंके इतिहासमें हम सर्वप्रथम बौद्धधर्म को पाते हैं, जो सिद्धार्थ गौतमके द्वारा— वेदोंके नामपर, ईश्वरके लिए मूक प्राणियोंकी हत्या, उनके मांसको यज्ञोंमें हविका न देख सकनेके कारण प्रेम और श्रद्धामय क्रान्तिसे उत्पन्न हुआ। किन्तु आज हम उसी बुद्धके अनुयायी बौद्धोंको अन्य मतोंमें हराम जीवोंतक के कच्चे मांसतक को खाजानेवाला पाते हैं। इसके मूलको यदि हम ढूंढें तो पता लगेगा कि बुद्धके जीवनकालसे गुरुकुलीय शिक्षाद्वारा मानवजातिके शैशव कालमें बुद्धकी शिक्षाकी स्थापनाके प्रचलनका अभाव था। चिरकालसे दुर्व्यसनग्रस्त प्रौढ पुरुषोंमें द्रुतगतिसे शब्द-संदेश फैलाकर संख्या वृद्धिका अदूरदर्शी प्रलोभन था। इस प्रकारकी भीम काय किन्तु पोली इमारतका पहलीही वर्षाऋतुसे ढेर होने लगना स्वाभाविक ही था।

जो द्विज विशेषकर ब्राह्मण और क्षत्रिय, बुद्धके विश्वप्रेम, प्राणिमात्रके प्रति दयाके संदेशसे दो दिन पूर्व वेद ईश्वर और देवताओंके लिए मूक प्राणियोंके मांसको हविमें देकर उस हविशेषके स्वादमें मग्न थे, वे बुद्धके सत्य संदेश, भावुक भाषा, प्रेममय आह्वानसे द्रवित हो गये। आत्मग्लानिने अस्थिर क्रान्तिको मूर्त कर दिया और वे बौद्ध प्रवाहमें बह निकले। बुद्धके ओजस्वी संदेशसे वे कुछ कालके लिए अपने चिर अभ्यस्त दुर्व्यसनोंको लात मारकर भाग खडे हुए।

जिसके हर ऋतुके लिए भिन्न भिन्न महल थे, समृद्ध सेठका 'यश' नामका ऐसा विलासप्रिय युवक पुत्र बुद्धका शिष्य बना। बुद्ध उरुवेला जानेपर बिल्व-काश्यप, नदी काश्यप तथा गय-काश्यप नामके तीन विद्वान् कर्मकाण्डी (याज्ञिक) मिले जो यज्ञके बलिदानों व उस आडम्बरपूर्ण ढोंगी यज्ञ-यागके प्रमुख थे। वे अपनी चिर अभ्यस्त प्रथा व व्यसनको भुलाकर बुद्धके साथ हो लिये। यज्ञ-याग, बलिदान, आडम्बर और ढोंगी कर्मकाण्डके कारण पीढियोंसे जिनका स्वभाव इन कर्मोंका व्यसनी बन चुका था ऐसे अनेक नागरिक क्षणिक हृदयकी भावुकतासे द्रवित होकर बौद्ध उपासक (बुद्धके गृहस्थ अनुयायी) बन गये। बुद्धको स्त्रीने अपने पुत्र राहुलको कहा कि 'यह तुम्हारे पिता हैं। जाओ उनसे पित्र-दाय मांगो'। कुमार राहुलके पित्र-दाय मांगनेपर बुद्धने उसे भी संन्यासी (भिक्षु) बना डाला, यद्यपि वह इसका हृदयसे इच्छुक न था और नाही उसने बुद्धके पश्चात् तथागत (बुद्ध) के स्थानकी पूर्ति की। वह बुद्धके शिष्य आनन्दकी निष्ठाको भी न पहुंचा सका।

अलगाय, अनुरुद्ध अपनी मांसे भिक्खु बननेकी अनुमति लेने लगा। मां ने कहा कि 'यदि राजा भद्दिय भद्रक) भिक्खु हो जाय तो तू भी संसार त्यागी हो जाना। निदान दोनों भिक्षु हो गये। आनन्द, भगु, देवदत्त, किंबिल और उपालि कप्पक (नाई) भी भिखु बने। उमंगकी लहर

का प्रवाह इतने वेगपर था कि सावत्थीके सुदत्त अनाथपिण्डक धनकुबेरने उमंगके प्रवाहमें बुद्धके विहारके लिए बागकी समस्त भूमिपर स्वर्णमुद्रा बिछाकर राजकुमार जेतसे उसका जेतवन नाम का आराम (बागीचा) खरीदा।

बुद्धकी सौतेली माता प्रजावती तथा बुद्ध-पत्नी यशोधरा अनेक शाक्य स्त्रियोंके सहित बुद्धकी शिष्या होकर भिखुनी बन गई। सुकुमार जीवन व्यतीत करनेवाली मगध देशकी रानी खेमा (क्षेमा), कोशल नरेश प्रसेनजितकी बूआ सुमना, शाकल नगरकी विदुषी ब्राह्मण-पुत्रियें भद्दा (भद्रा) और कापिलानी उस भावुक उमंगमें सरल, सच्चे और सीधे जीवनके प्रचारक बुद्धकी शिष्याएं बनकर कठोर पव्वज्जा (प्रव्रज्या, संन्यास) धर्मकी तापस-साधनामें दीक्षित हो गईं।

संख्यावृद्धिके प्रलोभनने जोर मारा तो बौद्ध चिकित्सक चिकित्साके प्रलोभनसे अपने पंथकी जनसंख्या वृद्धि करने लगे। धर्मकी मौलिकता, श्रेष्ठता अथवा नवीनतासे आकर्षित होनेकी अपेक्षा सुविख्यात वैद्य जीवक कोमार भच्च (कुमार-भृत्य) की चिकित्साके प्रलोभनसे अनेक रोगी बौद्धसंघमें आने लगे जिस दुष्प्रवृत्तिको बुद्धको रोकना पडा।

जिस प्रकार राजपूतानेके अनेक राजा स्वामी दयानन्दद्वारा उद्घोषित वैदिक सिद्धान्तों, सदाचार, यमनियमोंमें श्रद्धा रखनेकी अपेक्षा उनके व्यक्तित्वके अधिक पुजारी थे, जो ऋषिके निर्वाण प्राप्त करते ही अपनी परंपरागत कुत्सित जीर्ण रस्सीको पुनः जा चिपटे। उसी प्रकार प्राणी मात्रके प्रति दया, आडम्बरयुक्त ढोंगी यज्ञोंमें मूक पशुओंकी हत्याके प्रति ग्लानि; सरल, सच्चे और सीधे जीवनकी साधना आदि बुद्धकी शिक्षाओंकी अपेक्षा उस समयके अग्रणी, प्रतिष्ठित व सम्पन्न लोग बुद्धके व्यक्तित्वके अधिक पुजारी थे। इस पूजाकी धुनमें हम वेसाली नगरकी अम्बपाली वेश्याको मस्त हुआ पाते हैं, जिसकी बगीचीमें तथागत (बुद्ध) ठहरे थे। अम्बपालीने भिक्खु-संघ सहित बुद्धको भोजनका न्योता दे दिया। अम्बपाली वेश्याको तथागतके अहिंसामय उपदेश, सरल सच्चे जीवनके सिद्धान्तोंसे उतना प्रेम नहीं था जितना अपने पापकी कमाईके धनसे बुद्धको ज्योनार देनेका। उसी व्यक्तित्वकी श्रद्धासे द्रवित होकर सुकुमार व विलासप्रिय जीवन व्यतीत करनेवाली वह वेश्या भिक्खुनी बन गई।

यद्यपि इस भिक्खु भिक्खुनी-समुदायने संख्या और कलेवरवृद्धिमें अतीव द्रुत गतिसे आशातीत सफलता प्राप्त की, किन्तु हम इसकी आधारशिलामें आरम्भसेही अनेक विरोधी स्थितियां पाते हैं जो नियमविरोधी ! अभ्यासविरोधी ! तथा स्वभावविरोधी हैं।

एक ओर पीडियोंसे ईश्वर, देवताओं और वेदोंके नामपर यज्ञोंमें भून भून कर मांस चखनेवाले होता और यजमान (ब्राह्मण और क्षत्रिय) हैं जो बुद्धके व्यक्तित्व तथा ओजस्वी उपदेशमें मुग्ध होकर नूतन प्रवाहमें बह निकले हैं। दूसरी ओर है उनका सुकुमार यौवनोन्मत्त पुत्र जो ज्ञान, वैराग्य व तप (संयम) के अभ्यासके अभावमें मार (कामनाओं) पर मार (काबू) पानेमें असमर्थ है। युवा अवस्थामें पितृ-दाय मांगता हुआ प्रव्रज्या (संन्यास) से अलंकृत किया गया है।

एक ओर हम सुकुमार जीवन व्यतीत करनेवाली अनेक राजमहिषियोंको इस कठोर प्रव्रज्य आश्रममें अनायासही (शनैः शनैः नहीं) आप्रविष्ट हुआ पाते हैं, तो दूसरी ओर प्रत्येक पुष्पका रस लेनेवाली भ्रमरीके समान सुकुमार विलासिनी अम्बपाली वेश्याको भी संन्यासपन्थमें बहती हुई देखते हैं। देवदत्तके समान कपटी भी भिक्खु-संघके अंग बनकर फूटका बीज बोनेवाले आ मिले थे। इससे प्रकट होता है कि बौद्ध विहारोंका भिक्खू जीवन कुछ विशेष कठोर न था. तभी तो देवदत्त जैसे कपटी भी दौड पडे, क्यों कि कपटी

मनुष्य सुख-सुविधा-विहीन किसी तापस जीवनकी ओर आकृष्ट नहीं होता ।

बुद्धने मानवजातिके शैशव काल (बालकों) में सरल सच्चे जीवनकी स्थापना (जो बालकोंके लिए पूर्वसेही सिद्ध तथा भविष्यके लिए सहज सम्भव व प्राकृत थी) करनेकी अपेक्षा प्रौढ पुरुषोंको भिक्खु बनाकर पके हुए प्रौढ वृक्षोंको ही मोडनेका विधान बनाया जो सर्वथा नियम, स्वभाव व अभ्यास विरोधी था । अतः बौद्धोंने भिक्खुओं द्वारा संसारमें शब्द-संदेश दिया उसकी स्थापना नहीं की । परिणाम यह हुआ कि दलबन्दीके आधारपर बुद्धके माननेवालों, उसके व्यक्तित्वके, उसके संघके पुजारिओंकी संख्या भयंकर रूपसे बढने लगी । और बुद्धकी शिक्षा केवल "वाणी" और "पुस्तक" का श्रृंगार रह गई ।

कुसिनाराके मल्लोंने बुद्धके शरीरका दाह करके उनकी अस्थि-अवशेषको भालों, धनुषोंसे घेर कर सात दिन तक नाच गानसे सत्कार किया । फिर उस राखके आठ भाग बांट कर उनपर स्तूप बने । बुद्धकी शिक्षाओंके वाणीका श्रृंगार मात्र बन जानेपर पुरोहित और यजमानोंकी निर्वासित मांस-भक्षणकी वृत्ति लौट आई । मनुष्यकी क्रांतिकारी मस्तिष्क खंडनको अधिक ग्रहण करता है । अतः बुद्धद्वारा खण्डित यज्ञ-प्रथा न लौट सकी । पुराने व्यसनके कारण मांसभक्षण चोरीसे फिर कुछ प्रकट तत्पश्चात् वैध माना जाने लगा और यज्ञोंमें अग्निमें डालकर मांसरूपी संपत्तिको व्यर्थ नष्ट करना ही "हिंसा" माना गया । बौद्धोंकी व्यसनग्रस्त बुद्धिने बुद्धकी प्राणीमात्रपर दयारूपी अहिंसाका विचित्र दार्शनिक भाष्य किया और तभीसे शरीरपोषण जैसे उपयोगी कार्यके लिए मांसभक्षणमें "हिंसा" नहीं मानी जाती । इस प्रकार दुर्व्यसनग्रस्त, बौद्ध धर्मके मौलिक नियमोंमें अनभ्यस्त वयो-वृद्ध भिक्षुक बौद्ध धर्मके विकृत रूपको देशान्तरोंमें ले गये, जहां इसकी संख्यावृद्धि, संघप्रसार (जो बुद्धके व्यक्तित्वकी पूजाका रूपान्तर मात्र थी) ही अभीष्ट माना गया । इस प्रकार गणना वृद्धिके प्रलोभनने उन देशस्थ रूढियों तथा दुर्व्यसनोंको उदारतासे जीवित रह कर मिश्रित रहने दिया । चीनकी राजकन्या तिब्बतके राजासे विवाही गई । राज-कन्या बौद्ध थी, अपने साथ बौद्ध धर्म लाई । उसका बौद्ध धर्म भी व्यक्तित्वकी पूजा, संघ-प्रसार व संख्यावृद्धिसे कुछ भिन्न न था । केवल नैमित्तिक कृत्योंके साथ साथ एक पंथको स्वीकार करना था । उसी तिब्बतमें राजकन्याके बौद्ध धर्मके अनुयायी प्राणीमात्रपर दया करनेवाले बुद्धकी पूजाकी पूजा करके गाय, बैल व अन्य पशुओंके कच्चे व मुर्दा मांस, मनुष्यके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले जूँ नामक जन्तु तकको खा जानेवाले आज भी बौद्ध हैं ।

बुद्ध अमूर्त हो चुके थे । उनके तपस्वी कृत् आदर्श जीवनका आकर्षण अप्रत्यक्ष था । यही एक आकर्षणकी वस्तु थी जिसने व्यक्तित्वकी पूजाके लिए भक्तोंको अनुसरणसे अधिक आकृष्ट किया था । बुद्धके अनुयायियों, भक्तों तथा उत्तराधिकारियोंमें उस जीवनका, उस तेजका, उस चरित्रका नितान्त अभाव था । अब उनके लिए एक मात्र अवलम्ब था कि वे बुद्धके जीवनसम्बन्धी अनेक कल्पित, अलौकिक, चमत्कारपूर्ण कहानियोंकी रचना करके नये नये व्यक्तियोंको उनका रसिया बना कर बौद्धसंघमें जोडते जांय जिससे मानवसमाजका अधिकसे अधिक भाग "बुद्धं शरणं गच्छामि" में मस्त हो कर उनका यजमान बन जाये । ठीक इसी प्रकार "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के रूढ हो जाने की भी संभावना है ।

इसी प्रकार ईसा महोम्मदकी पवित्र शिक्षाओंको उनके उत्तराधिकारियोंने कलुषित किया । उक्त महापुरुषोंके अलौकिक व्यक्तित्वके अप्रत्यक्ष हो जानेपर संयमहीन, अप्रतिभ व्यक्तित्ववाले उत्तराधिकारियोंने आकर्षणका कोई साधन न पाकर अपने महाराजके व्यक्तित्वकी पूजा-प्रसारके लिए चमत्कारपूर्ण कहानियोंकी रचनाके घृणित कार्यको

आश्रय बनाया और उन महापुरुषोंके प्राकृत संदेशको " वाणी " के शृंगारमें बांध दिया ।

वैसाही प्रयत्न ऋषि दयानन्दके हम उत्तराधिकारियोंका चल रहा है । जो कलतक तम्बाकूकी धूंआ-धार करता था वह आज, " भरतका उद्धार हो, वैदिक जीवनकी छटा पूर्वसे पश्चिमतक मूर्त हो जावे, गौतम कणाद जैसे ऋषियोंका बाहुल्य देशमें सब आर हो जावे, " इस आकाशी कल्पना की उमंगमें लोगोंकी चिलमोंको तोडने लगता है किन्तु उस उमंग, उस महत्त्वाकांक्षाके उल्लासके कुछ जीर्ण होनेपर वही सुधार-उत्सुक अपने पूर्व व्यसनके स्मरणसे अपनी सिगरटोंको लुके छिपे ढूंढने व उनका रसास्वादन करने लगता है और फिर " दयानन्द ऐसे महात्मा थे, स्वामीजी यों कहते हैं, सत्यार्थप्रकाशमें यह लिखा है " आदि प्रलापही " आर्यत्व " का चिह्न बन जाते हैं और यही व्यक्तित्वकी पूजा तथा वाणीका शृंगार है ।

जो आर्यसमाजके मंत्री और प्रधान पदतक हुंच चुके हैं, उनके घरोंमें भी पौराणिक कृत्य चल रहे हैं । स्त्रियें श्रद्धासे किंवा बडी बूढी स्त्रियोंके लिहाजसे पौराणिक अवैदिक कृतियोंको मनाही लेती हैं । हम आर्यमंदिरमें आदर्श और दार्शनिकताका मंथन करके अपने अन्तःपुरकी इन रुढियोंसे तटस्थ अथवा उदासीन रहते हैं और मृतक श्राद्ध जैसे हास्यास्पद तथा लज्जाजनक कृत्य हो जाते हैं । हमारी गृहदेवियां भी हमें किसी वैदिक कृत्यमें रत न पाकर भ्रान्तिके सन्मुखही अपनी श्रद्धाञ्जली समर्पित कर देती हैं । यह सब विकार क्यों है ? क्यों कि हमने अर्द्ध शताब्दी पूरे पचास वर्षोंमें भी ऋषि दयानन्दके संदेशको अपनी समाजके शिशु जीवनमें स्थापित नहीं किया । केवल ग्रामोफोनके समान शब्द-संदेश सुनाते रहे ।

क्रान्तिप्रिय युगने ऋषि दयानन्दके खण्डनका स्वागत किया । चिरकालके अनभ्यासने ऋषिके मण्डनको हमारे जीवनका अंग न बनने दिया । यम तो क्या हम पंच नियमोंमें भी न रंगे जा सके ।

बौद्धके खण्डनने, यज्ञ यागके अविधानने बौद्धोंके हृदयोंको वीरान, श्मशान बना डाला था क्यों कि अनभ्यासने, तत्कालीन दुर्व्यसनों तथा असंयमने हृदयोंको सदाचार, ऋत्-सोपानसे प्लावित न होने दिया । मानवहृदय अधिक काल तक नीरवतामें नहीं रह सकता । खण्डनके प्रहारोंसे क्लांत बौद्ध हृदय ऋत्-सोपानको न पाकर भ्रान्त श्रद्धाकी ओर द्रवित हो पडा । जो भ्रान्त श्रद्धा वैदिक देवताओंके कृत्रिम चमत्कारोंसे मोहित होकर असुर-कर्म करा रही थी वही खण्डनसे आक्रान्त बौद्ध हृदयकी मसीहा बनी ।

आज वही राग और वेही उसके चिह्न हमपर प्रकट होने लगे हैं । हमारा हृदय श्रद्धाको ढूंढ रहा है । यदि उसे प्राकृत जीवनके अभ्याससे श्रद्धामय न बनाया गया तो वह हठात् पौराणिक अन्ध श्रद्धाके समान भ्रान्त व्यक्तित्वकी पूजामें बह निकलेगा, इस लिये आवश्यक है कि हमारे प्रचारकोंका जीवन, वेदोंका प्रचार व प्रसार प्राकृत हो और यह सब आर्षकुलसे सम्भव हो सकते हैं । कृत्रिम विधानका कोई भी आविष्कार इसे सफल न कर सकेगा ।

हमारे आधुनिक गुरुकुल ।

(ले०— श्री० वसिष्ठजी)

हमारे आधुनिक गुरुकुलोंसे निराश होकर जो आर्य महानुभाव गुरुकुलोंसे उदासीन व विरक्त हो चुके हैं उनके इस योजनामें विश्वास होनेकी सम्भावना नहीं है । दूधके नामसे जिसे आटेका पानी पिलाया गया है और जिसे उस श्वेत प्रवाही वस्तुमें दूधका विख्यात स्वाद व गुण नहीं मिला वह सहसा दूधको पाकर भी उसमें विश्वास न करे तो कोई आश्चर्य नहीं ।

हमारी " गुरुकुल " नामधारिणी संस्थाओंका नाम गुरुकुल अवश्य है, किन्तु किसी विशेषणके

जोड देनेसेही कोई वस्तु विशेष्य नहीं हो जाती। "गुरुकुल" शब्दकी निरुक्तिके वा सौत्र स्मार्त परिभाषाके विस्तारमें न जाकर इस यौगिक शब्द का केवल यौगिक अर्थ हो सर्वमान्य प्रतीत होता है। "कुल" शब्द समुदायका सूचक है जो कुटुम्बका परिवर्धित रूप है। "गुरु" का परिवर्धित कुटुम्ब कभी "वेतनभोगी" "नोकर" नहीं हो सकता। हम वेतनभोगीके-नौकरके शरीर-को खरीद सकते हैं। नौकरका हृदय तो उसे कुटुम्बका अंग बना कर ही अपनाया जा सकता है। दोष आनेपर-अपराध करनेपर अंगको दंडित किया जा सकता है ताकि दोषका निराकरण हो जावे। पृथक् तो अंग नष्ट होनेपर ही होता है।

"कुटुम्ब" व "कुल" हीन व दोषयुक्त भी हुआ करते हैं। उन्हें "हीन कुटुम्ब," "नीच कुल" आदि शब्दोंसे पुकारा जाता है, परन्तु उनमें कुटुम्बपन "कुलपना" तो रहता ही है। यदि हमारी संस्थाओंमें "कुलपना" हो और उसके दोष भी हों तो उन्हें 'हीन गुरुकुल,' "नीच गुरुकुल" कहा जा सकता है, किन्तु इनमें "कुटुम्बपना" न होनेसे "कुल" शब्द इन पर लागू ही नहीं होता, भलेही ये संस्थाएं आदर्श हों। और यदि हम आधुनिक संकर-समयके दोषोंसे उस माननीय "कुलपने" को व्यावहारिक रूप नहीं दे सकते तो "गुरुकुल" विशेषणका उपयोग करनेकी ही ऐसी क्या जरूरत है? हम इसे अपनी दूकानदारीका आधार क्यों बनावें? विषमिश्रित होने पर भी यदि मिठास है—"मिठाई" के लक्षण हैं तो वह मिठाई कहा लायगी। यदि अधिक स्पष्ट करना ही अभी होगा तो उसे "विषमिश्रित मिठाई" कहा जा सकेगा किन्तु सुगन्धित और गुणकारी होने पर भी "अगरबत्ती" मिठास न होनेसे मिठाई नहीं कह जाती। "परिव्राजक" और "आनन्द" शब्द तथा उसके वेषभूषाको तो पुत्रकलत्रवाले गुसाई भी उपयोगमें ल आते हैं।

अतः हमारे आधुनिक गुरुकुल सदाचारमें हैं वा अनाचारमें- अनृतके पथिक हैं वा ऋजु पंथके इस वितण्डावादमें न पडकर पहले हमें इनमें "कुलपना" लाना चाहिये, अन्यथा "गुरुकुल" शब्दसे इन्हें मुक्त कर देना उचित है। जब स्त्री-पुरुष आत्मासे, हृदयसे मिले ही नहीं तो उन्हें गृहस्थ किस प्रकार मान लिया जावे? मकानमें रहने चूल्हेका पका भोजन खाने तथा वस्त्र पहनने को तो "गृहस्थ" नहीं कहा जा सकता। अतः जिन संस्थाओंसे हम निराश हुए हैं वे न "कुल" थीं, न हैं और भविष्यमें बनेंगी, सो कहा नहीं जा सकता।

आर्य समाजका भविष्य।

(ले०— श्री० वसिष्ठजी)

जब बौद्ध, ईसाई, मुसलमान तथा अन्य मतावलम्बी गुणकी अपेक्षा गणनासे लोभ करने लग गये; अदूरदर्शिताके मोहने जल्दबाजीकी प्रवृत्ति ने जनसाधारणका अपनी संघ-शरणमें आ जाने मात्रको ही स्वसिद्धान्तोंका प्रचार मान लिया। मानवजीवनके शैशव-कालमें अपने सिद्धान्तोंकी रचनात्मकसे तटस्थ हो रहे तब वे मत अपनी आत्माको खोकर मृतक शव जड मूर्तिही रह गये और आत्मा-शून्य शवकी तरह आज सब प्रकारके दुर्व्यसनोंमें सड रहे हैं।

वे ही वेदसंहिताएं, वे ही मन्त्र और वे ही शब्द तब थे जो आज हैं, किन्तु उनके माननेवाले तत्कालीन आर्य दम्भ, आडम्बरके फेरफेरमें पडकर- "वेदवादरता" बनकर अहंमन्यता, लोकेषणा, गुरुडम प्रतिष्ठाकी पूर्तिके लिए, देवताओंकी भ्रान्त कल्पना तथा मिथ्या सिद्धिके निमित्त मूक पशुओंकी बलिसे होम, होमसे अत्याचार, लूट और स्तेयमें विजयकी कामना करते थे। वे होम आध्यात्मिक नहीं प्रत्युत आधुनिक

विवाहोत्सवोंके समान राग-रंग आडम्बरयुक्त अपव्ययके ढोंग बन गये थे। उन ढोंगी होमोंसे यजमानकी इस लोकप्रतिष्ठा, परलोकमें स्वर्ग-प्राप्ति मानी जाती थी। उन महंगे यज्ञोंको धन-शक्ति-सम्पन्न राजा, महाराजा ही कर सकते थे। सत्यनिष्ठा, संयत जीवन, सदाचारका मूल्य लोकमें प्रतिष्ठा बढानेवाले यज्ञोंके सामने कुछ भी नहीं था। पुरोहितोंकी दृष्टिमें भी यज्ञके पश्चात् भण्डारके भोजनों दक्षिणाके धन तथा दानकी गौवों व कीमती वस्त्र व सुनहरे अलंकारोंका जो मूल्य था वह यजमानके स्नेह, सत्यनिष्ठा व भक्तिका नहीं था।

प्रतिष्ठाके लोभसे महंगे यज्ञोंकी प्रतिस्पर्धा भयंकर रूपसे धारण करती गई जिसके लिए धन-वैभवकी आवश्यकता बढने लगी और उसकी पूर्तिके लिये "संतुष्टा नृपा नष्टाः" का आश्रयसे लेकर राजाओंको दिग्विजयी बननेकी लालसाने आ घेरा। न्याय, शान्ति व धर्मके लिए क्षात्र शब्दकी परिभाषा केवल कोषका अंग रह गई। वे "क्षत्रिय" अकारणही पडोसी राज्योंको नष्ट करके लूटने लगे। लूटही दिग्विजय थी। लूटके धनसे यज्ञोंका शानदार अस्तित्व था और उस दिग्विजयी लूटकी सफलताके लिए- उस तमोगुण मिश्रित रजोगणकी पूर्तिकामनाके लिए यज्ञ किये जाते थे। वैदिक देवताओंसे वेदमंत्रोंद्वारा उस लूटकी सफलताके लिए प्रार्थना की जाती थी। वैदिक देवताओंका यही आवाहन था।

ईश्वरके नामपर, वेदोंके आधारपर राग द्वेषका भयंकर ताण्डव-नृत्य-यह कृत्रिम अनृत अनुष्ठान उन पुरोहित और यजमान नामक वेद और ईश्वरके ठेकेदारों द्वारा हो रहा था।

बुद्धकी आत्मा इसे न सह सकी। मानव जीवनका प्राण उन ठेकेदारोंके दुष्कर्मसे घुट रहा था। वह त्रस्त, आर्तकी तरह बुद्धके चरणोंमें झुक गया और वेद तथा ईश्वरके नामको भारतसे बाहर निकाल दिया गया।

बौद्ध सत्यको स्वीकार करके न धारण कर सके, न करा सके और शीघ्रही नामभेद करके उसी पाखण्ड और ढोंगमें ग्रस्त हो गये। वेद और ईश्वरका नाम दुष्टताका अट्टहास माना जाने लगा, जिसे न सहकर कुमारिल और शंकर जैसे दिगंत वीरोंने बौद्ध धर्मको जडें भारतसे निकाल फेकीं।

जो हो चुका है उसके होनेकी फिर भी सम्भावना हो सकती है। जिस वेद और ईश्वरके नामको बौद्धोंने अलोप कर दिया था उसी वेद और ईश्वरके नामकी ठेकेदार आर्यसमाजको भी अलोप किया जा सकता है। यह हम चाहे न मानें क्यों कि बुद्धसे पहले आर्योंने और शंकरसे पहले बौद्धोंने भी इसे नहीं माना था। दुराग्रहीका यह सबसे मुख्य लक्षण है और इसीका नाम सर्वनाश है।

वैदिक जीवनमें रंगे हुए आर्यकुलोंके स्नातकही आर्य समाजको बचा सकेंगे, नहीं तो वह दिन दूर नहीं है कि जब एक ही साथ हंसने और गाल फुलानेकी चेष्टा करनेवाला आर्यसमाज अपने वेद और ईश्वरके नामके साथ किसी बुद्ध, कुमारिल वा शंकरके दुर्दमनीय पुरुषार्थ द्वारा भारतसे निर्मूल कर दिया जावेगा। सुदूर उत्तर पश्चिममें हम देख चुके हैं कि ईश्वरके नाम और खुदाकी किताबको लेनिनने मार भगाया। आज हम ईश्वरवादी लेनिनको भलेही गाली दें, परंतु ईश्वरके नामकी हत्या करनेवाला लेनिन नहीं प्रत्युत ईश्वरके नामकी ठेकेदार जारशाही और उसकी चर्च-मिशन-मशीनके पुर्जे थे।

यदि हम अब भी न संभले तो "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" तो क्या सिद्ध होगा, हमारी रूप रेखा भी मिट जायगी।

जिन्हें ऋषि दयानन्दके व्यक्तित्वकी पूजामें ही निमग्न होना है उनके हृदयोंमें भी भावी आशंका करुण क्रन्दन करने लग गई है कि यदि-

"रंगा न रंगीलेके रंगीले रंगरागमें;
तो प्यारे दयानन्दकी कहानी रह जायगी।"

ब्रह्मचर्यका महत्त्व।

यह बताया जा चुका है कि रोग-कीटाणु बड़े वेगसे अधिक संख्यामें बढते हैं। अतः वर्तमान समयमें जब कि प्रत्येक नगरमें तपेदिक का रोग न्यूनाधिक विद्यमान है, नगर-निवासियोंके लिये असम्भव-सा है कि अपनेमें रोगकृमि प्रवेश न होने दें, तो रोगसे बचनेका एक ही उपाय है कि, हमारे शरीरमें रोगकीटाणुओंसे लडने तथा उन पर विजय प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान रहे। इस शक्तिको शरीरमें उत्पन्न करने, स्थिर रखने तथा बढाने के कई साधन हैं, जिनमेंसे सबसे बडा और मुख्य साधन ब्रह्मचर्य है। जब तक इस साधनका प्रचार था तपेदिक का अभाव-सा था और आज ब्रह्मचर्यके अभावसे तपेदिक दिन प्रतिदिन बढ रहा है। हम अपने पक्षकी पुष्टिमें सबसे पहले आयुर्वेदके मान्य ग्रन्थ चरकको प्रमाण पेश करते हैं। तपेदिक का वर्णन करते हुए ऋषि बताते हैं-

यक्ष्मा होनेका कारण।

जब मनुष्य अत्यन्त हर्षसे आसक्त होकर अधिक मैथुन करता है उससे उसका वीर्यक्षय हो जाता है। वीर्यक्षय होने पर भी चित्त स्त्रीसंगसे निवृत्त नहीं होता बल्कि और भी अधिक प्रवृत्ति होती जाती है। इस प्रकार स्त्रीसंसर्गसे अधिक प्रवृत्ति होनेसे वीर्य का क्षय होकर पुनः मैथुन करने पर भी वीर्यसे वीर्य की वृद्धि नहीं होती क्योंकि वह अत्यन्त क्षीणता को प्राप्त हो जाता है। ऐसा करने से फिर उसके शरीरमें वायु प्रवेश हो धमनीय नसों के बीचमें प्रवेश करके रक्तवाहिनी नसोंमें से रक्त को वीर्यमार्गसे निकालता है और वायु उस रक्त के साथ मिल जाता है। फिर उस मनुष्यका वीर्य क्षीण होनेसे और रक्तकी प्रवृत्ति होनेसे संधियां शिथिल हो जाती हैं, तथा शरीरमें रूक्षता उत्पन्न

हो जाती है और शरीर दुर्बलता को प्राप्त हो जाता है और शरीरमें वायुका कोप हो जाता है। वह कुपित हुआ वायु उस दुर्बल शरीरमें इधर-उधर फिरता हुआ मांस और रुधिर को सुखा देता है एवं कफ और पित्तको निकालता है। दोनों पसवाडों में तथा दोनों अंसोंमें और कण्ठमें पीडा को उत्पन्न करता है। और कफको बिगाड कर मस्तकमें पूरित करता है। संधियोंमें पीडा उत्पन्न करता है एवं अरोचकता, अङ्गदर्द, अविपाक, इनको उत्पन्न करता है। और कफके उत्क्लेशसे वायुकी गति प्रतिलोम होनेसे ज्वर, खांसी, स्वरभङ्ग, जुकाम को प्रगट करता है। फिर वह मनुष्य इन शोषण-कारक उपद्रवोंद्वारा पीडित हुआ धीरे-धीरे सूख जाता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को शरीररक्षाके लिये वीर्य की भी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि वीर्य शरीर में आहारद्रव्यों का सर्वोत्तम फल होता है। (चरक नि० स्थ० प्र० ६ अ० १२-१४)

वर्तमान अन्वेषणकी साक्षी।

शिकागो के हेल्थ-कमिश्नर पूर्ण अन्वेषण के पश्चात् लिखते हैं- 'जन्मसमय कोई बालक राज-यक्ष्मा में ग्रस्त नहीं होता. १५ वर्षकी आयुमें साठ प्रतिशतक और २० वर्षकी आयुमें ७५ से ८० प्रतिशतक और ५० वर्षसे १०० वर्ष को आयु तक ३ से ५ प्रतिशतक रोगी इस रोगमें ग्रस्त होते हैं' (Arnold H. Fegel, M. D., Commissioner of Health, Chicago) जिस आयु में लोग अधिक वीर्यनाश करते हैं उसी आयु में अधिक संख्या होना और बालकपन तथा बुढापेमें जब वीर्यनाश का समय नहीं रहता संख्या कम होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि, इस रोग के होने का मुख्य कारण अधिक वीर्यनाश है।

वीर्य क्या वस्तु है?

आयुर्वेद ने वीर्य का लक्षण करते हुए, बताया है कि, 'प्रत्येक वस्तुमें जो कार्य करने की शक्ति होती है वही उसका वीर्य है।' कुछ स्पष्ट रूप में इस प्रकार समझिये। हम जो कुछ भोजन करते हैं उसका स्थूल भाग तो मलरूपमें निकल जाता है और सूक्ष्म भाग रस बनता है। फिर उस रस से रक्त, रक्त से मांस, माँस से मेद, मेद से हड्डी और फिर मज्जा बनती है। अन्त को मज्जामें से जो स्नेह या स्निग्ध द्रव्य पदार्थ टपकता है उसे वीर्य कहते हैं। यह मनुष्यशरीर के प्रत्येक भागमें विद्यमान रहकर अपने सूक्ष्म भाग आजके नामसे शक्ति-प्रदान करता है। यदि मनुष्यशरीरमेंसे सारा भाग वीर्यका निकाल लिया जावे तो उसकी आकृति हड्डियोंके उस ढाँचेसे बहुत मिलती जुलती हो जावेगी जो कंकाल (Skeleton) के नामसे डाक्टरी कालजोंमें रक्खा रहता है और जिसे देखकर बच्चे डर जाते हैं। मनुष्यमें फुर्ती, उत्साह, उमंग, काम करने की शक्ति, अकड, धैर्य, स्वात्माभिमान, सहनशक्ति, मुंह पर लालिमा और चमक सब बातें उसी समय तक हैं जब तक शरीरमें वीर्य है। इसके बिना सब बातोंका अभाव हो जाता है।

वीर्यरक्षा क्यों नहीं होती?

प्राचीनकालमें जहाँ माता-पिता स्वयं आदर्श ब्रह्मचारी बनकर अपने जीवन से सन्तानों को ब्रह्मचर्यकी शिक्षा देते थे वहाँ बालक को किशोर अवस्थामें प्रवेश करनेसे पूर्व ही यज्ञोपवीत के समय वीर्य की महिमा का चित्र बालक के चित्त पर अंकित कर देते थे। ब्रह्मचारी तप का जीवन व्यतीत करके विद्याध्ययन करते और बनाव-शृंगार से मुक्त रहते थे। इधर इनका अध्ययनकाल समाप्त होता उधर आचार्य फिर उन ही विद्यार्थी को पुष्ट करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करने देता जिससे वीर्य की महिमा हर गृहस्थ के चित्त पर अंकित रहती। पर जब से विदेशी सभ्यता ने यहाँ पदार्पण किया, वीर्यरक्षा का उपदेश अथवा उसके सम्बन्ध में कुछ भी बालकों को बताना लज्जास्पद समझा जाने लगा। तिस पर उनको उत्तेजक पदार्थ चाय, मदिरा, माँस, प्रेडा और गर्म मसाले इत्यादि का सेवन कराया जाता तथा थियेटर, सिनेमा और नाच तमाशे का शौक दिलाया जाता है। विद्यार्थी घण्टों बाल संवारने और तेल लगानेमें लगाते हैं। १५ व १६ वर्ष के बालकों को माता-पिता पढने का आदेश कर स्वयं एकांतमें एकत्र होने जाते हैं। भला ऐसे बालक कब ब्रह्मचारी बन सकते हैं? कुचेष्टा से अपने जीवन का नाश कर लेते हैं। जब समझ आती है तब रोग का हाल अपने गृह-चिकित्सक को तो बतानेमें लज्जा करते हैं और ऊट-पटाँग विज्ञापनों की शक्तिवर्धक औषधियाँ मँगाते फिरते हैं। यह विज्ञापन की औषधियाँ वास्तवमें उनके स्वास्थ्य का जितना नाश करती हैं, उतना नाश रोग से भी नहीं होता है क्योंकि इनके बनानेवाले अधिकतया स्वार्थी और व्यवसायी लोग होते हैं। आज दस-दस, बीस-बीस रुपये की नौकरी की योग्यता रखनेवाले अविद्वान् हजारों युवकों के स्वास्थ्य का नाश कर बडे-बडे वैद्यक डाक्टर बने हुए हैं। पर उनका बडप्पन केवल रुपया ठगानेमें ही है। विद्यामें तो कोरे ही हैं फिर चिकित्सक तो बिना पूर्ण विद्या प्राप्त किया हुआ बडा ही हानिकारक है। इसी प्रकार के अनेक कारण हैं जिनसे वीर्यरक्षा नहीं होती।

वीर्यकी हानिसे रोग कैसे आक्रमण करता है?

हमारे शरीर का प्रत्येक भाग कोषों (Cells) में विभक्त है, बल्कि हमारे शरीर का प्रारंभ ही एक कोष से होता है। कोष एक बहुत छोटा परमाणु है जिसका आकार १।६००० इञ्च से ४।१००० इञ्च तक होता है। यानी यदि बराबर बराबर उनको रक्खा जावे तो छोटे कोष तो एक इञ्च में ६००० आवेंगे और बडेसे बडे कोष भी उस स्थानमें १००० ही आ सकेंगे। अब देखिये उस

महान् प्रभु की विचित्र रचना कि इतनी सूक्ष्म वस्तु में क्या क्या अद्भुत चमत्कार हैं। साधारणतया प्रत्येक कोष के चारों ओर एक बारीक झिल्ली का खोल होता है और उसके भीतर एक पतला चिकना पदार्थ भरा होता है। जिसे प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) कहते हैं। और यही कोष का मुख्य भाग है। इस प्रोटोप्लाज्म के भीतर हरकत रहती है। जिससे वह अपने समीप से अपने भोजन के भाग को आकर्षण करके हज्म कर लेता है। शुद्ध वायु (ओषजन) को ग्रहण करता और कार्बन को बाहर निकालता है। इस प्रोटोप्लाज्म के बीच में एक गोल बिंदु-सा होता है जिसे न्यूक्लीयस (Nucleus) कहते हैं. और जो प्रोटोप्लाज्म का भी जीवन आधार है और बहुत से कोषों का न्यूक्लीयस मिला कर एक प्रकार मनुष्य शरीर का प्राणाधार है। न्यूक्लीयस के द्वारा ही प्रोटोप्लाज्म श्वास इत्यादि लेता है और नवीन कोष भी बनाता है। विशेषतया जब किसी रोग के कीड़ों के साथ युद्धमें अधिक कोष काम आते हैं, तो यह शीघ्रता से नवीन कोष बनाता है और रोग-कीटाणुओं को परास्त करने का यत्न करता है। इनमें रक्त के श्वेत कोषोंमें झिल्ली का गिलाफ भी नहीं होता किंतु द्रव पदार्थ ही अधिक होता है और यही कोष रोगकीटाणुओं का विशेष मुकाबिला करते हैं। कोषोंमें पतला तथा चिकना पदार्थ वीर्य और न्यूक्लिअस का अधिक भाग ओज से प्राप्त होता है। जब शरीरमें से वीर्य अधिक मात्रामें निकल जाता है तो उसमें खुश्की उत्पन्न हो जाती है और प्रत्येक कोष का प्रोटोप्लाज्म सूखने लगता और न्यूक्लिअस की शक्ति निर्बल होने लगती है। श्वेत कोषों में क्योंकि झिल्ली भी नहीं होती है अतः वह और शीघ्रता से सूखने लगता है। ऐसी अवस्थामें जब किसी रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तो उनका विरोध करनेवाला कोई नहीं होता। क्योंकि हमारी रक्षक सेना तो पहले ही अपना राशन वीर्य न पाने से हम से विद्रोह किये होती है। रोगकीटाणु बिना किसी रोग टोक के शरीरमें अपना स्थान बनाकर हमको मृत्यु की ओर ले जाते हैं और हमारा वह जीवन जिसके रहते हुए, हम निर्बलों की सहायता कर सकते हैं, संसार के आनन्द भोग सकते और चक्रवर्ती राज्य तथा मोक्षतक प्राप्त कर सकते हैं अधिक स्त्रीप्रसंग के क्षणिक आनन्द की भेट हो जाता है।

हवन यज्ञसे वीर्यरक्षा कैसे होती है?

दुर्गन्धित स्थान पर जाने से द्रव पदार्थ 'थूक' बाहर निकलने की चेष्टा करता है। थोड़ी दुर्गन्धि हो तो थोड़ा द्रव पदार्थ थूकने से और अधिक हो तो वमन होकर अधिक द्रव पदार्थ निकल जाता है। इसके विपरीत जब हम किसी ऐसी वाटिका में जावें जहाँ हार सिंगार अथवा केवड़ा के पुष्प खिल रहे हों तो हमारा जी गहरी गहरी साँस भीतर लेने को होगा। और साँस बाहर निकालने की भी इच्छा न होगी। और मुंह का वह द्रव पदार्थ (Saliva) जो दुर्गन्धि से बार-बार बाहर थूक रहे थे निगलने की स्वाभाविक इच्छा होगी। तो प्राकृतिक नियम यह ठहरा कि दुर्गन्धि तो द्रव पदार्थ को बाहर निकालती है और सुगन्धि रक्षा करती है। इसी सिद्धान्त को लक्ष्य में रखकर ऋषियों ने दुर्गन्धित पदार्थों से उत्पन्न साग इत्यादि का खाना सबको विशेषतया ब्रह्मचारी को मना लिखा है। क्योंकि इनकी दुर्गन्धिक सूक्ष्म परमाणु शरीर के द्रव पदार्थ वीर्यको शरीरसे बाहर निकलने की प्रेरणा करते हैं। चूंकि तपेदिक के रोगीके शरीरमें किसी न किसी स्थानमें क्षत होता है और कोषोंके सड़ने से दुर्गन्धि उत्पन्न होती है। अतः इस रोगके रोगी को काम इच्छा अधिक होती है। ऐसी अवस्थामें जो लोग बरांडी इत्यादि उत्तेजक पदार्थ देते हैं वह तो रोगीके शत्रु हैं। पर यह सब जानते हैं कि यज्ञसे सुगन्धि उत्पन्न होती है और जब सुगन्धित पदार्थोंके सूक्ष्म कण शरीरमें प्रविष्ट होते हैं तो रोगीके द्रव पदार्थ वीर्य रक्त इत्यादि स्थिर होते हैं और जहाँ वीर्य शरीरमें ठहरने लगा प्रोटोप्लाज्ममें तरी

और न्यूक्लिअसमें शक्ति आना आरम्भ हो जायगी फिर क्षयका क्या काम? वहाँ तो शक्तिका संचार होने लगेगा। न केवल रोगी को ही वह लाभ होगा किन्तु जितने मनुष्यों तक उस हवन की सुगन्धि पहुंचेगी सब ही को वीर्यरक्षा की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी और रोगोंसे मुकाबिला करने की शक्ति उत्पन्न होगी।

यही तो कारण था कि हमारे ऋषि-मुनि सब कुछ त्यागने पर जंगलमें भी हवन यज्ञ नित्य-प्रति करते थे। अब भी इसका प्रचार हो तो तपेदिक तथा अन्य रोगोंसे लोग सुरक्षित रह सकते हैं।

शस्त्र तथा अस्त्र।

स्मृति-ग्रंथ तथा नीतिशास्त्र।

(ले०- पं० जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार)

इस लेखमें पाठकोंको सामान्यतः शस्त्र तथा अस्त्र दोनोंके विषयमें प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर विद्या बतायंगे कि किस प्रकार शस्त्रास्त्र विद्या सिखाई जाती थी, क्या सिखाई जाती थी, कितनी उन्नति थी इत्यादि। प्रथम हम नीतिग्रन्थों की आलोचना करेंगे और फिर अन्य स्मृतियों की।

शुक्राचार्य।

आग्नेयास्त्र का प्रताप यद्यपि बहुत है पर फिर भी हमारे प्राचीन विद्वानोंकी दृष्टिमें वह मध्यमास्त्र है। शुक्राचार्य लिखते हैं कि अस्त्र शस्त्र की तीन श्रेणियं हैं। एक मन्त्रिकास्त्र दूसरा नालिकास्त्र और तीसरा शस्त्र, और उससे भी उत्तर केवल बाहुएं। इन्हीं साधनोंसे युद्ध किया जाता है। इसमें उत्तम साधन मान्त्रिकास्त्र है। मध्यम साधन नालिकास्त्र। शस्त्र तीसरे दर्जेका कनिष्ठ साधन है। उससे भी हीन बाहुयुद्ध।१

"मन्त्रसे शक्ति या बाणादि के फेंकने से शत्रुका नाश करना मान्त्रिकास्त्रसे युद्ध कहाता है। नलीमें अग्निचूर्ण या बारूद डालकर अपने लक्ष्य पर गोले का फेंकना ये नालिकास्त्रका युद्ध कहाता है। इसमें शत्रुको बहुत भय होता है। भाले आदि शस्त्रोंसे शत्रुओंका नाश करना शस्त्र युद्ध कहता है। यह युद्ध नालिकास्त्र या तोप बंदूक के न होने पर किया जाता है।"२

इससे पता लगता है कि तोप बंदूकों का युद्ध भी बहुत होता था, परंतु जब यह साधन न रहता था तब बाधित हो कर तीसरे प्रकार से शस्त्रों द्वारा लडना ही पडता था। कुछ काल तक इस दृश्य की

(१) उत्तमं मान्त्रिकास्त्रेण, नालिकास्त्रेण मध्यमम्। शस्त्रैः कनिष्ठैः युद्धं तु बाहुयुद्धं ततोधमम्॥ ३३४॥

[शुक्रनीति, अ० ४]

(२)मान्त्रिकास्त्रेण तद् युद्धं। सर्वयुद्धोत्तमं स्मृतम्॥३३५॥ नालाग्निचूर्णसंयोगात्। लक्ष्ये गोलनिपातनम्॥ नालिकास्त्रेण तद् युद्धं महत्त्रासकरं रिपोः॥३३६॥ कुन्तादिशस्त्रसंघातैः, रिपूणां नाशनं च यत्। शस्त्रयुद्धं तु तत् ज्ञेयं नालास्त्राभावतः सदा॥३३७॥

(शुक्र० अ० ४ क० ७,)

कल्पना करके वर्तमान युद्ध से तुलना करें तो पाठकों को पता लग जावेगा कि कितना चमत्कार पूर्व काल में हो चुका था। बल्कि मन्त्रास्त्र का आविष्कार अभी पाश्चात्यों के भी उन्नति की सीढी में नहीं है।

[२] इसी प्रकार शस्त्रों की व्याख्या करते हुवे शुक्राचार्य कहते हैं कि 'जिस को फेंका जाय वह अस्त्र कहाता है। चाहे वह यंत्र से या आग से फेंका जावे। और शेष सब शस्त्र हैं। जैसे तलवार भाले आदि। अस्त्र दो प्रकार का होता है- एक मांत्रिक दूसरा नालिक। मांत्रिक अस्त्र के न होने पर नालिक अस्त्र को धारण करें। और साथ ही शस्त्रों को भी रखे। अस्त्र या शस्त्र के छोटे बडे होने या धार में भेद होने से नामों में भी भेद हो जाता है। १

[३] नालिक दो प्रकार का होता है। एक बृहत् बडा दूसरा क्षुद्र छोटा—।

पदाति और अश्वारोही लोग लघु नालिक को काम में लाते हैं जो स्वतरेडा टेढा होता है। जिसके एक सिरे पर छद होता है जिसमें $2\frac{1}{2}$ हाथ की नाली होती है। उस नाली के जड और अग्र भाग पर निशाना साधने के लिए तिल बिंदु या मक्खी लगी होती है। यंत्र या घोडा के लगने से अग्नि पैदा होती है। बारूद को धारण करनेवाला उसमें कान-सा लगा होता है। उसके मूल में अच्छा मजबूत काठ का दस्ता होता है। नाली का छिद्र एक अंगुल होता है बीचमें उसके बारूद भरा जाता है। इस कार्य के लिए उसमें एक सिलाख पक्के लोहे की भी लगी रहती है। ऐसा लघु नालिक कहाता है।" २

'नल जितना भी पक्का तथा मोटा और लंबा होगा उतना ही अधिक चोट करनेवाला मूल या आधार में लगे कील या दस्ते को घुमने से ठीक निशाने पर बैठनेवाला गाडियों आदि पर रख कर दूसरे स्थान पर ले जाए जाने योग्य बृहन्नालिक या तोप कहाता है।' ३

(३) बारूद— बारूद बनाने का प्रकार संक्षेप से शुक्राचार्य लिखते हैं कि पांच भाग सौंचल का नमक, एक भाग गन्धक, धूर्द को बंद करक जलाए हुनीथोर आदि का कोला १ भाग शुद्ध शुद्ध लकर पीसकर चूरा करके मिलाकर थोर लहसुन और आक के रस से पुट दे दे, और धूप में सुखा लेवे और शक्कर की तरह पीस लेवे तो अग्निचूर्ण तय्यार हो जाता है। या सौंचल के ३ भाग या चार भाग शेष गंधक और कोयला पूर्व के अनुसार मिलाकर नालीकास्त्र या बंदूक के लिये बारूद तैयार किया जावे। छोटी नालीक या बंदूक के लिये लोह का फोकी गोली या सीस की, या किसी और धातु की गोली प्रयोग की जाया करती है। नालास्त्र तोप भी लोहसार की या अन्य मजबूत

---

१ अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्रयन्त्राग्निभिश्च तत्॥१७१॥ अस्त्रं तदन्यतः शस्त्रमसिकुन्तादिकञ्च यत्। अस्त्रं तु विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा ॥१९२॥ यदा तु मान्त्रिकं नास्ति नालिकं तत्र धारयेत्। सह शस्त्रेण नृपतिर्विजयार्थं तु सर्वदा ॥१९३॥ लघुदीर्घाकारधाराभेदो शस्त्रास्त्रनामकम् ॥ १९४ ॥ (शुक्र० अ० ४।प्रकरण ७)

२ नालिकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत्क्षुद्रविभेदतः॥१९५॥ तिर्यगूर्ध्वं छिद्रमूलं नालं पञ्चवितास्तिकं॥ मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदि तिलबिन्दुयुतं सदा ॥ १९६ ॥ यन्त्राघाताग्निकृद् ग्रावचूर्णधृक्कर्णमूलकम् ॥ सुकाष्ठोपाङ्गबुध्नञ्च मध्याङ्गुलबिलान्तरम् ॥ १९७ ॥ स्वान्तेऽग्निचूर्णसंधातृशलाकासंयुतं दृढम्। लघुनालिकमप्येतत् प्रधार्यं पत्तिसादिभिः ॥ १९८ ॥ (शुक्र० अ० ४, प्रक० ७)

३ यथा यथा तु त्वक्सारं यथा स्थूलबिलान्तरं ॥ यथा दीर्घं बृहन्नालं दूरभेदि तथा तथा ॥ १९९ ॥ मूलकीलभ्रमाल्लक्ष्यसमसन्धानभाजि यत्। बृहन्नालिकसंज्ञं तत् काष्ठबुध्नाविनिर्मितम् ॥ प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुक्तं विजयप्रदम् ॥ २०० ॥ [शुक्र० अ० ४ प्रक० ७]

धातु की बनानी चाहिये, और इसके मालिक को चाहिये कि नित्य इसको साफ और सुथरा रक्खे। १

(४) कोयला, गन्धक, सौंचल, हडताल, मनसिल, सिन्दूर, सिग्ररू, हिंगलु, कान्ती लोह की छील, कपूर, लाख, नीलो, सरलोणोन्द, सज्जी इत्यादिक द्रव्यों को थोडा बहुत भागोंका अनुपात करके नाना प्रकारके अग्निचूर्ण बनाया करते हैं। चांदनी फुलझडी आदि भी बना लेते हैं।

गोलेको अग्नि लगा देनेसे नालद्वारा दूर फेंकते हैं। तोपको पहले साफ करे। फिर बारूद या अग्निचूर्ण डले, फिर गजसे उसे मूलमें ठूंस ले, फिर गोला डाले, फिर कान पर थोडासा अग्निका चूर्ण या बारूद धरके बन्दूक भी कान पर धरे चूर्णको आग लगा देवे और गोलीको निशाने पर मारे। २

इस प्रकार शुक्राचार्यने कितनी स्पष्टतासे बन्दूक या बडी तोपका पूरा हाल लिख दिया है। इसी अस्त्रको धारण करने वालोंको सेनामें भर्ती किया है। ३

[५] शुक्राचार्य के नियम के अनुसार बनी हुई बंदूकें अभी तक जयपुर तथा जोधपुर की देसी रियासतों में घर घर बर्ती जाती हैं। उसी प्रकार की बडी तोप भी बहुत से पुराने किलों में पडी हुई मिलती हैं। जयपुर को जाते हुये B. B. & C. I. Ry. की सडक पर मलारडाके स्टेशन के पास एक किला है, इसमें बृहदाकार तोप पडी है। जो कमसे कम ८ या नौ हाथकी है, उसका मुख भी एक फिट से कम चौडा नहीं है। उसके बृहदाकार को देख कर भय प्रतीत होता है। उसका पिछला भाग इतना चौडा है कि लंबेसे लंबे हाथोंवालेके भी हाथों के घेरे में नहीं आ सकता।

कहते हैं कि वह तोप किले के शिखर पर रखी थी। उसको देखकर ७ सदी पहले की कारीगरी का एक नमूना पता लग जाता है। इसी प्रकार पुराने फैशन की छोटी मोटी तोपें और भी जगह दर्शनीय रूप में रखी हुयी हैं। लाहौर में अद्भुतालय या मूजियम के सामने पीतल की बनी भंगियों की तोप है। रुडकीमें तोपखाने के पास छोटीसी लोहे की तोप है। दिल्ली के किले पर कुछ एक पहियेदार लोह की तोपें पडी हैं। भरतपुर के किलेमें कतिपय पुराने चाल की तोपें तथा एक बृहन् तोप पडी है। इसी प्रकार स्थान स्थान में तोपों की सत्ता पाई जाती है। इससे हम इस परिणाम पर भी पहुंच जाते हैं कि प्राचीन काल में इसके बचाने के लिए भी विशेष चतुर व्यक्ति

---

१ सुवर्चिलवणात्पञ्च पलानिगन्धकात्पलम्। अन्तर्धूमविपक्वार्कस्तुह्यद्यङ्गारतः पलम् ॥२०१॥ शुद्धान् संग्राह्य संचूर्ण्य संमील्य प्रपुटेद्रसैः। स्तुह्यर्काणां रसोनस्य शोषयेदातपेन च ॥ पिष्ट्वा शर्करवच्चैतदग्निचूर्णं भवेत् खलु ॥२०२॥ सुवर्चिलवणाद्भागाः षड् वा चत्वार एव वा। नालास्त्रार्थाग्निचूर्णे तु गन्धाङ्गारौ तु पूर्ववत् ॥ २०३ ॥ गोलो लोहमयो गर्भ गुटिकः केवलोऽपि वा। सीसस्य लघुनालार्थे ह्यन्यधातुभवोऽपि वा ॥ २०४ ॥ लोहसारमयं वापि नालास्त्रं त्वन्यधातुजम्। नित्यसम्मार्जनस्वच्छमस्त्रपातिभिरावृतम् ॥ २०५ ॥ (शुक्र०)

२ अङ्गारस्यैव गन्धस्य। सुवर्चिलवणस्य च ॥ शिलाया हरितालस्य तथा सीसमलस्य च ॥ हिंगुलस्य तथा कान्तरजसः कर्पूरस्य च ॥ २०७॥ जतोर्नील्याश्च सरलनिर्यासस्य तथैव च ॥ समन्यूनाधिकैरंशैराग्निचूर्णान्यनेकशः॥ २०८ ॥ कल्पयन्ति चतद्विद्याश्चन्द्रिका आदि सन्ति च ॥ क्षिपन्ति चाग्निसंयोगाद्गोलं लक्ष्ये सुनालगम् ॥२०९॥ नालास्त्रं शोधयेदादौ दद्यात्तत्राग्निचूर्णकम्। निवेशयेत्तद्दण्डेन। नालमूले यथादृढम् ॥ २१० ॥ ततः सुगोलकं दद्यात् कर्णेऽग्निचूर्णकम्। कर्णचूर्णाग्निदानेन गोलं। लक्ष्ये निपातयेत् ॥ २११ ॥ [शुक्र० २, ७]

३ लघुनालिकयुक्तानां पदातीनां शतद्वयम् ॥ २२ ॥ अशीत्यश्वान् रथं चैकं। बृहन्नालद्वयं तथा ॥२३॥ [शुक्र अ० ४, ७]

जो इसी कार्यमें निपुण ही होते थे जैसा कि शुक्राचार्य राजा को किन किन पुरुषों का संग्रह करना चाहिये ऐसी की गणना करते हुए ऐसे व्यक्तियां की गणना करते हैं जो तोपमें गोला रखकर छोड़ने तथा ठीक लक्ष्य पर मारने में चतुर हों और जो छोटी बडी तोपें और बंदूकें बारूद बाण गोला तलवार आदि बनानेमें सिद्धहस्त हों। [१]

इस प्रकार शुक्राचार्य प्रतिपादित आग्नेयास्त्र संबंधी विज्ञान हम दिखा चुके, अब इसी आचार्य के कहे अन्य शस्त्रों के बारे में भी संक्षेप से लिखते हैं।

[५] धनुष्यबाण— धनुष की डोरी से लगा हुआ बाण दो हाथ लंबा होता है। [२]

गदा—आठ कोनोंवाली छाती तक ऊंची होती है। [३] नीचे का तला बडा होता है।

पट्टीश—फेकनेवाले का बराबर लम्बा होता है हाथमें उसका हत्था होता है। दो धार होता है।[४]

खड्गः—कुछ गोल, एक तरफ धार। चार अंगुल चौडाई, छुरे की न्याई तेज धारवाला नाभि तक लंबा, मजबूत मूठवाला चांद की तरह चमकनेवाला, खड्ग होता है। [५]

प्रास—चार हाथ लंबा छुरे की न्यायी तेज धारवाला। [६]

कुंत—१० हाथ लंबा—हलकी तरह के फल से युक्त, नीचे से छुरे की तरह भाला होता है। [७]

चक्र—छुरे के सदृश तेज धारवाला गोल, छेः हाथ परिधिका होता है। बीच में नाभि लगी होती है [८]

पाश—तीन हाथ का दण्डा, तीन फलों की चोटीवाला, और उसको एक लोहे की तार लगी हो। [९]

कवच—उजाड़के पंजे की न्यायी मोटे पत्ते का लोहे का बना हुआ दृढ शिरस्त्राणयुक बनाया जाता है। [१०]

(६) शुक्राचार्य की शुक्रनीतिमें केवल शस्त्र तथा अस्त्र के विषय में इतना मात्र उपलब्ध होता है।

---
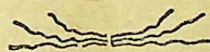
[१] महानालिकयन्त्रस्थ-गोले लक्ष्यविभेदिनः ॥ लघुयन्त्राग्नयचूर्णत्राण- गोलासिकारिणा ॥१९६॥ योग्याः कार्यानुरूपतः ॥ २०४ ॥ [शुक्र, अ० २]

[२] लक्ष्यभेदी यथा बाणो धनुर्ज्याविनियोजितः भवेत् तथा तु सन्धाय। हस्तश्चशिलीमुखः ॥ २२१ ॥

[३] अष्टाश्रापृथुबुध्ना गदा हृदयसम्मिताः ॥ २१३ ॥ [शुक्र, अ० ४, ७]

[४] पट्टीशः स्वसमो हस्त बुध्नश्चासतो मुखः ॥ २१३ ॥

[५] ईषद्वक्रश्चैको विस्तारे चतुरंगुलः। क्षुरप्रान्तो नाभिसमो दृढमुष्टिः सुचन्द्ररुक् ॥ २१४ ॥ खड्गः ॥

[६] प्रासश्चतुर्हस्तदण्डबुध्नः क्षुराननः ॥ २१५ ॥

[७] दशहस्तमितः कुन्तः फालाग्रः शङ्कुबुध्नकः ॥ २१ ॥

[८] चक्रंषड्हस्तपरिधि। क्षुरप्रान्तसुनाभियुक् ॥

[९] त्रिहस्तशिखो। लोहरज्जुः सुपाशकः ॥ २१६ ॥

[१०] गोधूमसम्मितस्थूलपत्रं लोहमयं दृढम् ॥ कवचं सशिरस्त्राणमूर्ध्वकायविशोभनम् ॥ २१७ ॥ [शुक्र० अ० ४, ७]

जीव और ईशका पुनः मिलन।

(कवि— श्री० लालचन्द्रजी)

क्या कारण है जो मनुज हृदयमें,
ईश सदा रहने पर भी।
दृष्टि से ओझल रहते है,
और दुख मनुज निज सहते हैं?
क्या ईश मनुज हित अपने को,
ओझल रखना ही हैं चाहते?
अथवा मनुज ही अपने को,
भगवत से दूर रखे जाते?
इन दोनों का सूत्र मिलन कभी,
होगा भी भला कैसे होगा?
अथवा मिलने की चाह लिए,
मानुज निज बाट रहे जोहता?
क्या कोई ऐसा मारग है,
जिससे प्रभुमिलन सुगम होवे?
और जीव निकटतम होकर भी,
न वृथा झंझट में चित खोवे॥
हां, साधन ही एक मारग है,
जो प्रभु से मेल करा देगा,
जो जीव-ईश के अन्तर को
निश्चय ही अवश्य घटा देगा॥
जब साधन में पुरुषारथकर
मानुज का साहस बढता है,
तब शक्तियुत वह नम्र बना
दुनिया में आगे बढता है॥

जो पक्के रहकर साधन में,
विघ्नों को दूर भगाते हैं।
नित नए नए आनंद उन्हें
साधन में मिलते जाते हैं॥
साधन हो इस दुनिया में
सब कामना पूरी करता है,
मन अपने को जब साधक यहां,
यत्नों से वश में करता है।
तब धीरे धीरे यत्नशील वह
आगेही आगे बढता है
सब भय भाव पीछे रह जाते,
उन्नतिशिखर पर चढता है॥
ऊपर जाते जाते उसको,
पथमें विघ्न अनेक रहें।
पर वे सब उसका अहित कदापि
कर न सकें जो सचेत रहे॥
जब मनुज एक पग बढता है,
प्रभु प्रीतम दो आगे आते।
इस भान्ति मिलन निज प्यारे का
सुगम प्रभु करते जाते॥
नित पग पग पर फिर अंतर यह,
घटता हो घटता जाता है,
और धीरे धीरे जीव-ईशका
पुनः मिलन हो जाता है॥

शरीररूपी नगरी।

आठ चक्र नौ द्वारे वाले,
दुर्गरूप इक नगरी है।
मन रंजित अरु सज्जित बहुविधि,
शोभायुत वह नगरी है॥
दो रक्षक हैं अन्तःपुरमें,
आठ बाहिर के थानों में।

मंत्री सचिव अमात्य चतुर सब,
रहें सभी निज स्थानों में॥
स्वर्णजडित चमकाले मन्दिर,
अन्दर राजा वास करे।
एक स्थान में रहने पर भी,
प्रेम सभी के साथ करें॥

परमात्मध्यान

अर्थात् पराविद्याके चमत्कार।

(३)

(ले- श्री० रुलिया रामजी कश्यप, एम. एससी.)

(१) एक बार भारतवर्षके महामान्य नेता ने घोषणा कर दी कि मैं अमुक जनविभाग की समस्या के निर्णयके लिये व्रत अमुक तिथिसे आरम्भ करूंगा और जब तक वह निर्णय नहीं होगा, तब तक व्रत नहीं तोडूंगा, चाहे मृत्युही हो जाय। इस भयङ्कर व्रतकी घोषणा पत्रों में पढकर एक भक्त विह्वल हो उठा। उसने विचारा कि ऐसा उच्च कोटिका नेता इस प्रकार गंवाया नहीं जा सकता। उस ने स्वयं उसी दिनही व्रत रख लिया और परमात्मा की ओर चित्त लगानेका यत्न दिन भर करता रहा। सायंकाल उस ने अपने विचारानुकूल अपनी हार्दिक शक्ति से अपना संदेशा सरकार के उच्चतम अधिकारियों, महाराज तथा महामंत्रिको भेजनेका यत्न केवल दिव्य उपायोंसे किया और परमात्मा की एक प्रार्थना इसी विषय की एक कवितामें लिखी। उस को अतीव प्रसन्नता हुई जब उस ने समाचार पत्रोंमें पढा कि उस नेता को एक सप्ताह ही व्रत रखना पडा, क्यों कि निर्णय हो गया। भक्त ने धन्यवाद किया उस भगवान्का जिस ने उस की टेर सुनी तथा सरकार के पास उसका सन्देशा तुरन्त पहुंचाकर उसे सत्य पथ दर्शाया। भक्त अतीव प्रसन्न था कि महामान्य नेता अब तो अपनी आयु पूरी भोगेगाही।

(२) एक सज्जन की लडकी का विवाह था। उस का बडा जामाता विवाहसे तीन चार दिन पहिले ही आगया। उस सज्जनने कहा कि "मेरा विचार था कि तुम विवाह से बहुत पहिले आकर मेरे साथ विवाहप्रबन्ध करनेमें सहायक होगे, परन्तु तुमने लिख दिया कि मैं एक दो दिन पहिले ही आऊंगा। मैं स्वयं सुस्त ही रहता हूं। दो दिन ज्वर हो गया एक दिन न हुआ" इत्यादि। पुत्रने उत्तर दिया तो पिताजी! पहिले तो यही होना चाहिये कि आप को स्वस्थ रक्खा जाय। फिर जब वह सोने लगा तो उसके सालेने बात बताई कि वर्षा के लिये छाया अर्थात् चांदनी आदिका प्रबन्ध करना होगा। उस ने मनमें सोचा कि वर्षासे भी बचाव करना चाहिये।

उस जामाता ने इन दो विचारों को अपने हृदय में धारणा कर लिया। परमात्मा की अपार कृपासे उसका ससुर विवाह समाप्ति तक सर्वथा स्वस्थ रहा। तत्पश्चात् बरात अभी बिदा नहीं हुई थी कि उसको कुछ अजीर्णसा प्रतीत हुआ। उसने कहा कि काका तुम्हारा ज्योतिष गलत होता जाता है। उस ने कहा कि पिताजी जब हो जायगा तो कहना बस वहीं व्याधि रुक गयी। इस प्रकार विवाहकाल में वह सब प्रकारसे स्वस्थ ही रहा और सम्पूर्ण कार्य उस ने विना कष्ट के आनन्दमें ही निबाहा।

वर्षा न हो इस निमित्त वह जामाता प्रति दिन स्नान करके सविता सूर्य हिरण्यगर्भ इन्द्र भगवान् आदि वर्षा विरोधी देवताओंकी स्तुति एक बार अवश्य कर लिया करता रहा। इस क्रिया के प्रति दिन करते रहनेसे वर्षा विवाह के दिनोंमें न हुई।

ईश्वर अनन्त शक्तिमय है, उस के भक्त जब उससे सम्बन्ध जोडते हैं तो वह अपनी शक्ति उनमें से भेजने लगता है जैसे तांबे की तारोंमेंसे बिजुली भेजी जाती है। परिणाम यह होता है कि भक्त केवल (Medium) माध्यम ही रह जाता है और उस का कार्य सर्वथा ऐश्वरीय ही होता है। इसी प्रकार से ईश्वर अपने जनों की सहायता के लिये अपने भक्तों को उनके पास भेज देता है और कार्य सिद्धि का निमित्त उनको बना देता है।

(३) उपरोक्त विवाहमें एक विचित्र बात हुई। वह यह कि कन्याका फुफ्फड (भुआका पति) एक विशेष भयमें प्रायः छः मास से ग्रस्त था, उस की कहानी कन्या के पिता ने अपने जामाता को सुनाने के लिये कहा कि काका, यह विचित्र रूपसे फंसा हुआ है। इस का भी कुछ बनाओ। उस ने सम्पूर्ण कहानी सुनी, फिर दूसरी बार सुनाने को कहा उन फुफ्फड और पिता दोनों ही ने बडी सत्यता से इस प्रकार उस का वर्णन किया —

एक अपने गांववाले के साथ इसकी अनबन है। उस ने इस को तथा इस के पुत्र को फंसाने के लिये इनपर एक झूठा अभियोग करवाया, परन्तु उस में विपक्षी हार गये और यह सर्वथा छूट गये इन का कुछ न बिगडा। इस पर उन्हों ने इन्हें तंग करने का एक विचित्र ढङ्ग निकाला। उन के पास एक आला (यन्त्र) है, वह उस से एक शीशे (Lens)के द्वारा अपने घरकी एक लडकी के माथे पर किरणों फेंकते हैं, तो वह लडकी बोलने लग जाती है और जो कुछ अपने स्थान पर बैठा यह फुफ्फड करता है वह सब उस लडकी को दिखाई देने लग जाता हैऔर वह सब वह उन यन्त्रवालों को बताने लग जाती है। उधर जब वह यह क्रिया, आरम्भ करते हैं तो फुफ्फड को गर्मी (सेक) लगता है और उस का दिल घबराने लगता है, वह डरता है और उठ कर जपजी का पाठ करने लगता है। जब तक वह यह क्रिया करते रहते हैं फुफ्फड जपजी पढता रहता है, क्योंकि जैसे उधर लडकी को यह दिखाई देता रहता है उसी प्रकार इस को लडकी, यन्त्र, शीशा आदि उस स्थान का सब कुछ दिखाई पडता रहता है।

यह सब कहानी सुनकर समझ कर उस जामाता ने कहा कि फुफ्फडजी ! आप की शक्ति उनसे बहुत बढी हुई है क्योंकि वह तो यन्त्र, शीशे, लडकीरूपी माध्यम, आदि की सहायता से इतना कुछ करते हैं और फिर भी आपका कुछ बिगाड नहीं सके और आप बिना किसी माध्यम यन्त्र आदि के ही वह सब कुछ देख लेते हैं और उन की कुचेष्टा को केवल जपजी पाठ द्वारा ही निष्फल कर देते हैं। अन्य उपस्थित सज्जनोंने भी इस का अनुमोदन किया। फुफ्फडका उत्साह बढ गया। अगली प्रातः उस ने बतलाया कि आज मुझे बहुत कम कष्ट हुआ। तब उस जामाताने उसे कहा कि फुफ्फडजी ! क्योंकि उनकी नियत अच्छी नहीं और वह आपको बहुत तङ्ग करते रहे हैं इस लिये मेरे विचारमें आप को इसका भी अधिकार है कि जब आप को गर्मी (सेक) लगे उस समय आप यह उन को कहें कि मैं यह सेक तुम्हें वापस करता हूं, इस से वही सेक यदि उन की नियत बुरी होगी तो उनको लगेगा और यदि बुरी नहीं होगी तो उन की कुछ हानि नहीं होगी और आप का सेक हट जायगा, क्योंकि आततायि को दण्ड देनेमें दोष नहीं लगता और शठ के साथ शठता करनेमें भी विशेष पापका भय नहीं। अगले दिन फुफ्फडने बतलाया कि मैं आज उनकी प्रतीक्षा भी करता रहा पर कोई दिखाई नहीं दिये। अगले दिन फिर उस ने यही बतलाया कि मेरा कष्ट दूर हो गया।

इस विचित्र घटनाके उल्लेखका अभिप्राय यह है कि श्रद्धारूपी हार्दिक विश्वाससे भगवान्‌का वर्णन पढना महान् भयका निवारक है जैसे कि केवल जपजी पाठसे फुफ्फड अपने शत्रुओंका प्रतिकार करता रहा। और दूसरे कि भक्तको समयपर सत्य का स्फुरण होता है और उसकी वाणी सत्य कहती है जैसे कि भक्त जामाता तुरन्त व्याधि पहचान गया और वचन मात्रसे उस व्याधिको उसने दूर कर दिया।

इन तीनों घटनाओंसे पता चलता है कि पर-मात्माके भक्त की शक्ति बडी विविध तथा प्रबल और दुरङ्गम होती है यथा भारतवर्षमें बैठे इंग-लैंडमें विचार पहुंचाना केवल Telepathy हृदयों को दूरसे प्रभावित करने द्वारा, वर्षाको दूर भगाना, किसी पुरुषके रोगोंको दूर ही रखना, शत्रुओंके मानसिक प्रयोगोंसे कष्ट पानेवालोंको उन प्रयोगोंके प्रभावसे मुक्त करवाना आदि। इन चारों प्रकार की शक्तिका प्रकाश एकही व्यक्तिसे हुआ जो पूर्व लेखोंके अनुसार ओ३म् का हार्दिक जाप करनेमें प्रवीण था। इस वास्तविक शक्तिस्रोत तो वही ओ३म्कार है जिसके ऊपर अगाध श्रद्धा होनेके कारण वह अपनी जीविकाभी सबके बार बार कहनेपर भी स्वतन्त्र उपार्जन करनेका ढङ्ग नहीं करता, क्यों कि उसको अटल विश्वास है कि जब मैं अपना मस्तिष्क ही भगवान्‌के विचारोंमें उलझाकर रखनेका यत्न करता रहता हूं और सांसारिक विचारोंको परे रखना चाहता रहता हूं तो यह कब संभव है कि भगवान् मेरे योगक्षेम का प्रबन्ध न करें। इस प्रकारका अटल विश्वास यदि भगवान् पर किसीको हो तो भगवान् उसका अवश्य जीवननिर्वाह स्वयं करवाते हैं।

जिस ओ३म्कारका इतना महान् प्रभाव है उसकी व्याख्या तथा वर्णन सर्वोत्तम रीत्या माण्डूक्योपनिषद्‌में किया गया है और उसमें केवल इसी का वर्णन है इसी कारण वही उपनिषद् उपनिषत्-सार कही जाने की अधिकारीणी है क्यों कि उस एक हीका आश्रय लेकर भक्त भगवान्‌के समीप बैठ जाता है, इस कारण भक्तोंको भगवान्‌के समीप बिठलानेके लिये उस उपनिषद्‌का गुह्य यहां वर्णन करते हैं। वह यह है—

ओ३म् ही व्यापक नित्य तत्त्व है। माण्डुक्य महात्माका ब्रह्मके समीप बैठना।

कानोंसे कल्याणरूप ओ३म् शब्द ही सुनें। श्रद्धालु उपासक लोग हम आखोंसे कल्याणरूप ओ३म्कार भगवान् का ही दर्शन करें। अङ्गोंको निश्चल करके अपने शरीरके सम्पूर्ण वाक् आदि अवयवोंद्वारा उसी भगवान् की स्तुति करें[illegible] विद्वान् तपस्वी यतियोंके लिये जो आयु दिव्य शक्तियोंके संघर्ष द्वारा परम देव परमात्माने भोग्य रूपसे स्थिर की है उसको उसी विशेष भक्ति करते हुए पूरी भोगें। वह अत्यन्त बढे हुए यशवाला पर-मैश्वर्यशाली इंद्र भगवान् ओ३म्कार सदा रहनेवाला ओ३म् रूप भद्र हमें देवे। सर्वज्ञ सर्व प्राप्त संसार तथा वेदका पालन पोषण कर्ता पूषा भग-वान् ओ३म्कार उत्तम अस्तित्ववाला होता हुआ हमें कल्याण देवे। सूक्ष्म पदार्थोंको भी सूक्ष्मतम करनेवाला सर्वाधारनाभिः अटल तत्त्व जो किसीको भी कष्ट अथवा दुःख देना नहीं चाहता ऐसा तार्क्ष्य भगवान् ओ३मकार सदा अपना सुखदायी अस्तित्व हमें अनुभव करावे। बडे से बडों का भी प्रकाश, वाणी आदिकाभी रक्षक पालक हवं सुष्ठुतया धारण करे जिससे हमारा सदा कल्याण हो। उसी ओ३म् की कृपासे सर्व प्रकारके शारीरिक मानसिक, आत्मिक दुःख भय शोक हमारे सदाके लिये शान्त हो जावे, हम सर्वथा शान्त हों।

'ओ३म्' तो एक अक्षर मात्र है परन्तु वास्तव में सारा दृश्यमान जगत् ही उसकी व्याख्या है जो बीत चुका, जो अब बना हुआ है और जो भी आगे कभी सम्भव हो सकता है, वह सभी असलमें ओ३म् कार मात्र ही है। कहां तक लिखे कालकी जहां पहुंच नहीं यदि वहां भी कोई सत्ता सम्भव है तो वह भी ओ३म् ही है, वहभी इससे भिन्न तथा बाहर नहीं तात्पर्य यह कि यह सब ही ब्रह्म है, यह आत्मा भी ब्रह्म है, यह ओ३म् कारही ब्रह्म आत्म सर्व है कारण कि यह चार रूपोंमें प्राप्तव्य है।

सर्वरूपमें यह स्थूल बुद्धिवालोंको भी अनुभव हो सकता है। यथा जागता हुआ प्राणी बाहरके दृश्यमान कार्योंसे जब अपनी बुद्धि प्रयुक्त करता है तो वह अन्न खाता शौच जाता लोगोंसे मिलता जुलता है इत्यादि स्थूल भाग भोगता हुआ अपने उन्नीस प्रकारके भोगसाधनोंके प्रयोगसे अपने सातों अङ्गोंको दृढ अथवा क्षीण करता हुआ सभीको प्रत्यक्ष शरीरधारी प्राणीके रूपमें दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार सर्व संसाररूप शरीरको धारण

…नेवाला ब्रह्मरूपी प्राणी सर्वथा जीवित जाग्रत है। अग्निमुखमें स्थूल पदार्थोंको डालकर उनको सर्वथा चूर्ण बारीक टुकडे टुकडे करके अपने अन्तरिक्षरूपी उदर में उन्हें सर्वथा जीर्ण करके द्यौलोक आदि अपने मस्तिष्क आदि सातों अङ्गोंको उस जीर्ण रससे तृप्त तथा दृढ करता है और जो स्थूल भाग वह लोकलोकान्तररूपी अङ्गमें परिणत नहीं कर पाता, वह पुरीष तथा मूत्र,ओलें तथा वर्षारूप में फिर बाहर फैंक देता है और, भूमि उसे फिर पवित्र करनेका यत्न करती है, ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्यके मूत्रको तथा पुरीषको पृथिवि फिर खाद समझ पवित्र करके औषधी आदि रूप दे देती है। सूर्य चन्द्र इसकी आंखें हैं, सूर्यकी रश्मिएं इसकी optic nerves चाक्षुष शिराएं हैं वायु इस के श्वास प्रश्वास हैं दिशाएं इसके श्रोत्र हैं। अथवा सम्पूर्ण प्राणियोंके मुख बाहु ऊरू पाद वाक् हस्त शीर आदि सब उसी वैश्वानर के मुख बाहु ऊरू पाद, आदि हैं क्योंकि इनमेंसे जब जिसे चाहे उसे वह अपने शरीर अवयवके रूपमें प्रयोग कर सकता है इसी लिये वह सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपाद् आदि है वही वैश्वानर है । उसके भोगसाधन मुख १९ उसी प्रकारके हैं जिस प्रकार इस देहधारी मनुष्यके हैं यथा ५ ज्ञान, ५ कर्म इंद्रियां, ५ प्राण, ४ अन्तःकरणवृत्तियां। सम्पूण प्राणियोंके यह १९ मुख ही उस वैश्वानरके १९ प्रकारके मुख हैं। भेद यह है कि प्राणि के तो यह एक एक हैं पर उसके यह सहस्र सहस्र हैं अर्थात् उसकी ज्ञान इन्द्रियां ५ नहीं परंतु ५ सहस्र, कर्म इन्द्रियां ५ नहीं वरञ्च ५ सहस्र, प्राण ५ नहीं परन्तु ५ सहस्र, अन्तःकरण ४ नहीं वरञ्च ४ सहस्र इत्यादि जहां सहस्रका अर्थ सर्व है और दोनोंका अनन्त। ऐसा वैश्वानर स्थूलभुग् जागरित स्थानमें बहिःप्रज्ञ है, १९ मुखोंवाला सात अङ्गोंसे युक्त है। जैसे हम जाग्रत अवस्था में पूर्णतया संसारी होते हैं ऐसे ही यह वैश्वानर सृष्टिकालमें दिनमें पूर्ण संसारी होता है. इस रूपमें इस पाद में इसकी पूजा केवल, आदर्श संसारी ही कर सकते हैं। संसार में हर वस्तु का यथोचित प्रयोग ही इस वैश्वानरकी वास्तविक पूजा है. चाहे जान बूझ कर कर लो चाहे अनजाने। जो करेगा सो फल पायगा। जो केवल सोचता रहेगा वह इसका फल कैसे पा सकता है? पहिली श्रेणी यही है, परमात्मा की प्राप्ति में पहिला पाठ यही है। जो यही नहीं पढता वह आगे क्या चलेगा? इस की परीक्षा का पत्र भी यहीं वर्णित है वह है कि क्या वास्तव में कोई ब्रह्म के पीछे ऐसा हाथ धोकर पडा है कि अब पीछे लौटने का नाम लेना भी उसके लिये असंभव है यदि वास्तव में उस के दृष्टिकोन में इतना अन्तर पड चुका है तो समझो कि उस ने पहिली श्रेणी पास कर ली है क्यों कि यह आरंभका प्रश्नपत्र है. यही Kinder garton class, Baby class है, कच्ची पहिली है. यह Test है कि बच्चा पाठशाला भेजने योग्य है, कि नहीं, School में इसे दाखिल करवाना चाहिये या अभी और कुछ वर्ष और ठहरना होगा। इसी कारण इस का नाम "अ" रक्खा गया है, आदि होने से आप्तिसे। जिस की सब सांसारिक कामनाएं तृप्त हो चुकी हैं इस ने ब्रह्मध्यान आरम्भ किया है, आदि उस की इस संस्थामें हो गई है यही दो शर्तें हैं। सांसारिक कामनाएं पूर्ण हो जाएं वास्तविक आरम्भ हो जाए तब जानों वैश्वानर की उपासना सिद्ध हो गई, उपनिषद् अधिकारी हो गया। यहां तक पहुंचकर फिर अगली जमाअत में चढा दिया जाता है, अगली श्रेणीमें प्रविष्ट होता है, दूसरे पादकी अन्वेषणा आरम्भ करता है।

वह है स्वप्नावस्थाकी न्यायीं। जैसे हम सोने से पूर्व तथा पश्चात् होते हैं अथवा जागने से पश्चात् तथा पूर्व होते हैं। इस में हमारा ज्ञान अन्दर की ओर होता है परन्तु सातों अङ्गोंपर प्रभाव उस का इस समय भी पडता है। १९ मुख भी इस दशामें भी भोग भोगते हैं, परन्तु भोगते हैं एकान्त में विशेष विविक्तता में। अत्यन्त सूक्ष्म भोग यह है क्यों कि यह केवल विचारभोग मात्र है।

Mental matter मात्र ही का यहां प्रयोग होता है। उदानरूप तेज केही आश्रित इस दशामें आत्मा होता है। यही दूसरी प्राप्तव्य अवस्था इस आत्मा की है जैसे प्रथम अवस्था स्थूल प्राकृतिक भोग की है, वैसेही यह द्वितीय अवस्था सूक्ष्म मानसिक विचारात्मक भोग की है; परन्तु भोग साधन वही १९ मुख हैं और भोगका प्रभाव उन्हीं सात अङ्गों पर पडता है। भेद केवल यही है कि पहिलीमें बुद्धि बाहर को गई होती है. दुनियां की वस्तुओं में लगी होती है. यहां बुद्धि अन्दर ही होती है विचारोंमें ही उलझी होती है वस्तुओंसे सर्वथा असम्बद्ध होती है पर प्रभाव इसका सातों अङ्गोंपर पड सकता है, जैसे जाग्रतमें क्रोध से मुख लाल हो जाता है ऐसे ही स्वप्नमें गिर जानेसे भी बच्चा वास्तव में स्थूल रूप में चीख मारकर रो पडता है, इसी कारण यद्यपि अन्तःप्रज्ञ है परन्तु है सप्ताङ्ग और क्यों कि उन्हीं १९ मुखोंसे ५ ज्ञान ५ कर्म इंद्रियां ५ प्राण ४ अतःकरण रूप भोग-साधनों से ही स्वप्न भोगता है, इस लिये मुख यहां भी १९ ही हैं। क्यों कि बिस्तर पर पडा अपनी ही रजाईमें लिपटा सर्वथा अकेला ही स्वप्न देखता है, इस कारण प्रविविक्तभुग् है. सर्वथा अकेला ही भोग भोग रहा होता है। परन्तु यह जाग्रत से उत्तम अवस्था अन्दर जानेवालेके लिये है। इस लिये "प्र" उपसर्ग लग गया। अर्थात् प्रविविक्तभुग् कहा गया कि है अकेला पर है संसारी साथियों के साथ से प्रकृष्ट दशामें। क्यों कि जो शक्तियां जाग्रतमें प्राप्त की हैं उन्हींके विकाशसे इस स्वप्नमें सम्बद्ध होता है इस कारण "तैजस" कहाता है। क्यों कि उदान आश्रित मन मूर्द्धा से हृदय को जाता हुआ मार्गमें स्वप्न देखता है और उदानही तेज है, इस कारण उस तेज के आश्रित आत्मा 'तैजस' कहाता है। परमात्माकी दूसरी अवस्था भी यही है कि स्वप्न अवस्थास्थित जीवोंकी स्वप्न अवस्थाका साक्षी अधिष्ठाता। इस कारण इस दशामें परमात्माका वही वर्णन किया जा सकता है जो ऊपर जीव का हुआ है। भेद केवल यह है कि जीव अकेले अकेले इस दशा का अनुभव करते हैं, परमात्मा सबकी इस दशा को अन्तर्यामी होकर देखता भालता है और यदि चाहता है तो स्वप्न में ही दिव्य दर्शन दे जाता है। आकाश पाताल की सूचनाएं प्राणिमात्रको स्वप्न द्वारा ही दे डालता है। इस स्वप्नसंसारका अधिष्ठाता तथा दिव्य तथा पितर लोकोंका साक्षी तथा संसार के रचने से पूर्व उसका मानसिक चित्र निर्माता तथा वेदरूपी सृष्टि-विज्ञानरचयिता इत्यादि रूपोंमें तथा पार्थिव संसार के पूर्ववर्ती शाक्तिक संसार का रचयिता होनेसे परब्रह्म 'तैजस' है. 'प्रविविक्तभुग्' है, 'अन्तप्रज्ञ' है परन्तु प्रभाव क्योंकि उसका इस अवस्थामें और भी अधिक सृष्टिके सूर्य, चन्द्र अग्नि, पृथ्वी, आदि-पर पडता है इस कारण है फिर भी 'सप्ताङ्ग" और क्योंकि उन्हीं १९ भोगसाधनों के द्वारा सब जीवों तथा निर्जीवोंपर भी शासन वह कर रहा है इस कारण मुख १९ ही हैं इस दूसरी अवस्थामें भी उसके।

यह अवस्था सूक्ष्म है पर शक्तिशालिनी है, विचारमयी है। इस कारण प्रथम से उत्कृष्ट मानी गयी है, क्योंकि संसार में भी विचारों का प्रभाव बडा प्रबल दृष्टिगोचर होता है। एक विचार संसार को क्रूर बना देता है, दूसरा नरम स्निग्ध। एक ज्ञानविस्तार करता है, दूसरा अज्ञानता के गढेमें धकेल देता है। एक बच्चों को बहादुर बना देता है. दूसरा स्त्रैण। इत्यादि। वास्तवमें विचार, स्थूल प्रकृतिका अधिष्ठाता है इसी कारण स्वप्नजाग्रत्का अधिष्ठाता है इसी कारण तैजस वैश्वानरका स्रोत है। विचार भोक्ता, एकान्तसेवी, स्थूल भोगका नियामक है, अन्तःप्रज्ञ हि बहिःप्रज्ञतासें सफल हो सकता है। उकार ही अकारको 'ओंकार' रूपमें शक्तिसंपन्न प्रकट कर सकता है। दूसरी श्रेणीमें पहुंचा हुआ ही प्रथम श्रेणीवालो पर आज्ञा कर सकता है। Second year वालेही First year वालोंको fool बना सकते हैं। वास्तवमें विचारवान् ही ऊंचा है क्योंकि यही स्थूल सृष्टिसे उठाकर मनुष्यको एकाग्रता, चित्तवृत्तिनिरोध, आदि की ओर

शक्तिस्रोतकी ओर ले जा सकता है। यही विचार ही दोनोंका सम्बन्ध कर्ता है। इस दशामें विचार-विस्तार खूब होता है। उत्तम उत्तम विचार संसारको इस दशावालोंसे ही मिलते हैं। Dreamers ने ही संसारके इतिहासके पृष्ठ बदल डाले हैं। आदर्श स्वप्न लेनेवालोंमें ही महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टागोर, मदनमोहन मालवीय, महात्मा हंसराज, आदि गणनीय हैं, यही इतिहास बदलते हैं। इनके स्वप्नोंने ही D. A. V. Collage, Hindu University, Vishwa Bharati, Non- cooperation, आदि युगपरिवर्तक काण्ड खडे कर दिये हैं। तैजस ही शक्तिशाली विचारकही वैश्वानर बनते हैं, संसार का नेतृत्व निभा सकते हैं, इत्यादि। इस दशामें पहुंचे की पहिचान यह है कि उसके उच्च विचार, सत्य विचार बहुत विस्तार पाते हैं। वह द्वन्द्व आदिसे मुक्त-सा समान एकरससा हो जाता है ऐसे विचारकोंके जो सीधे सङ्गमें एकबार आ जाते हैं वह फिर पीछे नहीं लौट सकते। गुरुके पाँच प्यारे, दयानन्दके पांच लफटीनेंट स्वा० श्रद्धानंद, पं० लेखराम, पं० गुरुदत्त विद्यार्थि, महात्मा हंसराज, स्वा० दर्शनानन्द, यह उनके उज्ज्वल विचारसे विमुख होना मृत्यु ही समझेंगे। वास्तवमें अब्रह्मवेत्ता उस ब्रह्मवादिके कुलमें नहीं जन्म ले सकता, जिसने 'उ' मात्राका ध्यान किया हो। वैश्वानर तथा तैजसके ध्याताके कुलमें परमात्मासे विमुख व्यक्ति जन्म नहीं ले सकती। क्योंकि जन्ममरणसे परे आत्माओंको इच्छानुकूल आवाहन कर सकना उसके वशमें होता है। ऐसा भक्त केवल भक्त आत्माओंको ही अपने कुलमें बुलाएगा या भेजेगा। और उसके लिये यह तो लोक और परलोक समानही होता हो। उसके लिये यह कौनसा कठिन काम है कि वह उस लोकसे भगवद्भक्तोंको ही इस लोकमें अपने कुलमें निवासके लिये बुलावे इत्यादि। 'उ' मात्राके ध्यायक की पहुंच अन्तरिक्ष लोकमें, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें, होती है जैसे 'अ' ध्यायककी ऋग्वेद मन्त्रोंमें तथा पृथिवीलोकमें। हां आदित्य लोकमें तो 'म' ध्यायक ही हस्ताक्षेप कर सकता है, क्योंकि सामवेदकी गीतियोंपर अधिकार उसे ही होता है वह, 'म' मात्रावाला पद कौनसा है वह आगे लिखते हैं।

वह पद वही है जो हमारी सुषुप्तिकी दशा है, जहां हम सर्वथा कोई इच्छा मनमें नहीं रखते इस कारण कोई स्वप्न भी हम नहीं देखते. जागना तो क्या था? सर्वथा निद्राग्रस्त होते हैं, गूढी नींदमें पडे खुर्राटे लगा रहे होते हैं। उस दशामें हमारी प्रज्ञा न बाहर व्यवहारोंमें स्थूल सांसारिक विषयोंमें चलती, है न आन्तरिक मानसिक सूक्ष्म विचारमें विचारती है। हम लौकिक पारलौकिक अनेक रूप त्याग कर सर्वथा एक हो चुके होते हैं. प्रज्ञा हमारी जम चुकी होती है। इसलिये बर्फ की न्यायीं सर्वथा अचल अडोल होती है इसमें जल की भान्ति प्रवाह सर्वथा नहीं होता। विचारतरंग शून्य, सर्वथा प्रवाहरहित, शान्त गम्भीर होती है। आत्मा केवल सुषुप्ति आनन्द भोगता हुआ आनन्दमय ही हो रहा होता है चेतनता ही उस समय इस का एक मात्र भोग साधन होता है इसी चेतनतारूप मुखसे वह, आनन्द स्वादन करता हुआ आनन्दमय होता है। उसी से प्रज्ञास्रोत निकल कर स्वप्न जाग्रत अवस्था निर्माण करता है. इसी कारण यह प्राज्ञ कहलाता है। क्योंकि वास्तव प्रज्ञास्रोत इस की यही दशा है जैसी सात्त्विक राजस तामस सुषुप्ति भोगेगा वैसीही जाग कर अथवा स्वप्न में सात्त्विक राजस तामस प्रज्ञा प्रयोगमें लायगा जैसे प्राज्ञ रूप होगा तदनुकूल ही तैजस तथा वैश्वानर स्वरूप प्रगट होगा। इसी कारण प्राज्ञ "म" का वाच्य है क्योंकि प्राज्ञ ही तैजस वैश्वानरका मिननेवाला है। मितिसे ही इस अवस्था का वाचक "म" है अप्रीति के कारण भी। क्योंकि इसीमें दोनों जाकर अन्त होते हैं, यही दोनोंका स्रोत है। इस प्रकार जीव की तीसरी अवस्था का वर्णन हुआ। इस अवस्था का अधिष्ठाता परमात्मा भी प्राज्ञ है। यही परब्रह्म की तृतीय प्राप्तव्य अवस्था है, इस की तीसरा पाद है, इस दशामें वह सर्वज्ञ हैं, सब को जाननेवाले हैं। जैसे सुषुप्त जीव

वास्तवमें अपने रूप का ज्ञाता है वैसे ही सृष्टि-प्रलयसे असम्बद्ध परमात्मा, सबका जाननेवाला सब का अधिष्ठाता सब को अन्दर से नियमन करनेवाला यही सब का कारण, सब का स्रोत प्राणि अप्राणियों की उत्पत्ति तथा प्रलयका काणर है। वास्तवमें इस दशामें जैसे जीव अपनी थकना उतारकर शरीरको नवीन शक्ति स्फूर्ति युक्त कर लेता है ऐसे ही इस अवस्थामें भगवान् विश्व को नव जीवन प्रदान करते हैं। इसी कारण उन की इतनी महिमा वर्णित है कि सम्पूर्ण को मिन डालते हैं सम्पूर्णका आप्यय इसीमें इन्हींमें हो जाता है। परमात्माकी इस अवस्था का ध्याता भी यही पद प्राप्त कर जाता है. वह भी विश्व को मिनने लग जाता है, वह भी विचार तथा क्रिया-मय अन्तरिक्ष तथा पृथ्वीलोकस्थ प्राणि अप्रा णियों को वश कर सकता है। सब का वह आप्यय स्थान हो जाता है। सब उस की ओर आते हैं वह सब को नापता है मिनता है। उसकी शक्ति विचार-शील "उ" उपासक से अनेक गुणा बढी होती है। इत्यादि "म" पादका वर्णन किया गया।

"अ" उपासक की कामनाएं सिद्ध होती हैं। आरम्भ ब्रह्मविद्या का उसने कर लिया है, उस का आदि हो जाता है। संसारमें मनुष्य लोकमें उस की जड लग जाती है, वंश उच्छेद उस का नहीं होता। लोग उसे भक्त समझ उस के पास आने लग जाते हैं। पुत्र पौत्रवान् वह चिरायु पाता है इत्यादि।

"उ" उपासक उत्तम विचार विस्तार करता है, मरने जीनेमें समान रहता है, इस लोक और परलोक के विषयमें दोनों को समान समझकर बात करता है. मरे जीतोंमें एक सी उपेक्षा रखता है, उस के कुलमें कोई परमात्मा से विमुख नहीं होता अर्थात् उसका चेला, उस चेलेका चेला, आदि उसकी ब्रह्म गद्दी चलती है। उस के मरने पर ही उस के विचार समाप्त नहीं हो जाते।

"म" उपासक सम्पूर्ण संसार को मिन जाता है, सब का आश्रय आप्यय हो जाता है। वही सर्वज्ञ सर्वेश्वर, सर्वयोनि, सृष्टिप्रलयकारण और सबका अन्दरसे नियमनकर्ता हो जाता है। चाहे इन सिद्धियोंका प्रयोग करे, चाहे इन से विरक्त हो चतुर्थ पादका ध्यान जमावे।

चौथे के लिये ओ३म् शब्द में कोई मात्रा नहीं रक्खी गई। क्योंकि वह वास्तवमें व्यवहारसे तो सर्वथा पृथक् है। उस दशामें पञ्चभूतों के पञ्ची-करण प्रपञ्च की तो सर्वथा शान्ति पहिले ही, देर हुई, हो चुकी होती है। अतः वह सर्वथा इन्द्रियागो-चर है, वह चक्षु से देखा नहीं जाता, वाणि से वर्णन नहीं किया जाता, हाथों से पकडा नहीं जाता प्रकट चिह्न कोई उसे पहचनवा नहीं सकते, मन का विषय नहीं विचार से परे है, नाम उसका रख नहीं सकते क्योंकि ओ३म् कार की मात्राओंसे भी परे है. प्रज्ञा के व्यवहारसे सर्वथा ऊपर है, शान्त निस्त-रंग कल्याणमय शिव सर्वथा द्वित्वरहित केवल व्यापक सत्ता मात्र केवल एक तत्त्व है। वह अन्तिम अवस्था ज्ञेय विज्ञेय है। वहां जीव परमात्मा भेद नहीं वहां एक ही आत्मा है। आत्मा ही आत्मा के द्वाराहि आत्मा को हि प्राप्त कर लेता है। सर्वथा उस समय एक ही आत्मतत्त्व अनुभव होता है। जबतक दूसरेका भान है, तबतक चतुर्थ पाद प्राप्त नहीं हुआ।

इस प्रकार ओ३म्कार की मात्राओं तथा अमात्र चतुर्थ द्वारा ब्रह्मात्मा के पाद वर्णित हुए। क्योंकि इन दोनों का परस्पर पादमात्रा सम्बन्ध बडा सुन्दर समुचित है। आशा है इस भेदके खोलने से वह ब्रह्मात्मा मुझपर प्रसन्न होगी और मुझे तथा पाठकों को अपने चारों दर्शन देकर कृतार्थ करेगी। बारबार उसे तथा उस के उपास-कों को प्रणाम हो।

आसक्तिपाश कैसे कटे?

(कवि— श्री० लालचन्द्रजी)

आसक्ति ही निज पाशों में,
मानुष को जकड पकड रखती ।
और वृथा ऐंठ में ऐंठ रहे
मुरख को सदा जकड रखती ॥
इस बन्धन को कैसे काटें
क्या यतन सफल होगा ?
अथवा मानष इस दुनिया में
निज आशाहीन विफल होगा ॥
क्या हृदयगांठ खुल जायेगी
और ज्योति का अनुभव होगा ?
अथवा दुख दर्द भरी सांसो
का नित्य नया उद्भव होगा ॥
भगवान भरोसे रह करके
जो पुरुषारथ नित करते हैं,
भवसागर को सुखसागर कर,
परमारथ रत वे तरते हैं ॥
यम नियम सदा पालन करके
सत्पथ में जो सत्वर चलते,
कर्तव्यपरायण हो करके
दुख संकट में वे नहीं पडते ॥
जबलग भगवान नहीं भजते
तबलग सब दुख बखेडे हैं,
जब प्रीति लगी प्रभुचरणों में
धन संपद सूख बहुतेरे हैं ॥
हरिभक्तों को हर चरणोंमें,
जो प्रेम अलौकिक होता है ।
वह जगत आसक्त मनुज अन्दर
कबहु नहीं भासित होता है ॥

अनन्य भक्ति ।

मन प्रीतम साथ लगा मेरा
मुझे और की अब परवाह नहीं ।
धन गौरव यश सब उसमें है,
मुझे संपद की अब चाह नहीं ॥
प्रीय प्रीतम साथ रहूं नित मैं,
मेरे संग प्रीतम प्रेम करें ।
नैसर्गिक सुख चहुं ओर रहे,
जग के सब सज्जन क्षेम चहें ॥
कई द्वेषी द्वेष में जलते हैं
बिन कारण प्रेम में भंग चहें,
पर प्रीतम भेद कभी जाने
वे प्रेम के रंग में रंगे रहें ॥

प्रभुसे भेट ।

तव नाम दयालु सुना जगमें,
मैंने आश धरी तोहे मिलनेकी ।
क्या लेके चलूं तोहे मिलने को,
आतुरता मोहें तोहे मिलने की ॥
मैं ढूंढ फिरा घर सारे में,
अपनी न मिली कोई वस्तु मुझे ।
जो भेट में तेरे लेके चलूं,
और आश धरूं तोहे मिलनेकी ॥
निज भेट की चाह बढी नित ही,
बिन भेट भला क्या मिलना है?
इस भाव से मनन व्याकुल जो हुआ,
आशा न रही तोहे मिलने की ॥
देखा तो तूही मेरे द्वार पर,
आकरके खडा मुझे जोहता है ।
और मधुर हास्य निज मुखमें धर,
तूने चाह करी मुझे मिलनेकी ॥

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥

शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥

अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥ (२६)

(५।४)

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९ ॥

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥

अर्थ-(उपतिष्ठन्ती सेदिः) पास खडी होनेपर विनाशक होती है और (परामृष्टा मिथोयोधः) स्पर्श होनेपर द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले शत्रुके समान होती है ॥२४॥ (मुखे अपिनह्यमाने शरव्या) मुखमें बांधी जानेपर शरोंके समान और (हन्यमाना ऋतिः) ताडित होनेपर विनाशक होती है ॥२५॥ (निपतन्ती अघविषा) बैठती हुई भयानक विषरूपी और (निपतिता तमः) बैठी होनेपर साक्षात् मृत्युरूपी अन्धकारके समान होती है ॥ २६ ॥ (ब्रह्मगवी अनुगच्छन्ती) ब्राह्मणकी गौ (ब्रह्मज्यस्य प्राणान् उपदासयति) ब्राह्मणघातकीके प्राणोंका नाश करती है ॥ २७ ॥

(५।४)

(विकृत्यमाना वैरं) गौको काट देनेपर वैर करती है और (विभज्यमाना पौत्राद्यं) काटकर विभक्त करनेपर पुत्रादिकोंको खानेवाली होती है ॥ २८ ॥ (ह्रियमाणा देवहेतिः) ले जानेपर देवोंका वज्र बनती है और (हृता व्यृद्धिः) हरण होनेपर विपत्ति बनती है ॥ २९ ॥ (अधि धीयमाना पाप्मा) काबूमें रखनेपर पापसदृश होती है और (अवधीयमाना पारुष्यं) तिरस्कृत होनेपर कठोरता बनती है ॥ ३० ॥ (प्रयस्यन्ती विषं) कष्टी होनेपर विष होती है और (प्रयस्ता तक्मा) सतानेपर ज्वरके समान होती है ॥ ३१ ॥

अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्का ॥ ३२ ॥
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३ ॥
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४ ॥
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ३५ ॥
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ३६ ॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ ३७ ॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥ ३८ ॥ (२७)

(५।५)

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥

अर्थ— (पच्यमाना अघं) पकानेपर पाप रूप बनती है और (पक्वा दुष्वप्न्यं) पक जानेपर दुष्ट स्वप्नके समान दुःखदायिनी बनती है ॥ ३२॥ (पर्याक्रियमाणा मूलबर्हणी) घुमाई जानेपर मूलका नाश करनेवाली और (पर्याकृता क्षितिः) परोसी हुई तो विनाशक बनती है ॥ ३३ ॥ (गन्धेन असंज्ञा) वह गंधसे बेहोषी करती है, (उद्ध्रियमाणा शुक्) उठाई जानेपर शोक पैदा करती है और (उद्धृता आशीविषः) उठाई गयी सांपके समान होती है ॥ ३४ ॥ (उपह्रियमाणा अभूतिः) पास ली गई विपत्ति बनती है, (उपहृता पराभूतिः) पास रखी पराभवरूप होती है ॥ ३५ ॥ (पिश्यमाना क्रुद्धः शर्वः) पीसी जाते समय क्रोधित रुद्रके समान और (पिशिता शिमिदा) पीसी हुई सुखका नाश करनेवाली होती है ॥ ३६ ॥ (अश्यमाना अवर्तिः) खायी जाती हुई विपदा होती है और (अशिता निर्ऋतिः) खाई जानेपर गिरावट बनती है ॥ ३७ ॥ (अशिता ब्रह्मगवी) खाई हुई ब्राह्मणकी गौ (ब्रह्मज्यं अस्मात् अमुष्मात् च लोकात् छिनत्ति) ब्राह्मणघातकीको इस लोकसे और पर-लोकसे उखाड देती है ॥ ३८ ॥ [२७]

(५।५)

(तस्याः आहननं कृत्या) उसका वध घात करनेवाला है (आशसनं मेनिः) उसके टुकडे करना वज्रघातसमान है और (उबध्यं वलगः) उसका पक्व अन्न विनाशक होता है ॥ ३९ ॥

अस्त्वगता परिंह्नुता ॥ ४० ॥

अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥ ४१ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ४३ ॥

विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना॥४४॥

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ४६ ॥ (२८)

(५।६)

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४७ ॥

अर्थ- वह (परिह्नुता अस्वगता) ली जानेपरभी अपने पास नहीं रहती अर्थात् अपना घात करती है ॥ ४० ॥ (ब्रह्मगवी क्रव्यात् अग्निः भूत्वा ब्रह्मज्यं प्रविश्य अत्ति) ब्राह्मणकी गौ मांसभक्षक आग बनकर ब्राह्मणघातकीमें प्रवेश करके उसे खा जाती है ॥ ४१ ॥ (अस्य सर्वा अंगा मूलानि वृश्चति) इसके सब अंगों और मूलोंको काट डालती है ॥ ४२ ॥ (अस्य पितृबन्धु छिनत्ति) इसके पिताके बन्धुओंको छेदती है और (मातृबन्धु पराभावयति) माताके बन्धुओंको परास्त करती है ॥ ४३ ॥ (क्षत्रियेण अपुनर्दीयमाना ब्रह्मगवी) क्षत्रियके द्वारा पुनः वापस न दी गयी ब्राह्मणकी गौ (क्षत्रियस्य विवाहान् सर्वान् ज्ञातीन् क्षापयति) क्षत्रियके सब विवाहों और सब जातीवालोंका नाश करती है ॥ ४४ ॥ (एनं अवास्तुं अस्वगं अप्रजसं करोति) इसे घरके विना, आश्रयरहित और प्रजारहित करती है, (अपरापरणः भवति, क्षीयते) सहायकसे रहित होता है और नष्ट होता है ॥ ४५ ॥ (यः क्षत्रियः विदुषः ब्राह्मणस्य गां एवं आदत्ते) जो क्षत्रिय विद्वान् ब्राह्मणकी गौको इस तरह छीनता है ॥ ४६ ॥ [२८]

(५।६)

(तस्य आहनने गृध्राः क्षिप्रं वै ऐलबं कुर्वते) उस दुष्टके हनन होनेपर गीध शीघ्र ही कोलाहल मचाते हैं ॥ ४७ ॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥ ४८ ॥

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४९ ॥

क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३ दिदं नु ता३ दिति ॥ ५० ॥

छिन्ध्या छिन्धि प्र छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥

वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ५३ ॥

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥

अर्थ- (तस्य आदहनं) उसकी जलती चिताको देखकर (केशिनीः पाणिना उरसि अघ्नानाः पापं ऐलबं कुर्वाणाः परिनृत्यन्ति) बाल छोडकर हाथोंसे छातीयोंपर मार मार बुरा शब्द करती हुई स्त्रियें इतस्ततः नाचती हैं ॥ ४८ ॥ (तस्य वास्तुषु वृकाः ऐलबं क्षिप्रं कुर्वन्ति) उसके घरोंमें भेडिये शीघ्रही अपना शब्द करने लगते हैं ॥ ४९ ॥ (क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति) शीघ्रही उसके विषयमें पूछते हैं कि (यत् तत् आसीत्) जैसा यह था (इदं नु तत् इति) क्या यह वही है ? ॥ ५० ॥ (छिन्धि अच्छिन्धि प्रच्छिन्धि) उसको काटो, काट डालो और टुकडे करो। (अपि क्षापय क्षापय) नाश करो, उसका नाश करो ॥ ५१ ॥ हे (आंगिरसि) अंगरसकी शक्ति ! (आददानं ब्रह्मज्यं उपदासय) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले घातकीका नाश करो ॥ ५२ ॥ तूं (वैश्वदेवी हि कृत्या) सब देवोंकी विनाशक शक्ति (कूल्बजं आवृता उच्यसे) विनाशिनी है ऐसा कहते हैं ॥ ५३ ॥ (ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणः वज्रः) तापदायक कष्ट करनेवाली यह ब्राह्मणकी वज्ररूप शक्ति है ॥ ५४ ॥ (त्वं क्षुरपविः मृत्युः भूत्वा विधाव) तूं क्षुरके समान तीक्ष्ण बनकर उसका मृत्यु करनेके लिये दौड ॥ ५५ ॥ (जिनतां वर्चः इष्टं पूर्तं च आशिषः आदत्से) विनाश करनेवालेका तेज इष्टपूर्तता और आशिषों-को तूं छीनती है ॥ ५६ ॥

आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ॥
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ ५९ ॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ६० ॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥ (२९)

(५।७)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ६४ ॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ६५ ॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥६६॥ प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥६७॥

अर्थ-- (जीतं आदाय अमुष्मिन् लोके) हिंसक घातकी पुरुषको पकडकर परलोकमें (जीताय प्रयच्छसि) उसके घातके लिये तू देती है ॥ ५७ ॥ हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ! तू (ब्राह्मणस्य अभिशस्त्याः पदवीः भव) ब्राह्मणप्रशंसासे सबकी प्रतिष्ठा करनेवाली हो ॥ ५८ ॥ तू (मेनिः शरव्या भव) विनाशक शस्त्र बन, (अघात् अघविषा भव) पापसे पाप-रूपी बन ॥ ५९ ॥ हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ ! तू (ब्रह्मज्यस्य कृतागसः देव-पीयोः अराधसः शिरः प्रजहि) ब्रह्मघातकी पापी देवनिंदक अदानी पापी का शिर काट डाल ॥ ६० ॥ (त्वया प्रमूर्णं मृदितं दुश्चितं अग्निः दहतु) तेरे द्वारा मारा गया नष्ट भ्रष्ट हुआ दुष्टबुद्धि शत्रुको अग्नि जला दे ॥ ६१॥

(५।७)

(वृश्च प्रवृश्च संवृश्च) काट, अधिक काट, अच्छीतरहसे काट, (दह प्रदह संदह) जला, अधिक जला, अच्छी तरहसे जला ॥ ६२ ॥ हे (अघ्न्ये देवि) अहिंसनीय गौ देवि! (ब्रह्मज्यं आमूलात् अनुसंदह) ब्रह्मघातकीको समूल जला डाल ॥ ६३ ॥ (यथा यमसदनात् परावतः पापलोकान् अयात्) जैसा यमसदनसे परले पापी लोकोंके प्रति वह जावे (एवा कृता-गसः देवपीयोः अराधसः ब्रह्मज्यस्य) इस तरह पापी देवशत्रु कंजूस ब्रह्मघातकी मनुष्यका (शिरः स्कन्धान्) सिर और कंधे (शतपर्वणा क्षुर-

लोमा॑न्यस्य॒ सं छि॑न्धि॒ त्वच॑मस्य॒ वि वे॑ष्टय ॥ ६८ ॥
मां॒सान्य॑स्य शातय॒ स्नावा॑न्यस्य॒ सं वृ॑ह ॥ ६९ ॥
अस्थी॑न्यस्य पीडय म॒ज्जान॑मस्य॒ निर्ज॑हि ॥ ७० ॥
सर्वा॒स्याङ्गा॒ पर्वा॑णि॒ वि श्र॑थय ॥ ७१ ॥
अ॒ग्निरे॑नं क्र॒व्यात् पृ॑थि॒व्या नु॑दता॒मुदो॑षतु वा॒युर॒न्तरि॑क्षान्मह॒तो व॑रि॒म्णः ७२
सूर्य॑ एनं दि॒वः प्र णु॑दतां॒ न्यो॑षतु ॥ ७३ ॥ (३०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ द्वादशं काण्डं समाप्तम् ॥

मृष्टिना तक्ष्णेन वज्रेण प्रजहि) सौ नोकवाले क्षुरके समान धारवाले तीक्ष्ण वज्रसे काट डाल ॥ ६४-६७ ॥ (अस्य लोमानि सं छिन्धि) इसके लोम काट डाल, (अस्य त्वचं वि वेष्टय) इसकी त्वचाको उधेड, (अस्य मांसानि शातय) इसके मांसको काट डाल,(अस्य स्नावानि संवृह) उसके स्नायुओंको कुचल, (अस्थीनि पीडय) इसकी हड्डियोंको पीडा दे, (अस्य मज्जानं निर्जहि) इसकी मज्जाको नाश कर, (अस्य सर्वा पर्वाणि विश्रथय) इसके सब पर्वोंको अलग कर ॥ ६८-७१ ॥ (एनं क्रव्याद् अग्निः पृथिव्याः नुदतां) इसको मांसभक्षक अग्नि पृथिवीके बाहर निकाले और (उत् ओषतु) जला देवे ॥ (वायुः महतः वरिम्णः अन्तरिक्षात्) वायु बडे भारी अन्तरिक्षसे दूर करे ॥ (सूर्यः एनं दिवः प्र नुदतां) सूर्य इसे द्युलोकसे दूर कर देवे और (नि ओषतु) जला देवे ॥ ७२-७३ ॥ [३०]

पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

द्वादश काण्ड समाप्त ॥ १२ ॥

गौका महत्त्व ।

इस सूक्तमें और अगले सूक्तमें गौका महत्त्व वर्णन किया है। इस दृष्टिसे ये दोनों सूक्त मनन करने योग्य हैं। पहिले ही मंत्रमें कहा है कि (ददामि इति एव ब्रूयात् ॥ १ ॥) मैं दान देता हूं ऐसाहि यजमान बोले, दान देनेमें संकोच न हो, न देनेकी और किसी प्रकार विचार न हो, सदा उपकार करनेकाही विचार मन में रहे।

ब्राह्मण क्यों याचना करते हैं ?

ब्राह्मणोंका घर एक कुरुकुल होता है, वहां अनेक छात्र होते हैं, उनका पोषण करना और उनको विद्या पढाना उस ब्राह्मणका कर्तव्य होता है। यज्ञयाग करनाभी उसका कर्तव्य है। इस सबके लिये विद्वान् ब्राह्मणोंको गौकी आवश्यकता होती है। इस परोपकार और जगदुद्धारके कार्यके लिये ब्राह्मण लोग गौओंकी प्रार्थना करते हैं और अन्य लोग उनको न मांगने पर भी सत्पात्र ब्राह्मण देखकर गौदान करते हैं।

गौका दान तो ऐसे सत्पात्र ब्राह्मणको स्वयं करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते, परंतु मांगनेपरभी नहीं देते, उनसे न समझते हुए बडा सार्वजनिक पाप होता है। ब्राह्मणोंको जिस राष्ट्रमें मांगनेकी आवश्यकता होती है अर्थात् उनको सहाय्यताकी न्यूनता रहती है, उस राष्ट्रमें बडा पाप होता हैं। क्यों कि सद्ब्राह्मणोंके विद्याप्रचार सेहि राष्ट्रमें संस्कृति और सभ्यता स्थिर रह सकती है। इस तरह विचार करनेसे विदित होगा कि ब्राह्मणोंके मांगनेपर भी न देना कितना राष्ट्रीय पतनका हेतु हो सकता है।

दानका अधिकारी ब्राह्मण।

हरएक ब्राह्मण मांगनेका भी अधिकारी नहीं है। और गौका दान लेनेकाभी अधिकारी नहीं है। इस विषयमें वेदने स्पष्ट दानके अधिकारी ब्राह्मण का लक्षण बताया है—

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ (मं० २२)

" सैकडों ब्राह्मण लोग गौकी याचना करते रहें, परंतु उनमें केवल विद्वान्‌कोही गौ देनी चाहिये । " यह वेदका आदेश सदा स्मरण रखनेयोग्य है । जो चाहे सो ब्राह्मण दानका अधिकारी नहीं है, जो विद्वान् ब्राह्मण होगा वही दान लेनेका अधिकारी होगा । यहां वेदने ब्राह्मण जाती का पक्षपात नहीं किया है, केवल विद्वान् तत्त्वज्ञानी आचारसंपन्न ब्राह्मण जो कि अपने अध्ययन अध्यापनमें मग्न रहते हैं, जिनसे अपने लिये धन कमानेका व्यवसाय नहीं हो सकता, जो कि अपना जीवन ज्ञानवृद्धिके लिये लगाये हुए हैं, जिनके सत्संगमें रहते हुए अनेक छात्र कृतकृत्य हो रहे हैं, ऐसे सुयोग्य विद्वान् को हि गौ दान देनी चाहिये । यह आदेश सब दानोंके लिये है और गोके दान केलिये विशेषही है ।

यहां पाठकोंको विदित हुआ कि ऐसे सद्ब्राह्मण का ही गौपर अधिकार है और ऐसा यह अधिकार है यह बात (देवाः अब्रुवन्) देवोंने स्वयं कही है । अतः इसमें कोई किसी प्रकारका पक्षपात नहीं है ।

मंत्र २ और ३ में ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको गौ न देनेसे कैसी दुर्गति होती है वह बात कही है । विद्वान् ब्राह्मण राष्ट्रमें न रहे तो ज्ञानवृद्धि नहीं होगी, और राष्ट्रमें ज्ञान न रहा तो सब प्रकारकी उन्नति होना असंभव है, यह बात स्पष्ट हो सकती है ।

चौथे मंत्रमें ' विलोहित ' ज्वर और पांचवें मंत्रमें " विक्लिन्दु " नामक रोग का वर्णन है । । (या मुखेन उपाजिघ्रति) गौ जिसे मुखसे सूंघती है उसे यह रोग होता है और वह मरता है । इस लक्षणसे यह रोग कौनसा है, इसका पता आजकल के वैद्यभी लगा सकते हैं । वैद्य और पशुडाक्तर इसकी खोज करें ।

छठे मंत्रमें कहा है कि कई लोग गौके शरीरपर चिह्न करनेकी इच्छासे कानपर अथवा किसी अन्यभागपर चिह्न करते हैं । यह भी लोगोंकी परिपाठी बहुत बुरी है, क्यों कि इससे भी गौको बडे क्लेश होते हैं । गौको ऐसे क्लेश देना योग्य नहीं है । गौको ऐसी उत्तमतासे रखना चाहिये कि उसको किसी प्रकार भी कोई कष्ट न हो, वह आनन्दप्रसन्न रहे । ऐसी आनन्द प्रसन्न गौ रहेगी तो ही उसके सब गुण प्रकट होते हैं और वही गौ उत्तम गोरस देती है, जो कि मनुष्यमात्रके लिये हितकारी हो सकता है ।

गौकी रक्षा ।

कई लोग गौके बाल काटते हैं । ऐसा करनाभी उचित नहीं है ऐसा सातवें मंत्रमें कहा है। आठवें मंत्रमें गौकी रक्षा करनेके संबंधमें एक बडी महत्त्वपूर्ण बात कही है। गवालिये गौवोंको लेकर गोचर भूमिमें जाते हैं और गौवोंको चरनेके लिये छोड देते हैं और स्वयं इधर उधर भटकते रहते हैं । ऐसी दशामें कौवे गौके पीछे पडकर उनको सताते हैं । ऐसा न हो यह सूचना मंत्र ८ वें में है। गवालिया गौकी योग्य रक्षा करे, कौवे आदिसे गौको पीडा तो नहीं होती है इस विषयमें सावधानता रखे । रघुवंशमें दिलीप राजा जैसी वसिष्ठकी गौकी रक्षा करता था, वैसी रक्षा हरएक गोरक्षक करे। कोई जीवजन्तु गौको पीडा न देवे । ऐसी रक्षा करनेवाला ही सुयोग्य गोरक्षक कहलावेगा ।

गोबर और मूत्र ।

नवम मंत्रमें गौका गोबर और मूत्र इधर उधर न फेकनेकी आज्ञा कही है। किसी विशेष स्थानमें उनको अर्थात् गोबरको और मूत्रको सुरक्षित रखना चाहिये । क्यों कि यह उत्तम खाद है, जिससे धान्य फल फूल साग आदि उत्तम पैदा हो सकती है। इधर उधर नौकारानी फेंक देगी और उससे बडी हानि होगी । ऐसी अनवस्था किसीभी गृहस्थीके घरमें न हो इसलिये यह आज्ञा दी है,गौबर और मूत्र इधर उधर फेक देना (एनसः) पाप है, यह पतन का हेतु है । यह पाप कोई न करे ।

आगे दशमसे द्वादशतक के मंत्रोंमें फिर कहा है कि यह गौ विद्वान् सुयोग्य सदाचारी ब्राह्मणकी होती है । (आर्षेय) ऋषिप्रणाली के अनुसार आचरण करनेवाले को ही इसका दान करना चाहिये ।

तेरहवें मंत्रमें कहा है कि जो भोग्य पदार्थ गौसे प्राप्त होता है उसका विचार दाता गौका दान करनेके समय न करे । क्यों कि उसको वह भोग अन्य रीतिसेभी प्राप्त होगा । यदि कोई दाता दान देनेके समयमें यह विचार लावे कि " अरेरे, मुझे तो इससे यह भोग मिलेगा, और मैं इस भोगसे ऐसे सुख प्राप्त करूंगा, इसका दान करनेसे मुझे ये दुःख उठाने पडेंगे इ० इ० । " कोई दाता ऐसे कंजूसीके विचार मनमें न लावें । इस प्रकार विचार मनमें लानेसे दान का सब महत्त्व नष्ट हो जायगा । दानसे जो मनकी उच्चता होती है, वह इस प्रकारके विचारोंसे समूल दूर होगी ।

सोलहवें मंत्रमें फिर कहा है कि 'गौ तो ऐसे सत्पात्र ब्राह्मणोंकाही धन है।' गौके स्वामीके पास तो वह तीन वर्षपर्यंत रहे, उसके पश्चात् वह सुविद्य सत्पात्र ब्राह्मणको दी जाय। योग्य ब्राह्मण प्रार्थना करनेके लिये न आवे तो वैसे ब्राह्मणको ढूंढना चाहिये, परंतु कभी अयोग्यको दान देना नहीं।

आगे २१ वें मंत्रतक दानकाही महत्त्व वर्णन किया है। २२ वें मंत्रमें विद्वान् ब्राह्मणकोही गौका दान करना चाहिये यह बात फिर कही है। सैकडों अविद्वान् मांगें तो उनको देनी नहीं चाहिये। केवल विद्वानही दान लेनेका अधिकारी है, यह बात हर-एक दान देनेवालेको स्मरण रखनी चाहिये। इस तरह दान होते रहेंगे, तो जगत्का उद्धार होगा। कुपात्रमें दिये दानही अधोगति करनेवाले होते हैं।

आगे तेईसवें मंत्रमें विशेषही बलसे कहा है कि यदि कोई मनुष्य ऐसे विद्वान्को दान न देकर अन्य अविद्वानोंको देगा, तो उसको बडा दुःख होगा।

आगेके तीन मंत्रोंमें कहा है कि ब्राह्मण आग्न्यादि देवताओंके उद्देश्यसे गौके घृत-दुग्धादिकी आहुतियां देते हैं और देवताओंका संतोष करते हैं, इसलिये उनको गौ दान करना चाहिये। यदि दान न किया तो यजमानको बडा कष्ट भोगना पडेगा। आगे ३२ वें मंत्रतक यही विषय कहा है।

क्षत्रियकी माता।

३३ वें मंत्रमें कहा है कि 'गौ क्षत्रियकी माता है' (वशा राजन्यस्य माता) इसलिये क्षत्रियको उचित है कि वह गौको माता मानकर उसका सत्कार यथायोग्य करे। गौको यदि कोई मनुष्य कष्ट देवे, तो क्षत्रिय अपनी माताको कष्ट देनेवाला समझकर यथायोग्य दण्ड देवे।

आगे ५३ वें मंत्रतक अर्थात् सूक्तकी समाप्ति तक गौका दान सुयोग्य ब्राह्मणको देना चाहिये, दान न देनेका भाव कोईभी मनमें न धारण करे, दान देनेसे कल्याण और न देनेसे दुःख होता है यही वर्णन है।

इन मंत्रोंमें कई स्थानोंपर "गौदान न देकर जो स्वयं अपने लिये (पचते वशा) गौको पकाता है" ऐसे वाक्य हैं। जिनको वेदकी भाषाका परिचय नहीं है वे इससे ऐसा अनुमान करेंगे कि 'गौको पकाना, अर्थात् गोमांसका पकानाही यहां अभीष्ट है।' जो लोग ऐसा विचार मनमें रखेंगे उनके विकल्पके निरासके लिये यहां थोडा-

सा लिखनेकी आवश्यकता है ।

वेदमें लुप्ततद्धित शब्दप्रयोग होते हैं जिससे " गौ ' शब्द ' गौसे उत्पन्न हुए पदार्थोंके वाचक ' होता है । अर्थात् ' वशां पचति ' का अर्थ ' गौसे उत्पन्न दूध, घृत, दही, छाछ ' आदि पकाता है, गोदुग्धसे किया पायस तैयार करता है । ऐसा है । इसी प्रकार 'गौ' या 'वशा' के अर्थ जैसे ' दूध दही छाछ, घृत ' आदि पदार्थ हैं वैसा हि इस शब्दके अर्थ ' मांस, रक्त, हड्डी, चमडा, बाल, गोबर, गोमूत, ' आदि भी हैं । हमारे विचारसे ' दूध, दही, छाछ, घृत ' आदि अर्थ हि यहां लेना चाहिये । पाठक इसका विचार करें और इन मंत्रोंका आशय समझें ।

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ।

पंचम अनुवाक ।

इस पंचम अनुवाकमें ७ पर्याय (विभाग) और ७३ मंत्र हैं । इस संपूर्ण सूक्तमें गौकी महिमा कही है और ब्राह्मणकी गौ कोई न छीने, ब्राह्मणको गौ दानमें दी जावे, जो ब्राह्मणों-अर्थात् विद्वान् ब्राह्मणोंको सताते हैं, उनकी गौ चुराकर ले जाते हैं, उनके सर्वस्वका नाश होता है, इत्यादि वर्णन है ।

विषय यही होनेसे इस सूक्तका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है । जो पाठक मंत्रका अर्थ पढेंगे उनके समझमें उनका आशय सहजहीमें आ सकता है । वर्णन कविकल्पनासे पूर्ण है और उसी दृष्टिसे यह सूक्त देखना चाहिये ।

पंचम अनुवाक समाप्त ।

द्वादश काण्ड समाप्त ॥ १२ ॥

द्वादश काण्डकी विषयसूची।

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि० सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

(१) यजुर्वेद। विना जिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥)
कागजी जिल्द २) "
कापडी जिल्द २॥) "
रेशमी जिल्द ३) "

(३) संस्कृतपाठमाला १ अंकका मू. ।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥।=)

४ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू. १) ।)

(५) अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।
१ प्रथम काण्ड २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड २) ॥)
३ तृतीय काण्ड २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड २) ॥)
५ पंचम काण्ड २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड २) ॥)
७ सप्तम काण्ड २) ॥)
८ अष्टम काण्ड २) ॥)
९ नवम काण्ड २) ॥)
१० त्रयोदश काण्ड १) ।=)
११ चतुर्दश कांड १) ।)
१२ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(६) छूत और अछूत।
१-२ भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

(७) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से ८ प्रत्येकका मू० ॥) डा०व्य० =)

(८) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(९) वेदका स्वयंशिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(१०) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन। (सचित्र) २) ।≡)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
३ सूर्यभेदन-व्यायाम। " ॥) =)
४ योगसाधनकी तयारी। ।॥) ।)

(११) यजु. अ. ३६ शांतिका उपाय ।॥=) ।)

(१२) शतपथबोधामृत ।) -)

(१३) देवतापरिचय ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१४) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक ≡) -)

(१५) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ।॥) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) ॥)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता ।॥) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

१६ उपनिषद्माला। १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद्। १।) ।-)

(१७) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) ॥)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
५ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
6 Sun Adoration १)

Regd. No. B. 1463

गीता।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।≈) रु०

"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) "

दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

" " " " " " वी. पी. से ५।।।) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं हैं, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है-
आदिपर्व ६।।≡) रु.; सभापर्व २।।) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु.; उद्योगपर्व ५।।=) रु.; भीष्मपर्व ४।।।≡) रु.; द्रोणपर्व ८।।) रु.; कर्णपर्व ३।।।) रु.; शल्यपर्व २।।-) रु.; सौप्तिकपर्व ।।।- स्त्रीपर्व ।।।-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६।।≡) रु.; आश्वमेधिकपर्व २।।-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु.; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ।।।-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्याय—मंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

Received on 16th March 1935

पौष
संवत् १९९१
जनवरी
सन १९३५
वर्ष १६
अंक १ -9
क्रमांक
१८१

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृत-पाठ-माला"

के २४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये । २४ भागोंका मूल्य ६॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य१) और एक भागका मू० ॥) । वी०पी०द्वारा ।) चार आने अधिक मूल्य होगा।

— मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

विषयसूची

वर्ष १६] [अंक

वैदिक प्राणविद्या (नया संस्करण)

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है। मूल्य ॥) और डा० व्य०=) है।

मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ब्रह्मचर्यका विघ्न

मूल्य =) दो आने। डा० व्य-) डा० व्य० सहित मू०≡) तीन आनेकी टिकट भेजकर पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

नया संस्करण! नया संस्करण

योगसाधनकी तैयारी

योगसाधनसे हमारी शक्ति बढती है, इसलिये योगविषयक अत्यन्त आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है।

अच्छी जिल्द मू० ॥।) बारह आने। डा०व्य० ।) इस लिये १) एक रु० म० आ० से या टिकट द्वारा भेजकर शीघ्र ही यह पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि०सातारा)

YOGA

An International Illustrated Practical Monthly on the Science of Yoga edited by Shri Yogendra.

Specimen Copy As. 8.;
Annual Subscription Rs. 3

YOGA INSTITUTE
P. B. 481 BOMBAY

आविष्कार-विज्ञान

लेखक-उदय भानु शर्माजी। इस पुस्तकमें अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्, इंद्रियां और उनकी रच[ना], ध्यानसे उन्नति प्राप्त करनेकी रीति, मेधावर्धन[के] उपाय, इत्यादि आध्यात्मिक बातोंका उत्तम वर्णन है। जो लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके इच्छुक हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये। पुस्तक अत्यंत सुबोध और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे लिखी होनेके कारण इसके पढनेसे हरएकको लाभ हो सकता है। पूर्वार्धका मूल्य ॥=) और डा.व्य.≡) द्वितीयार्धका मू० ॥।) और डा०व्य०≡) है।

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा.)

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे होनेसे देखनलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। ज़ादह हकीकत के लिये लिखो।

मेनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोदा।

वर्ष १६ | अंक १ | क्रमांक १८१
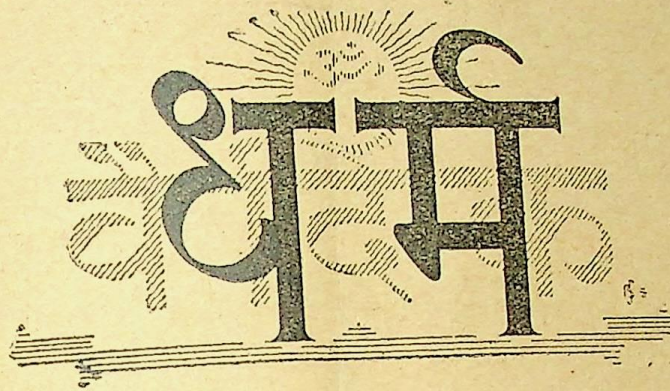
वैदिक धर्म

पौष | संवत् १९९१ | जनवरी | सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

कालका महत्त्व।

कालादापः समभवन्कालाद्ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले निविशते पुनः ॥१॥
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता ॥२॥

अथर्ववेद १९।५४

"(कालात् आपः समभवन्) समय पर वृष्टी होती है, (कालात् तपः) समयपर उष्णता होती है (कालात् ब्रह्म) समयपर ब्रह्म प्रकट होता है, (कालेन सूर्यः उदेति) समयपर सूर्योदय होता है। (पुनः काले निविशते) समयपर फिर अस्त होता है। (कालेन वातः पवते) समयपर वायु चलता है, समयपर पृथ्वी और आकाशके अन्दरके सब कार्य होते हैं ॥"

जगत् में सूर्यचन्द्र आदि समयपर कार्य करते हैं, यह देखकर मनुष्यको अपने सब कार्य समयपर ही करने चाहिये। मनुष्यकी सब उन्नति इसी समयज्ञतापर है। विश्व नियमसे चला है, अतः नियमसे चलनेवालेही यहां उन्नत होंगे। यह नियम जानकर मनुष्य अपनेमें नियमितताका धारण करें और अपना उदयका साधन करें ॥
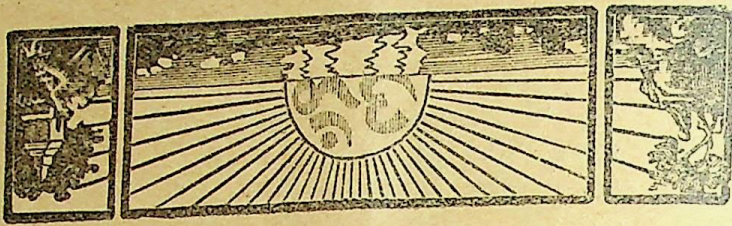
सूर्य-नमस्कार

प्रास्ताविक

हमने स्वयं सशास्त्र, समंत्र एवं खास पद्धतिसे प्रतिदिन सूर्यनमस्कारका नियमसे अभ्यास किया। हमने देखा कि इससे हमारी शारीरिक एवं मानसिक उन्नति बहुत हुई। ऐसी ही उन्नति सब स्त्री-पुरुषोंकी होवे इसी विचारसे हमने 'सूर्य-नमस्कार' नामकी छोटी पुस्तक मराठीमें लिखी। पण्डित सातवलेकरजीने अपने 'भारतमुद्रणालय' में छापकर उसे १९२२ ई. में प्रकाशित किया।

इस छोटी पुस्तकसे तथा हमारे अन्य लेखों एवं व्याख्यानोंके कारण सूर्य-नमस्कार की महत्ता महाराष्ट्रके बाहर उत्तरमें काश्मीर तक तथा दक्षिणमें लंका-सीलोन तक फैल गई। किन्तु उत्तर भारत, दक्षिण भारत एवं लंकामें मराठी भाषाका प्रचार नहीं। फलतः उन स्थानोंके अनेक आरोग्य-इच्छुक विद्वानोंने हमसे कहा तथा पत्रोंके द्वारा भी सूचित किया कि पुस्तक अंग्रेजी भाषामें लिखी जावे जिससे सम्पूर्ण भारतवर्षमें, यही नहीं, भारतसे बाहर भी सूर्यनमस्कार की आवश्यकता एवं महत्ता प्रतीत होगी। हमें भी यह बात जँची। और सन १९२८ ई. में 'सूर्यनमस्कार' नामकी पुस्तक अंग्रेजी में प्रसिद्ध हुई। इस पुस्तक नमस्कार कैसे डालना चाहिये, उनसे शरीरके कौन कौन स्नायु और अन्तरिंद्रियाँ सुदृढ होती हैं, चित्त की एकाग्रता कैसे बढती है, किसको कितना लाभ हुआ, नमस्कारोंसे सोलह आना लाभ होनेके लिये योग्य आहार कौनसा है, आहार कैसे तैयार करना चाहिये, इत्यादि अनेक आनुषंगिक महत्त्वके विषयोंका विवेचन किया और विषयको स्पष्ट करनेके लिये ३०-३२ चित्र भी दिये। इस लिये यह अंग्रेजी पुस्तक मराठी पुस्तक की अपेक्षा बहुत बडी हो गई। वह हिन्दुस्थानमें इतना पसंद आया कि उसकी अब तक तीनबार छप चुका और उसका भाषांतर हिन्दी, कानडी, तेलगु, तामिल, गुजराथी, बंगाली भाषाओंमें हुआ। इन भाषाओंमें भी यह पुस्तक अनेक बार छप चुकी। इसके सिवा मलयालम् और उर्दू भाषाओंमें भाषांतर हो रहा है।

इस पुस्तकमें हमारे अंग्रेजी पुस्तककी सब बातें संक्षेपमें दी हैं। नमस्कारके कुछ आसनोंमें, आसनोंके प्राणायाममें और अन्यान्य बातोंमें जो जो सुधार अब तक हुए वे सब इस पुस्तकमें शामिल किये हैं। इस पुस्तकके साथ नमस्कारका बडा चित्रपट भी तयार किया है। उसमें दसों आसनोंके बडे चित्र देकर प्रत्येक आसन शास्त्रोक्त प्राणायामसहित कैसे किया जाय इसकी सविस्तर सूचना भी दी गई है।

सुज्ञ पाठकोंसे हम यही आशा करते हैं कि वे सब आबालवृद्ध स्त्रीपुरुष शास्त्रशुद्ध एवं पद्धतिसे नमस्कार डालकर आपना शारीरिक और मानसिक—उभयविध—कल्याण कर लें, तथा अपना अनुभव दूसरोंसे कहकर उन्हें भी नमस्कार डालनेके लिये उत्साहित करें।

भवानराव पण्डित (औंध नरेश)

पाठ पहला

आरोग्यके लिये व्यायामकी आवश्यकता।

किसी भी कार्य करनेमें हलचल या चलनवलन शक्ति आवश्यक होती है। चलनशक्ति अखिल जगत् का प्रधान लक्षण है। जगत् शब्द ही 'गम्' अर्थात् जाना, हिलना धातु से बना है। हलचल जगत् का मूल-स्वभाव है।

पृथ्वीपर वनस्पतियों की उत्पत्ति के पश्चात् प्राणि उत्पन्न हुए। हमारे प्राचीन वैदिक उपनिषद् कर्ता तथा आधुनिक पाश्चिमात्य पण्डित दोनों इस उत्क्रान्तिवाद को मानते हैं।

मनुष्य प्राणि जब पहले उत्पन्न हुआ, तब उसे उदरनिर्वाह के लिये सर्वदा प्रयत्न करना पडता था और आत्मरक्षा के लिये दूसरे हिंसक प्राणियोंसे झगडना पडता था। अतः ईश्वरने उसकी रचना गति-प्रवर्तक और श्रमयोग्य बनाई। इस समय उसे विशेष व्यायामकी बिलकुल गरज न थी। परन्तु जैसे जैसे मनुष्य की बौद्धिक उत्क्रांति होने लगी और उदर-पूर्ति के साधन विना विशेष वैयक्तिक परिश्रम के प्राप्त होने लगे, वैसे वैसे शारीरिक श्रमकी ओर का उसका ध्यान भी कम हुआ। किन्तु शारीरिक स्वास्थ्य के लिये श्रमकी आवश्यकता होने के कारण श्रम के अभाव में उसका आरोग्य नष्ट होने लगा, अनेक रोगोंकी उत्पत्ति हुई और विकृत बुद्धिसामर्थ्य के बलपर औषधि से रोग दूर करनेकी अर्थात विना श्रमके रोगपरिहार करनेकी प्रथा शुरू हुई। परन्तु शरीर का मूल धर्म ही श्रमोपजीवी है। अतः उचित एवं भरपूर श्रम के विना आरोग्य का लाभ कदापि न होगा।

आजकल किसी को भी ऐसा शारीरिक परिश्रम सदैव नहीं करना पडता। खेतमें काम करनेवाले किसान को भी बारह घण्टे परिश्रम नहीं करना पडता। इसलिये उसके लिये भी ऐसे व्यायाम की आवश्यकता है जो सब अंगों से श्रम करावे। तब उनके लिये जो बैठी नौकरी या व्यवसाय करते हैं, व्यायाम की कितनी आवश्यकता है तो कहना ही क्या? आजकल मोटरें बहुत हो जानेसे गरीब लोग भी चार छ मील चलनेमें आनाकानी करते हैं। इसलिये मनुष्य की तबियत सुदृढ, निरोग और कार्यक्षम होनेके लिये तथा वह दीर्घायु बननेके लिये, आजकल, शारीरिक श्रमकी-उचित व्यायामकी-विशेष आवश्यकता है।

जिस प्रकार अच्छा अन्न, स्वच्छ जल, खुली हवा और सूर्य-प्रकाश की मनुष्य के जीवनके लिये अत्यन्त आवश्यकता है, उसी प्रकार आजकल के जीवनकलह में उसे व्यायाम की अतीव आवश्यकता है, जिससे कि वह स्वयं अपनी, अपने समाज की एवं अपने राष्ट्र की रक्षा करनेकी तथा निर्वाह चलानेकी योग्यता प्राप्त कर ले।

अयोग्यभक्षण, अतिभक्षण और व्यायाम के अभाव से आजकल रोग प्रबल हुआ है। जवान स्त्री पुरुष कराल काल का भक्ष्य बन रहे हैं। नया ग्रेजुएट नौकरी या धंदा शुरू करके संसार का आरम्भ करताही है कि बस, इतनेही में वह नामशेष हो जाता है! युवती स्त्री के दो एक बच्चे होते ही वह राजयक्ष्मा जैसी बीमारियों का घर बन जाती है! भारतवर्ष में आयुकी औसत २३ वर्ष है! इसी लिये व्यायाम की आवश्यकता एवं महत्ता है।

आठ दस, वर्षकी अवस्था तक प्रायः सभी बालक दौडना खेलना आदि करते रहते हैं। इस लिये इस उमरमें यदि वे और कोई निश्चित पद्धति का व्यायाम न लें तो चल सकता है। परन्तु स्कूल में जाकर सबेरे तीन घण्टे, दोपहर को तीन घण्टे, या ११ से ५ तक बालकों को बंद करना आरंभ होतेही या छुटपन की मुटाई जाकर उनके शरीरमें कसा हुआ आकार लानेका समय आते ही प्रत्येक लडके या लडकी से ऐसे किसी व्यायाम के करानेकी आवश्यकता है, जिससे उसका शरीर सुडौल एवं सामर्थ्यवान् बनेगा।

जिस उमर में बालक-बालिकाएँ व्यायाम की महत्ताको स्वयं समझने लगती हैं उस उमर तक ऐसे व्यायामको जिससे शरीर नीरोग, कार्यक्षम तथा सुदृढ बने और मन उत्साही तथा तजस्वी बने, मातापिता, अभिभावक तथा विद्याधिकारी बालक बालिकाओंपर सक्ती करें। केवल विद्यार्थियोंकी इच्छा पर छोड देनेसे काम न चलेगा। क्योंकि अगली पीढी पिछली से उत्साह में आयु में भी कम दिखाई देती है। जहाँ यह हाल है, वहाँ यदि अपन चुप बैठें तो देश की हानि ऐसे ही होती रहेगी। इसलिये इस हानि को रोकना आवश्यक है।

आरोग्य ऐसा विषय है जो केवल सिखाने से या केवल व्याख्यानसे प्राप्त नहीं हो सकता। शिक्षक, मातापिता और अभिभावक अपने स्वतःके आचरण से बालक बालिकाएँ, विद्यार्थी और विद्यार्थियोंको दिखावें कि आरोग्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है। तभी वे भी व्यायाम करके ही आरोग्य प्राप्त करेंगे और शक्तिमान् बनेंगे। यह सिद्धान्त बिलकुल छुटपन से घर में तथा शाला में बालकों के मन में अच्छि तरह जमा देना चाहिए कि आरोग्य-दायक व्यायाम का हाल जानना तथा उसकी आवश्यकता समझना केवल व्यक्ति के ही हित का नही किंतु अपने देश के भी हित का है।

खास खास बाहरी अवयवों को बलवान बनाने के लिये खास खास व्यायाम हैं। किंतु व्यायाम ऐसा होना चाहिए कि जिससे छोटेबडे, स्त्रीपुरुष, गरीब, धनवान् सभी की अन्तरिन्द्रियाँ और अन्तःस्नायु एवं बाह्य अवयव भी सामर्थ्यवान् और निरामय बनकर ओज, जीवनशक्ति और बल का संचय शरीर में कर दे। यह कार्य सूर्य-नमस्कार करते हैं।

शरीरके मुख्य अवयव

जिन मुख्य अवयवों पर मनुष्य का आरोग्य अवलंबित है, वे तीन हैं। उनमेंसे प्रत्येक सुदृढ रखना चाहिये। पद्धतियुक्त, प्राणायामसहित और मन्त्रसहित सूर्यनमस्कार डालने से तीनों अवयवों को उत्तम व्यायाम मिलता है और वे इतने सक्षम बनते हैं कि किसी भी प्रकार का रोग उत्पन्न नहीं होने देते। सार्वत्रिक अनुभव भी ऐसाही है।

१ प्रथम अवयव— पचनेन्द्रिय-इस में पेट, यकृत, तिल्ली, अँतडियाँ आदि शामिल हैं। कई लोग पचनेन्द्रिय के विकारों से पीडित रहते हैं, जैसे- अपचन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, मलावष्टंभ, पांडुरोग, यकृतवृद्धि, उदररोग, बवासीर, मधुमेह, कॅन्सर (cancer) इत्यादि।

२ दूसरा अवयव-हृदय और फेफडे-इनकी विकृति से सर्दी, खाँसी, क्षय, दमा, हृदयव्यथा, फेफडे का दाह (pneumonia) -आदि विकार होते हैं।

(३) तीसरा अवयव-यावत् मज्जातन्तुप्रदेश Nervous System इस में पीठ का रीड, मस्तिष्क संज्ञारज्जु (Spinal cord) सोलर प्लेक्सस् (solar plexus) आदि शामिल हैं। मज्जातन्तु के विकारों से सिरदर्द, मस्तकशूल, अर्धसीसी, मतिभ्रंश, स्मृतिनाश, पागलपन, अर्धांगवाय या पक्षघात, निद्रानाश, हाथपैर ठण्डे पडना, थोडे श्रम में थकावट आना, डकनाहट मालूम होना, निरुत्साह आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

मानवी शक्ति का और आरोग्य का उद्गमस्थान मज्जातन्तु हैं। मज्जास्थान ही से सम्पूर्ण शरीर के घटक धातुओं को और अतरिन्द्रियों को उत्साह और फूर्ती मिलती है। मनुष्य का शारीरिक सामर्थ्य केवल स्नायुओं से ही नहीं किन्तु उनके प्रेरक मज्जातन्तुओं से मिलता है। योग्य व्यायाम से केवल तन्दुरुस्ति ही नहीं मिलती किंतु मज्जातन्तुओं को भी चेतना मिलकर उनका सामर्थ्य बढता है।

पागल बननेवाले लोग हम लोगोंमें कम होते हैं। किन्तु हृदय, फेफडे और पचनेन्द्रियाँ बिगडनेसे अकालमें मृत्युके मुखमें पडनेवाले लोगोंकी संख्या आजकल भारतमें- विशेषरीतिसे-लिखे पढे लोगोंमें बहुत अधिक है। 'पथ्य-हित-मित-भक्षण' का अभाव एक कारण होगा; किन्तु इस बात का सच्चा कारण है योग्य व्यायामका अभाव।

तब यह स्पष्ट है कि सूर्यनमस्कारों जैसा सशास्त्र एवं पद्धतियुक्त व्यायाम आरोग्य, सामर्थ्य और दीर्घायुके संपादनमें अत्यावश्यक है।

पाठ दूसरा

नमस्कारोंको छोड अन्य व्यायामकी अडचनें और असुविधाएं।

स्वदेशी और विदेशी कोई भी खेल खेलनेके लिये अथवा कुस्ती खेलनेके लिये एक या अनेक साथियों की आवश्यकता होती है। जोडी, डम्बेल्स, गेंद बॅट इत्यादि सामग्री लगती है। डण्ड बैठकके लिये व्यायामशाला या एकान्तस्थान की जरूरत पडती है। तैरनेके लिये पानी चाहिये। घूमकर पूरी मेहनत होनेके लिये कमसे कम रोज आठ दस मील चलना चाहिये। १५ मिनटमें एक मीलके हिसाबसे कहें तबभी दो ढाइ घण्टोंसे कम समय न पूजेगा। इसके सिवा मैदानी खेलोंके के लिये, तैरनेके लिये, चलनेके लिये, सब ऋतुएँ अनुकूल नहीं होतीं।

आट्यापाट्या, खो खो, क्रिकेट, फुटबॉल इत्यादि खुली हवाके किसी भी खेलके लिये लिये विस्तृत क्रीडांगण चाहिये। ऐसा क्रीडांगण सभी स्थानोंमें मिलता नहीं। पूना-बम्बई जैसे बडे शहरोंमें छोटे बडे सभी विद्यार्थी एवं विद्यार्थिनियोंको पर्याप्त होनेवाले मैदान मिलना असंभव होता है। पूनाके लोग बडे अभिमानसे कहते हैं कि 'हमारे नगरकी केवल म्युनिसिपल पाठशालाओंके विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियोंकी संख्या १०,००० होगी'। और यह ठीक भी है। उनके खेलनेके चार मैदान हैं; किन्तु प्रत्येक मैदान पर दो तीन सौ से अधिक बालक खेल नहीं सकते।

सख्तीका व्यायाम ऐसा होना चाहिये जिससे कि शारीरिक अवयव, स्नायु तथा अन्तरिन्द्रियों का बल बढे और साथ ही मानसिक और आत्मिक सामर्थ्य भी बढे। इस प्रकार का व्यायाम लोक-मान्य तथा लोक-प्रिय होनेके लिये साधन-सामग्री या द्रव्यकी आवश्यकता न होवे। वह करनेमें सरल होवे; थोडे समयमें होवे; वह कहीं भी, कभी भी, और कोई भी ले सके, तथा उसमें किसी भी साथीकी आवश्यकता न हो। ऐसा व्यायाम सूर्यनमस्कारका ही है।
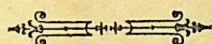
पाठ तीसरा

उत्तम व्यायाम सूर्य नमस्कार

अन्यान्य व्यायामों की अडचनों और असुविधाओं का विचार कर तथा प्रायः सभी प्रकारके देशी और विदेशी व्यायाम स्वयं अनेक वर्ष करने के पश्चात् हमने निश्चय किया है कि नमस्कार का व्यायाम ही उत्तम है। स्वयं हमें सूर्यनमस्कारों से बहुत लाभ हुआ है। इसी लिये हमारा निश्चित मत है कि प्रत्येक मनुष्य-चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, युवा हो या वृद्ध, हिन्दु हो या अहिंदु-प्रति दिन सूर्यनमस्कार नियम से डाले।

जिनके हृदय और फेफडे विकृत हों वे यदि सूर्य-नमस्कार यथाशास्त्र बीजाक्षरों के साथ यथाशक्ति रोज नियमसे डालें, तो उनके वे अवयव विकार-रहित बनकर कार्यक्षम होवेंगे। इसके सिवा उनकी पचनेन्द्रियाँ और मज्जातन्तु अपने कार्य योग्य रीति से करेंगे।

लडकपनमें बालक खेलते ही हैं। इससे उनकी सब इंन्द्रियाँ और अवयव नीरोग तथा सामर्थ्य-युक्त होते हैं। परन्तु आठवें वर्षसे किसी भी जाति के और धर्मके लडके-लडकीसे नमस्कारका व्यायाम करा लेना चाहिये।

साधारणतः नीरोगी स्त्री-पुरुष को कितने नम-स्कार डालने चाहिये उसका प्रमाण दिया जाता है-

वय	नमस्कारों की संख्या
८ से १२ वर्ष	२५ से ५०
१२ से १६ ,,	५० से १००

१६ वर्ष के बाद अपनी शक्ति के अनुसार क्रमसे बढकर आहार, समय और व्यायाम का विचार कर तीन सौ तक नमस्कार डालनेमें कोई हानि नहीं।

६० वर्ष के बाद ताकद के अनुसार नमस्कार आमरण चालू रखे जावें ।

इस प्रकार सूर्यनमस्कार अव्याहत और मनःपूर्वक चालू रखें, तो किसी निवार्य रोग से अलिप्त रह सकते हैं ।

दो चार महीने हजार पान सौ नमस्कार डालना और बादमें पांच पचास पर ले आना या बिलकुल छोड देना अत्यन्त बुरा है! उससे इष्ट परिणाम तो होता ही नहीं, पर अनिष्ट परिणाम अवश्य होता है। व्यायाम सदैव, योग्य प्रमाण में, प्रतिदिन तथा अव्याहत लेना चाहिये; तभी उससे हित होता है ।

समय और शक्तिके विचार से थोडे ही नमस्कार यदि डालें, तब भी वे रोज नियमसे डालने चाहिये ।

आखाडा, कुश्ती, आट्यापाट्या, क्रिकेट, हॉकी, फूटबॉल इत्यादि मैदानी खेल सूर्यनमस्कारोंके पूरक हैं ।

आगे के पाठमें बतलाये अनुसार नमस्कार डालें तो जो लाभ होंगे वे अनमोल हैं ।

पाठ चौथा

नमस्कार कैसे डालें ?

साष्टांग-नमस्कार ।

उरसा शिरसा दृष्ट्या वचसा मनसा तथा ।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते ॥

प्रत्येक नमस्कार के समय निम्न लिखित आठ अंगों से जो नमस्कार होता है, वही 'साष्टांग-नमस्कार' कहलाता है—

१ मस्तक	५ दो पैर
२ छाती	६ दृष्टि
३ दो हाथ	७ वाणी
४ दो घुटने	८ मन

सूर्यनमस्कार डालते समय चार बातें कहनी चाहियें, ऐसा 'धर्मसिन्धु' आदि ग्रन्थों में कहा है। वे चार बातें—

(१) मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषन्, हिरण्यगर्भ, मरिचि, आदित्य, सवितृ, अर्क, भास्कर ये सूर्य के बारा नाम ।

(२) ॐ यह प्रणव+

(३) ऱ्हां, ऱ्हीं, ऱ्हूं, ऱ्हैं, ऱ्हौं, ऱ्हः ये छः बीज अक्षर

(४) 'उद्यन्नद्य' इत्यादि तीन ऋग्वेदीय ऋचा अथवा 'हंसः शुचिषद्... ऋतं बृहत्' यह यजुर्वेदीय ऋचा ।

प्रणव और बीजाक्षर ।

ॐ यह प्रणव और ऱ्हां, ऱ्हीं इत्यादि छः बीजाक्षर इनका अर्थ तो कुछ भी दिखता नहीं। तब उन्हें क्यों कहें? इस भेद सन १९२४ तक हमें स्पष्ट न हुआ था। सन १९२४ के अप्रैल महीने के 'फिजिकल कल्चर' नामक अमेरिकन मासिकमें लेसर लेजारिओ नामके ऑस्ट्रिअन शास्त्रज्ञ का लेख छपा। उसके पढने से ये एकाक्षरी मन्त्र उच्च स्वरमें कहने से क्या लाभ होता है, सो मालूम हुआ और हमारे पूर्वजोंने प्रणव और बीजाक्षरों को सूर्यनमस्कार में केवल शारीरिक और मानसिक आरोग्य के लिये ही जोडा है यह बात पूर्णतया विदित हुई। ॐ और बीजाक्षरों के योग्य उच्चार से थोडे ही महीनों में उनका प्रभावशाली कार्य भी शरीर के भीतरी भागोंपर कैसे होता है,

+ ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥ (भगवद्गीता ८।१३)
'ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म का जप करते करते और मेरा स्मरण करते करते जो देह त्यागकर जाता है, उसे उत्तम गति मिलती है ।'
-लो० तिलक (अनुवादक)

इसका हमें सुन्दर अनुभव हुआ।*

ॐ इस प्रवण का या ॐकार का सशास्त्र, पूर्ण और ऊँचे सुरमें उच्चारण करनेसे शरीरके सब मुख्य अन्तरिन्द्रियोंको-विशेषतः मस्तिष्क, हृदय और अन्नाशय को चालना मिलकर वे बलवान् बनते हैं।

ह्रां इस बीजाक्षरके योग्य उच्चारणसे मस्तिष्क, हृदय, पचनेन्द्रियाँ, श्वासनलिका, कंठ, फफडे, और ऊपर की पसलियाँ उत्तेजित होकर सशक्त बनती हैं।

ह्रीं से कंठ, तालु, हृदय, श्वसनेंद्रियाँ और पचनेन्द्रियाँ उत्तेजित होकर कार्यक्षम होती हैं।

ह्रूं में यकृत, तिल्ली, अन्नाशय, अँतडियाँ, उदर, और गर्भाशय को बढाने की सामर्थ्य है।

ह्रैं के उच्चारण से मूत्रपिण्डोंपर सुपरिणाम होता है।

ह्रौं इस बीजाक्षर से मलाशय, गुदकांड और गुदद्वार सशक्त बनकर मलविसर्जन अच्छा होता है।

ह्रः से छाती, गला और अन्नमार्ग सुदृढ बनते हैं।

इस प्रकार प्रणव और बीजाक्षरोंके साथ पद्धति-युक्त सूर्यनमस्कार रोज नियम से डालें, तो (१) सब इन्द्रियों और अवयवोंको बाह्यतः दिखनेवाली प्रमाणबद्धता और सौष्ठव प्राप्त होकर इसके सिवा (२) सहनशीलता, मनोबल, आत्मविश्वास, धैर्य, रोगप्रतिबंधक शक्ति इत्यादि अदृश्य गुणसमुच्चय भी प्राप्त होते हैं। यह दुहरा लाभ अन्य किसी भी व्यायामसे नहीं मिलता।

नमस्कार कैसे डालें ?

नमस्कारके समय पुरुषके लिये पहननेको हलका अंगोछा या लंगोट होना चाहिये। बाकी शरीर खुला रहे। स्त्रीके लिये हलकी साडी और ढीली चोली हो। जहाँ तक बन सके स्नान करके सूर्योदयपूर्व विना कुछ खाये नमस्कार डालने चाहिये। क्यों कि इस समय घरमें तथा घरके बाहर शांतता रहती है और मन भी शांत तथा उत्साहपूर्ण रहता है। ब्राह्ममुहूर्तमें याने बडे सबेरे ४॥–५ के पूर्व उठकर शौच, मुखमार्जन, स्नान करनेसे साधारणतः सूर्योदयके पूर्व नमस्कार समाप्त करके ५-१० मिनट विश्रांति भी लेनेमें कोई हानि नहीं। या यदि संभव हो तो सूर्योदयके समय कोमल सूर्यकिरण खुले शरीरपर पडें ऐसे स्थानमें सूर्यनमस्कार डालनेसे व्यायामसे लाभ होकर रोगनाशक और रोगप्रतिबंधक बालकिरणों (Ultra-violet rays) का भी लाभ मिलेगा।

कोई भी व्यायाम—

'अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः'

इस प्रकार करना चाहिये। अर्धांश शक्तिसे बाहर व्यायाम न करना चाहिये। व्यायामके पश्चात् पांच सात मिनट विश्राम मिलते ही मनुष्यको सब थकावट दूर होकर अपना काम करनेमें उत्साह मालूम होना चाहिये। यह उत्तम नियम नमस्कारों को भी लागू है।

नमस्कारोंके आसन।

प्रत्येक नमस्कार में दस आसन + हैं, उनकी रीतिका वर्णन संक्षेप में करते हैं—

---

* इस संबंध का सविस्तर हाल 'सूर्यनमस्कार' नामकी अंग्रेजी पुस्तक के आठवें पाठमें दिया है।

+ इस दस आसनों के 'अवस्थान,' 'जानुस्थान' आदि नाम ध्यान में रखनेकी सुविधाके लिये श्री० धोंडो विट्ठल कुलकर्णी, एम्, ए. ने संस्कृत श्लोक रचे हैं। वे इस प्रकार हैं–

अवस्थानं जानुनासं ततश्चोर्ध्वनिरीक्षणम् ।
वपुस्तुलितपूर्वं च साष्टांगं नमनं परम् ॥ १ ॥
षष्ठं कशेरुसंकोचं कशेरोर्विस्तरस्ततः ।
पुनरूर्ध्वेक्षणादीनां व्युत्क्रमः क्रमशो भवेत् ॥ २ ॥
इत्येतैरासनैः कुर्यात् सूर्यस्योपासनं नरः ॥ ३ ॥

चित्र नं० १

प्रथम आसन-अवस्थान।

नमस्कार के लिये अपने ही हाथ से एक हाथ चार अंगुल लम्बाई-चौडाई का एक वस्त्र लेना चाहिए। वह रेशम का, ऊन का या खादी का और स्वच्छ हो। दोनों कदम और पैर मिलाकर अंगूठे वस्त्र के एक छोर पर रखना चाहिये। अनन्तर घुटने न झुकाकर ऐसे सीधे खडे रहो जिससे कमर में तान पडे। हाथ छाती पर जुडे हुए और एक दूसरे से दबे हुए हों। हाथ के अंगूठे स्तनों के बीच के छाती के गड्ढे में टिका कर दूसरी चारों अंगुलियाँ मिलाकर अंगूठों से दूर फैलाकर रखना चाहिये। छाती सामने निकालो और पेट जितना बन सके भीतर ले जाओ। फेफडे फुलाओ; स्कंध फुलाओ; आंख को सीध में रखो; नासाग्र में दृष्टि रखो। 'समं कायशिरोग्रीवम्' रहो अर्थात् शरीर गर्दन और मस्तक एक रेषा में तना हुआ रखो।

यदि सम्भव हो तो सामने काफी बडा जिसमें कमसे कम कमर तक का सब शरीर दिखे, ऐसा आइना रखो। क्योंकि आइने में अपने शरीर की ओर देखकर कंधे और सिर सीधा रख सकते हैं; चित्त एकाग्र कर सकते हैं, तथा यह भी मालूम होता है कि शरीर के किस भाग पर कैसा बल पडने से इस भाग के स्नायु तैयार होकर शरीर का वह भाग कैसे सुडौल बनता जाता है और यह मालूम हो जाता है कि अपन व्यायाम की क्रियाएँ ठीक ठीक कर रहे हैं या नहीं, साथही उसमें गलती होने पर सुधार भी कर सकते हैं।

उपरोक्त रीति से सीधे, नासाग्र में दृष्टि देकर खडे रहने पर 'ॐ ह्रां मित्राय नमः' यह पहला मन्त्र उँचो आवाज में कहो। मुह बन्द करो। पूरक× करो अर्थात् नाक से ही पूर्ण श्वास ध्वनियुक्त भीतर लो। कुंभक करो। (चित्र नम्बर १ देखो)

दूसरा आसन-जानुनास।

पहले आसन का कुंभक कायम रखकर घुटने न नवाकर नीचे झुको। दोनों हाथों के पंजे आसन पर या आसन के छोर पर पडियों की सीध में इस प्रकार रखो कि अंगूठे दूर रहें और अंगुलियाँ मिली रहें। घुटने सीधे रखकर पैर के पंजे न उठाकर नाक या भाल को घुटने में लगाओ। और ध्वनियुक्त रेचक करो। पेट भीतर खींचने से यह

×'**पूरक**' का अर्थ है मुह बंद करके श्वासके साथ वायु भीतर लेना।
'**कुंभक**' का अर्थ है पूरक से भीतर ली हुई वायुको रोक रखना।
'**रेचक**' का अर्थ है कुंभकसे रोक रखी वायुको नाक के द्वारा बाहर छोडना। पूरक, कुंभक और रेचक मिलकर एक पूर्ण प्राणायाम होता है।
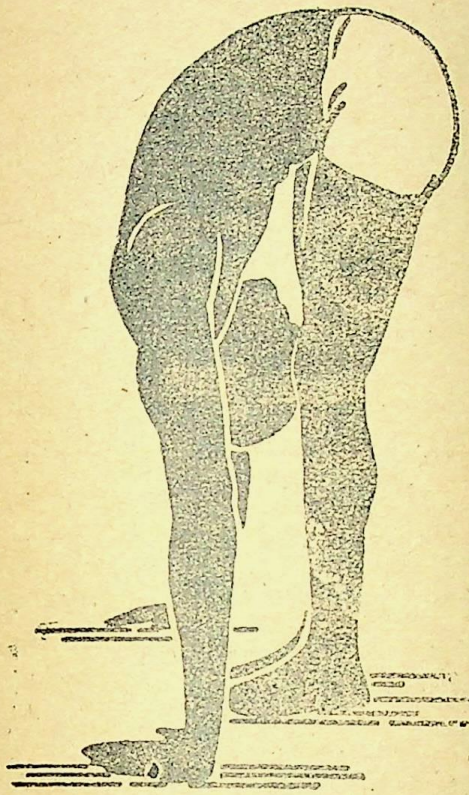
नं० २

आसन करना सरल होता है। और कुंभक का रेचक भी सुगम और पूर्ण होता है। यह आसन करते समय मनमें ऐसा भाव रखो कि मुझे आरोग्य, कार्यक्षमता और दीर्घायुष्य निश्चय से प्राप्त हो रहे हैं। रेचक करो। रेचक केवल नासिकाद्वार से ही भरपूर ध्वनियुक्त करो। यह आसन क्रम से साध्य होता है। प्रथम प्रथम हाथ के पंजे पैर की अंगुलियों की रेषा में रखने से भी काम चल सकता है। धीरे धीरे उन्हें एडियों की रेषामें लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

हाथ के पंजे आसन की कीनारके समानान्तर अथवा उन किनारोंसे साधारणतः २५-३० अंश का कोण बनाकर रखो। कोई कोई ४५ अंश का कोण बनाकर और कोई कोई हातों की अंगुलियाँ एक दूसरे की ओर झुकाकर हाथ रखते हैं। यह जैसा भी हो, कमसे कम इतना अवश्य करना चाहिये कि हाथ के तलवे एडी की रेषा में, और नहीं तो पैरके अंगूठों की सीध में अवश्य रहें। इस प्रकार जमीन पर रखे हुए हाथ के तलवे नौवां आसन समाप्त होते तक न हिलाना चाहिए।

बहुत से लोगोंको इस दूसरे आसन के करने में कठिनाई मालुम होगी। घुटने न झुका कर जो सहज ही में हाथ की अंगुलियों से पैर की अंगुलियाँ छू सकता है उसे इस आसनके करने में सरलता होगी। प्रयत्न करते रहने पर हाथ का पंजा जमीन में टिकाकर घुटने सीधे रखकर भी झुकते बनेगा। प्रथम हाथके पंजे जमीन पर सपाट रखकर बादमें घुटने सीधे करने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस आसन की आखीरी कृति है घुटने सीधे रखकर घुटनों में नाक या भाल लगाना। यह काम पहले कठिन मालुम होगा। किंतु लगातार प्रयत्न से वह साध्य हो जावेगा। नमस्कार से होनेवाले मुख्य मुख्य लाभ इस एक आसन के साधन से प्राप्त होते हैं। (चित्र नम्बर दोन देखो)

तीसरा आसन ऊर्ध्वेक्षण

नाक से ध्वनियुक्त साँस भीतर लेकर याने
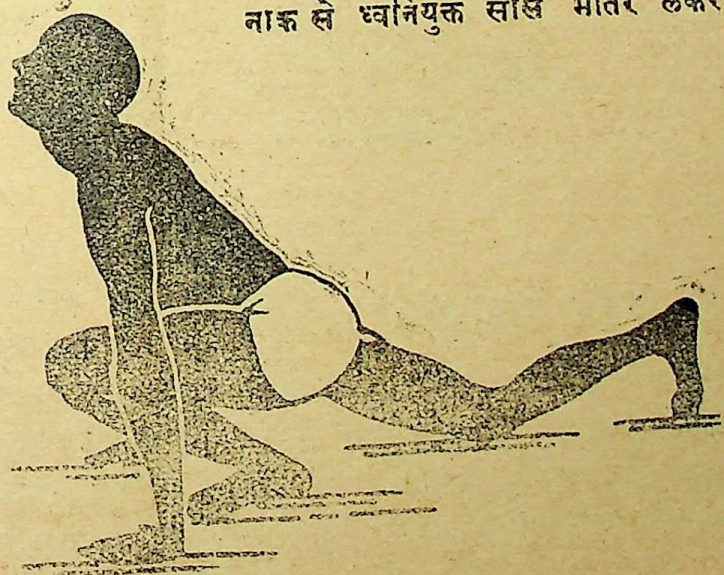
नं० ३

सशब्द पूरक करके दण्ड (भुजाएँ) विना झुकाए सीधे रखकर एक पैर पीछे ले जाओ और उस पैर का घुटना और उसकी अंगुलियाँ जमीन में रखो। दूसरे पैर का घुटना काँख के नीचे से भुजा के सामने लाओ। पूरे कदमको जमीनसे छिवाओ। मस्तक जितना बन सके पीछे ले जाओ और ऊपर देखो। पीठ और कमर झुकाओ। कुंभक करो।
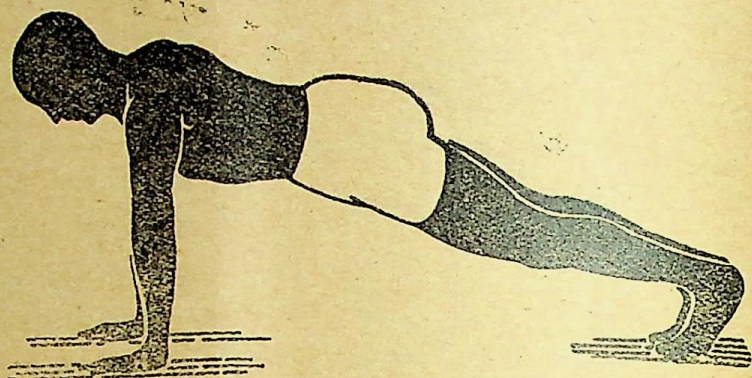
नं० ४

नमस्कार के प्रथम आवर्तन में दाहिना और दूसरे आवर्तन में बाँया पैर इस प्रकार बदल कर पैर आगे पीछे ले जाओ (चित्र नम्बर तीन देखो)

चौथा आसन-तुलितवपु।

कुंभक कायम रखकर पौंद न उठाकर दूसरा पैर पीछे लेओ। अंगूठे, घोटे और घुटने एक दूसरे को छुवाकर रखो। भुजाएँ सीधी लम्बी एक रेषा में रखो। एडी, पौंद, पीठ और सिर का पिछला भाग ये सब एक रेषा में लाओ। दोनों हतेलियाँ और दोनों पैरों की जुडी हुई तली (अंगुलियों के पास की) इन पर सारे शरीर को साधो। कुंभक कायम रखो। (चित्र नम्बर चार देखो)
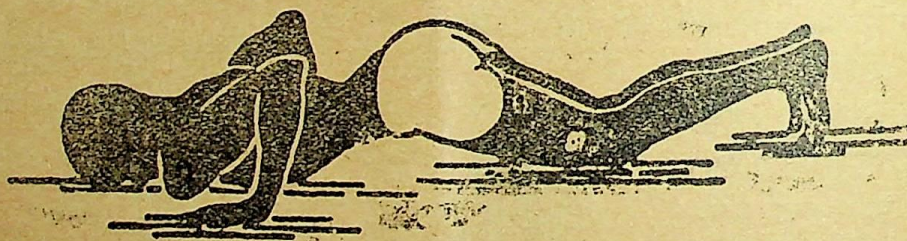
नं० ५

पाँचवाँ आसन-साष्टांग।

अब कुंभक न छोडकर घुटने जमीनसे छुआओ पर हाथ के तलवे और पैर जगह से न हिलाओ। ठुड्डी गले के नीचे के भाग को छुआओ या छुआने का प्रयत्न करो और नासिकाग्र से जमीन को स्पर्श न कर भाल के ऊपरी भाग से और छाती के नीचे के भाग से एकसाथ जमीन को स्पर्श करो। पेट ऊपर खींच लो। उससे जमीन न छुओ। पेट ऊपर खींचने पर पूर्ण रेचक सशब्द करो—सब श्वास नाक ही से आवाज करते हुए छोडो (चित्र नम्बर पांच देखो)

छटवाँ आसन कशेरुसंकोच।

पाँचवे आसन में जैसा बतलाया है उसी प्रकार पैर, घुटने और हाथ के पंजे स्थिर रखकर भुजाएँ सीधी करो। ध्वनियुक्त पूरक करके छाती सामने लाओ और पीठ को झुकाओ। मस्तक पीछे झुकाकर ऊपर देखो। कुंभक करो। (चित्र नम्बर ६ देखो)
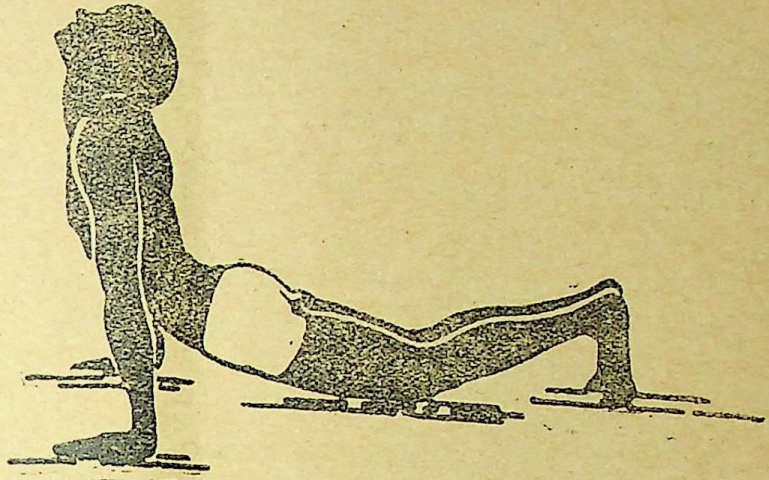
नं० ६

सातवाँ आसन कशेरुविकसन।

कुंभक कायम रखकर पैर सीधे करो। हाथ के तलवे न हिलाकर भुजाएँ सीधी कुछ झुकती हुई करो। मस्तक दोनों हाथों के बीच में बिलकुल नीचे लाकर ठुड्डी से छाती को स्पर्श करो। पेट भीतर खींचकर पोंद जितनी बन सके ऊपर उठाओ। एडियाँ जमीनमें लगाओ। पैर सीधे रखकर कुंभक कायम रखो। (चित्र नम्बर सात देखो)
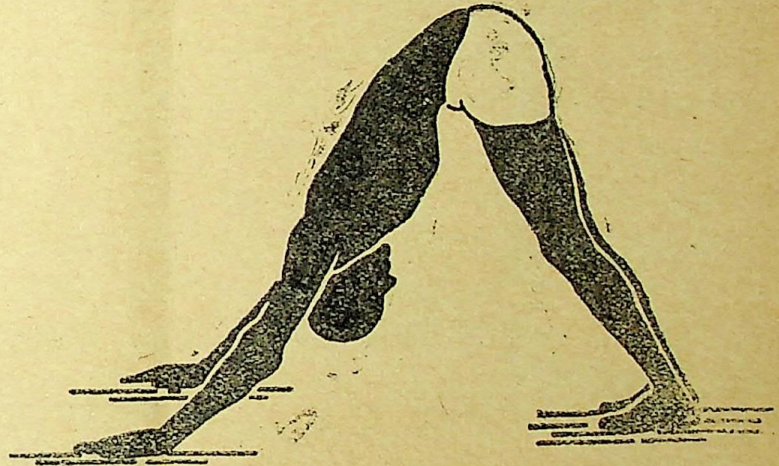
नं० ७

आठवाँ आसन ऊर्ध्वेक्षण।

भुजाएँ फिर से सीधी रेखाओंमें लाकर एक पैर आगे लाओ और उससे बीच में जमीन न छूकर हाथ के तलवे की रेखा में आसन (वस्त्र) के किनारे पर रखो। इस पैर का घुटना भुजा के भीतर से सामने लाओ और पैर का तलवा पूर्ण रीति से जमीन में लगाओ। दूसरे पैर का घुटना
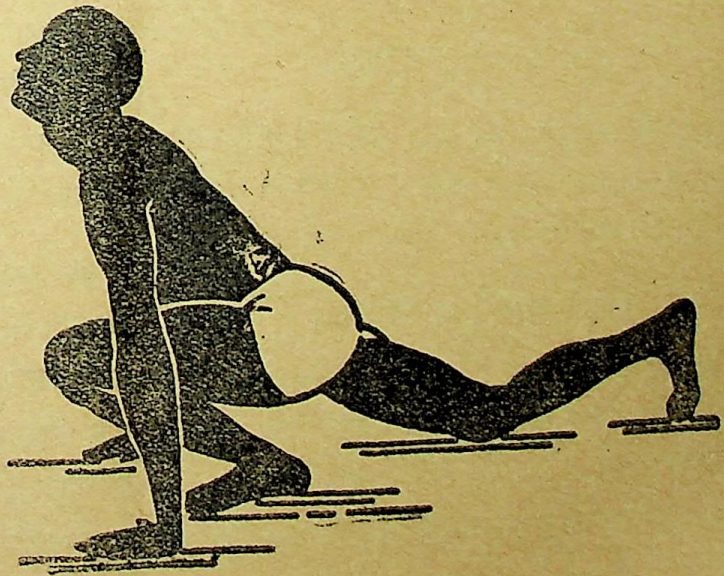
नं० ८

जमीन पर लगाकर तीसरे आसन में कहे अनुसार गर्दन और सिर पीछे ले जाकर ऊपर देखो। कमर और पीठ झुकाओ। कुंभक कायम रखो (चित्र नम्बर आठ देखो)

नं० ९

नवाँ आसन-जानुनास ।

यह आसन हूबहू दूसरे आसनके समान है। पेट भीतर खींचकर घुटनेमें नाक या कपाल लगानेपर ध्वनियुक्त पूर्ण रेचक करो। (चित्र नम्बर ९ देखो)

दसवाँ आसन-अवस्थान ।

सशब्द पूरक करके पुनः प्रथम आसन के समान खडे रहो। किंतु खडे रहने तक घुटने एक दूसरे से चिपके हुए, सीधे और न झुके हुए हों।

इस प्रकार यह दस आसन मिलकर एक 'संपूर्ण
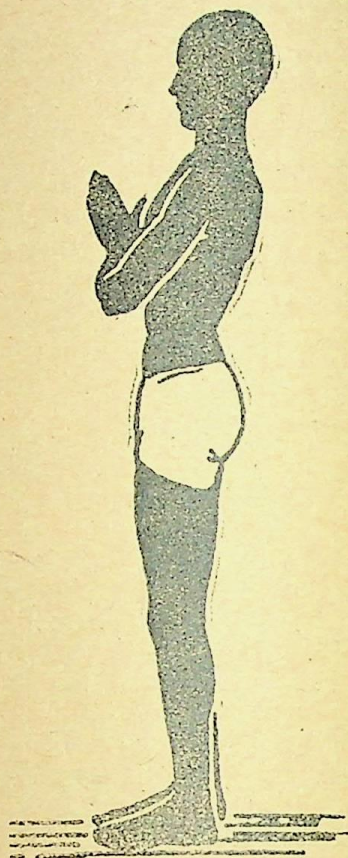
नं० १०

नमस्कार होता है। पचीस नमस्कारों का एक आवर्तन होता है।

दूसरे नमस्कार को शुरू करते समय 'ॐ ह्रीं रवये नमः' यह दूसरा मन्त्र कहकर मुह बन्द करो और ध्वनियुक्त पूरक करके मुह बन्द करके नाक से श्वसनक्रिया करके दस आसनों से युक्त देसा दूसरा नमस्कार डालो।

आरम्भ में नमस्कार सावकाश डालना चाहिए जिससे मालूम होता है कि किस अवयवपर विशेष तान पडता है और किस अवयव पर पडना चाहिए तब पता चलेगा कि प्रत्येक अवयव को पृथक् व्यायाम हो रहा है। कभी भी नमस्कार इतने जल्द न डालना चाहिये जिससे हाँप लगे।

पाठ पाँच

नमस्कारसे शरीर और मन सुदृढ बनते हैं ।

(१) स्नायुओंका दृढीकरण ।

शरीर की सामर्थ्य अधिक तर स्नायुओं पर अवलम्बित रहती है। पद्धतियुक्त नमस्कारों से केवल स्नायु ही बलवान् नहीं होते, अन्तरिन्द्रियाँ भी बलवान् बनती हैं।

अब देखें कि नमस्कार के प्रत्येक आसन में कौन कौन से स्नायु पर तान पड कर वे मजबूत होते हैं—

पहला आसन-अवस्थान ।

इस आसन में गर्दन छाती, हाथ की अंगुलियाँ, भुजाएँ, पेट, कमर, पैर इनपर जोर पडता है । कई लोगों के पैर टेढे रहते हैं । पहला आसन उचित रीति से करने से पैरों का टेढापन निकल जावेगा सीधे खडे रहने से घुटने में घुटना लगता है। हाथ के तलवे एक दूसरे पर दबाने से भुजा के पीछे के त्रिशिख स्नायु (triceps) मजबूत होते हैं। नासाग्र दृष्टि साधनेमें गर्दन और गलेको, पेट भीतर खींच ने से जठर को, अन्य पचनेन्द्रियों को और गर्दन के पुट्ठों को अच्छा व्यायाम होता है।

दूसरा आसन-जानुनास ।

हतेली, हात की अंगुलियाँ, पिंडरियों के तथा जांघों के पीछे के भाग के स्नायु, पेटके, नितंब के और पीठ के स्नायु, अंतडिओं के स्नायु पर जोर पडता है। पीठ और कंधों को जोडनेवाले बडे स्नायुओं पर विशेष पडता है और अच्छा व्यायाम होता है। नाभी के पास का तन्तुजाल (Solar Plexus) उत्तेजित होकर उसकी शक्ति बढती है।

तीसरा आसन-ऊर्ध्वेक्षण ।

गले को, गर्दन को, पीठ को और कमर को अच्छा व्यायाम होता है। जब अपन दाहिना पैर पीछे लेते हैं, उस समय बाँयी जांघ से प्लीहा दबती है। बाँया पैर पीछे ले जाते समय दाहिना पैर से यकृत पर दबाव पडता है। जाँघों के नीचे के स्नायु तनते हैं। पीछे गई हुई जाँघ को घोट और कलाई भी खिच जाती है।

चौथा आसन-तुलितवपु ।

भुजाएँ, हतेलियाँ, पैर की अंगुलियाँ इनपर शरीर तौलना पडता है, इसलिये हाथ और पैर के स्नायुओं को तथा गर्दन को व्यायाम होता है।

पाँचवाँ आसन-साष्टांग ।

गले के ऊपरी भाग पर ठुड्डी के नीचे के भाग पर दबाव पडता है। कण्ठमणि के पास की बहुत महत्व की कण्ठग्रन्थी (Thyroid Gland) को चालना मिलती है, इस से वह बलवान् होकर अनेक रोगों का प्रतिबन्ध होता है। घुटने के ऊपर के भाग, हाथ, भुजाएँ और कलाइयाँ इन पर शरीर तौला जाता है इसलिये इन भागोंके सब पुट्ठे मजबूत होते हैं। इस आसन में पेट भीतर खींच कर नितंब को जितना बन सके ऊपर उठाना पडता है, इसलिये उदर और नितंब के स्नानुओं को व्यायाम हो कर वे पुष्ट और बलवान् होते हैं। गर्दन पर अच्छा खींचाव लगता है।

छटाँ आसन-कशेरुसंकोच ।

गर्दन, गला, कण्ठग्रन्थी (Thyroid Gland) पीठ, पेट, भुजा के बहुतरे स्नायु, विशेषतः त्रिशिख स्नायु (Triceps) को व्यायाम होता है और वे सुडौल एवं बलवान् बनते हैं। फेफडे विस्तृत होकर छाती भरी हुई तथा चौडी बनती है। पट का मेद कम होने लगता है, पेट का घेरा कम होता है और छाती का घेरा बढता है। यही आरोग्य का तथा सामर्थ्य का चिह्न है।

उदर के, यकृत के और तिल्ली के विकार नष्ट

होते हैं। अयोग्य अन्नभक्षण से उत्पन्न होनेवाले गले के चट्टे, मेंडके आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। उम्मीद तो यह है कि गण्डमाला जैसे रोग भी अच्छे हो जावेंगे । इस आसन में पीठ की रीड मुडने से ज्ञानतन्तुजाल उत्तेजित होकर मस्तिष्क तेज होता है।

सातवाँ आसन – कशेरुविकसन।

इस आसन में पैर, पिंडरी,नितंब,कमर, पेट,पीठ, गर्दन, गला, भुजाएँ और हाथ के पंजों को भरपूर व्यायाम मिलने से वे सुदृढ होते हैं। छटवें आसन में पीठ की रीड मुडने से उसका संकोच होता है और इस आसन में वह तन जाता है—अर्थात् उसका विकास या विस्तार होता है। इस प्रकार पृष्ठवंश का संकोच और विस्तार प्रत्येक नमस्कार में होता है; इससे मस्तिष्क का बल बढता है और स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है । जी से उकता उठना या जीवनके नाशके विचार आना ये विकार नष्ट हो जाते हैं।

आसन ८, ९, १० ये क्रमसे ३, २ और १ आसनों के समान ही हैं।

(२) यकृत पाणथरी, (तिल्ली), फेफडे, पृष्ठ-वंश, मज्जातन्तु, आदि मजबूत बनते हैं।

आरंभ में नमस्कारों का एक ही आवर्तन (पचीस नमस्कार) बनने लगेगा तब पहले नमस्कार के समय तीसरे आसन में यदि दाहिना पैर पीछे ले जाओ, तो आठवें आसन में भी दाहिनाही पैर सामने लाओ। दूसरे नमस्कार में बाँया पैर पीछे ले जाकर बाँया ही पैर सामने लाओ। इस प्रकार अदलबदल कर पैर आगे पीछे करना चाहिये। या पहले बारह नमस्कारों में दाहिना पैर ही आगे करना चाहिये और बाद के तेरह नमस्कारों में बाँया पैर ही आगे करना चाहिये। आगे चलकर जब एक से अधिक आवर्तन करने लगेंगे तब एक आवर्तन पूरा होते तक एक ही पैर आगे पीछे लाया जावे, और दूसरे आवर्तन में दूसरा पैर तथा तीसरे में फिर पहला पैर इस प्रकार का क्रम रखना चाहिये। ऐसा करने से दोनों बगलों को तथा दोनों जांघों को एकसा व्यायाम मिलेगा।

यकृत्–

यकृत में यदि कोई विकार हो तो उसके मिट जाने तक बाँया पैर ही पीछे ले जाकर दाहिना पैर ही आगे लाया जावे। जिनको यह विकार वंश-परंपरा से है या हमेशा के लिये है, उन्हें भी दाहिना पैर हमेशा आगे लाना चाहिये।

पाणथर (तिल्ली)--

जिनकी प्लीहा या तिल्ली बढी हो, वे दाहिना पैर पीछे ले जाकर बाँया पैर आगे लावें।

इस विषय में प्रत्येक मनुष्य अपनी शिकायत के विचार से निश्चय करके इन बातों को तय करे।

फेफडे–

कुंभक कायम रखकर दूसरे आसन का आरम्भ होता है और इससे बहुत लाभ भी होता है। पेट भीतर खींचकर जब अपन झुकते हैं तब फेफडों के नीचे के भाग पर दबाव पडता है। इससे भीतर ली हुई हवा फेफडों के ऊपरी भाग में जाती है। इस रीति से हवा फेफडों के कोनों तक पहुंच जाती है और शुद्ध हवा के अभाव के कारण या कमी के कारण जो इन कोनों में तपेदिक के जंतु बढते हैं, उन कोनों में शुद्ध हवा के पहुंचने से उन जंतुओं का नाश हो जाता है। सातवें और नवें आसन से भी यही लाभ होता है।

पृष्ठवंश और मस्तिष्क –

मनुष्य की उत्साहशक्ति का उद्गमस्थान एवं भण्डार पृष्ठवंश तथा मस्तिष्क है। पृष्ठवंश से असंख्य ज्ञानतंतु शरीरभर में फैले रहते हैं। उचित व्यायाम से मस्तिष्क और पृष्ठवंश बलवान् रखें तो पचनेन्द्रिय तथा दूसरी भीतरी इंद्रियाँ सदैव फुर्तीली और कार्यक्षम रहती हैं।

पृष्ठवंश —

सूर्य-नमस्कारों में विशेषता यह है कि दूसरे, सातवें तथा नवें आसन में पीठ की रीड पर तान पडता है इसलिये उसका प्रसरण होता है तथा तीसरे, छटे, तथा आठवें आसन में उसका संकोच होता है। इस प्रकार पीठ की रीड का आकुंचन तथा प्रसरण अन्य किसी भी व्यायाम में या खेल में नहीं होता। इसलिये नमस्कारों के व्यायाम से पीठ के स्नायुओं की तथा विशेष रीति से पृष्ठवंश की शक्ति बढती है।

उदर —

पहले, दूसरे, पांचवें, सातवें और नवें आसनों से पेट के स्नायुओं पर तान पडने के कारण अग्निमांद्य आदि पेट के विकार नष्ट हो जाते हैं तथा अँतडियाँ और दूसरी पचनेन्द्रियाँ मजबूत होती हैं।

मनोबल — विकास।

मनुष्य की प्रत्येक कृति में इच्छाशक्ति का अथवा मनोबल का इतना प्रभाव रहता है कि उसके बिना कोई भी कार्य सम्पूर्ण फलदायी नहीं होता। इसलिये इस दिव्य सूर्यनमस्कारों का अवलंबन कर उसका पालन करते समय नमस्कारों के पूर्व, मध्य में तथा अन्त में मनोभूमिका इन विचारों की होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि 'इस व्यायामसे मैं निश्चल शरीरस्वास्थ्य प्राप्त करूंगा तथा उस सामर्थ्य का, तेजका और वीर्य का सत्कार्य में उपयोग करूंगा।' किसी भी शारीरिक व्यायाम को लेते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उसके कई क्रियाओं हलचलोंका परिणाम किसी खास स्नायु पर या शरीर के भाग पर होता है और वह भाग उत्तरोत्तर अंशतः वृद्धिंगत या दृढतर होता जाता है; परन्तु उसी समय अपनी इच्छाशक्ति और चित्तैकाग्र्य यदि उस खास भाग पर केन्द्रित करें तो वे स्नायु पूर्ण बलवान् बनते हैं। जब कि मन इधर उधर भटक रहा हो, ऐसी दशा में केवल यन्त्र के समान शरीर की हलचल करने से कुछ भी लाभ नहीं होता।

अन्य व्यायाम तथा खेलों में अपना सब ध्यान खेल की कुशलता तथा दूसरे पक्ष को किस तरह हरावें इन बातों की ओर रहता है। किंतु सूर्यनमस्कारों में मनश्चक्षु के सामने यही लक्ष्य रखना पडता है कि अपना स्वतः का आरोग्य, कार्यक्षमता और दीर्घ-आयु।

अनेक दिन तक यदि सूर्यनमस्कार अव्यवस्थितता से डरते डरते तथा चंचल मन से डाले जावें, तो उनका शरीर पर अंशतः परिणाम होगा, किंतु पूर्णरीति से नहीं होगा। प्रत्येक अवयव का और इंद्रिय का विकास होकर रोग, दुःख आदि विकार अच्छे होना उन अवयवों पर चित्त एकाग्र करने ही से सधेगा। चित्त-रहित व्यायाम से अथवा परिश्रम से स्नायु लुहार के या लकडी चीरनेवाले की भुजाओं के स्नायुओं के समान कठिन भले ही हों, परन्तु उनमें सजीवता, झुकने की शक्ति और सुडौलपन ये गुण न आवेंगे।

'हम १००० नमस्कार डालते हैं' इस प्रकार कहकर केवल संख्या की ओर ध्यान देने से आरोग्य, कार्यक्षमता और दीर्घ आयु यह नमस्कारों का मुख्य ध्येय और साध्य प्राप्त न होगा।

ज्ञानतन्तु —

देह के अवयवों के समान उसके ज्ञानतंतु भी सदैव काम में लाने ही से उद्दीपित हो बलवान् एवं कार्यक्षम बनते हैं। इसीलिये आधुनिक फौजी-शिक्षा का प्रधान उद्देश्य यही रहता है कि शरीर के ज्ञानतंतु बलवान् एवं कार्यक्षम करना। दूसरी तरह से इस प्रकार कह सकते हैं एक ओर मन और दूसरी ओर स्नायु इन दोनोंको जोडनेवाली ज्ञानतंतु सांकल है। मन की इच्छा वा आज्ञा ज्ञानतन्तुओं के द्वारा स्नायुओं को पहुंचाई जाती है। हृदय, रक्त आदि की अनैच्छिक-पराधीन क्रियाएँ भी योगबल से अपने अधिकार में रखी जा सकती है। चित्त की एकाग्रता की ऐसी भारी सामर्थ्य है

पाठ छठवाँ

दृष्टि और वाणि ।

दृष्टियोग ।

मन की एकाग्रता के लिये दृष्टि का अत्यन्त उपयोग है। मन एकाग्र करके अभ्यास करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
(गी. ६।१३)

भावार्थ— पीठ, सिर और गर्दन सीधी सरल रेखा में रख कर स्थिर होना चाहिये। आजूबाजू आगेपीछे कहीं भी दृष्टि न घुमाकर वह अपनी नाक की नोंक पर अचल रखो। इस प्रकार जब यह आसन पूर्ण बैठ जायेगा, तब फिर योगाभ्यास को आरम्भ करना चाहिये।

मन की एकाग्रताके लिये दृष्टि नासाग्र पर रखनी पडती है। इसलिये नमस्कार डालते समय इधर उधर न देखकर अपनी दृष्टि नासाग्र पर रखनी चाहिये।

वाणी-योग ।

सूर्य-नमस्कार के मन्त्र नीचे लिखे अनुसार हैं-

(अ) ॐ — इसे ॐकार या प्रणव कहते हैं। वैदिक ऋचाओं के पूर्व और बीजाक्षरों के पूर्व ॐ कहना पडता है।

(आ) छः बीजाक्षर— ऱ्हां; ऱ्हीं; ऱ्हूं; ऱ्हैं; ऱ्हौं; ऱ्हः ।

(इ) सूर्य के बारा नाम × — मित्राय नमः। रवये नमः। सूर्याय नमः। भानवे नमः । खगाय नमः। पूष्णे नमः। हिरण्यगर्भाय नमः । मरीचये नमः। आदित्याय नमः। सवित्रे नमः। अर्काय नमः। भास्कराय नमः।

(ई) वैदिक ऋचा —

'उद्यन्नद्य मित्रमहः ...... मो अहं द्विषते रधम्।' ये ऋग्वेद की तीन ऋचाएँ।

'हंसः शुचिषद्... ऋतं बृहत्।' यह यजुर्वेद की की एक ऋचा। प्रणव छः बीजाक्षर और वेदऋचा सूर्य के बारा नामों से कैसे कैसे जोडी गई हैं इसको समझने के लिये थोडा स्पष्टीकरण आवश्यक है।

सूर्य-नमस्कार के लिये ऋग्वेद की तीन ऋचाओं के बारा भाग और यजुर्वेद की एक ऋचा के बारा भाग किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

ऋग्वेद की तीन ऋचाओं के बारा भाग—

१ उद्यन्नद्य मित्रमहः । २ आरोहन्नुत्तरां दिवम्। ३ हृद्रोगं मम सूर्य। ४ हरिमाणं च नाशय। ५ शुकेषु मे हरिमाणम् । ६ रोपणाकासु दध्मसि। ७ अथो हारिद्रवेषु मे। ८ हरिमाणं निदध्मसि। ९ उदगादयमादित्यः। १० विश्वेन सहसा सह । ११ द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् । १२ मो अहं द्विषते रधम्॥

यजुर्वेद की एक ऋचा के बारा भाग—

१ हंसः शुचिषत्। २ वसुरंतरिक्षसत्। ३ होता वेदिषत्। ४ अतिथिर्दुरोणसत्। ५ नृषत्। ६ वरसत्। ७ ऋतसत्। ८ व्योमसत्। ९ अब्जा गोजाः। १० ऋतजाऽअद्रिजा। ११ ऋतम्। १२ बृहत्।

प्रणव— ॐ — नमस्कार के प्रत्येक मन्त्र में एकबार अथवा अनेक बार कहा जाता है।

सूर्य के प्रत्येक नाम के पहले एक बीजाक्षर आता है। इसी प्रकार प्रत्येक वैदिक ऋचा के या

× सूर्य के बारा नामोंका अर्थ- (१) मित्र= जगन्मित्र (२) रवि= सबके लिये पूजनीय (३) सूर्य= प्रवर्तक; संचालक (४) भानु= तेज या सौंदर्य देनेवाला (५) खग = इंद्रियोद्दीपक (६) पुषन् = पोषणकर्ता (७) हिरण्यगर्भ = वीर्यबलवर्धक (८) मरीची = सर्वरोगनाशक (९) आदित्य = सर्वाकर्षक (१०) सवितृ = सर्वोत्पादक (११) अर्क = आदरणीय (१२) भास्कर = प्रकाशमान

ऊपर के बारा नामोंके अर्थ से ये सब नाम सर्वसाक्षी परमेश्वरके भी हैं, यह बात पाठकोंको स्पष्टतया विदित होगी।

ऋग्भाग के आरंभ में एक बीजाक्षर आता है।

अर्थात् दो सूर्य नामों के साथ दो बीजाक्षर और वैदिक ऋचा के भागों के साथ दो बीजाक्षर आते हैं।

चार सूर्यनामों के साथ चार बीजाक्षर और वैदिक ऋचा के चार भागों के साथ चार बीजाक्षर आते हैं।

२२, २३ और २४ वें नमस्कार के समय सूर्य के बारा नाम एकदम कहने पडते हैं। उस समय प्रथम छः बीजाक्षर दो बार कहकर यजुर्वेद की एक पूरी ऋचा या ऋग्वेद की तीन ऋचाएँ संपूर्ण कहकर पुनः छः बीजाक्षरों का दोबार उच्चारण करके बाद में सूर्य के बारा नाम एकदम कहना चाहिये। इसी पद्धति के अनुसार पुस्तक के अन्तमें समंत्रक संपूर्ण नमस्कार दिये हैं। पाठक उन्हे देखें।

वैदिक ऋचा के विना सूर्यनमस्कार

सबसे पहले ध्यान रखने की बात यह है इस पुस्तक में या तख्ते में दिये हुए दस आसन बिना ठहरे लगातार एक के बाद एक करने चाहिये। दस आसन मिलकर एक पूर्ण नमस्कार होता है। ये दस आसन समंत्रक पूर्णतया करने के लिये १५ से २० संकंद से अधिक समय नहीं लगता। ऐसे पचीस नमस्कारों का एक आवर्तन ७-८ मिनट में होता है। पुस्तक के अन्त में दिये अनुसार एक नमस्कार को तख्तेमें दिये हुए नमस्कार की अपेक्षा किंचित् अधिक समय लगेगा, क्यों कि इसमें तख्त समान प्रणव और बीजाक्षर तो कहने ही पडते हैं पर इसके सिवा वैदिक ऋचाएं भी कहनी पडती हैं।

नये मनुष्य को आरम्भ में कुछ अधिक समय लगता है और वह स्वाभाविक भी है।

नमस्कार के तख्ते में वैदिक ऋचाएँ भर नहीं दी गई। क्यों कि अहिंदु उन्हे न कह सकेंगे या वे न कहेंगे। यह शुभ चिन्ह है कि इन सूर्यनमस्कारों के व्यायाम का प्रसार और सारे हिंदुस्थानमें बहुत शीघ्र गति से होने लगा है। सभी पाठशालाओं में यदि इस व्यायाम की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये तो बहुत लाभ होगा। इसी लिये तख्ते-में वैदिक ऋचाएँ नहीं छापी गईं। इससे तख्ते का उपयोग हिंदु, अहिंदु, पारसी, मुसलमान सब कर सकेंगे। जिनका वेदों पर विश्वास नहीं है या जो वेदों को नहीं मानते अथवा जो वेद-मन्त्र कहना नहीं चाहते वे तख्ते में दिये अनुसार नमस्कार डालें।

तख्ते में दिये अनुसार प्रथम आसन करके ॐ ऱ्हां मित्राय नमः यह मंत्र स्पष्ट और ऊँची आवाज में कहना चाहिये। उसके बाद मुह बंद करके तख्ते में या चौथे पाठमें बतलाये अनुसार नाक के द्वारा श्वासोच्छ्वास करके सब आसन करना चाहिये। जब दसवाँ आसन करते हैं, तब एक नमस्कार समाप्त होकर दूसरे नमस्कार का आरंभ होता है।

तख्तेमें दिये अनुसार (१) पहले बारा नमस्कार १ से बारा तक

१ ॐ ऱ्हां मित्राय नमः।
२ ॐ ऱ्हीं रवये नमः
३ ॐ ऱ्हूँ सूर्याय नमः
४ ॐ ऱ्हैं भानवे नमः
५ ॐ ऱ्हौं खगाय नमः।
६ ॐ ऱ्हः पूष्णे नमः।
७ ॐ ऱ्हां हिरण्यगर्भाय नमः।
८ ॐ ऱ्हीं मरीचये नमः।
९ ॐ ऱ्हूं आदित्याय नमः।
१० ॐ ऱ्हैं सवित्रे नमः।
११ ॐ ऱ्हौं अर्काय नमः।
१२ ॐ ऱ्हः भास्कराय नमः।

(२) दूसरे छः नमस्कार १३ से १८ तक—

१३ ॐ ऱ्हां ऱ्हीं मित्ररविभ्यां नमः।
१४ ॐ ऱ्हूं ऱ्हैं सूर्यभानुभ्यां नमः।
१५ ॐ ऱ्हौं ऱ्हः खगपूषभ्यां नमः।
१६ ॐ ऱ्हां ऱ्हीं हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां नमः।
१७ ॐ ऱ्हूं ऱ्हैं आदित्यसवितृभ्यां नमः।

१८ ॐ ह्रौं ह्रः अर्कभास्कराभ्यां नमः।

(३) तीसरे तीन नमस्कार १९ से २१

१९ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं मित्ररविसूर्यभानुभ्यो-नमः।

२० ॐ ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं खगपूषहिरण्यगर्भ-मरीचिभ्यो नमः।

२१ ॐ ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः आदित्यसवित्रर्क-भास्करेभ्यो नमः।

(४) चौथे तीन नमस्कार २२ से २४

२२ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः

मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्य-सवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः

[२३; २४ ऊपर के समान ।]

(५) अन्तिम पचीसवाँ नमस्कार

२५ ॐ श्रीसवितृसूर्यनारायणाय नमः।

इस प्रकार २५ नमस्कारों का एक आवर्तन होता है।

नमस्कार के समय मंत्रोच्चारण की पद्धति पूर्वज ऋषियों ने जो बदला दी है वह बिलकुल शास्त्रोक्त होने के कारण नमस्कारों के कितने भी आवर्तन करने पर भी दम या साँस नहीं फूलती।

नमस्कार के दूसरे आवर्तन के आरंभ में पहले आवर्तन के आरंभ के समान ही बल्कि अधिक होशियारी मालूम होती है। यह होशियारी कुछ अंशमें प्रणव और बीजाक्षरों के स्पष्ट और ऊँची आवाजमें कहने के कारण और कुछ पहले आवर्तन के कारण आलस झड जाने से आती है। १०-१२ आवर्तनों के बाद यद्यपि स्नायुओंमें थकावट आजाती है, तब भी दम नहीं फूलती। प्रणव और बीजाक्षरों के पद्धतियुक्त उच्चारण से यह अपूर्व लाभ प्राप्त होता है।

मन्त्र जो कहने होते हैं वे भी सीधे खडे होकर और हाथ जोडकर कहने होते हैं। नमस्कार के झुकना, पीठमें झुकाव देकर ऊपर देखना, आठों अंग जमीन में टिकाना, ऊपर उठना आदि क्रियायें करते समय श्वासोच्छ्वास केवल नाक से होता है और मनमें सदैव यह भावना रखनी पडती है कि 'इस व्यायाम से मैं सुदृढ एवं नीरोग होऊंगा।' इस प्रकार शारीरिक उन्नति और मानसिक उन्नति करनेवाला सूर्य नमस्कारों का व्यायाम दो प्रकारसे लाभदायक है।

वैदिक ऋचाओं के साथ सूर्यनमस्कार।

नमस्कार डालने की इच्छा करनेवाले ऋग्वेदी और यजुर्वेदी प्रणव, बीजाक्षर और वैदिक ऋचा कहकर प्राणायाम सहित नमस्कार डालें। इन ऋचाओं के सहित नमस्कार डालनेसे कुछ अधिक समय लगेगा। पर इससे जो अवयव मजबूत करने की इच्छा रहती है उन्हे अधिक मेहनत दे सकते हैं। इसके सिवा यदि ऋचाओं का अर्थ मन में लाकर नमस्कार डाले तो चित्त की एकाग्रता बढती है और मन शुद्ध होता है।

ऋग्वेदी और यजुर्वेदी नीचे लिखी तीन ऋचाएं कहें:—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ १ ॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥ २ ॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ ३ ॥

ऋग्वेद १।५०।११,१२,१३

इन ऋचाओं का भावार्थ—

"मित्र के समान सुख परिणामी प्रकाश देने-वाले हे सूर्य! आज आप उदय होकर तथा इस

अति ऊँचे द्युलोकपर-सदा प्रकाशमान आकाश पर-आरोहण कर मेरा हृद्रोग और पीलिया नष्ट करें। मेरा पीतवर्ण रोग आप तोतों में और रोप-णका पक्षियोंमें रख दें या ऐसा करें जिस से मेरा पीलिया हारिद्रव वृक्षपर जा बैठे। अपनी सामर्थ्य से सज्ज होकर यह आदित्य यहां ऊगे हैं। मेरे शत्रु को मेरी शरण में आने के लिये उन्होने विवश किया है। पर वे ऐसा कभी भी न करेंगे जिससे कि मैं शत्रु के अधिकारमें चला जाऊं।'

यजुर्वेदी नीचे लिखी ऋचा कहें —

हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथि दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

वा० यजु० १०।२४

इसका अर्थ—

हंसः-साँस लेना, बाहर डालना-पूरक और रेचक वायु

शुचिषत्-पवित्रस्थानस्थ

वसुः-दूसरे का निवासस्थान सुखमय करनेवाला

अन्तरिक्षसद्-हृदयस्थ, अन्तरालमें रहनेवाला

होता-लेनदेन करनेवाला

वेदिषद्-वेदोमें-हृदयमें रहनेवाला

अतिथिः-किसी पूर्व संकेत के बिना अनिश्चित स्थानमें अनिश्चित रीतिसे व्यवहार करनेवाला = यात्री

दुरोणसद् संरक्षकतत्त्वस्थ

नृषद्-मनुष्यों में वास करनेवाला

वरसद्-नभोमण्डलमें रहनेवाला; उत्तमोत्तम वस्तुओंमें रहनेवाला

ऋतसद्-आत्मा में स्थित

व्योमसद्-आकाशमें रहनेवाला (मण्डल-रूपसे)

अब्जाः-जीवन-उत्पन्नकर्ता

गोजाः इन्द्रियों को जीवन शक्ति देनेवाला

ऋतजाः-सत्यतत्त्व निर्माता

अद्रिजाः-आदरणीय वस्तुओं को जन्म देनेवाला

ऋतम्-सत्य; सर्वगामी

बृहत्-श्रेष्ठ; बडा

ऊपर के शब्दार्थ से विदित होगा कि वे शब्द जीवात्मावाचक हैं। और वेद प्रमाणसे सूर्य अखिल चराचर सृष्टि का आत्मा ही है। तब ऊपर की नामावलि सूर्य को भी लागू होती है।

सूर्योपासक का अन्तिम ध्येय यही है कि पर-मात्मासे या जीवात्मासे एक रूप हो जाना। इसके लिये वेदप्रामाण्य—

(१) योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।

(वा० यजु०)

अर्थ- जो आत्मा सूर्य में है वही मैं हूं।

(२) सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

(ऋग्वेद १।११५।१)

अर्थ—यच्चयावत् चलाचल सृष्टिका आत्मा सूर्य है।

जो लोग वेद-ऋचा कहना नहीं चाहते, वे इस व्यायाम से पूर्ण लाभ लेने के लिये नमस्कार के तख्ते में दिये अनुसार मनः पूर्वक नमस्कार डालें और अपनी सम्पूर्ण इच्छा शक्ति इस भावनामें केन्द्रित करें कि प्रत्येक नमस्कार के साथ आरोग्य कार्यक्षमता और दीर्घ आयु प्राप्त हो रही है।

प्राणायाम विचार।

शास्त्रोक्त प्राणायाम के अभ्यास से सदा की श्वसन-उच्छ्वसन-क्रिया उत्तम प्रकार से चलती है योग्य श्वासोच्छ्वास करना आरोग्य के लिये आवश्यक है। प्राणायाम से रुधिराभिसरण सुध-रता है; छाती भरी हुई तथा मजबूत होती है; फेफडे के दोष नष्ट होते हैं, मस्तिष्कमें फुर्ती आती है;

मज्ज-तंतू में स्थिरता आती है और इन्द्रिय-दमन-शक्ति बढती है। श्वसनोच्छ्वसन ही प्राण है और श्वसनोच्छ्वसन ही सामर्थ्य है—

'प्राणो वै बलम्।' (बृ० उ० ५।१४।४)
'प्राणैर्बलम्' (महाना० उ० २३-१)

इन सूर्य नमस्कारों से अपूर्व लाभ होने के लिये नमस्कार के साथ (ठेके के साथ) ताल-बद्ध प्राणायाम जारी रखना आवश्यक है।

प्राणायाम के सम्बन्धमें पूर्ण हाल चौथे पाठमें आगई है, तथापि वह नमस्कारों के दस आसनों की सूचनाओंमें वह मिली है। इस लिये नौसिख उसका आकलन एकदम न कर सकेंगे। इसलिये यहाँ उस विषयमें स्पष्ट विवरण किया जावेगा।

पुस्तक के और तख्ते के कुल वर्णन से विदित हुआ ही होगा कि एक नमस्कारमें प्राणायाम के तीन प्रकार आये हैं यथा पूरक, कुंभक और रेचक (पाठ ४ की नोट देखो)

सुविधा के लिये अपन पूरक, कुंभक और रेचक इन तीन शब्दों के आरम्भ के अक्षरों का एक ढाँचा तैयार करें।

पू=पूरक; कुं=कुंभक; रे=रेचक। नीचे के ढाँचे से स्पष्ट समझमें आवेगा कि नमस्कार के प्रथम नौ आसनोंमें तीन पूर्ण व्यायाम कैसे और कब करना चाहिये।—

आसन	प्राणायाम
१ प्रथम आसन-पू, कुं २ द्वितीय आसन-कुं, रे	पहला प्राणायाम
३ तृतीय आसन-पू, कुं ४ चतुर्थ आसन-कुं ५ पंचम आसन-कुं, रे	दूसरा प्राणायाम
६ षष्ठ आसन-पू, कुं ७ सप्तम आसन-कुं ८ अष्टम आसन-कुं ९ नवम आसन कुं, रे	तीसरा प्राणायाम

यदि कोई नौसिख प्रथम इतना पद्धति युक्त और तालबद्ध व्यायाम न कर सके तो भी उसे निराश न होना चाहिये। सब आसन विचार युक्त अभ्यास से सहजमें बनने लगें तब प्राणायाम भी अनायास और भूलरहित बनने लगेंगे। (क्रमशः)

ईसा हिन्दु था !

आज हम अपने पाठकोंको एक नयी बात बताना चाहते हैं। वह यही कि, ईसाइयोंका धर्म-प्रवर्तक त्यागमूर्ति ईसामसीह हिंदु था । ईसाने जैसा त्यागका उदाहरण पाश्चात्य देशोंके सामने रक्खा, वह पाश्चात्योंके इतिहासमें अद्वितीय है। हिंदुओंके अतिरिक्त ऐसा त्याग संसारमें अन्य जाति दिखा नहीं सकती। ईसामें हिंदुरक्त था, इसीसे वह सत्यके लिये आत्मबलिदान कर सका। परन्तु केवल इतने ही भावनाप्रधान विधानसे ईसाको कोई हिन्दु कहकर स्वीकार नहीं कर लेगा, प्रत्यक्ष प्रमाण पर विश्वास करनेके इस नवयुगमें ऐसे कुछ प्रमाण मिलने चाहिये, जिन्हें नवशिक्षित धीमान लें। ऐसे प्रमाण मद्रासके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत टी० ए० शेष ऐयंगर तथा श्रीयुत रामस्वामी ऐयरने लोगोंके सामने रक्खे हैं।

श्रीयुत शेष ऐयंगरने अपनी ' द्रविड भारत ' (Dravidian India) नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मनोरञ्जक और छानबीनसे भरी पुस्तकमें बडी योग्यतासे सिद्ध किया है कि आदि मानवसृष्टि भारतमें हुई और यहींसे, विशेषतया दक्षिण भारतसे, अनेक हिंदु जल तथा स्थल मार्गसे भारतेतर उत्तर और पश्चिम भूभागमें जाकर बस गये। हमारा प्राचीन इतिहास दुर्लभ है । जो इतिहास उपलब्ध है, उसमें वेदोंसे लेकर महाभारत तकका कुछ आनुमानिक इतिहास, उसके बाद बौद्धों और तत्पश्चात् मुसलमानोंका ही इतिहास भरा है । बीचकी कई शताब्दियोंका इतिहास अप्राप्य है । उपलब्ध इतिहासमें भी उत्तरभारतकी घटनाओंका ही विशेष वर्णन है, दक्षिण और उत्तरभारतकी शृंखला नहीं बांधी गयी है । वेदादि प्रामाणिक ग्रंथों और भूगर्भादिक शास्त्रोंकी सहायतासे इस शृंखलाकी ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है।

वेदोंमें जिन दस्यु और दासोंका उल्लेख है, वे आर्योंके ही एक पन्थके लोग थे । दस्यु और आर्य भिन्न नहीं थे । हो सकता है, उस पन्थके लोगोंसे आर्योंके साथ किसी कारणसे वैमनस्य बढ गया हो, जिससे वे उन्हें अनार्य कहने लगे हों; पर दोनोंके कला-कौशल, संस्कृति और साहित्यमें असाधारण साम्य देख पडता है। जिनको स्मृति-शास्त्रोंमें अनार्य कहा है, वे द्रविड यदि आर्योंसे भिन्न होते तो भगवान् शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि आर्य न कहे जाते। यह माना जाय कि आदि द्रविड अनार्य थे, तो नये द्रविड अपनेको द्रविड क्यों कहते? दक्षिण भारतमें जो अनेक कारुकार्य उत्तुंग मस्तक कर हजारों वर्षोंसे खडे हैं उन्हें देख कर कौन कह सकता है कि, वे अनार्योंके हैं? मद्रास प्रान्तके भूगर्भसे जो अनेक सभ्यताके अवशेष निकले हैं, वे मेसापोटेमिया, पलेस्टाइन, क्रीट [ग्रीस] आदि देशोंके अवशेषोंसे मिलते जुलते हैं। इस साम्यको देख पाश्चात्य संशोधक अनुमान करते हैं कि, क्रीट द्वीपके लोग विजय करते हुए प्रथम मेसापोटेमिया, पलेस्टाइन फिर आसिरिया, बाबिलोनिया और अनन्तर जलमार्गसे दक्षिण-भारतमें आये।

इस अनुमानका श्री शेष ऐयंगरने खण्डन कर बताया है कि, स्थिति इससे ठीक विपरित है। दक्षिण भारतसे ही मेसापोटेमिया, पलेस्टाइन, असीरिया-बाबिलोनिया आदि देशोंमें विजय करते हुए हिन्दू लोग ग्रीस देशमें गये थे। अङ्ग-रेज इतिहाससंशोधकोंने प्रथम यह अनुमान किया कि, आदि मानव सृष्टि प्रथम मध्य आशिया

में हुई, पर भूगर्भ-शास्त्र का उदय होनेपर यह अनुमान मिथ्या सिद्ध हुआ। फिर लोगोंने यह कल्पना की कि, उत्तरध्रुवके निकट आदि मानव हुए, पर भूगर्भ-शास्त्र और कपालविज्ञान शास्त्रने उस कल्पना का भी खण्डन कर यह सिद्ध किया कि, सरस्वतीके तटपर शिवालिक पर्वतके निकट ही प्रथम मानव सृष्टि हुई। दूसरे कतिपय विद्वानों के मतसे यह भी सिद्ध हुआ है कि, हिमप्रलय हो जानेपर दक्षिण भारतके किसी स्थानमें आदि मानव हुए और वहांसे उत्तरकी ओर वे बढे। श्री शेष ऐयर इसी मतके हैं। इसका एक और कारण वे यह भी बताते हैं कि, तामलभाषा उतनी ही प्राचीन है, जितनी संस्कृत। इस भाषाकी प्राचीनतम विपुल ग्रन्थसम्पत्ति भी उपलब्ध है, जिसमें उत्तरका ओरसे आर्योंके आनेका कहीं दिग्दर्शन तक नहीं है और इसका भूगोलिक वर्णन भी दक्षिण भारतसे पूर्णतया मिलता है।

पंजाबके मांटगोमरी जिलेके हरप्पा, सिंधके महँजोदरो और बलूचिस्थानमें पुरातत्त्ववेत्ताओंको पांच सहस्र वर्ष पूर्वके जो अवशेष मिले हैं, उनका मद्रास प्रान्तके अवशेषोंसे पूर्ण साम्य है। इससे भी निश्चय होता है कि, दक्षिण भारतसेही हिन्दू लोग सिन्ध, पंजाब, बलूचिस्थान आदि प्रान्तोंसे होते हुए विदेशोंमें गये थे। इसमें तो पाश्चात्य ग्रन्थकारों और संशोधकोंका भी मतभेद नहीं है कि, अरबी समुद्र, लालसमुद्र, पालिस्टाइन आदि भागोंमें हिन्दुओंके उपनिवेश थे। वहां उनके अस्पष्ट चिह्न भी देख पडते हैं। चाहे वे दक्षिण भारतसे वहां गये हों, या उत्तर भारतसे। यह भी अब सिद्ध हो चुका है कि, ईसा एशियाई [पालिस्टाइनका] था और बुद्धधर्मके सिद्धान्तोंको लेकरही उसने अपना सम्प्रदाय चलाया था। अब देखना यही है कि, वह हिन्दु था या नहीं? श्रीयुत रामस्वामीजीने निम्नलिखित रीतिसे उसे हिन्दु सिद्ध किया है।

श्री रामस्वामीके मतसे पेलिस्टाइन 'पल्लिस्थानम्' का अपभ्रंष्ट रूप है। वहां तामिल देशके हिन्दुओंका उपनिवेश था। इसी तरह कानडा भी, कर्णाटकों (कनीडियनों) का उपनिवेश था। पाश्चात्य संशोधकोंने पलिस्टाइनकी प्राचीन रहन-सहनका जो वर्णन किया है, वह वर्तमान दक्षिण भारतके तामिल लोगों के रहन-सहनसे भली भांति मिलता है। जैसे कुएंसे जलकुम्भ भरकर सिरपर रखकर ले आना, गोबर पाथना, जाता (चक्की) की रचना और उससे पीसनेकी रीति, खेतोंमें काम करते समय स्त्रियोंका झोलीमें बच्चोंको रखकर पेडकी डारमें लटकाना घरके बाहर घूरा रखना, किलेकी तरह घर बनाना, जलाशयोंमें मैले कपडे धोना, दाहने हाथसे पलथी मारकर भोजन करना भोजनसे पहिले भगवान्का नाम लेना, घी खाना, जिसका नमक खाया हो उसे पीडा न पहुंचाना, बच्चा होनेसे आनंद और बच्ची होनेसे दुःख होना, दृष्टिदोषपर विश्वास रखना इत्यादि। 'जान फिनिमोर' नामक ग्रन्थकारने अपने 'होली लैण्ड' नामक पुस्तकमें उक्त समता दिखाई है। आरिस्टाटल नामक ग्रन्थकारने स्वीकार किया है कि, हिब्रू जाति हिन्दुस्थानी है और अधिक सम्भव है कि, यह 'आभीरका' अपभ्रष्ट रूप हो। क्योंकि, पश्चिमी एशियाके शिलालेखोंमें हिब्रूके स्थानमें 'हाबिरू' लिखा मिलता है। यों पलिस्टाइनके हिब्रू, पश्चिमी एशियाके हाबिरू (अरब) और दक्षिण भारतके आभीरोंका सादृश्य देख पडता है।

प्रसिद्ध ईसाई इतिहासकार 'जोसेफ' का कथन है कि, पलिस्टाइनमें 'बानोस' नामक एक वल्कलधारी साधु रहता था। श्रीरामस्वामीके मतसे यह 'बन' नामक हिन्दु साधु था। उसीके नामसे वहांका 'बनआस' नामक स्रोत प्रसिद्ध हुआ। वह अब तक पवित्र माना जाता है और 'बनिआस' 'बाणतीर्थ' का अपभ्रष्ट रूप हो सकता है। नदियोंके जलको हाबिरू भी पवित्र मानते थे, यह तो जार्डिन नदीकी पवित्रतासे ही स्पष्ट है। ऐसी ही उनकी अन्य बातें भी विचार करने योग्य हैं। वचन स्वीकार करते समय दूसरेके हाथपर ताली देना, मन्दिरोंके प्राकार बनाना, कार्य पूर्ण होनेपर क्षौर करना, अस्पृश्योंका स्पर्श होनेपर स्नान करना,

निम्न जातियों या विदेशियोंके यहां भोजन न करना, मङ्गल कार्योंके लिये मडुवा बनाना इत्यादि पलिस्टाइनके फैरसी तो प्रोक्षण, तर्पण, उपनयन आदि भी करते थे । पाश्चात्य विद्वान् अबतक इसका रहस्य समझ नहीं सके हैं कि फैरिसियों और ब्राह्मणोंकी रीति-नीतिमें असाधारण साम्य क्यों है? श्रीरामस्वामीके मतसे फैरिसी पहिले ब्राह्मण ही थे । पलिस्टाइनका वेस्पेशियन, टैटिस आदिका अनार्योंने जब विध्वंस किया, फैरिसियोंके मन्दिर उध्वस्त किये और हेड्रियने जेरुसेलम (तामिल नाम तिरुसलेम) से उन्हें खदेड दिया, तब बहुतसे ब्राह्मणोंके आचारविचारोंसे उनको हाथ धोने पडे ।

इसके पश्चात् ईसाई धर्मके प्रभावके साथही साथ ब्राह्मणोंसे विरोध भी बढता गया । नये मत-पन्थके लोग आरम्भसे ब्रह्मद्वेष करते आये हैं और अब तक करते हैं । परंतु बहुतसी ब्राह्मणोंकी बातोंको अपना भी लेते हैं । इसका उदाहरण सेण्टपालके नामकरणका है । सेण्टपाल फैरिसि अर्थात् ब्राह्मण था । ईसाई बननेपर इसीने धर्मका जोरोंसे प्रचार किया । उसका जोरोंसे नूतन धर्मका प्रचार करना भी स्वाभाविक था । जो धर्मान्तर कर लेते हैं, वे जितने कट्टर होते हैं उतने मूल धर्मावलम्बी नहीं होते । भारतीय मुसलमान जितने कट्टर हैं, उतने तुर्क कहां हैं? पालका नाम पहले 'साल' था, पीछे वह 'पाल' बना था । रोमन लोगोंमें भी पाल हैं। पर जिन रोमनोंने 'साल' के गुरु ईसाका वध किया, वह वैरियोंका नाम धारण कर लेगा, यह सम्भवनीय नहीं प्रतीत होता । 'सन्तपाल' (सन्तों का पालक) इसका अपभ्रष्ट रूप 'सेण्टपाल' हो सकता है । फैरिसी और ब्राह्मणोंके साम्य और पालकी कृतिसे उसे श्रीरामस्वामीने ब्राह्मण ठहराया है ।

बाइलबिलमें कहा है कि, ईसा बढई था। दक्षिण भारतमें कहीं कहीं अब तक बढई जनेऊ पहिनते हैं। उन्हें 'असारी' कहते हैं । मथ्यू नामक ईसाके चरित्रकारने लिखा है कि, ईसाका दादा 'असर' नामसे पहिचाना जाता था। यह 'असर' असारी का नामसादृश्य भी ईसाको हिंदु प्रमाणित कर रहा है । रही जनेऊकी बात । सम्भव है कि, त्यागप्रधान सम्प्रदायका प्रवर्तक बननेपर उसने अपने यहांके संन्यासियोंकी तरह जनेऊ त्याग दिया हो। श्रीरामस्वामीने इस प्रश्नको कल्पनापर ही न छोडकर एक उत्तम प्रमाण भी दिया है । पेरुजिनोंके ईसाई सम्प्रदायको 'आम्ब्रियन' कहते हैं । धार्मिक सत्यको चित्रों द्वारा समझाना ही उस सम्प्रदायका उद्देश्य है। उस सम्प्रदायके एक अतिप्राचीन चित्रकारने ईसाका एक चित्र खींचा है, जो फ्लोरेन्स नगरके चित्रसंग्रहालयमें मौजूद है । उसमें ईसाके गलेमें जनेऊ दिखाया गया है । श्रीरामस्वामीकी इन बातोंको स्वीकार कर लेने कि, आदि मानव सृष्टि दक्षिण या उत्तर भारतमें हुई, यहींसे हिन्दलोग विजय करते हुए पलिस्टाइन-जेरुसेलममें जा बसे, फैरिसी और ब्राह्मण एक ही थे, विदेशियोंके आक्रमणोंसे अपने धर्मसे उन्हें हाथ धोना पडा और ईसा द्वारा प्रवर्तित एक नये पन्थमें उन्हें दीक्षित होना पडा, तो उनकी इस बातको स्वीकार कर लेना भी अनुचित न होगा कि ईसाका नाम 'यशोकृष्ण' या 'यशोदाकृष्ण' था, जिसका अपभ्रष्ट रूप 'जीजस क्राइस्ट' हो गया ।

हमारे शास्त्रोंमें जो यह लिखा है कि आरम्भमें जगत् ब्राह्ममय था, पर पीछे ब्राह्मणोंके अदर्शनसे बहुतसे त्रिवर्ण वृषल, म्लेच्छ चाण्डाल आदि हो गये; उसे श्रीरामस्वामीके संशोधनसे पुष्टि ही मिलती है । श्रीरामस्वामीके लेख प्रथम जब फ्रान्स और अमेरिकाके धार्मिक विद्वानोंने पढे, तब उनमें बडी खलबली मच गयी और नाना शंकाकुशंकाएं निकाल कर उन्होंने रामस्वामीपर प्रश्नोंकी वर्षा कर दी । पर अब ग्रंथरूपमें पेयर और पेयंगरके मत प्रकाशित होनेपर उन्हें निरुत्तर होना पडा है । इन मतोंको ईसाई संशोधक एकाएक मान नहीं लेंगे और अपने स्वभावके अनुसार अभी सदियों तक सिर पचावेंगे, इसमें संदेह नहीं, परंतु इस भारतीय विद्वान् जुगल जोडीने संसारके सामने ईसाके हिंदु होनेका एक नया प्रश्न उपस्थित किया है, इसमें भी संदेह नहीं है ।

गंगा-प्रेमियोंसे नम्र निवेदन ।

संवत् १९८६ के माघ मास में श्रीगंगाजी के पवित्र तट पर मेरे हृदय में श्रीनर्मदा जी और श्री गंगाजी के संबंध में पुस्तकें लिखने की प्रेरणा हुई। मैंने इस कार्य में हिन्दी प्रेमी सज्जनों से सहायता लेने का निश्चय किया। पत्र- सम्पादकों की कृपा से मेरी सूचना प्रायः सभी पत्रोंमें प्रकाशित हो गई और उसके द्वारा हिन्दी-प्रेमी सज्जनों से दोनों पवित्र नदियों के संबध में बहुत सामग्री प्राप्त हुई। ईश्वर की कृपा से श्रीनर्मदा जी के संबंध में पुस्तक लिखने की कार्य समाप्त हो गया है और वह इसी मास में प्रकाशित हो गई है।

इस पुस्तक में डबल क्राऊन अठपेजी साइज के २२७ पृष्ठ, करीब १५० चित्र और १४ नकशे हैं। पुस्तक का नाम नर्मदा-रहस्य है और वह मैनेजर धर्मग्रंथावली, दारागंज (प्रयाग) से ३) में प्राप्त हो सकती है।

अब मैं श्रीगंगाजी के संबंध में पुस्तक लिखने का कार्य आरंभ कर रहा हूँ। इसके लिये गंगोत्री से गंगासागरसंगम तक के ३५ नकशे तैयार किये जा चुके हैं।

श्रीगंगाजी के प्रेमियों से मेरा नम्र निवेदन है कि—

(१) यदि वे श्रीगंगाजी अथवा उसकी सहायक नदियोंके किनारे के किसी ग्राम या महत्त्वपूर्ण स्थानों से परिचित हों तो उसका संक्षिप्त वर्णन मेरे पास नीचे लिखे पते से भेजने की कृपा करें। इस वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों, घाटों, देवस्थानों, प्राचीन और नवीन मंदिरों तथा ऐतिहासिक बातों को स्थान देना आवश्यक है। साथ में यह भी बतलाना आवश्यक है कि वह स्थान किस जिले में है, किसी बडे नगर से कितनी दूर है, नदी के किस किनारे पर है और रेल द्वारा तथा सडक से उस स्थान को किस प्रकार पहुंच सकते हैं।

(२) यदि उनके पास श्रीगंगाजी के सम्बन्ध में कोई प्रकाशित या अप्रकाशित कविता या स्तोत्र हो तो उसे मेरे पास भेज दें।

(३) यदि उनके पास श्रीगंगाजी या उसकी सहायक नदियों के किनारे के किसी दर्शनीय स्थान (मन्दिर, घाट, प्राकृतिक दृश्य) का फोटो या चित्र हो तो उसे मेरे पास अवश्य भेज देने की कृपा करें। फोटो या चित्रों से किनारे के दृश्यों का महत्त्व प्रकट होना आवश्यक है।

(४) यदि उनके पास श्रीगंगाजी के किनारे रहनेवाले किसी महात्मा, साधु, संत, वीर या प्रसिद्ध पुरुष का फोटो हो तो वे उसे भी उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित मेरे पास भेजने की कृपा करें।

(५) इन पुस्तकों को उत्तम तथा और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिये योग्य सम्मति भी देने की कृपा करें।

जो सज्जन मुझे इस ग्रंथ के लिखने में उपर्युक्त किसी भी तरह से सहायता देने की कृपा करेंगे, उनका शुभ नाम पुस्तक में सधन्यवाद प्रकाशित कर दिया जायगा और प्रकाशित होनेपर पुस्तक भी उनको विना मूल्य भेज दी जायगी। जो सज्जन फोटो या चित्र भेजने की कृपा करेंगे उनको, यदि वे लेना स्वीकार करेंगे, तो उसका उचित खर्च भी भेज दिया जायगा। यदि वे चाहेंगे तो ब्लाक बन जानेपर फोटो या चित्र सधन्यवाद वापिस भी कर दिये जावेंगे।

दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०
अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयागविश्वविद्यालय,
धर्मग्रंथावलीकार्यालय दारागंज, प्रयाग

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥
यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत् तर्हि सः।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३ ॥

अर्थ-(ये एनां वनिं आयन्ति) जो ब्राह्मण इस गौको मांगने आते हैं (तेषां देवकृता वशा) उनके लिये ही यह गौ देवोंने बनाई है। (यः एनां निप्रियायते) जो इसको अपनी प्रिय है करके अपने ही पास रखता है, अर्थात् दान नहीं देता, (तत् ब्रह्मज्येयं अब्रुवन्) वह उसका कृत्य ब्राह्मणों-पर अत्याचार जैसाही है ॥ ११ ॥

(यः याचद्भ्यः आर्षेयेभ्यः) जो मांगनेवाले ऋषिपुत्रोंको (देवानां गां न दित्सति) देवोंकी गौ देता नहीं, (सः ब्राह्मणानां मन्यवे) वह ब्राह्मणोंके कोपके लिये (देवेषु आवृश्चते) देवोंमें आघात करता है॥१२॥

(यः अस्य वशाभोगः स्यात्) जो इसका गौका उपभोग लेना है, (सः तर्हि अन्यां इच्छेत) वह तो दूसरी गौसे प्राप्त करे। (अदत्ता पुरुषं हिंस्ते) दान न दी हुई गौ उस पुरुषकी हिंसा करती है, कि (याचितां च न दित्सति) जो याचना करनेपर भी नहीं देता ॥ १३ ॥

भावार्थ-- गौ जो उत्पन्न होती है वह ब्राह्मणोंके लिये हि देवोंने उत्पन्न की होती है। इसीलिये उसका दान ब्राह्मणोंको देना उचित है। उससे दाता की ही रक्षा होती है ॥ १० ॥

ब्राह्मण याचना करनेके लिये आनेपर उनको गौ प्रदान न करना, उनपर अत्याचार करनेके समान है। क्यों कि देवोंने ही उनके लिये वह बनाई होती है ॥ ११ ॥

अतः जो मांगनेपर भी ब्राह्मणोंको गौ नहीं देता वह मानो देवोंपर हि आघात करता है। उससे उसपर ब्राह्मणोंका कोप और देवोंका संताप होता है ॥ १२ ॥

यदि गौसे किसीको लाभ होता हो, तो वह दूसरी गौसे वह प्राप्त करे। क्योंकि जो गौको मांगनेपर भी नहीं देता, वह गौहि उसकी नाशक बनती है ॥ १३ ॥

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥
य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥

अर्थ-(यथा निहितः शेवधिः) जैसा सुरक्षित खजाना होता है, (तथा ब्राह्मणानां वशा) वैसीहि ब्राह्मणोंकी यह गौ है। (यस्मिन् कस्मिन् च जायते) जहां कहां उत्पन्न हुई हो (एतम् अच्छ आयन्ति) उसके पास वे ब्राह्मण पहुंचते ही हैं ॥ १४ ॥

(यत् ब्राम्हणाः वशां अभि) यदि ब्राह्मण गौके पास आते हैं तो (एतत् स्वं अच्छ आयन्ति) वे अपने धनके पासही आते हैं। (अस्याः निरोधनं) इस गौको प्रतिबंध करना मानो (यथा एनान् अन्यस्मिन् जिनीयात्) जैसा इनको दूसरे अर्थमें कष्ट देना है ॥ १५ ॥

(अविज्ञात-गदा सती आ त्रैहायणात् चरेत् एव) अज्ञातनामवाली गौ तीन वर्ष होनेतक माताके साथ घूमा करे। हे नारद! (वशां विद्यात्, तर्हि ब्राह्मणाः एष्याः) गौ देने योग्य होनेपर, तो उसके लिये ब्राह्मण ढूंढे जांय ॥ १६ ॥

(यः देवानां निहितं निधिं एनां अवशां आह) देवोंके निश्चित खजाना रूप इस गौको न देने योग्य कहे, (तस्मै भवाशर्वौ उभौ परिक्रम्य इषुं-अस्यतः) उसे भव और शर्व दोनों घेरकर बाण मारते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ-यह गौ ब्राह्मणोंकी ही है जैसा सुरक्षित खजाना होता है वैसीहि यह है। कहीं किसीके पास भी उत्पन्न हुई हो जिसकी वह होगी वे ब्राह्मण उसे मांगने आवेगे ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस गौको मांगते हैं वह उनकीही होती है। अतः उनको उस गौका दान न करना अपराध है ॥ १५ ॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥
दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥ (२०)

अर्थ--(यः अस्याः ऊधः अथो उत अस्याः स्तनान् न वेद) जो इसके दुग्धाशयको और इसके स्तनोंको नहीं जानता, (चेत् दातुं अशकत्) वह यदि दान देनेमें समर्थ हुआ तो (उभयेन अस्मै दुहे) वह गौ उसे उक्त दोनोंसे दूध देती है ॥ १८ ॥

(याचितां न दित्सति) मांगनेपर भी ब्राह्मणको जो नहीं दी जाती वह गौ (दुः--अदभ्ना एनं आशये) वश होनेमें कठिन होकर इसके साथ रहती है। (अस्मै कामाः न समृध्यन्ते) इसके मनोरथ सफल नहीं होते (यां अदत्वा चिकीर्षति) जिसे न दान करके कमाना चाहता है ॥ १९ ॥

(ब्राह्मणं मुखं कृत्वा) ब्राह्मणरूपी मुख करके (देवाः वशां अयाचन्) देव गौकी याचना करते हैं। (अददत् मानुषः) न देनेवाला मनुष्य (तेषां सर्वेषां हेडं नि एति) उन सबके क्रोधको प्राप्त करता है ॥ २० ॥

भावार्थ-- तीन वर्षतक गौको उसका स्वामी पाले,पश्चात् कोई मांगने न आवे तो सुयोग्य ब्राह्मणकी खोज करे और उसे देवे ॥ १६ ॥

गौ देवोंका खजाना है, जो उसे नहीं दान करता, उसका नाश भव और शर्व करते हैं ॥ १७ ॥

जो गौको दान करता है उसको दूध आदि पर्याप्त मिलता है ॥ १८ ॥

जो मांगनेपर भी गौका दान ब्राह्मणोंको नहीं करता, उसके घरमें गौ वशमें नहीं रहती। गौ न देनेवालेकी कामना तृप्त नहीं होती ॥ १९ ॥

देवोंका मुख ब्राह्मण है। ब्राह्मणके मुखसे हि देव मांगते हैं। अतः दान न देनेवाला मनुष्य देवोंके क्रोधको अपने ऊपर लेता है ॥ २० ॥

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥
यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥
य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सह देवता ॥ २३ ॥
देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

अर्थ- (मर्त्यः देवानां निहितं भागं निप्रियायते चेत्) मनुष्य देवोंका निश्चित भाग अपने पास यदि रखेगा और (ब्राह्मणेभ्यः वशां अददत्) ब्राह्मणोंको गौ न देगा तो (पशूनां हेडं नि एति) पशुओंके क्रोधको भी प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

(यत् गोपतिं शतं अन्ये वशां याचेयुः) यदि गौके स्वामीके पास दूसरे सौ जाकर गौको मांगे, (अथ एनां देवाः एवं अब्रुवन्) इस विषयमें देवोंने ऐसा कहा है कि (विदुषः वशा ह) विद्वान्की हि गौ है ॥ २२ ॥

(यः एवं विदुषे अदत्त्वा) जो इस तरह विद्वान्को गौको न देकर (अन्येभ्यः वशां ददत्) दूसरे अविद्वानोंको गौ देवे, (तस्मै अधिष्ठाने सह देवता पृथ्वी दुर्गा) उसके लिये उसके स्थानमें सब देवताओंके साथ पृथ्वी दुःखदायी होती है ॥ २३ ॥

(यस्मिन् अग्रे अजायत) जिसमें गौ पहिले हुई, (देवाः वशां अयाचन्) देवोंने उसीके पास गौकी याचना की। (नारदः विद्यात्) नारद समझे कि (तां एतां देवैः सह उदाजत) उस गौकी देवोंके साथ उन्नति होती है ॥ २४ ॥

भावार्थ- कोई मनुष्य इस देवोंके भागको ब्राह्मणोंको दान न देगा तो पशुओंके क्रोधको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

गौके स्वामीके पास सैंकडो याचक गौके लिये आजांय, परंतु देवोंकी आज्ञा है कि विद्वान् ब्राह्मणको ही गौ देनी चाहिये ॥ २२ ॥

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥
अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६ ॥
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७ ॥

अर्थ--(ब्राह्मणैः याचितां एनां नि प्रियायते) ब्राह्मणोंके द्वारा याचना होनेपर भी जो उसको प्रिय समझकर अपने पास रखता है वह (वशा पुरुषं अनपत्यं अल्पपशुं कृणोति) गौ उस मनुष्यको संतानहीन और अल्पपशुवाला करती है ॥ २५ ॥

(अग्नी--सोमाभ्यां मित्राय वरुणाय कामाय तेभ्यः) अग्नि सोम मित्र वरुण और काम इनके लिये ही (ब्राह्मणाः याचन्ति) ब्राह्मण गौकी याचना करते हैं, अतः (अददत् तेषु आवृश्चते) न देनेवाला उन देवोंपर आघात करता है ॥ २६ ॥

(यावत् अस्याः गोपतिः) जबतक इस गौका स्वामी (स्वयं ऋचः न उपश्रुणुयात्) स्वयं ऋचाएं नहीं सुनेगा, (तावत् अस्य गोषु चरेत्) तबतक इसकी गौओंमें गौ चरा करे, परंतु (श्रुत्वा अस्य गृहे न वसेत्) सुननेके पश्चात् वह गौ इसके घरमें न रहे ॥ २७ ॥

भावार्थ-- जो विद्वान् ब्राह्मणको गौ न देकर, दूसरेको देता है, उसको बडे कष्ट प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

जहां गौ उत्पन्न होती है,मानो वहांही देव उसकी याचना करते हैं। और देवोंको वह देनेसे सबकी उन्नति होती है ॥ २४ ॥

ब्राह्मणोंकी याचना होनेपर जो मनुष्य गौका दान नहीं करता,उसको संतान नहीं होती और उसके पास पशुभी कम होते हैं ॥ २५ ॥

ब्राह्मण जो गौकी याचना करते हैं,वे केवल अग्नि आदि देवताओंके लिये ही याचना करते हैं, अपने लिये नहीं, अतः उनको न देना देवताओंका अपमान करना है॥२६॥

जब तब गौका स्वामी यज्ञका मंत्रघोष नहीं सुनता, तबतक उसके पास गौ रहे। मंत्रघोष सुननेके पश्चात् उसके घरमें गौन रहे ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥
वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥
आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्याय कृणुते मनः ॥ ३० ॥ (२१)
मनसा संकल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१ ॥

अर्थ--(यः अस्याः गोपतिः ऋचः उपश्रुत्य) जो इस गौका स्वामी ऋचाएं सुनकर (अथ गोषु अचीचरत्) पश्चात् भी गौओंमें हि अपनी गौको चराया करता है, (देवाः हीडिताः तस्य आयुः च भूतिं च वृश्चन्ति) देव क्रोधित होकर उसकी आयु और संपत्तिको विनष्ट करते हैं ॥ २८ ॥

(वशा बहुधा चरन्ती देवानां निधिः निहितः) गौ बहुत स्थानोंमें भ्रमण करती हुई देवोंका सुरक्षित खजानाही है। (यदा स्थाम जिघांसति) जब वह रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (रूपाणि आविष्कृणुष्व) अनेक रूप प्रकट करती है ॥ २९ ॥

(यदा स्थाम जिघांसति) जब रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (आत्मानं आविः कृणोति) अपने आपको प्रकट करती है। (अथो ह ब्रह्मभ्यः याञ्च्याय मनः कृणुते) ब्राह्मणोंकी याचनाके लिये वह गौ अपना मन करती है ॥ ३० ॥

वह गौ (मनसा संकल्पयति) मनसे संकल्प करती है, (तत् देवान् अपि गच्छति) वह संकल्प देवोंके पास पहुंचता है, (ततः ह ब्राह्मणः वशां याचितुं उप प्रयन्ति) उसके पश्चात् ही ब्राह्मण गौकी याचना करनेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ--मंत्रघोष सुननेके पश्चात् यदि गौके स्वामीने गौ अपने घरमें रखी तो उसके ऊपर देवोंका क्रोध होता है ॥ २८ ॥

गौ यह देवोंका सुरक्षित खजाना है। जब वह अपने स्थानपर जाना चाहती है तब वह अनेक भाव प्रकट करती है ॥ २९ ॥

स्व॒धाका॒रेण॑ पि॒तृभ्यो॑ य॒ज्ञेन॑ दे॒वता॑भ्यः ।
दाने॑न राज॒न्यो॑ व॒शाया॑ मा॒तुर्हेडं॒ न ग॑च्छति ॥ ३२ ॥
व॒शा मा॒ता रा॑ज॒न्य॑स्य॒ तथा॒ संभू॑तमग्र॒शः ।
तस्या॑ आहु॒रन॑र्पणं॒ यद्ब्र॒ह्मभ्यः॑ प्रदी॒यते॑ ॥ ३३ ॥
यथाज्यं॒ प्रगृ॑हीतमालु॒म्पेत् स्रु॒चो अ॒ग्नये॑ ।
ए॒वा ह॑ ब्र॒ह्मभ्यो॑ व॒शाम॒ग्नय॒ आ वृ॑श्च॒तेऽद॑दत् ॥ ३४ ॥

अर्थ-- (पितृभ्यः स्वधाकारेणे) पितरोंके लिये स्वधाकारसे, (देवताभ्यः यज्ञेन) देवताओंके यज्ञसे, तथा (दानेन) दानसे (राजन्यः वशायाः मातुः हेडं न गच्छति) क्षत्रिय गौकी माताका क्रोध प्राप्त नहीं करता ॥ ३२ ॥

(वशा राजन्यस्य माता) गौ क्षत्रियकी माता है, (तथा अग्रशः सं भूतं) ऐसा पहिलेसे हि हुआ है। (यत् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते) जो गौ ब्राह्मणोंके लिये दी जाती है (तस्या अनर्पणं आहुः) उसका वह दानही नहीं है [क्यों कि वह गौ ब्राह्मण की हि होती है] ॥ ३३ ॥

(यथा अग्नये प्रगृहीतं आज्यं स्रुचः आलुंपेत्) जैसा अग्निके लिये लिया हुआ घी स्रुचासे गिरता है, (एवा वशां ब्रह्मभ्यः अददत्) ऐसे ही गौ ब्राह्मणोंको न देनेवाला (अग्नये अवृश्चत्) अग्निके लिये अपराधी होता है ॥ ३४ ॥

भावार्थ–जब वह गौ अपने स्थानके पास जाना चाहती है तब अपने भावको प्रकट करती है अर्थात् वह अपने लिये ब्राह्मणोंकी याचना हो ऐसा भाव मनमें लाती है ॥३०॥

गौ यह संकल्प मनमें लाती है, वह संकल्प देवोंके पास पहुचता है, देव ब्राह्मणोंको प्रेरणा करते हैं, और ब्राह्मग गौको मांगनेके लिय आते हैं ॥ ३१ ॥

स्वधाकारसे पितरोंकी तृप्ती, यज्ञसे देवोंकी संतुष्टता, और दानसे अन्योंकी तृप्ती होती है इसालिये गौका दान करनेसे उसकी माताका क्रोध क्षत्रियपर नहीं होता है ॥ ३२ ॥

गौ क्षत्रियकी माता कही जाती है, इसका ब्रह्मणोंको प्रदान करना दान नहीं है, क्यों कि वह ब्राह्मणोंकीहि होती है ॥ ३३ ॥

जैसा स्रुचासे घी अग्निमें गिरता है, वैसाही गौका दान न करनेवाला गिरता है ॥ ३४ ॥

पु॒रो॒डा॒शव॑त्सा सु॒दुघा॑ लो॒केस्मा॒ उप॑ तिष्ठति ।
सास्मै॒ सर्वा॒न् कामा॑न् व॒शा प्र॑द॒दुषे॑ दुहे ॥ ३५ ॥
सर्वा॒न् कामा॑न् यम॒राज्ये॑ व॒शा प्र॑द॒दुषे॑ दुहे ।
अथा॑हुर्नार॑कं लो॒कं नि॑रुन्धा॒नस्य॑ याचि॒ताम् ॥ ३६ ॥
प्र॒वी॒यमा॑ना चरति क्रु॒द्धा गोप॑तये व॒शा ।
वे॒हतं॑ मा मन्य॑मानो मृ॒त्योः पाशे॑षु बध्यताम् ॥ ३७ ॥
यो वे॒हतं॒ मन्य॑मानो॒मा च॒ पच॑ते व॒शाम् ।
अप्य॑स्य पु॒त्रान् पौत्रां॑श्च या॒चय॑ते॒ बृह॒स्पतिः॑ ॥ ३८ ॥

अर्थ--(पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोके अस्मै उपतिष्ठति) अन्नरूपी बचा जिसके पास है ऐसी उत्तम दूध देनेवाली गौ परलोकमें इस दाताके पास आकर खडी रहती है। (सा वशा अस्मै प्रददुषे सर्वान् कामान् दुहे) वह गौ इस दाताके लिये सब कामनाएं पूर्ण करती है ॥ ३५ ॥

(यमराज्ये वशा प्रददुषे सर्वान् कामान् दुहे) यमराज्यमें गौ दाताके लिये सब कामनाएं देती है, (अथ याचितां निरुन्धानस्य नारकं लोकं आहुः) और याचना करनेपर न देनेवालेको नरक लोक है, ऐसा कहते हैं ॥ ३६ ॥

(प्रवीयमाना वशा गोपतये क्रुद्धा चरति) सन्तान उत्पन्न करनेवाली गौ अपने स्वामीके लिये क्रुद्ध होकर विचरती है। वह क ती है कि (मा वेहतं मन्यमानः मृत्योः पाशेषु बध्यतां) मुझे गर्भपातिनी कहनेवाला मृत्युके पाशोंसे बांधा जावे ॥ ३७ ॥

(यः वशां वेहतं मन्यमानः) जो गौको गर्भ गिरानेवाली मानकर (अमा च वशां पचते) घरमें गौको पकाता है (अस्य पुत्रान् पौत्रान् अपि बृहस्पतिः याचयते) इसके पुत्रों और पोत्रोंको बृहस्पति भीख मंगवाता है ॥ ३८ ॥

भावार्थ- दान दी हुई गौ दाताकी परलोकमें हरएक प्रकारकी कामना सफल करती है ॥ ३५ ॥

गोदान करनेवालेकी समस्त कामनाएं यमराज्यमें सफल होती हैं, परंतु दान न देनेवालेको तो नरकही प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥

मुहदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥ ४० ॥ (२२)

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥

अर्थ-(गोषु गौ चरन्ती अपि) गौओंमें गौ चरती हुईभी (एषा महत् अवतपति) यह बडा ताप देती है। (अथो आददुषे गोपतये विषं दुहे) मानो दान न करनेवाले गौके स्वामीके लिये यह विष देती है ॥ ३९ ॥

(यत् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते) जो ब्राह्मणोंके लिये दी जाती है, वह (पशूनां प्रियं भवति) पशुओंको भी हितकारी होता है, (अथो वशायाः तत् प्रियं) और गौके लिये वह प्रिय है (यत् देवत्रा हविः स्यात्) जो देवोंके लिये हवि होवे ॥ ४० ॥

(याः वशाः देवाः) जिन गौओंको देवताओंने (यज्ञात् उदेत्य उदकल्पयन्) यज्ञसे आकर संकल्पित किया था (तासां भीमां विलिप्त्यं नारदः उदाकुरुत) उनकी भयानक अधिक घीवाली गौको नारदने अनुभव किया ॥ ४१ ॥

भावार्थ-गौका अपमान करनेवाको गौ क्रुद्ध होकर शाप देती है, कि वह मृत्युके पाशोंसे बांधा जावे ॥ ३७ ॥

जो गौको वंध्या मानकर अपने घरमें पकाता है, उसके पुत्र-पौत्रोंको ईश्वर भीख मंगवाता है ॥ ३८ ॥

जो गौका दान नहीं करता उसके लिये उसकी गौ विष दुहती है ॥ ३९ ॥

गौका दान करनेसे पशुओंका हित होता है, गौओंका हित होता है। क्यों कि गौसे हव्यपदार्थ देवताओंके लिये मिलते हैं ॥ ४०

यज्ञसे आकर सब देवताओंने मिलकर गौकी रचना की, उनमें जो अधिक घी देनेवाली है उसकी योग्यता विशेष है ॥ ४१ ॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३ मवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥
कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥ ४३ ॥
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-(तां देवाः अमीमांसत) उस विषयमें देवोंने विचार किया,(वशा इयं अवशा) यह गौ अपने वशमें रखने योग्य नहीं है। (नारदः तां अब्रवीत्) नारदने उसके विषयमें कहा कि (एषा वशानां वशतमा इति) यह गौवोंमें अधिक वश होनेवाली है ॥ ४२ ॥

हे नारद ! (याः त्वं मनुष्यजाः वेत्थ) जिनको तू मनुष्यमें उत्पन्न जानता है वे (काति नु वशा) गौवें कितनी भला हैं ! (त्वा विद्वांसं पृच्छामि) तुम विद्वान्से मैं पूछता हूं कि (कस्याः अब्राह्मणः न अश्नीयात्) किसका ब्राह्मणभिन्न अतिथि न खावे ? ॥ ४३ ॥

हे बृहस्पते ! (यः सूत्यां आशंसेत) जो ऐश्वर्य चाहता है, वह (विलिप्त्याः या च सूतवशा वशा) जो अधिक घी देनेवाली गौ है, जो सूतको ही वश होती है, और जो सबको वश है (अब्रह्मण तस्याः नाश्नीयात्) अब्राह्मनणे उसका अन्न न खाना चाहिये (यः भूत्यां आशंसेत) जो ऐश्वर्य चाहे ॥ ४४ ॥

भावार्थ-देवोंने निश्चय ठरहाया कि वह स्वामीके वशमें रहने योग्य नहीं है, क्यों कि वह उत्कृष्ट गौ है, अतः वह दानके योग्य है ॥ ४२ ॥

मनुष्योंके पास जो गौवें होती हैं उनमेंसे कौनसी गौका अन्न अब्राह्मण स्वामी न खावे ? ॥ ४३ ॥

निश्चय यह हुआ कि अधिक घी देनेवाली, सर्वदा वशमें रहनेवाली और नौकरको वश रहनेवाली, ये तीन गौवें दानके योग्य हैं, अतः इनका अन्न अब्राह्मण स्वामी न खावे ॥ ४४ ॥

नम॑स्ते अस्तु नारदानुष्ठु वि॒दुषे॑ व॒शा ।
क॒त॒मासां॑ भी॒मत॑मा यामद॑त्त्वा परा॒भवे॑त् ॥ ४५ ॥
वि॒लि॒प्ती या बृ॑हस्पते॒थो॑ सूतव॑शा व॒शा ।
तस्या॒ नाश्नी॑या॒दब्रा॑ह्मणो॒ य आ॒शंसे॑त॒ भूत्या॑म् ॥ ४६ ॥
त्रीणि॒ वै व॑शाजा॒तानि॑ विलि॒प्ती सू॒तव॑शा व॒शा ।
ताः प्र य॑च्छेद् ब्र॒ह्मभ्यः॒ सो॑ऽना॒व्र॒स्कः प्र॒जाप॑तौ ॥ ४७ ॥
ए॒तद् वो॑ ब्राह्मणा ह॒विरिति॑ मन्वीत या॒चितः ।
व॒शां चेदे॑नं॒ याचे॑यु॒र्या भी॒माद॑दुषो गृ॒हे ॥ ४८ ॥

अर्थ- हे नारद ! (ते नमः अस्तु) तेरे लिये नमस्कार है। (अनुष्टु विदुषे वशा) अनुकूलतासे विद्वान्को गौ प्रदान करनी चाहिये। (आसां कतमा भीमतमा) इनमें कौनसी भयानक है (यां अदत्त्वा पराभवेत्) जिसका दान न करनेसे पराभव होगा ? ॥ ४५ ॥

हे बृहस्पते ! (या विलिप्ती अथो सूतवशा वशा) जो अधिक घी देनेवाली और सूतको वश रहनेवाली और सबको वश रहनेवाली गौ है, (अब्राह्मणः तस्याः न अश्नीयात्) अब्राह्मण उसका अन्न न खावे, (यः भूत्यां आशंसेत) जो ऐश्वर्यसमृद्धिकी इच्छा करता है ॥ ४६ ॥

(त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा) गौकी तीन जातियां हैं- एक अधिक घी देनेवाली, दूसरी नौकरको वश होनेवाली और तीसरी सबको वश होनेवाली। (ताः यः ब्रह्मभ्यः प्रयच्छेत्) उनको जो ब्राह्मणोंको देगा, (सः प्रजापतौ अनाव्रस्कः) वह प्रजापतिके पास निरपराधी होता है ॥ ४७ ॥

हे ब्राह्मणो ! (एतत् वः हविः) यह आपका हवि है (इति याचितः मन्वीत) ऐसा याचना करनेपर गौका स्वामी कहे। (वशां चेत् एनं याचेयुः) गौकी जब इसके पास याचना की जाती है तब (या भीमा अददुषः गृहे) वह भयंकर होती है अदाताके घरमें रखना ॥ ४८ ॥

भावार्थ- जिस गौका दान न करनेसे अधिक हानिकी संभावना है, वह कौनसी गौ है ? ॥ ४५ ॥

गौओंमें तीन जातियां है, एक अधिक घी देनेवाली, दूसरी सबके वशमें रहनेवाली

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥
उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥
ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥

अर्थ- (नः न अदात् इति हीडिताः देवाः) हमें इसने दिया नहीं इस कारण क्रोधित हुए देव (वशां) गौसे (एताभिः भेदं पर्यवदन्) इन मंत्रोंसे भेदके विषयमें कहने लगे (तस्मात् वै सः पराभवत्) इस कारण उसका पराभव हुआ ॥ ४९ ॥

(उत एनां वशां इन्द्रेण याचितः भेदः) और इस गौको इन्द्रसे याचना करनेपर भी भेदने (न अददात्) नहीं दिया (तस्मात् आगसः देवाः तं अहमुत्तरे अवृश्चन्) उस पापके कारण देवोंने उसे युद्धमें काट डाला ॥ ५० ॥

(ये परिरापिणः वशायाः अदानाय वदन्ति) जो दुष्ट लोग गौका दान न करनेका भाषण बोलते हैं, वे (जाल्माः अचित्त्या इन्द्रस्य मन्यवे आवृश्चन्ते) दुष्ट मनुष्य मतिहीनताके कारण इन्द्रके क्रोधके लिये काटे जाते हैं ॥ ५१ ॥

और तीसरी नौकरसे वश होनेवाली ये तीन प्रकार की गौवें हैं जिनका अन्न गौका स्वामी न खावे। स्वामी ये गौएं ब्राह्मणको दान देवे, जिससे वह निर्दोष होता हैं ॥ ४६--४७ ॥

मांगनेपर गौका स्वामी कहे कि ' हे ब्राह्मणों ! यह आपका अन्न है। ' मांगनेपर भी जो न देवे उसके घरमें वह गौ भयंकर हानि करनेवाली होती है ॥ ४८ ॥

गौका दान न करनेसे देव क्रोधित होकर उसके घरमें भेद करते हैं और इस कारण उसका पराभव होता है ॥ ४९ ॥

गौ की याचना करनेपर भी जो नहीं देता उसके राज्यमें भेद उत्पन्न होकर युद्धमें उसका पराभव होता है ॥ ५० ॥

ये गोप॑तिं परा॒णीया॒थाहु॒र्मा द॑दा इति॑ ।
रु॒द्रस्या॒स्तां ते हे॒तिं परि॑ य॒न्त्यचि॑त्त्या ॥ ५२ ॥

यदि॑ हु॒तां यद्यहु॑ताम॒मा च॒ पच॑ते व॒शाम् ।
दे॒वान्त्सब्रा॑ह्मणानृ॒त्वा जि॒ह्मो लो॒कान्निर्ऋ॑च्छति ॥ ५३ ॥ (२३)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अर्थ- (ये गोपतिं परानीय) जो गौके स्वामीको दूर लेजाकर (अथ आहुः मा दाः इति) कहते हैं कि मत् दान कर (ते अचित्या रुद्रस्य अस्तां हेतिं परि यन्ति) वे न समझते हुए रुद्रके फेंके हुए हथियारको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

(यदि हुतां यदि अहुतां) यदि हवन की गई अथवा न की गई (वशां अमा च पचते) गौको अपने घरमें जो पकाता है, वह (सब्राह्मणान् देवान् ऋत्वा) ब्राह्मणोंके साथ देवोंका अपराधी बनकर (जिह्मः) कुटिल होकर (लोकात् निः ऋच्छति) इस लोकसे गिरता है ॥ ५३ ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥ ४ ॥

भावार्थ- जो गौका दान न करनेके विषयमें उपदेश करते हैं उनकाभी इन्द्रके क्रोधसे नाश होता है ॥ ५१ ॥

जो लोग गौके स्वामीको दूर ले जाकर गौ दान न करने का उपदेश करते हैं, उनका नाश रुद्रके शस्त्रसे होता है ॥ ५२ ॥

जो गौके अन्नको घरमें पकाते हैं उनपर देवों और ब्राह्मणोंका क्रोध होता है और वे गिरते हैं ॥ ५३ ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥ ४ ॥

ब्राह्मणकी गौ।

[५]

(ऋषिः-- अथर्वाचार्यः। देवता-ब्रह्मगविः)

(५।१)

श्रमे॑ण तप॑सा सृ॒ष्टा ब्रह्म॑णा वि॒त्तर्ते॒ श्रि॒ता ॥ १ ॥

स॒त्येनावृ॑ता श्रि॒या प्रावृ॑ता य॒शसा॒ परी॑वृता ॥ २ ॥

स्व॒धया॒ परि॑हिता श्र॒द्धया॒ पर्यू॑ढा दी॒क्षया॑ गुप्ता य॒ज्ञे प्रति॑ष्ठिता लो॒को नि॒धन॑म् ॥३॥

ब्रह्म॑ प॒द॒वा॒यं ब्रा॑ह्म॒णोऽधि॑पतिः ॥ ४ ॥

तामा॒ददा॑नस्य ब्रह्मग॒वीं जि॒नतो ब्रा॑ह्म॒णं क्ष॒त्रिय॑स्य ॥ ५ ॥

अप॑ क्रामति सू॒नृता॑ वी॒र्य१ पुण्या॑ ल॒क्ष्मीः ॥ ६ ॥ (२४)

अर्थ— (श्रमेण तपसा सृष्टा) श्रम और तपसे उत्पन्न हुई (ब्रह्मणा वित्ता) ज्ञानसे प्राप्त हुई और (ऋते श्रिता) सत्यके आश्रयपर रही है ॥१॥ (सत्येन आवृता) सत्यसे आच्छादित (श्रिया प्रवृता) श्रीसे भरी हुई और (यशसा परीवृत्ता) यशसे घिरी है ॥ २ ॥ (स्वधया परिहिता) अपनी धारणासे सुरक्षित हुई (श्रद्धया पर्यूढा) श्रद्धाभक्तिसे युक्त (दीक्षया गुप्ता) दीक्षाव्रतसे सुरक्षित हुई (यज्ञे प्रतिष्ठिता) यज्ञमें प्रतिष्ठित हुई और (लोके निधनं) इस लोकमें आश्रयको प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥ जो (ब्रह्म पदवायं) ज्ञानरूप पदसमूह है उसका (अधिपतिः ब्राह्मणः) स्वामी ब्राह्मण है ॥४॥ (तां ब्रह्मगविं आददानस्य) उस ब्रह्मणकी गौको लेनेवाले (ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य) ब्रह्मणका नाश करनेवाले क्षत्रियकी ॥ ५॥ (सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः अपक्रामति) सत्य वीर्यवती पुण्यमयी लक्ष्मी दूर होती है ॥ ६ ॥ [२४]

(५।२)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ ८ ॥

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥१०॥

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य॥११॥(२५)

(५।३)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥ १२ ॥

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥

(५।२)

अर्थ- ओज, तेज (सहः) सहनसामर्थ्य, बल, वाणी, इन्द्रियशक्ति, (श्रीः) शोभा, धर्म ॥ ७ ॥ (ब्रह्म) ज्ञान, (क्षत्रं) शौर्य, राष्ट्र, (विश) प्रजा, (त्विषिः) तेज, यश, (वर्चः) पराक्रम, (द्रविणं) धन, ॥८॥ आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र ॥ ९ ॥ (पयः) दूध, रस, अन्न, (अन्नाद्यं) खाद्य पदार्थ, ऋत, सत्य, (इष्टं च पूर्तं च) इष्ट वस्तु, पूर्णता, प्रजा, पशु ॥ १० ॥ (तानि सर्वाणि) ये सब ३४ पदार्थ (ब्रह्मगविं आददानस्य ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य अपक्रामन्ति) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले और ब्राह्मणका नाश करनेवाले क्षत्रियके दूर होते हैं ॥ ११ ॥ [२५]

(५।३)

(सा एषा ब्रह्मगवि भीमा) वह यह ब्राह्मणकी गौ भयानक है, यह (अघ-विषा, साक्षात् कृत्या) विषैली और साक्षात् घात करनेवाली (कूल्बजं आवृता) विनाशक पदार्थसे व्याप्त है ॥ १२ ॥ (अस्यां सर्वाणि घोराणि) इसमें सब भयंकरता है (सर्वे च मृत्यवः) इसमें सब मृत्यु हैं ॥ १३ ॥ (अस्यां सर्वाणि क्रूराणि) इसमें सब क्रुरता है (सर्वे पुरुषवधाः) सब पुरुषोंके वध हैं ॥ १४ ॥

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥ १५ ॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो ऽपेक्षमाणा ॥ १९ ॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥

अर्थ—(सा ब्रह्मगवी आदीयमाना) यह ब्राह्मणकी गौ पकडी जानेपर (ब्रह्मज्यं देवपीयुं मृत्योः पड्वीशे आद्यति) ब्रह्मघाती देवशत्रुको मृत्युके पाशमें डाल देती है ॥ १५ ॥ (सा शतवधा मेनिः) वह सौंका घात करनेवाली हथियार ही है, (सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिः हि) वह ब्रह्मघातकीका विनाश ही है ॥ १६ ॥ (तस्मात् वै विजानता ब्राह्मणानां गौः दुराधर्षा) इसलिये हि ज्ञानीको समझना चाहिये कि ब्राह्मणकी गौ धर्षण करनेके लिये कठिण है ॥ १७ ॥ (धावन्ती वज्रः, उद्वीता वैश्वानरः) वह जब दौडती है तब वज्र बनती है, जब उठती है तब वह आग जैसी होती है ॥ १८ ॥ (शफान् उत्खिदन्ती हेतिः) खुरोंसे मारती हुई यह हथियारके समान है और (अपेक्षमाणा महादेवः) देखती हुई महादेवके समान होती है ॥ १९ ॥ (ईक्षमाणा क्षुरपविः) छुरेके समान तीक्ष्ण होती है और (वाश्यमाना अभिस्फूर्जति) शब्द करनेपर गर्जना करनेके समान बनती है ॥ २० ॥ (हिंकृण्वती मृत्युः) हिंकार करनेपर मृत्यु होती है, और (पुच्छं पर्यस्यन्ती उग्रः देवः) पूच्छं ऊपर करनेवाली उग्र देवके समान भयंकर होती है ॥ २१ ॥ (कर्णौ वरीवर्जयन्ती सर्वज्यानिः) कान उपर करनेपर सबका नाश करनेवाली होती है और (मेहन्ती राजयक्ष्मः) मूत्र करनेपर क्षयरोग ही बनती है ॥ २२ ॥ (दुह्यमाना मेनिः) दुष्टके द्वारा दुही जाते समय शस्त्ररूप होती है (दुग्धा शीर्षक्तिः) दुही जानेपर सिरपीडा स्वरूप बनती है ॥ २३ ॥

स्वाध्यायमण्डल, आध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

(१) यजुर्वेद । विनाजिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥)
कागजी जिल्द २) "
कापडी जिल्द २॥) "
रेशमी जिल्द ३) "

(३) संस्कृतपाठमाला १ अंकका मू.।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ३) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥।=)

४ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू. १) ।)

(५) अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।
१ प्रथम काण्ड २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड २) ॥)
३ तृतीय काण्ड २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड २) ॥)
५ पंचम काण्ड २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड २) ॥)
७ सप्तम काण्ड २) ॥)
८ अष्टम काण्ड २) ॥)
९ नवम काण्ड २) ॥)
१० त्रयोदश काण्ड १) ।=)
११ चतुर्दश कांड १) ।)
१२ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(६) छूत और अछूत।
१-२ भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

(७) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से ८ प्रत्येकका मू० ॥) डा०व्य० =)

(८) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(९) वेदका स्वयंशिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(१०) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन। (सचित्र) २) ।≡)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
३ सूर्यभेदन-व्यायाम। " ॥) =)
४ योगसाधनकी तैयारी। ॥।) ।)

(११) यजु. अ. ३६ शांतिका उपाय ॥।=) ।)

(१२) शतपथबोधामृत ।) -)

(१३) देवतापरिचय ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१४) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक≡) -)

(१५) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ॥।) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) ॥)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता ॥।) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

१६ उपनिषदमाला। १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद्। १) ।-)

(१७) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) ॥)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
५ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
6 Sun Adoration १)

Regd. No. B. 1463

गीता।

संपादक– पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०
"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) "
दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
" " " " " " वी. पी. से ५॥) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रेलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है- आदिपर्व ६॥≡) रु.; सभापर्व २॥) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५॥=; रु भीष्मपर्व ५॥≡) रु.; द्रोणपर्व ६॥) रु.; कर्णपर्व ३॥) रु.; शल्यपर्व २॥-) रु.; सौप्तिकपर्व ॥|- स्त्रीपर्व ।॥-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६॥≡) रु.; आश्वमेधिकपर्व २॥-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ॥|-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्याय—मंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक तथा प्रकाशक- श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

ज्येष्ठ
संवत् १९९२
जून
सन १९३५
वर्ष १६
अंक ६
क्रमांक
१८६

18 Dule
20.6.35

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर;
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृतपाठमाला"

२४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये। २४ भागोंका मूल्य ६॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य १) और एक भागका मू० ॥)। वी०पी० द्वारा।) चार आने अधिक मूल्य होगा।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

वर्ष १६]

विषयसूची

[अंक ६

वैदिक प्राणविद्या (नया संस्करण) प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है। मूल्य ॥) और डा० व्य०=) है।
मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ब्रह्मचर्यका विघ्न

मूल्य =) दो आने। डा० व्य-) डा० व्य० सहित मू०≡) तीन आनेकी टिकट भेजकर पुस्तक मंगवाइये।
मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

नया संस्करण! नया संस्करण

योगसाधनकी तैयारी

योगसाधनसे हमारी शक्ति बढती है, इसलिये योगविषयक अत्यन्त आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है।
अच्छी जिल्द मू० ॥।) बारह आने। डा०व्य० ।) इस लिये १) एक रु० म० आ० से या टिकट द्वारा भेजकर शीघ्र ही यह पुस्तक मंगवाइये।
मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि०सातारा)

YOGA

An Intrnational Illustrate Practical Monthly on the Science of Yoga edited y Shri Yogendra
Specimen Copy As. 8.;
Annual Subscription Rs. 3
YOGA INSTITUTE
P. B. 481 BOMBAY

आविष्कार-विज्ञान

लेखक-उदय भानु शर्माजी। इस पुस्तकमें अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्, इंद्रियां और उनकी रचना, ध्यानसे उन्नति प्राप्त करनेकी रीति, मेधावर्धनका उपाय, इत्यादि आध्यात्मिक बातोंका उत्तम वर्णन है। जो लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके इच्छुक हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये। पुस्तक अत्यंत सुबोध और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे लिखी होनेके कारण इसके पढनेसे हरएकको लाभ हो सकता है। पूर्वार्धका मूल्य॥=) और डा.व्य. ≡) है द्वितीयार्धका मू०॥।)और डा०व्य०≡) है।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा.)

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य २॥) रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे पूर्ण होनेसे देखनेलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। जादह हकीकत के लिये लिखो।
मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोदा।

वैदिक संपत्ति।

स्वाध्यायमंडल,

औंध (जि० सातारा)

ता०

मंत्री ________________

श्रीमानजी, नमस्ते।

इस पत्रके साथ मैं आपके पास ' वैदिक संपत्ति " का विज्ञापन भेजता हूं। आप इसको एक वार पढिये। श्री आचार्य रामदेवजी आदि अनेकानेक विद्वान् आर्य भद्र पुरुष इसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठसे कर रहे हैं। इससे आपको इस पुस्तकका महत्त्व ज्ञात हो सकता है। यह पुस्तक ऐसी है कि प्रत्येक आर्यसमाजके साप्ताहिक अधिवेशनमें इसका पाठ हो। यदि आपकी आर्य-समाजमें आप इस पुस्तकका पाठ साप्ताहिक अधिवेशनमें करेंगे अथवा करवायेंगे, तो आपके सदस्योंमें आप वैदिक वायुमंडल सचमुच और निःसंदेह बना सकते हैं।

यह पुस्तक करीब आठ सौ पृष्ठोंकी है। प्रतिसप्ताह इसका पाठ करनेपर दो वर्षतक इसकी कथा हो सकती है। इसमें एकभी पृष्ठ ऐसा नहीं है जो पढा जाने योग्य न हो। हरएक पंक्ति पढने और ध्यानमें धारण करने योग्य है।

मैं आपको विश्वासके साथ कहता हूं कि आर्यसमाजके ग्रंथभंडारमें इस प्रकारकी पुस्तक यही एक है। आप एक वार पढेंगे तो आपकीभी यही संमति होगी, इसमें मुझे संदेह नहीं।

इस 'वैदिक संपत्ति' का मूल्य ६) रु० है और डा० व्य. १) है। यह पुस्तक डाकव्यय बहुत होनेके कारण वी. पी. से नहीं भेजी जायगी। अतः आप ७) म. आ. द्वारा भेज दीजिये। आपसे यह मूल्य आतेही हम यहांसे रजिस्ट्री द्वारा यह पुस्तक आपके पास भेज देंगे।

मैं इस बातका विश्वास आपको दिलाता हूं कि यदि आपकी समाज-में इसका निरंतर पाठ एक दो वर्ष होनेपर आपके सदस्योंने अथवा श्रोताओंने कहा कि यह पुस्तक पाठके लिये अयोग्य है, तो उसी समय मैं आपके ७।) आपके पास भेज दूंगा और यह पुस्तक वापस मंगाऊंगा। यह विश्वास इसलिये दिलाता हूं कि मेरा निश्चय यह है कि यह पुस्तक अपना प्रभाव श्रोताओं और पाठकोंके हृदयोंपर स्थिर किये विना नहीं रहेगी। इसके पाठसे पाठकों और श्रोताओंके हृदय उच्च वैदिक भावोंसे परिपूर्ण होंगे और इसके अतिरिक्त उनको अनंत लाभ होंगे।

अतः मुझे आशा है कि आप इस पुस्तकका मूल्य ७।) रु० भेजकर शीघ्र खरीद लेंगे और इसका पाठ उक्त प्रकार करेंगे और करवायेंगे। इसमें आपकी कोई हानि नहीं है। क्यों कि हानिकी जिम्मेवारी मैंने ली है।

कृपया उत्तरसे मुझे कृतार्थ कीजिये।

भवदीय

श्री० दा० सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

Post AUNDH (Dt. Satara)

अपूर्व पुस्तक ! आर्य सभ्यताका दर्शन ! आर्य आदर्श !

वैदिक संपत्ति।

लेखक श्री० स्व० पं० साहित्यभूषण रघुनन्दन शर्माजी।

इस अपूर्व पुस्तकके विषयमें विद्वान् लोगोंकी संमति देखिये--

श्री० स्वा० स्वतन्त्रानन्दजी महाराज, आचार्य उपदेशक-महाविद्यालय लाहौर, की संमति--

" यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। वेदकी अपौरुषेयता, वेदका स्वतःप्रमाण होना, वेदमें इतिहास नहीं है, वेदके शब्द यौगिक हैं इत्यादि विषयोंपर बडी उत्तमतासे विचार किया है। और मेरी संमतिमें इस विषयमें लेखकको सफलता भी प्राप्त हुई है। सृष्टि उत्पति, विकासवाद पर भी प्रकाश डाला है। ... ... मैं सामान्य रूपसे प्रत्येक भारतीयसे और विशेष रूपसे वैदिक धर्मियोंसे प्रार्थना करता हूं वह इस पुस्तकको अवश्य क्रय करें और पढें। इस पुस्तकका प्रत्येक पुस्तकालयमें होना अत्यंत आवश्यक है। यदि ऐसा न हो सके तो भी प्रत्येक समाजमें तो एक प्रति होनीहि चाहिये। "

श्री० आचार्य रामदेवजी, गवर्नर कन्यागुरुकुल देहरादून की संमति।

(' प्रकाश ' में प्रकाशित, २० मई १९३४)

" मैं प्रकाशकके इन विचारोंके साथ पूर्णतया सहमत हूँ कि इसके लेखकके वैज्ञानिक, भौतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य, पुरानेशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, नानालिपिविज्ञान, तथा भाषा आदि अनेक विषयोंका दिग्दर्शन इस पुस्तकने हमें कराया है। और भिन्न भिन्न विषयोंपर लिखे गये अनेक पाश्चात्य तथा पूर्वीय विद्वानोंके विविध ग्रंथोंकी विवेचना करके आर्यसिद्धान्तोंको युक्ति और प्रमाणोंसे पुष्ट किया है।

इसमें विकाससिद्धान्तकी समालोचना बडी उत्तम रीतिसे की गयी है। युरोप और अमेरिकाकी वर्तमान वैज्ञानिक किन्तु भोगवाद सभ्यताके गुणदोष विवेचनापूर्वक युक्तियोंद्वारा यह स्थापना की गयी है कि यद्यपि वर्तमान युरोपीयन सभ्यताने समस्त पृथ्वीकी प्राचीन सभ्यताओंको बदल दिया है और जहांतक हो सका है भौतिक उन्नति तथा बाह्य आडंबर द्वारा सारे विशाल संसारको ही युरोप बना डाला है, तथापि स्वयं युरोप अपनी इस उन्नतिसे संतुष्ट नहीं हैं। क्योंकि इस सभ्यतासे उत्पन्न विलास रोग स्पर्धा और युद्धोंसे भयभीत होकर त्राहि त्राहि पुकार रहा है। सुख और शान्तिकी खोजमें आदिम कालीन वैदिक अवस्थाकी ओर दृष्टि लगाने लगा है, इस बातको बडी स्पष्ट रीतिसे स्थापित किया गया है।

वेदोंकी प्राचीनता स्थापित करते हुए, अर्वाचीन उदाहरण देकर जो वेदोंमें अनित्य इतिहास सिद्ध करनेका अशक्य प्रयत्न किया करते हैं इसका खण्डन आपने बहुतसे युक्तियोंद्वारा उत्तम प्रकार किया है। ... इस प्रकार अनेकानेक प्रमाणोंसे वेदमें अनित्य इतिहासकी स्थापना खण्डित की गई है। इसके अतिरिक्त प्राचीन आर्योंके कलाकौशलके ज्ञानके संबंधमें नयी नयी खोज करके विद्वान् लेखकने अपनी खोज संबंधी योग्यताका बडा उत्तम परिचय दिया है। ... ...

इसके बाद यज्ञमें पशुहिंसाका निषेध बडी बडी अकाट्य युक्तियोंसे किया गया है। वेदमें आये हुए मांस यज्ञसंबंधी द्रव्यके शब्दोंका विवेचन बडी उत्तम रीतिसे प्रमाणोंद्वारा किया है। ... ... इसी तरह वेदोंमें भी ऐसे संदिग्ध द्व्यर्थक शब्दोंका समाधान और स्पष्टीकरण परमात्माने भी कर दिया है ... इसके अनेक उदाहरण इस पुस्तकमें दिये हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ... यह पुस्तक बडीहि उपयोगी और नयी खोज और उपयुक्त प्रमाणोंसे युक्त है। इसलिये हरएक आर्यपुरुष, आर्य उपदेशक, अध्यापक और व्याख्यानदाताके मनन करने और पास रखने योग्य यह पुस्तक है।

सभासमाजोंमें इसकी कथा करनी चाहिये ताकि जनता विद्वान् लेखकके परिश्रमसे पर्याप्त लाभ उठा सकें।"

श्री० पं० नरदेव शास्त्रीजी, वेदतीर्थ, की संमति।

मसूरी पर्वत, ३।९।३४

"वैदिक संपत्ति" पुस्तक हमारे हाथमें तब पडी जब कि हम मसूरीमें पर्वतयात्राके निमित्त आये थे। जब पुस्तक हमारे पास आई तब हमने इसको अनवरत आठ दिन तक पढा। हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह ग्रंथ 'यथा नाम तथा गुणाः' कोटी का है। कई प्रकरण तो इतने मनोरंजक हैं कि उनको बार बार पढनेपर भी तृप्ति नहीं होती। वस्तुतः ऐसेहि ग्रंथ वैदिक धर्म व आर्य संस्कृतिकी महत्ताको प्रसरित कर सकते हैं। ... ... यह ग्रंथ व्यापक दृष्टीसे पूर्ण गवेषणाके पश्चात् लिखा गया है, इसलिये संग्रहकी वस्तु है। प्रत्येक हिंदी पुस्तकालय व धर्ममंदिरमें रखनेकी वस्तु है। ... ...

नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

महाविद्यालय, ज्वालापुर यू. पी.

श्री० स्वामी व्रतानन्दजी महाराजकी संमति।

श्री गुरुकुल, चित्तौडगढ, राजपुताना, २८।८।३४

" वैदिक संपत्ति " नामकी पुस्तक अपने विषयकी अद्वितीय पुस्तक है। आर्यसमाजके साहित्यमें इसकी समानताकी अन्य पुस्तक आजतक नहीं लिखी गई। इस पुस्तकका क्रम ऐसा रोचक है कि पढनेमें रुचि उत्तरोत्तर वढतीहि जाती है। इस पुस्तकमें यह सफलतापूर्वक सिद्ध किया गया है कि सुखकी प्राप्तिके लिये वर्तमान सभ्यसंसारने जिन उपयोंका अवलंबन किया है वे घातक हैं। उनके स्थानपर संसार जब वैदिक सभ्यताका आश्रय लेगा तभी उसे सुख प्राप्त होगा।

इस पुस्तकका वेदोंकी उपेक्षा-- नामक तृतीयखंड वैदिक साहित्य नामसे प्रचलित उपनिषदों आदिका कितना अंश वैदिक है इस बातमें निर्णयकेलिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। महर्षि दयानंदजीने जिन सिद्धान्तोंको सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें सूत्ररूपसे प्रगट किया है उनकी व्याख्या जाननेके लिये यह पुस्तक पढना परम आवश्यक है। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तकको पढनेके पश्चात् कोईभी सत्यान्वेषक वेद और वैदिक सभ्यताका प्रेमी बने विना नहीं रह सकता। यह पुस्तक संसारके लिये इतनी उपयोगी है कि इसका अनुवाद संसारकी सब भाषाओंमें यथाशक्ति शीघ्रहि हो जाना चाहिये।

व्रतानंद संन्यासी

आचार्य, श्रीगुरुकुल चित्तौडगढ

श्री० पं० देवराजजी विद्यावाचस्पतिजीकी संमति।

बहुत दिन हुए आपकी भेजी हुई " वैदिक सम्पत्ति " नामकी पुस्तक मुझे संमत्यर्थ प्राप्त हुई थी। मैंने प्रायः सारी पुस्तकको पढ डाला। पुस्तकमें वैदिक सिद्धान्तोंका इतना अच्छा निरूपण किया है कि जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोडी है। ...... इस पुस्तकमें वैदिक सिद्धान्तोंके पुष्टिके प्रकारको देखकर हम परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि इस पुस्तक का हिंदुओंके घर घरमें प्रचार हो "

देवराज विद्यावाचस्पति

२६।९।३४

C/o पं. मधुसूदनजी विद्यावाचस्पति, जयपूर,

श्री० पं० भगवद्दत्तजी, M. A. की संमति ।

वैदिक -- रिसर्च इन्स्टीटयूट मोडेल टाऊन

५।९।३४

" वैदिक संपत्ति " पुस्तक प्राप्त हुआ। तदर्थ अनेक धन्यवाद। मैंने पहिले भी किसीसे मंगा कर इसका यत्र तत्र पाठ किया था। अब प्रायः साराही ग्रंथ देख गया हूं। ग्रंथ अत्यंत उपादेय और भूरि परिश्रमका फल है। अनेक विषयोंपर ग्रंथकारका लेख मार्मिक है। ग्रंथकार मेरे मित्र थे। उनकी स्मृति मेरे हृदयमें अन्ततक रहेगी। .... भाषा विज्ञानपर उनका लेख बहुत विचारपूर्ण है। ... पुस्तक मार्मिक है। मैं इसकी जितनी प्रशंसा करूं थोडी है। मैंने स्वयं इससे कई बातोंका लाभ उठाया है। ......

आपका

भगवद्दत्त

" वैदिक विज्ञान " मासिककी संमति ।

(अप्रैल स० १९३४)

पं० रघुनंदनशर्मा हिंदी साहित्यके क्षेत्रमें अपरिचित व्यक्ति नहीं है। आपने अक्षरविज्ञान पुस्तक लिखकर नागरी अक्षरोंकी प्रकृतिसिद्ध रचनाको बहुत उत्तम प्रतिभासे दर्शाया था। आपकी उसी प्रतिभाका दुसरा चमत्कार " वैदिक सम्पत्ति " है।

आपने इस पुस्तकमें प्रायः वेदके संबंधमें उठनेवाली सभी समस्याओंपर अच्छा प्रकाश डाला है। वेदके काल-निर्णय, वेदकी रचनाका काल, वेदमें इतिहासकी सत्ता, वैदिक संस्कृति, तथा वेदपर योरोपीयनोंके आक्षेप और वेदमें उच्च सभ्यताके दिग्दर्शन आदि नाना विषयोंपर आपने बडीहि सुन्दर ललित और रुचिकर भाषा में विवेचन किया है। आपकी लेखन शैली विस्तृत और स्वतंत्र है। इसके बीचमेंसे गुजरनेवाला पाठक लेखकके मंतव्योंसे प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता। वेदकी बहुतही समस्याएं स्पष्ट हो जाती हैं। ... स्वाध्यायप्रेमीके लिये तो यह एक उत्तम और विशद मानसिक भोजन है।

" आर्यप्रकाश " की संमति ।

(आर्यप्रकाश ९।९।१९३४)

साहित्य भूषण पं० रघुनंदन शर्मानां अनमोला परिश्रमना परिणाम स्वरूप " वैदिक संपत्ति " ये विद्वानोने माटे अमूल्य गवरो ग्रंथ छे. ... विद्वान् पाठक वर्गना हृदयागारमां एमनूं स्थान अने श्रम हमेशा-ने माटे स्थायी ज रहेशे.

आर्य प्रजाए आ ग्रंथनी एक एक नकल पोताना घरमां अवश्य राखवी ज जोइये. कपडां अथवा पान सोपारीनो खर्च कमी करी पण वैदिक संस्कृति प्रत्ये प्रेम दर्शावनारी व्यक्तिये आ पुस्तकने पोताना घरमां वसाविने पोताने प्रेममूर्त बनाववो जोइये.

भाषाशास्त्रनो अभ्यासक होय, वेदनो अभ्यासी होवा पुरातत्त्वनो अभ्यासु होय, विश्वास-वादनो अभ्यासी होय, प्राणिशास्त्रनो अभ्यासक होय, के इतिहास शास्त्रनो शोधक होय अर्थात् विश्वना हर कोई विषयनु ज्ञान प्राप्त करवानी इच्छावाळाने माटे आ ग्रंथ बहुत उपकारक थई शकशे.

' वैदिक धर्म ' मासिककी संमति ।

यदि इस समयतके संपूर्ण ग्रंथभण्डारमें किस एक ग्रंथमें संपूर्ण वैदिक सभ्यताका आदर्श बताया गया है, ऐसा कोई प्रश्न करे, तो हम उस प्रश्नका निःसंकोच उत्तर ऐसा दे सकते हैं कि श्री पं० रघुनन्दन शर्मा-रचित और श्री शेठ शूरजी वल्लभदास द्वारा प्रकाशित " वैदिक संपत्ति " नामक पुस्तकमें संपूर्ण वैदिक सभ्यताका आदर्श बताया है । पाठक इस एकही पुस्तकका उत्तम पाठ करेंगे तो उनको वैदिक सभ्यताका आदर्श स्पष्ट रीतिसे मिल जायगा और उनको इस सभ्यताकी उच्चताके विषयमें किसी प्रकार संदेह नहीं रहेगा ।

इस पुस्तकसे आपके पासका वैदिकी संपत्तिका खजाना अनंत गुणा बढ जायगा और आप अपने आप-को वैदिक संपत्तिसे युक्त पायेंगे । यह इस पुस्तकका महत्त्व है ।

वैसे तो वैदिक विषयपर अनेक पुस्तक लिखे गये हैं, परंतु इस पुस्तकमें पृष्ठपृष्ठपर और पंक्ति-पंक्तिमें जैसी वैदिक संपत्ति भरभर कर रख दी है, वैसी पुस्तक हमने इस समयतक नहीं देखी ।

आपके सामने नास्तिकवादी, भौतिकवादी, विकासवादी तथा अन्यान्य आधुनिक विवाद स्वीकार करने-वाले अनेक लोग आते हैं, वे आपसे अपने अपने अवैदिक वादोंका पुरस्कार करते हुए वार्तालाप करना चाहते हैं, कई प्रसंगोंमें आपको चुप रहना पडता होगा । यदि आप एक दो वार इस " वैदिक संपत्ति " को पढेंगे, तो आप उन सब शंकाओंका मुंहतोड उत्तर दे सकते हैं ।

इस ग्रंथमें वेद उपनिषद् स्मृति दर्शन इतिहास पुराण आदि सब ग्रंथोंमें वर्णित सत्य-धर्म-सिद्धान्तोंका ऐसा सरल और सुबोध प्रतिपादन किया है कि उसको पढनेसे आर्य संस्कृतिकी उच्चताका पता ठीक ठीक प्रकार लग सकता है ।

इस अमूल्य ग्रंथमें प्रथमके दो विभागोंमें वेदोंकी प्राचीनता, अपौरुषेयता और श्रेष्ठताकी सिद्धि अनेक प्रमाणोंसे की है । वेदका प्रत्येक वर्ण अपना अपना स्वाभाविक अर्थ रखता है, यह ग्रंथकारका सिद्धान्त है और ' अक्षरविज्ञान ' नामक पुस्तकमें इसकी सिद्धता की गई है । यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और उसका संक्षेपसे विवरण करना भी यहां असंभव है, परंतु यह बात इस ग्रंथके प्रथम दो भाग पढनेसे समझमें आ जायगी, और अपनी आर्य सभ्यताकी विशेषता भी ध्यानमें आ जायगी ।

यद्यपि द्वितीय खण्डमें ' वेदोंकी अपौरुषेयता ' बतानेका मुख्य उद्देश्य है, तथापि ईश्वर, चैतन्य, तुलनात्मक शरीररचनाशास्त्र, जन्तुशास्त्र, मानव जातिके मूल पुरुष, आदिसृष्टिका स्थान, आदिभाषा, वैदिक भाषा, आदिभाषाका संस्कृत, जन्द, फारसी, अंग्रेजी, मिश्र, अरबी, जपानी, द्राविड आदि भाषा-

ओंसे संबंध, वैदिक भाषाकी अपरिवर्तनशीलता, अक्षरार्थ और लिपि इत्यादि प्रकरण बडे हि उद्बोधक हैं। यज्ञोंमें आयुर्वेद, ज्योतिष, भूगोल, वास्तु, पदार्थविज्ञान, पशुपालन, सार्वभौमराज्यशासन आदि संपूर्ण शास्त्रोंका संबंध कैसा है, यह सुयोग्य प्रमाणोंसहित इस द्वितीय खंडमें पाठक देख सकते हैं।

इस अपूर्व ग्रंथका तृतीय विभाग बहुतहि मनन करके पढने योग्य है। इसमें 'वेदोंकी उपेक्षा' होनेसे मानव जातिका अधःपात होनेका स्वरूप स्पष्ट किया है। आर्योंके विदेशगमनका व्यापक स्वरूप बतलाकर एशिया, यूरप, अमरिका और आस्ट्रेलियामें दिग्विजयी आर्योंके प्रवेश कैसे हो गये, इसका मनोरम वर्णन यहां पाठक देख सकते हैं। पश्चात् विदेशियोंका भारतमें आगमन कैसा हुआ, इसका दुःखदायी वर्णन है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह सब पाठक देखेंगे तो उनको बडा बोध प्राप्त हो सकता है। इसमें आर्य शास्त्रोंके साथ जो ईसाई और मुसलमान आदिकोंके शास्त्रोंकी तुलना की है, वह विशेष पढने योग्य है।

चतुर्थ खण्डमें 'वेदोंकी शिक्षा' कही है। इसलिये यह वैदिक संपत्तिका उज्ज्वल रत्न कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वेद ब्राह्मण आदिमें जो गृहस्थाश्रम, सदाचार, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी व्यवस्था कही है, वेदके अनुसार जो सब प्रकारकी धर्ममर्यादा है, उन सबका यथायोग्य वर्णन इस विभागमें है। इस विभागका हरएक पृष्ठ पढने योग्य है और मननपूर्वक स्वाध्याय करने योग्य है।

आगे ६० पृष्ठोंका उपसंहार है, जिसमें अच्छीं बातोंका पुनः संक्षेपसे कथन किया है और बहुतसी नवीन बातें भी हैं। इस ग्रंथका संक्षेपसे स्वरूप कथन करना अशक्य है, क्योंकि इस ग्रंथमें पहिलेहि सब बातें संक्षेपसेहि कहीं हैं। इतनी बातोंका और इतने उपदेशोंका संग्रह इस ग्रंथमें है कि इनका संक्षेप कैसा किया जा सकता है? पाठक कोई पृष्ठ खोलकर देखेंगे तो उनको वही नवीन बात ऐसे जोरदार और स्पष्ट शब्दोंमें कही मिलेगी कि जिसके ज्ञानसे उनके मनमें आर्य धर्मकी श्रेष्ठताकी स्थापना निःसन्देह हो जायगी।

ऐसे अपूर्व ग्रंथका हम स्वागत करते हैं और प्रत्येक वैदिक धर्मीसे हम सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वह इस ग्रंथको अपने घरमें रखे और इस ग्रंथका पाठ प्रत्येक भारतवासीके घरमें होता रहे।

'सार्वदेशिक' देहली की संमति।

यह ग्रन्थरत्न श्रीमद्दयानन्द अर्धशताब्दी अजमेर के अवसर पर प्रकाशित कराया गया था। इस में ४ खण्ड हैं जिन में सुयोग्य लेखक महोदय ने क्रमशः वेदोंकी उपेक्षा, वेदों की शिक्षा इन विषयोंका, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, भूगर्भ शास्त्र, विज्ञान शास्त्र, इत्यादि की सहायता से बडा उत्तम विवेचन किया है 'वेदों में इतिहास है इस प्रश्न का बडी योग्यता से विद्वान लेखक महोदय ने खण्डन किया है। ज्योतिष द्वारा पाश्चात्य तथा लोकमान्य तिलकादि जिन भारतीय विद्वानों ने वेदों के समय निर्धारण का यत्न किया है उनके विचारों की बडी विद्वत्ता से समालोचना करते हुये सुयोग्य लेखकने दिखाया है कि उनका मत ठीक नहीं है तथा वेद नित्य और अपौरुषेय हैं। विकासवाद की भी विस्तृत आलोचना करते हुये विद्वान लेखक ने उस को अमान्य सिद्ध किया है। वैदिक भाषा सब भाषाओं की जननी वा मूल है, इस बात को सिद्ध करने के लिये सुयोग्य लेखक महोदय ने जन्द, फारसी, अंग्रेजी, मिश्र भाषा अरबी, चीनी,

अफ्रीका की स्वाहिला भाषा, अमेरीकन भाषा आदि के अनेक समता सूचक शब्दों के उदाहरण दिए हैं। कोई भी निष्पक्ष पाठक लेखक की विद्वत्ता, गम्भीरता और परिश्रम पर मुग्ध हुये बिना नहीं रह सकता। वैदिक सिद्धान्तों पर इस ग्रन्थ रत्न में बहुत ही उत्तम प्रकाश डाला गया है जिससे स्वाध्यायशील सज्जनों के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही अधिक उपयोगी होगा इस में संदेह नहीं हो सकता। वैदिकधर्म और सभ्यता सम्बन्धी अनेक आवश्यक विषयों का यदि इसे विश्वकोष कहा जाए तो भी मेरे विचार में कोई अत्युक्ति न होगी। चतुर्थ खण्ड के वैदिक शिक्षा सम्बन्धी प्रकरण में जीवनोपयोगी विषयों पर वेद मन्त्रों का भी अर्थ सहित अच्छा संग्रह किया गया है। ऐसे उत्तम ग्रन्थ को प्रकाशित करके श्री सेठ शूरजी वल्लभदास जी ने आर्य जनता-विशेषतः स्वाध्यायशील विद्वन्मण्डली—का बड़ा भारी उपकार किया है। प्रत्येक विषय का बड़ी योग्यता से इस ग्रंथ में सप्रमाण विचार किया गया है। प्रमाणों और युक्तियों से विषयों को खूब पुष्ट किया गया है। कागज छपाई आकार प्रकारादि सब उत्तम हैं। इस पुस्तक की एकेक प्रति प्रत्येक उत्तम पुस्तकालय में अवश्य रहनी चाहिये जिस से स्वाध्यायशील निर्धन सज्जन भी लाभ उठा सकें।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति बङ्गलौर.

अर्जुन (ता. ४ अक्तूबर १९३४) की संमति।

लेखकने इस पुस्तक में यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि यूरोप में भौतिकवाद वहां की जनता को सुखी और संतुष्ट नहीं रख सका, इसीलिये आज हमें कई स्थानों पर-प्रकृति की ओर दौडो-की आवाज सुनाई दे रही है। वर्तमान सभ्यता यूरोप के लिए भी इतनी असह्य हो गई है कि वही उसे लेकर डूब सकती है। संसार की समस्यायें अधिकाधिक उलझती जाती हैं। इसका उपाय केवल आर्यों के त्यागवाद की सभ्यता में है।

वैदिक संस्कृति का विस्तृत परिचय देने से पूर्व लेखक ने प्रथम दो खण्डो में यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि वेद अत्यन्त प्राचीन और आदि सृष्टि में बने हुए हैं। लेखक की प्रतिपादनशैली उत्तम और विद्वतापूर्ण है। आजकल के प्रचलित मतों का योग्यता-पूर्वक निराकरण किया गया है।

इसी प्रसंग में डारविन के विकास वाद पर ७५ पृष्ठोंमें विचार किया है और अनेक युक्तियों से उसे भ्रांत ठहराने का यत्न किया हैं। बहुत सम्भव है कि विकास वाद के प्रेमी इससे मतभेद रखें परन्तु हम उनको यह सलाह अवश्य देंगे कि लेखक के लेखसे उसके दूसरे पदलू पर भी अच्छा प्रकाश पडता है, जिसे पढने से लाभ ही होगा। आगे आदि सृष्टिमें भाषाओं के विकास आदि अनेक गम्भीर विषयों पर लेखक ने ऐसा सुन्दर प्रकाश डाला है कि लेखक की प्रकाण्ड विद्वत्ताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

तीसरा खण्ड ऐतिहासिक है, जिसमें बाहर से आनेवाले विदेशियों के संसर्ग से आर्य संस्कृति में जो हेरफेर हुए उनका जिक्र है। प्राचीन शास्त्रों में कहां-कहां परिवर्तन किये गये, इस सम्बन्ध में विद्वान लेखन ने कम प्रकाश नही डाला।

चतुर्थ खण्ड में वेद और उसकी शाखाओं पर विचार करने के अनन्तर वैदिक संस्कृति का आदर्श बताने की चेष्टा की गई है। वर्णाश्रम व्यवस्था, त्यागवाद का आदर्श और मोक्ष का परम उद्देश्य आदि पर जो विचार किया गया है, वह केवल धर्मशास्त्रीय चर्चा करनेवाले के लिये ही नहीं, परन्तु इतिहास के विद्यार्थी के लिये भी उपयोगी है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में लेखक की शैली इतनी विद्वतापूर्ण है कि लेखक के बहुगुप्त, बहुज्ञ और मननशील होने में कोई सन्देह नही रहता। लेखक आर्य सामाजिक विद्वान् हैं, परन्तु उसमें उनका सा हट नहीं है। वे कहते हैं कि वेदों से तार, रेलगाडी निकालना व्यर्थ है, शब्दों की खेंचातानी है। वैदिक सभ्यता त्याग की सभ्यता थी, उनमें वर्तमान भौतिक उन्नति को बहुत महत्व कभी नहीं दिया गया।

हम अन्तमें प्रत्येक आर्यसामाजिक विद्वान्, शास्त्रीय चर्चा के प्रेमी और प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थी से इस अमूल्य ग्रन्थ को पढने का अवश्य अनुरोध करेंगे।

कृष्णचन्द्र।

इत्यादि अनेकानेक महानुभावोंने इस पुस्कको मुक्तकण्ठसे प्रशंसित किया है, इसलिये आप इसे लेकर एकवार पढिये.

पृष्ठसंख्या ८२० है और मूल्य केवल ६) छः रु० है और डाकव्यय १।) है। शीघ्र लीजिये।

म. आ. से ७।) वी. पी. से ७॥=) विदेशके लिये ८)

प्राप्तिस्थान-

१ सेठ शूरजी वल्लभदास, कच्छ केसल, सँडहर्स्ट ब्रिज समीप, बंबई.

२ शूरजी वल्लभदास स्वदेशी बजार लि० झवेरी बाजार, बंबई २.

३ स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

४ हरएक पुस्तक विक्रेताके पास मिलेगा।

वर्ष १६
अंक ६
क्रमांक
१८६
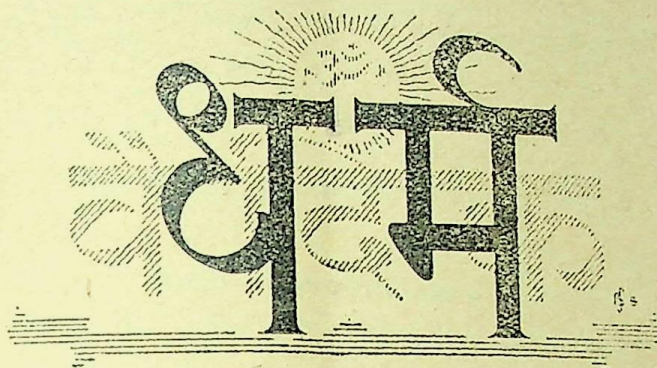
ज्येष्ठ
संवत् १९९२
जून
सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

पापसे बचाव।

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥
(ऋग्वेद १०।६३।८)

" (विश्वस्य स्थातुः जगतः च मन्तवः) संपूर्ण स्थावर जंगम के हितका विचार करनेवाले (ये प्रचेतसः देवासः) जो ज्ञानी देव हैं और जो (भुवनस्य ईशिरे) त्रिभुवन के स्वामी बने हैं (ते अद्य) वे आज (कृतात् अकृतात् एनसः) किये और न किये पापसे (नः परि पिपृत) हमारी पूर्णरूपसे रक्षा करें और (स्वस्तये) हमारा परिपूर्ण कल्याण करें। "

संपूर्ण विश्वमें स्थावर और जंगम ऐसे दो भेद हैं। इन सबका यथायोग्य हित करने की इच्छा करनेवाले और वैसा प्रयत्न करनेवाले भुवन के ईश अनेक देव हैं, यहां जनतामें भी अनेक ज्ञानी हैं जो प्राणियोंका हित करने के यत्नमें होते हैं। ये सब हमें पापसे बचनेका मार्ग बतावें। वे हमें सहायता दें और उससे हम अपने आपको पापसे बचाये रखें और इस तरह हमारा कल्याण हो।

भगवत्प्राप्तिके मधुर उपाय।

(ले०- श्री०रुलिया रामजी कश्यप, एम्. एस्‌सी.)

इष्ट पदार्थकी ओर जो मन बडी उत्सुकतासे जाता है और सर्वथा मनुष्यके वशमें नहीं रहता उसको ऐसा करने की प्रेरणा कौन करता है? अर्थात् कौन मनको इष्ट वस्तुकी ओर भेजता है? किसका भेजा मन इष्टके प्रति गिरता है? किस देव की आज्ञामें मन कार्य करता है?यही प्रश्न मुख्य प्राण, वाग्, चक्षु, श्रोत्रके विषयमें भी उपस्थित होता है कि कौन दिव्य शक्ति इन सबको अपने अपने कार्यमें लगाती है? किसका नियुक्त किया श्वास प्रश्वास निरन्तर चला ही जा रहा है? मनचाही वाणी वचन विलास किस शक्तिके आश्रय मनुष्य करता है?यह प्रश्न है कि इन सब वाग्,प्राण,चक्षुः, श्रोत्र मनको कौन देव स्वकार्य नियुक्त करता है?

दूसरे शब्दोंमें जो देव कानका कान, मनका, मन, वाणीकी वाणी, प्राणका प्राण और आंखकी आंख है, उस सर्वशरीरस्थ ध्यान तथा रेतस्, जीवनसाररूपी, विद्युत् तथा जीवित द्रव्यके वशमें ही सम्पूर्ण आयुभर यह जीवात्मा रहता है और इसीके आश्रय अनुकूल वस्तुओंमें राग, प्रतिकूलसे द्वेष करता हुआ काम-क्रोध-रूप द्वन्द्वमें उलझा मन तथा ज्ञानइन्द्रियों तथा प्राण तकको भी मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकारसे भिन्न भिन्न द्रव्य गुण कर्म रूप विषयोंमें चलाता है और बराबर दृढतर पाशबद्ध होता जाता है। जब किसी पहुंचे हुए के सङ्गमें आकर, अथवा जगदीश ही की विशेष कृपाका पात्र होकर ध्यान इधरसे सर्वथा छुडाता है अत्यन्त अन्तर्मुख हो जाता है, तो ऊर्ध्व-रेता हुआ मस्तिष्कमें विद्युत् सञ्चित किये अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे तत्त्वविवेकको धृतिपूर्वक अनुभवमें लाकर जब सर्वथा स्वाधीन रूपसे ब्रह्मरन्ध्रद्वारा बाहर छलांग लगा देता है तो अमर हो जाता है, तब इस मनुष्यशरीररूपी दृश्यमान नगरीसे प्रस्थान कर चुका होता है। ऐसे मन आदिके प्रेरक देव ध्यानको स्वायत्त करनेवाले जब इस देह को स्वेच्छा से त्यागते हैं तो अमर हो जाते हैं।

अब ध्यानको उलटाया कैसे जावे, कैसे किसीकी सांसारिक मोहमायामें उलझी आसक्ति को उधर से हटाया जावे, यह जानना कठिन है। क्योंकि आंख वाणी मनके प्रयोगसे यह समझाना हो नहीं सकता, न बोल कर बतला सकता है, न आंखसे दिखला सकता है और न यह कहकर समझा सकता है कि इस प्रकारके विचार मनमें रक्खो। अतः वास्तवमें हम नहीं जानते इस विषयमें विज्ञान हमारी सहायता नहीं करता। हमें नहीं पता कि कैसे सिखाये, कैसे यह भेद खोलें, कैसे Practically करवाकर सिखला दें। मनुष्य जो जानता है और जो नहीं जानता यह अवस्था उन दोनोंसे भिन्न है। उस ध्यान टिकनेकी दशामें वह जानता भी होता है और जानता नहीं भी होता। तो कैसे उसका वर्णन उपदेश किया जा सकता है? जिन्होंने हमारे आगे व्याख्या इस विषयकी की थी उन धृतिधीर बुद्धिरमण महात्माओंसे हमने तो ऐसा ही सुना था कि वह तो प्रज्ञा मन, वाणी, चक्षुः, श्रोत्र, प्राण सबकी गतिसे परे है, जानने न जाननेसे भिन्न है, नहीं जानते कैसे उसकी शिक्षा दी जाए।

इसलिये समझानेके लिये यह पांच पहेलियां घडते हैं। इन पांचोंका एकही जो उत्तर हो उससे अनुमान लगा लेना कि हमारा किस की ओर संकेत

है जो तुम्हारे भाग्य उदय हो चुके होंगे तो तुम्हें इष्ट साधना हो जायगी। वह पहेलियां ये हैं-

(१) वाणीसे वह बोला नहीं, जाता अर्थात् वह शब्दमात्रमें से तो कोई है नहीं परन्तु वाणी उससे उन्नतिशिखर पर पहुंच जाती है अर्थात् जब उससे सीधा सम्बद्ध हो जाती है तो वाणी सर्वथा सत्य प्रिय हितकारी, भूत भविष्यत् वर्तमान अनन्त देशकाल प्राणी अप्राणी आदिके विषयमें बिना झिजके बिना सोचे सर्वथा ठीक वचन कहने-वाली, हो जाती है। वही विचित्र दिव्य शक्ति अथवा ज्योतिः अथवा तत्त्व ब्रह्म है। उसको तू अपने अनुभवसे जान पहिचान देख अनुभव कर प्रयोगमें ला। जहांतक वाणीका विषय, शब्द-विस्तार मात्र है, उन ओ३म् अल्लाह God वाह-गुरु आदि किसी भी वाणीसे उच्चारित हो सकने-वालेको तू कभी ब्रह्म न मानना, चाहे सारा संसार इन गुरुमन्त्रों की कितनी रट लगाता रहे चाहे कितनी नामोपासना करता रहे।

(२) मन के द्वारा कोई उस की बावत सोच नहीं सकता अर्थात् वह सङ्कल्प विकल्प, विचार मात्रमें से तो कोई है नहीं परन्तु मन को भी वह विचार जाता है उसी के विचार के परिणाम स्वरूप मन बनता है। मन उसने ही विचारा हुआ है, उससे सम्बद्ध मन पूर्ण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो जाता है और भूत भविष्यत् वर्तमान अनन्त देश काल प्राणी अप्राणीका यथार्थ विचार कर जाता है। वही विचित्र शक्ति दिव्य तत्त्व आत्मज्योति ब्रह्म है। उसका अनुभव दर्शन आदि तू कर अन्य चाहे कितने भी उच्च विचार हों राम कृष्ण ब्रह्मा विष्णु आदि तककी भी कल्पना जिसमें संसारके मनुष्य मात्र उलझे हुए हैं वह सब कल्पना मात्र है, ब्रह्म नहीं।

(३) आंखके द्वारा जिसको कोई देख दिखला नहीं सकता अर्थात् वह रूपमात्रमें से तो कोई है नहीं परन्तु आंखें उस के द्वारा उन्नतिशिखरपर पहुंच जाती हैं अर्थात् जब उस से सम्बद्ध होती हैं तो दिव्य दर्शन प्राप्त कर सूक्ष्म, महान्, तिरो-हित, दूर-देशस्थ, भूत भविष्यत् काल सम्बंधि सब रूप देख जाती हैं और सर्वथा प्रत्यक्ष कर लेती हैं, वह अलौकिक यन्त्र ब्रह्म है। उसको प्रयोगमें ला उस की Machinary क्रियाप्रणाली बूझ ले। अन्य रूप मात्र जिसके पीछे संसार मारा मारा फिरता है ब्रह्म नहीं।

(४) कान के द्वारा जिस को कोई सुन नहीं सकता अर्थात् वह शब्दमात्रमें से तो कोई है नहीं परन्तु उसी की सत्ता से कान शब्दरूपी विषय को श्रवण करता है, तथा उस से सम्बद्ध होने पर प्राचीन काल से आकाशमें भर रहे रामायण गीता आदि के शब्द भी यह कान वाल्मीक श्री कृष्ण आदिके मुखसे सुन जाता है वह प्राकृतिक रेडियो ग्रामोफोन ब्रह्म है। अन्य शब्द मात्र चाहे फ्रांस से प्राप्त टैलीफोन टैलीविजन द्वारा प्राप्त गवैये के रूपके साक्षात्कार समेत उस का राग ही क्यों न हो जिस से संसार मुग्ध होने की प्रतीक्षामें है वह भी ब्रह्म नहीं। तू उस प्राकृतिक शब्दस्रोत दिव्य लीलामय भगवान् के दर्शन की कामना रख।

(५) नाक से जो सांस लेकर जीवित रहने के लिये सतत प्रयत्नशील नहीं अर्थात् जो बिना वायु के बिना सांसके ही सदैव जीवित है। जाग्रत परन्तु उस से सम्बद्ध योगी के प्राण को वह ऐसे सुनियमित रूप से चलाता है कि योगी का मृत्यु पर वशित्व हो जाता है और मरणसमय उस का प्राण उस को विवश कर स्वयं निकल नहीं जाता वरञ्च वह अपनी इच्छा से प्राणको चाहे अपने साथ इस शरीरमें से निकाल ले जाता है और चाहे पीछे शरीरमें ही प्राण को छोड आप केवल मनोमय शरीर साथ ले चल देता है। उस प्राण को भी वश करानेवाले आत्मतत्त्व को ही तू ब्रह्म जान पहिचान अनुभव दर्शन प्रयुक्त कर। अन्य अङ्गुलियों से नासिका छिद्र बन्द कर रोके जानेवाले वायु प्राण आदि जिन को रोकने आदि-में लोग उलझे रहते हैं उनको तू ब्रह्म न समझ बैठना।

इन पांच पहेलियोंमें बताया गया ब्रह्म न शब्द न रूप न विचार न वायु है, न जिह्वासे चखे जानेवाले स्वादोंमें से कोई है, न नाकसे सूंघे जानेवाले गन्धोंमें से कोई है, परन्तु वह तो सर्वव्यापक सत्ता है, जिस की इच्छामात्र से ब्रह्माण्ड अपने सम्पूर्ण प्राणियों के वाक्, रसना, चक्षुः श्रोत्र घ्राण, प्राण, मन आदि सहित बन गया तथा जिस का आश्रय मात्र पाकर योगी को दिव्य मन, दिव्य प्राण, दिव्य इन्द्रियां प्राप्त हो जाते हैं वह सर्वसार सर्व सिद्धि प्रदाता तत्त्व, जिस के विना सर्वथा स्वतन्त्र अहम्मानी जीव यत्किञ्चित् भी करनेमें असमर्थ सिद्ध होता है। त्रिलोकी जिसके एक अंशमें ही है वह दिव्य ज्योति परमात्मा ब्रह्म है उस के विषयमें आप्त महात्माओं से सुनो, आप्त ग्रन्थ पढो, फिर विचारो, ध्यान से समझो, फिर एकांतमें बुद्धिसे निश्चय करो, फिर ध्यान उसमें लगाओ, जानो और उसे देख जाओ, साक्षात् अनुभव करो कि यह एकरसभर रहा परमात्मा मुझमें साफ दिखाई पड रहा, एक बार ऐसा दर्शन हो गया फिर दृढ निश्चय सदा के लिये हो जायगा कि वास्तवमें ब्रह्म तो वह था जो उस दिन देखा था। अन्य सब उस की मायामात्र, धोका, इन्द्रजाल मात्र, प्रकृतिलीला है। कौन इसके दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, वर्णन, जिघ्रन, मनन, आदिमें समय व्यर्थ नष्ट करे ?

अब दूसरे खण्डमें यह दर्शाया जाता है कि क्या ब्रह्म तत्त्व जिसका ऊपर वर्णन किया गया है वह जाना जा सकता है कि नहीं ? इत्यादि । पांच प्रकार से यह दर्शाया गया है यथा-

(१) यदि उपासकको यह भ्रम हो जावे कि मैं आसानी से ही समग्र ब्रह्मको जान लूंगा, तो उस के ब्रह्मविषयक अनुमानमें अवश्य त्रुटि है। वह यह कि उसने ब्रह्मतत्त्वकी महत्ता अनुभव नहीं की, उसने अपनी कल्पनामें आई सीमाकोही ब्रह्म सीमा मान लिया है। इसके विरुद्ध ब्रह्म तो कल्पनातीत सीमासे भी असीमित है, उसको कौन पूरा पूरा जान सकता है?अतः जो मानता है कि मैं अच्छी तरह ब्रह्म को जानता हूं निश्चय वह ब्रह्मके बहुत अल्प सीमित ऊन परिमित स्वकल्पित ब्रह्मरूप मात्र को जान रहा है। वास्तविक सम्पूर्ण ब्रह्मतत्त्व से वह अभी अपरिचित ही है।

अधिक से अधिक जो साधक समझ सकता है वह ब्रह्मका ऐहिक तथा आधिदैविक रूप है अर्थात् मनुष्य "अहं ब्रह्म अस्मि" आदि शब्दोंद्वारा ब्रह्मवर्णन केवल तबतक कर सकता है जबतक उसने ब्रह्म की मनुष्योंमें सत्ता तथा सूर्य अग्नि विद्युत् आदि देवों के नेता सञ्चालक रूपमें उस की सत्ता का अनुभव किया है। देवलोकनिवासी मानस विद्युन्मय शरीरधारी आत्माएं इससे आगे ब्रह्ममीमांसा नहीं कर सकतीं, इससे आगे आत्मा से आत्मानुभव तो शून्यपद है, उस का वर्णन किया जा ही नहीं सकता परन्तु उसमें स्थित फिर बोलता ही नहीं, बोलता है तब तक उस अवस्थामें नहीं अतः यह कहनेवाला कि मैं ब्रह्म को जानता हूं केवल मानवों से ज्ञेय परमेष्ठिरूप तथा देवों से ज्ञेय प्रजापति तथा ज्येष्ठ ब्रह्मरूपों को स्यात् जान सका हो। आगे स्कम्भतत् एक आदि अनिर्वाच्य पदतक निश्चय वह पहुंच नहीं पाया, नहीं तो वह यह कहने का कभी साहस न करता कि मैंने ब्रह्म को जान लिया। वहां तो पता ही यह लगता है कि वास्तवमें ब्रह्म अज्ञेय है।

(२) ब्रह्मवेत्ता तो यह कहा करता है कि न तो मैं यह मानता हूं कि ब्रह्म आसानी से जाना जा सकता है और कि मैंने उसे सुष्ठुतया जान लिया है और नहीं मैं यह कहता हूं कि मैं उसे नहीं जानता। हां मैं जानता हूं कि जो हममें से यह कहता है कि मैं जानता हूं वह नहीं जानता और जो कहता है मैं नहीं जानता वह वास्तवमें कुछ जानता है।

अर्थात् जिसने ब्रह्मदर्शन पा कर उस की सांसारिक सर्व पदार्थोंसे भिन्नता अनुभव कर ली है और उसकी सूक्ष्म अज्ञेय एकरस असीमितता का दर्शन पाया है, वह सदा यही कहता है कि भाई ! उसका दिग्दर्शन हो जाय तो भी अहोभाग्य

है, पूरेके पूरे उसको देहधारी कौन जा सकता है?

(३) जो समझता है ब्रह्म मेरे विचारमें आ गया था वह अभीतक ब्रह्मको विचार नहीं पाया परन्तु विचारसागरमें गहरा उतर कर जिसे अथाह अनन्तता की झांकी मिल चुकी है उस ने वास्तवमें ब्रह्मविचारका कुछ न कुछ आनन्द अवश्य लूट लिया है। इसी प्रकार जिस विज्ञानवेत्ता को पूरा वैज्ञानिक खोजमें उलझ सफलतापूर्वक नवीन आविष्कार करके केवल अपनी अल्पज्ञता की ही अनुभूति और भी दृढ तर हो गयी है, वास्तवमें उस ने ब्रह्म की सर्वज्ञता के अंश को अवश्य देख लिया है। इस के विरुद्ध जो अभी दसवीं श्रेणी Matric पास करके ही समझते हैं कि हम ग्रामवासियों से बहुत उच्च हो गये हैं, वह वास्तवमें परमात्मा से कोसों दूर जा पड़े हैं।

जो कहता है मैंने ब्रह्म को जान लिया विचार लिया, वास्तवमें वह ब्रह्म को न जान सका है, न विचार सका है। जो पूरा यत्न करके ब्रह्मदर्शन पाकर भी कहते हैं कि उस को कौन जान सकता है? तद्विषयक विचार कौन कर सकता है? उन्होंने विचारविज्ञानद्वारा ब्रह्म की झांकी वास्तवमें पायी हुई है. उनकी अहङ्कारशून्यता ही उन के ब्रह्मवेत्ता होने का बड़ा प्रमाण है।

(४) जानना तो एक बात है परन्तु साधारण जानने से, सांसारिक पदार्थों की प्रतीति प्रकारसे, सर्वथा ही विचित्र प्रकारसे अनुभव करना, "प्रतिबोध"कहलाता है। उसके द्वारा जाना हुआ विचारा हुआ अनुभव, अमृतत्व आत्मतत्त्व को अवश्य प्राप्त करता है तब वीर्य बल उस आत्मानुभवसे विचित्र ही प्रकारका प्राप्त होता है जिस की अपेक्षा सांसारिक बल सभी अतीव तुच्छ हैं। वास्तवमें अमृत की प्राप्ति परा विद्या द्वारा ही होती है। आत्माका ज्ञान, आत्माद्वारा ही होता है। मन बुद्धि इन्द्रिय आदि बहिर्ज्ञानसाधन सर्वथा वह अनुभव करानेमें यत्किञ्चित् भी सहायक नहीं होते।

(५) यदि तो इस देह को धारते धारते उपरोक्त अनुभव एक बार पा लिया औत बूझ लिया कि वास्तव में ब्रह्म सत्य तो यही तत्त्व है जो मैं अब अनुभव कर रहा हूं तब तो ठीक है जीवन सफल है। नहीं तो यदि आत्मानुभव हुए बिना ही प्राण छूट गये तो भारी हानि है, महान् विनाश है। आयु ही वृथा नष्ट गंवाई गयी है। प्राणी अप्राणी सभीमें विशेष चिन्तनद्वारा ब्रह्मदर्शन पाकर बुद्धि धृति आनन्द उस ब्रह्मानुभवसम्बन्धि स्थिर करके जब इस देह को त्यागता अर्थात् इस मनुष्यलोक से प्रस्थान करता है तो अमर हो जाता है। आत्मानुभवप्राप्ति ही जीवनोद्देश्य है। हो गया तो वाह वाह अन्यथा सर्वनाश ही समझिये।

इस प्रकार पांच प्रकार से ब्रह्मविषयक यह बोध जिज्ञासु के हृदयङ्गम किया गया है कि ब्रह्म का अनुभव लो और अहङ्कार को त्याग दो। वह आत्मबल अमरकर देगा, जीवन सफल कर देगा अन्यथा सर्वनाश ही जानो।

अगले तृतीय चतुर्थ खण्डोंमें एक सुन्दर आख्यायिका अलङ्काररूपमें बांधकर आत्मिक बल परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता शिष्य के हृदयमें अङ्कित करवाने का यत्न उपनिषत्कार महर्षि करते हैं। आख्यायिका अलङ्कार यह है-

एक बार दिव्य पदार्थों शक्तियों ब्रह्म तक पहुंचा देनेवाले अग्न्यादि देवताओं को परमात्मा ने विजय करवा दी। उस वास्तवमें परमात्मा की करवायी विजय से देव उसे परमात्मा की विजय न बूझ कर अपनी महिमा बड़ी भारी समझने लगे। और वे विचारने लगे कि यह हमारी अपनी ही जीत हुई है अतः इतनी बड़ी महिमा हमारी यह अपनी है। उनके इस विचारको ब्रह्मात्माने तो जान लेना ही ठहरा। अतः वह उनके समक्ष माननीय पूजार्ह व्यक्तिके रूपमें प्रकट हुआ और वह उसे पहचान भी न सके कि यह पूजार्ह सुन्दर स्वरूप कौन है। अतः आपसमें सलाह करने लगे कि किसको इसके समीप भेजें ,जो बातचीतसे यह पता लगाये कि यह कौन महात्मा प्रकट हुए हैं?

पहिले उन्होंने अग्निको कहा कि 'ए सर्व प्रथम देवाग्रगामी दूत! पहिले तुम ही पता निकालनेका यत्न करो। क्योंकि तुम तो जातवेद हो, उत्पन्न पदार्थ मात्रमें पहुंच उसका पता निकाल लेते हो। तुम ही इसे पहिचानो कि यह यक्ष कौन है।' तथाऽस्तु कह वह तुरन्त उस पूज्यके सन्मुख गया तो उसे यक्षने पूछा 'तुम कौन?' तो उत्तर मिला, 'मैं अग्नि मैं जातवेदा हूं।' यक्ष बोले 'उन तुममें क्या सामर्थ्य है?' उत्तर मिला कि 'जो कुछ भी पृथिवीपर है मैं इस सारेको फूंक डाल सकता हूं।' उसके लिये एक तिनका सामने रख दिया और कहा 'इसको जलाओ।' अग्नि पूरे वेगसे उस तिनके के पास हुआ पर उसे सर्वथा जला नहीं सका, जरा भी सेक उस तिनके को न लगा। तुरन्त लज्जित हो, अग्नि देव वहींसे लौटकर अन्य साथि देवोंमें आकर बोले कि 'भाई! मैं तो नहीं पहिचान सका कि यह पूज्यतम कौन है।'

तब देव वायुसे बोले कि 'सर्वतो बलवान् वायु! तुम ही पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है।' तथाऽस्तु कहकर वह भी तुरन्त यक्ष सम्मुख हुआ तो उसे यक्षने पूछा कि 'तुम कौन हो?' उत्तर मिला 'मैं वायु हूं, अन्तरिक्ष मात्रमें व्यापनेवाला मातरिश्वा मैं ही हूं।' 'तो उन तुममें क्या शक्ति है भाई?' उत्तर मिला कि 'पृथिवी पर जो कुछ भी है मैं उस सभीको ग्रहण कर सकता हूं, अपने वशमें कर ग्रहण कर अपने साथ उडा ले जा सकता हूं।' उसके आगे भी यक्षने तिनका रख कहा 'इसे उडाओ।' वह पूरे वेगसे तिनके समीप हुआ पर उसे हिला उठा ग्रहण कर उडा सर्वथा नहीं सका। तो लज्जित हो वहांसे लौटकर अपने साथि देवोंमें आकर बोला कि 'मैं यह नहीं पहिचान सका कि यक्ष कौन है।'

अब देव अपने राजा इन्द्रसे सभी एकत्र होकर अनुनय विनय करने लगे कि 'महाराज मघवन्! अग्नि वायु पहिचान नहीं पाये। अन्य हममें से कौन इनसे अधिक ज्ञानवान् बलवान् है? कौन इन से अधिक बूझ रखता है? अतः अब तो आप स्वयं ही कृपा करें स्यात् आपके सम्मुख यक्ष अपना भेद खोल देवें। अतः हे देवैश्वर्याधिपति भगवन्! आप पता निकालिये कि यह यक्ष कौन है।' 'जो तुम्हारी सब की इच्छा है' कह कर इन्द्र तुरन्त यक्ष जहांपर थे उधर की ओर चल पडे। परन्तु उन के पहुंचते ही यक्ष वहां से अन्तर्धान हो गये। इन्द्र से छिप गए। जहां पहिले अग्नि वायु ने यक्ष देखे थे वहीं पर उनके स्थानमें एक बडी सजी सजायी लक्ष्मीस्वरूपा स्वर्णजटिता सुन्दर रमणी इन्द्र को दृष्टिगोचर हुई। उस देविसे महाराजने पूछा 'भगवति! यह यक्ष कौन है?'

वह दिव्य शक्ति जगती ज्योत मधुरालाप करने लगी– "यह तो साक्षात् ब्रह्म भगवान् स्वयं थे। आपकी जो इतनी महिमा इस विजयसे संप्रसारित हुई है वह तो इन्हीं की कृपासे हुई है। तब जाकर इन्द्र महाराज जान पाए कि वास्तवमें स्वयं ब्रह्म ही यक्षरूपमें देव सम्मुख हुए थे जिन्हें देव पहिचान नहीं पाए, उन्होंने ही देवोंको जिताया था।"

इस आख्यायिकाके अनुसार यह जो अग्नि वायु इन्द्र नामक तीन देव हैं यही अन्य सभी देवोंसे बढकर हैं। क्योंकि अति समीप तो ब्रह्मको यही छू पाये थे और पहिले यही जान पाए थे कि यह ब्रह्म है। और इन तीनोंमेंसे भी इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि सबसे समीप तो वह ही हुआ था, ब्रह्मको स्पर्श कर पाया था तभी यक्ष छिपा था। अग्नि वायुके लिये तो अपने और उनके बीचमें तिनका रख दिया था और सर्वप्रथम इन्द्र ही जान पाया था कि यह यक्ष तो स्वयं ब्रह्म भगवान् ही हैं।

उन इन्द्र ब्रह्म यक्षकी आज्ञा यही है जो यह विद्युत् चमकती है और बादल गजरते हैं ददद इति यही प्रजापतिका आदेश ब्रह्मोपदेश है। दम दान दया ही परम धर्म है अ की न्यायीं आकाशमें विद्युत् तरंग प्रकाश होकर छिप जाती है। इत्यादि सीधी तिरछी वक्र रेखाएं जो "अ"को रूप देती हैं वही रेखाएं विद्युत् प्रकाश आकार दर्शाती हैं। यही विद्युत् प्रकाश जब ध्यानस्थ योगीके हृदयमें दर्शन दे जाता है तो उसकी उन्नति सूचित करता है, यही

फिर वृद्धि पाता पाता "निर्मल चन्द्र चढे चित्त अन्दर" फिर यही उन्नति करता करता सूर्यदर्शन कराता है. फिर हैमाण्ड यही ज्योति इच्छुक योगियोंकी क्रमशः ध्यानोन्नति परिचायक है। दूसरा मार्ग आंखका मींचना है। वहां भी पलकोंके मध्य रेखा दोनों पलकोंको भिन्न करती है। यह अर्द्धोन्मीलित योगमुद्राकी परिचायका है। इस अवस्थामें योगी न सोया, न जागता, ध्यानस्थ स्वप्न ले रहा होता है दिव्य दर्शन पा रहा होता है,पृथिवी अन्तरिक्ष दिवाचर आत्माओंसे भेंट कर रहा होता है, बडा लुत्फ आता है। ये दोनों मार्ग आनन्ददायक हैं। जब हिरण्यगर्भ का किनारा मात्र भी दिखे तो भी आनन्द खूब आता है, पूरा तो किसी भाग्यवान् कोही दीखता है। खाट पर पडे पडे ही अपने गुरुओं अन्य महात्माओं सिद्धों वेद उपदेशकों जीवितों अथवा परलोकस्थों जिनके चाहो दर्शन पाओ, वह दुनिया ही निराली है। अस्तु। ब्रह्ममार्गपर पदार्पण करनेवालोंके लिये ये दो मार्ग उपनिषत्कारने ब्रह्मोपदेश इन्द्रादेश उमावाक्यरूपसे वर्णित कर दिये। भक्त इन पर पदार्पण करे, धीरतासे इन पर चले तो बस, आनन्द ही आनन्द है।

ये दो दिव्य मार्ग हैं अब इह शरीरसम्बन्धि मार्ग वर्णन करते हैं। वह यह कि जो यह मन चलतासा है उससे प्रतिक्षण भगवान् के नामका जाप तथा ईशस्मरण सदैव करते रहनेका दृढ सङ्कल्प कर ले। यह मनको भगवदर्पण कर डालना सुगम आध्यात्मिक प्रकार भगवत्प्राप्तिका है।

तीसरा मार्ग परमात्ममार्ग है। वह भगवान्को वांछनीय, प्यार करने योग्य, परमप्रिय, वनवाच्य अपने हृदयमें दृढतापूर्वक स्थिर कर लेना है और उसको प्रियरूपसे उपासना है। सदा उसे परम प्रिय अनुभव कर उसकेही समीप रहना चाहना है। जो यह वनदर्शन जानता है, उसको सब ओरसे प्राणी प्यार करनेके लिये आ पहुंचने लगते हैं। जो प्रिय सोम भगवान्को पुत्र कलत्र मित्र आदि सबसे अधिक प्रेमपात्र बनाता है, सभी प्राणी उसे अपना प्रेमपात्र बनाते हैं।

यह सर्वतो सरल सर्वोत्तम ब्रह्मप्राप्तिका सीधा ब्राह्ममार्ग है।

अब इतने ब्रह्मविचारके पीछे यदि कोई उत्सुक भक्त प्रश्न करे कि,महाराज! मुझे उपनिषद कहिये तो उसे उत्तर देना चाहिये कि सौम्य! यह सब उपनिषद् ही तो हम आपके आगे वर्णन करते रहे हैं। हे प्रिय! यह तो ब्राह्मी उपनिषद् आपके प्रति वर्णित हो चुकी आप क्या अब तक और ही कुछ समझते रहे? नहीं, प्रिय! हमने सभी भेद तुम्हारे सम्मुख खोल डाले हैं, अब तो केवल तुझे इसे अपनेमें धारणा करना मात्र शेष है। इसकी मान प्रतिष्ठाके लिये तू तप दम कर्ममें पक्का बन मिहनती परिश्रमशील बन, मनको इधर उधर भटकने न दे। अभ्युदय निःश्रेयस प्रापक कर्म कर पर सभी कुछ भगवान्के अर्पण कर। उस प्रियतम को रिझाने निमित्त कर, प्रणव जाप तथा प्रणवार्थ भावना कर, अन्तर्मुख हो, दिव्य ज्योतियोंका आनन्द लूट अर्धोन्मीलित दृष्टि जड भरतकी न्यायीं विचार कर दिव्य आत्माओंसे सम्बन्ध जोड।

एक बात ध्यान कर लेना। उपनिषत् सत्यके ही आश्रय है। जहां अनृत् मिश्रण हो वहीं गडबड है यह मोटी पहिचान रख। कभी किसी कारण किसी दशा अवस्थामें असत्यको मत् पकडना,न अपनाना अन्यथा अन्तर्दृष्टि सर्वथा न पा सकोगे। यदि पढनेको दिल चाहे तो वेद पढो, वेदार्थज्ञापक अङ्गोंकी सहायता उनके अर्थ जाननेके लिये प्रयोगमें ला सकते हो। वेदसेही उपनिषत् निचोडी गई हैं अतः वेद सम्पूर्ण शरीर है, स्थूल शारीरिक अङ्ग है, आत्मा उसमें उपनिषद् रूप पहिचान ली गयी है अथवा उपनिषद् सूक्ष्म शरीर और ब्रह्म स्वयं आत्मा है।

यह सारे रहस्य जो ऊपर खोले गये हैं, उस उपनिषद् रूपको जो पूर्वोक्त सत्य प्रकारसे जान जाता है, तद्वर्णित ब्रह्मतत्त्वका दर्शन पा जाता है, वह पाप मात्रको भस्म करके, अपनेसे सर्वथा पृथक् करके, परे फेंककर, श्रेष्ठ अनन्त सुखदायी स्वर्गलोकमें जा टिकता है, परमात्मदेव उसका आदर करते हैं, उसे प्रतिष्ठापात्र करते हैं।

परमात्माकी कृपासे सभी आत्मभक्तोंके शरीरावयव वाणी श्वास नेत्र कर्ण नीरोग तृप्त सिद्धि दिव्यशक्ति सम्पन्न हों, उन सबका बल बढे। सम्पूर्ण इन्द्रियां परमात्मा की समीपता अनुभव करें। कोई भक्त भूलसे भी परमात्माका निरादर न करे। परमात्मदेव भी सदैव भक्तोंपर दयादृष्टि रक्खें, कभी उनका निरादर न करवाएं। सर्वथा सदा भक्तोंका तथा उनके भगवान्का आदर ही हो, कहीं निरादार न हो। परमात्मामें मस्त होनेके चिह्न उपनिषद् वर्णित लक्षण सदैव भक्तोंमें सभी को स्फुट रूपेण विद्यमान विदित हों। भक्तोंको भगवान् सदैव मिले रहें।

उपरोक्त देव यक्ष आख्यायिका बडी रोचक है। उसका तात्पर्य यह है कि विद्युत् रेखा आदि दर्शन उन्नतिका चिह्न हैं, परन्तु जैसे यक्ष तथा अग्निके मध्यमें तृण होनेसे अग्नि यक्ष को न पहिचान सकी ऐसेही ज्योति इच्छुक तथा ब्रह्मके मध्यमें ज्योतिरेखा होनेसे इच्छुक ब्रह्मको साक्षात् नहीं कर पाता। इसी प्रकार वाणीसे ओ३म् जपनेवाले और ब्रह्मके मध्यमें ओ३म् होनेसे वाणीसे जाप करनेवाला ब्रह्मके साक्षात् दर्शन नहीं कर पाता। इसी प्रकार आत्माओंसे सम्बन्ध जोडनेवाले तथा ब्रह्मके मध्यमें आत्माएं हैं जो वायुसे भी शीघ्रगति हैं जैसे वायु और ब्रह्मके मध्यमें तृण होनेसे वायु ब्रह्मको नहीं पहिचान सकी, इसी प्रकार आत्माओंसे सम्बधित योगी आत्माएं ही रास्तेमें होनेसे ब्रह्म को साक्षात् नहीं कर पाते। इसी प्रकार मनसे ओ३म् जपनेवालों और ब्रह्मके मध्यमें भी ओ३म् है अतः मानस जापवाले भगवान्का साक्षात् दर्शन नहीं कर पाते। जब भक्त भगवान्से केवल प्रेम करता है, हृदयसे उन्हें चाहता है, महाराजा स्वयं उनके चरणोंमें झुकता है, तो भगवान् कलोल करने लग जाते हैं, उससे लुकमचीचां खेलने लग जाते हैं और उसे ऋतम्भरा प्रज्ञा देते हैं कि इस दिव्य चक्षु से मुझे देख। यही यक्षने इन्द्रसे किया, उमा भेज दी जिसने सब भेद खोल दिया। यही दिव्य चक्षु भगवान् कृष्णने भक्तसखा अर्जुन को दी थी। आख्यायिका बडी बोधप्रद है, अलंकार बडा सुन्दर है, है भी सर्वथा सत्य, अतिशयोक्ति कल्पना सर्वथा नहीं। इसी लिये हमने अन्तमें फिर इस पर थोडा प्रकाश डाल दिया है क्योंकि वास्तवमें यह उपनिषत् तत्त्वको हृदयंगम करवा देती है।

इत्यलम्।

ओ३म् शान्तिः इति केनोपनिषत्समाप्ता।

हमारे अनाथालय।

(लेखक- श्री० वसिष्ठजी)

किसी नगरके बाजारकी पूर्णताको प्रकट करनेके लिए हममें एक कहावत प्रसिद्ध है—"बाजारमें मां बापको छोडकर शेष सब मोल मिलता था।" हमारे अनाथालयोंने उक्त कहावत को मिथ्या प्रमाणित कर दिया। अब मां और बाप भी मोल मिल सकते हैं, केवल गांठमें पैसा चाहिये!

ये क्रीत किये हुए मां बाप अनाथ बच्चोंको भेड बकरियोंकी तरह पाल डालते हैं। उन्हें समय-पर घंटी बजाकर खानादाना भी देते हैं और, पानी भी पिलाते हैं। बच्चे भी मिमियाते पशुकी तरह अपने दिन, मास और फिर वर्ष व्यतीत करते रहते हैं। प्रायः अनाथालयोंसे उत्तीर्ण युवक अनाथोंका जीवन उत्साहहीन, त्रस्त व पीडितसा होता है क्यों-कि वे बचपनमें पशुओंकी तरह हंकाये जाते हैं। उनके ऊपर खरीदे हुए नौकर मांबापों की स्नेह-शून्य शुष्क ताडना, क्रूर आदेश, तिरस्कार-पूर्ण भर्त्सना आदिकी बौछारें ही हुआ करती हैं। पिताका वात्सल्य तथा माताका जननीस्नेह उनके लिए एक कल्पनातीत वस्तु होती है।

खिन्न, त्रस्त और ताडित भी मनोरंजन चाहता है बल्कि सुखी, सम्पन्नसे कहीं अधिक। सुखी सम्पन्न बालक मातापिताके स्नेह आदिमें ही काफी मस्त रहता है किन्तु अनाथको तो स्नेह, सुखादिके स्थानमें ताडना, भर्त्सना आदिकी पीडा ही मिलती है। पीडित मनोरंजन न मिलनेपर किसी बदहोशी की मूर्च्छाको ही ग्रहण करनेको तत्पर हो जाता है, क्योंकि उसका धैर्य और शिवसंकल्प लुप्त हो जाया करते हैं। वह किसी प्रकार उस वेदनाको भुलानेके लिए आतुर हो जाया करता है और तब वह ऊंच-

नीच, पथ कुपथ का विवेक न करके-

'गममें और मायूसीमें जब न कोई राह सूझी।
घुस पडा मय खानेमें इस बलासे तो जान छूटे॥"

दो घडी बेहोशी को ही सौभाग्य समझता है।

यही कारण है कि अधिकांश अनाथ बालक इन नौकर मां बापों की स्नेहशून्य ताडनाओं व भर्त्स-नाओं से व्यथित होकर आवारा हो जाया करते हैं इसका दोष मढ दिया जाता है उन अनाथ बालकों के जन्मान्तर के संस्कारों पर।

गुरुकुल के संचालकों के सामने एक विवशता है जिसके कारण वे बालकों को यथावत् तपस्वी नहीं बना सकते, क्योंकि उन बालकों के माता पिता जीवित हैं जो अपने अपने वित्तानुसार अपने बालकोंको वस्त्र और स्वादु भोजन आदि का आराम दिलाना चाहते हैं। गुरुकुलों के संचालक अपनी दुर्बलताओं के कारण इस भय से, कि यदि उन्होंने बालकों के संरक्षकों की इच्छानुसार उनको सिंगार संवार कर न रक्खा तो बालक गुरुकुलों से हटा लिए जावेंगे, संरक्षकों की प्रायः प्रत्येक ममता-मय अभिलाषा के सन्मुख 'एवमस्तु' कह देते हैं और प्राकृत पौष्टिक भोजनादि की अपेक्षा बालकों के मातापिता के अभिलषित, कृत्रिम, स्वादु मंहगे भोजनकी योजना करने लगते हैं जिसके कारण व्यय के भयसे पौष्टिक आहारमें कमी आने लगती है। बालक एक मंहगे, कृत्रिम कम पौष्टिक भोजन का व्यसनी बन जाता है। किन्तु अनाथा-लयोंमें यह भय आरंभ से ही नहीं होता। वहां तो बेमांबाप के बच्चे होते हैं जिनके भोजन आदि के विषयमें किसी ममता-मय विधान की

योजना वा आग्रह की आशंका नहीं। तब वहां पर प्राकृत जीवन का अभ्यास क्यों नहीं कराया गया जिससे अनाथ बच्चे स्वालम्बी, स्वस्थ, पुष्ट, तपस्वी व जितेन्द्रिय बनते तथा अनाथालयों का व्यय भी कम हो जाता? इसका कारण यदि हम ढूंढना चाहें तो हमें अनाथालयों की नीवमें ही मिल जायगा। तनिक पीछे हटने की जरूरत है।

अनाथालयों की आधारशिला।

अनाथालयोंकी आधार शिला में सामाजिक विवशता व संचालकों की लोकेषणा ही मूल कारण हैं। अनाथालयों के आरम्भमें (१) बालकों के भोजन वस्त्र, (२) मकान, (३) कर्मचारियों के वेतन के लिये धनकी आवश्यकता हुई।

स्वामी दयानन्द संस्कारविधिमें ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) के रहन, सहन, वेशभूषा की परिभाषा लिख गये थे, किन्तु जनतामें विशेषकर पूंजीपतियोंमें वह एक जंगलीपनकी मूर्ति थी। अतः अनाथालयों के संचालकों ने अनाथों को 'प्रदर्शन' की वस्तु बनाया, पूंजीपतियों के सामने नागरिक भोजन का अभिनय किया ताकि 'पैसेवाले' अनाथालय को ठोस (स्थिर) समझकर रुपया दान दें। पक्के मकान बनाये गये, ताकि दानदाताओंमें अनाथालय की सम्पन्नता की साख (विश्वास) हो जावे। वे समझने लगें 'अनाथालय के पास जायदाद है, इतने पक्के मकान व बाग है इत्यादि' और इस प्रकार जनता इस संस्था को सम्पन्न माननीय समझकर दान दे। नौकर मां बाप आजीविका तत्पश्चात् पूंजीवाद (धनसंग्रह) के भूखे थे। वे भर पेट अन्न, दूध, घी तथा पर्याप्त कपडा लेकर जीवनभर अनाथालयमें पडे रहनेके लिए नहीं आये थे। वे सूखे चने चाबकर, चोरी से अनाथों का घी दूध खाकर अपनी तनख्वाह के पैसे बचा अपने और अपने बच्चों का भविष्य सम्पन्न बनानेकी जोड तोडमें थे। अतः उनके वेतन के लिए धन की आवश्यकता थी। संचालकों को जनतामें 'पधानी' प्राप्त करनी थी। देशी व अंगरेजी हुक्कामों में सभ्य बनना था। झोपडियों के पोले (अस्थिर, अ-विश्वस्त) अनाथालय को कोई हाकिम, प्रतिष्ठित, धनाढ्य फूटी आंखों न देखना पसंद करता था, न उसके विषयमें कोई प्रशंसासूचक शब्द बोलना। एक कलेक्टर व किसी अन्य अंगरेज, आधुनिक सभ्य लीडर वा किसी प्रतिष्ठित धनाढ्यके दो प्रशंसनीय विशेषणोंमें जो गौरव संचालक महानुभावको मिल सकता था वह जिलेभरके किसान, मजदूर, चमार और मेहतरोंके बार बार कर पानी पीनेमेंभी नहीं था। दूसरे हमने अपने पुरखाओंके 'जंगलीपन' के कलंक को मिटाना था। तब हम किस प्रकार उस 'प्राचीन जंगलीपन' का प्रदर्शन करके प्रतिष्ठितोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते थे? अतः हमने अपनी फैशनेबिल नवीन दान-भिक्षा-नीतिसे दूकानदारीके लाभार्थ अपने अनाथालयोंको विश्वस्त दूकान बनानेके लिए प्रदर्शनोंका ढोंग रचा। पैसे के लिए बिके हुए कृत्रिम मांबापोंने अनाथालयोंसे पैसा कमाया और समाजके सिरपर अहसानकी चार लात भी मार दीं। प्रश्न हो सकता है कि आरम्भमें विवशतासे वैसा किया गया किन्तु अनाथालयोंके चल जानेपर फिर उन्हें प्राकृत रूप क्यों न दिया गया? इसका उत्तर सहज है। प्रथम तो संचालकोंके हृदयमें यह बात स्वप्नमें नहीं आई थी कि अनाथालयोंको जंगली बनानेसे सदाचार की आशा हो सकती है। उनका मूल उद्देश्य अनाथोंको सरलतम नीति से तथा स्वयं काम से कम झंझटमें पडकर पालना तथा अपनी लीडरी, जनता व हुक्कामों में प्रतिष्ठा प्राप्त करना था। कितनोंके लिए तो यह 'परोपकारी' कर्म भी मनोरंजन की एक विभूति ही थी जिसमें प्रतिष्ठा व जन-श्रद्धा एक अमूल्य आय थी। दूसरे सदाचार, धर्म के प्रचार की उन्हें विशेष रुचि न थी। धर्मशिक्षा, संध्या, हवन, हरिभजन, संगीत आदि की योजना तो केवल दूकानदारी के अभिनय थे, ग्राहकोंके हृदयोंको अटकाने के लिए मधुर कटुवे थे। सत्यनिष्ठा

व सदाचार के माधुर्य से स्वयं अभिज्ञ थे, अनाथोंमें इनकी स्थापना वे विचारे क्या करते। दूसरे मानव जाति के इतिहासमें कहीं ऐसा हुआ नहीं कि कोई अनृत से कमाई करके फिर ऋत् का प्रचार करे। दुराचार से धन कमाकर उसे सदाचार के प्रचारमें लगाते और उससे सदाचारका प्रचार हो निकले।

हां, यदि अनाथालयों के संचालक चाहें तो प्राकृत आर्यकुल चला सकते हैं, जिनमें अब से तीन गुने अनाथ बालक बालिकाएं सौम्य, प्राकृत, सदाचारी, सत्यनिष्ठ बनकर इन संचालकों के नमक को हलाल कर दें। नहीं तो ये अनाथ दर्जी, लोहार, शराबी, दुराचारी, शहरी छोकरे बनकर 'आर्यों' की जनसंख्या वृद्धिही करेंगे। वेद, कर्मकाण्ड, सदाचार से सुदूर रहकर 'लहराती है खेती दयानन्दकी' गाना, बजाना, नाचना, खूब पीना और पिलाना इनका 'वैदिक जीवन,' 'आर्यजीवन' होगा।

कुल-माताका परिवार।

(ले०- श्री० वसिष्ठजी)

हमारे शरीरमें नेत्रादि इन्द्रियें ब्राह्मण वर्ग, हस्तादि क्षत्रिय, उदरादि वैश्य तथा पैर शूद्र कहलाते हैं। यों तो शिर शीर्षस्थानीय होने तथा जीवनका आधार होनेके कारण सर्वमान्य है, किन्तु निर्वाह (पोषण), रक्षा, सुख, दुःखके लिए सबके प्रति समदर्शिता है। नेत्रादि इस लिए कोमल नहीं हैं कि कोमलता उनका बड़प्पन है अपितु नेत्रोंका कार्य ही ऐसा है जो कोमलता तथा विशेष संरक्षासे ही सिद्ध हो सकता है। पैर कठोर हैं इसलिए उन्हें तुच्छ वा छोटा नहीं समझा जा सकता। उनका कार्य ही ऐसा है जिसे वे कठोर बन कर ही सिद्ध कर सकते हैं। आरम्भमें (जन्मके समय) जब उन्होंने कार्य आरम्भ नहीं किया था, वे पर्याप्त कोमल थे।

इस आकार, स्थिति भेदके होते हुए भी उदर सबको भरपूर रस रक्त देता है। पैरमें लगी ठोकर की वेदनाको भी मस्तिष्क, उसी गम्भीरतासे अनुभव करता है जिस गम्भीरतासे कर्णशूलको।

इसी प्रकार "कुल-माता" काभी परिवार होना चाहिये। उसमें कुलपिता, कुलमाता, आचार्य, अध्यापक, अन्य प्रबन्धक तथा पुत्र(ब्रह्मचारी), कन्या (ब्रह्मचारिणी) आदि हों। सबका समान भोजन, समान वस्त्र तथा समान रहन सहन होना चाहिये।

यदि कहा जाय कि गुरु और शिष्य परिवारके अंग हैं शेष कर्मचारी नौकर, सेवक, दास हैं तो यह व्यवस्था 'कुल' शब्दकी परिभाषा व आदर्शकी दृष्टिसे ही नहीं अपितु प्राकृत नियमके अनुसार भी भौंडी, दोषयुक्त है। यदि कर्मचारी नौकर, सेवक, दास हैं तो वे रखे भी जा सकते हैं, निकाले भी। अतः वे कुटुम्बके अंग नहीं, ऊपरी पुरुष हैं। 'कुल' उन्हें अपने परिवारका अंग नहीं समझता तो वे 'कुल' व 'कुलवासियों' तथा वहांके 'गुरु' और ब्रह्मचारियोंको अपना क्यों समझें ? कुलपतियोंकी कृपादृष्टिपर उनका अस्तित्व निर्भर है। वे नदीतीरके तरु हैं, न जाने कब बहा दिये जावें ! वे भी 'आजीविका' के लिए आये हैं, 'कुल' ने भी उन्हें परिवार का अंग बना कर उनको जीवनभरका कर्तव्य निश्चित करनेका आश्वासन नहीं दिया। ऐसी अवस्थामें शीघ्रसे शीघ्र काफी पैसा बटोर लेनेकी प्रवृत्ति बना लेना स्वभावतः उनका कर्तव्य होना चाहिये। यदि वे किसी दिव्य लोक के देवता हों तो बात दूसरी है। यदि वे नौकर सेवक, दास, कर्म-

चारी हृदयकी निर्मलताके कारण उक्त प्रवृत्ति को न भी पनपने दें, तो भी ये, गैर समझे जानेवाले, परिवारसे पृथक् नौकर, सेवक, दास 'कुल' परिवारके लिए, कुल-पुत्रोंके लिए, पारिवारिक-स्नेह-जनित हितचिन्तन नहीं कर सकते क्योंकि वे परिवारके क्रीत नौकर हैं, पराये हैं।

महात्मा टालस्टाय अपने सम्पन्न जीवनमें जितने सरल ग्रामीण निर्धन लडकोंको नौकर रखा करते थे वे प्राय चोर, आवारा, आलसी, मिथ्यावादी बन जाया करते थे, क्यों कि वे उस ऐश्वर्यके रंगमहलमें दो बातें देखा करते थे। एक मालिकके परिवार व बालकोंको और दूसरे अपने को। एक भाग कुछ न करके मजे उडाता था तो दूसरा भाग दिनरात मजोंके साधन जुटानेमेंही पिसा करता था उसे उन मजोंके चखनेका अधिकार न था। मालिक तो नित्य अच्छी अच्छी मिठाई खाया करे और नित्य मिठाई बनानेवाला नौकर मुंहपर कपडा बांधे बठा रहे! इतनेपर भी यदि वह चुराकर मिठाई नहीं खाता तो समझो वह महामूर्ख है या किसी देवलोक की आत्मा है।

प्राचीन कालमें सेवक परिवारके अंग हुआ करते थे। उनका सुख दुःख परिवारके सुख दुःख के साथ जुडा रहता था। वे परिवारको अपना और अपनेको परिवार का समझते थे। अपराध होनेपर उन्हें दण्ड की आशा होती थी किन्तु परिवारसे पृथक् किये जानेकी आशंका नहीं।

किन्तु हमारे 'गुरुकुलों' के वेतनभोगी गुरु, कर्मचारी, सेवक नदीतीर के तरु समान अनिश्चित हैं। किसान खूब खाद देकर खेत को नहीं संवारता क्यों कि कलको जमीदार खेत छीन सकता है। वेतनभोगी कर्मचारी 'गुरुकुल' की वास्तविक उन्नतिमें मन, मस्तिष्क और शरीरको नहीं लगा सकता क्योंकि 'कुल' परिवार उसका नहीं और वह परिवार का नहीं। वह जब चाहे बाहर निकाला जा सकता है।

घरमें पितामह सब से बडा होता है। पुत्र पौत्र उसके संकेतमात्र पर उसके आदेशोंकी पूर्ति कर दिया करते हैं। सबको समान भोजन वस्त्रादि मिलते हैं। पितामह बडा है आदर और सत्कार का पात्र है। पुत्र पौत्र छोटे हैं वे प्रेम, लालन व स्नेह के भाजन हैं। घर का बूढा दरबान सेवक होकर भी बालकों का दादाही है। रसोई बनानेवाली बूढी रसोइन वधुओंकी, बालक बालिकाओंकी बूआ है। बूढा दरबान भूल होनेपर पुत्र पौत्रों को समझाता और डांटता भी है। कभी कभी अनर्थ होता देखकर पितामह से भी उलझ पडता है क्यों कि वह परिवार का अंग है। उसे परिवार से पृथक् होनेका भय नहीं है। अतः वह परिवार का हित चाहता है, दुर्गति देख नहीं सकता। वृद्धा रसोइन भी बहुओं की भूल पर उन्हें ताडना दे लेती है। परिवार के पुत्र पौत्र, बहु बेटियें, दास दासी सब परिवार के शुभ चिन्तक हैं, एक दूसरे से प्रेमसूत्रमें बंधे हैं। पितामह को प्रभुता प्राप्त है तो दूसरी ओर सब के सुख दुःख की चिन्ता। पुत्र पौत्र शिष्ट, आज्ञाकारी होते हुए भी दादा की कमरपर चढ बैठते हैं। रुठते हैं तो दादा को दिककर डालते हैं। दादा के संकेतपर चलनेवाले परिवार-पुत्र, परिवार के हित के लिए, दादाकी भूलों के कारण उससे झगड भी पडते हैं। किन्तु वेतनभोगी गुरुओंके 'कुल परिवार'में कुलपति श्रेष्ठ, कुलीन प्रभू है तो झाडूवाला अन्त्यज ऊपरी नौकर। उसे 'कुल' की मिथ्या स्तुति करने का तो अधिकार है किन्तु त्रुटियों की ओर संकेत करने का नहीं। शीत ऋतुमें शरीरका शिर ऊनी टोपा ओढता है तो शरीरके पैर भी पाजामा, मौजे और जूते से सुसज्जित रहते हैं किन्तु गुरुकुल के शिर के लिए तो ऊनी कपडों का प्रबन्ध है, पैरों के लिए मौजे जूते लायक वेतन नहीं दिया जाता।

सुना है गुरुकुलों के 'गुरु' विद्वान्, ज्ञानी, तत्ववेत्ता और विवेकी होते हैं। ज्ञानी, विवेकी प्रज्ञाबुद्धि चैतन्य होती है। यदि देखा है तब तो 'कुल-गुरु' पंचेन्द्रियों तथा मन भर काफी से अधिक

अधिकार कर सकते हैं। उन्हें नेत्र (रूप) के लिए न सुन्दर वेशभूषा की जरूरत है न मोहक भांडादि (Furniture) की, न रसना के लिए चटपटे व्यंजनों की, न त्वचा के लिए कोमल स्पर्शों की। उनका तो मन भी शासन, अहंमन्यता की संकीर्णतासे मुक्त है यदि वे वास्तवमें विद्वान् हैं न कि पुस्तकों में छपे हुए शब्दों के ग्रामोफोन रिकार्ड। उनके चित्त की शान्ति व शारीरिक स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त दूध, मक्खन, खादी की चादर, ऊनी कम्बल, रहने के लिए गोमय से लिपा हुआ भारतकी आर्थिक स्थिति के अन्तर्गत सस्ते से सस्ता हवादार मकान पर्याप्त हैं। किन्तु जो बेपढ़े हैं, अशिक्षित हैं, जिनके ज्ञान-चक्षु बंद हैं, विवेकने जिन्हें छुआ तक नहीं, गुरुकुल के ऐसे भृत्यों, याचकों की रसना के चटपटे भोजनों की लालसा होनी चाहिये क्योंकि उनको वेद, वेदान्त, न्याय, सांख्य और योग के अमृत का स्वाद नसीब नहीं हुआ। ज्ञानी 'कुलगुरुओं' को तो केवल क्षुधा शान्त करनी है, इन्द्रियों के भोगों से अठखेलियां नहीं करनी हैं। अतएव चटपटे भोजन, सुन्दर कोमल वस्त्रोंमें किसी की प्रवृत्ति हो सकती है तो गुरुकुल के ज्ञान-चक्षुहीन भृत्यों, याचकों की। किन्तु इन्हें न मिलकर ये चीजें 'कुलगुरुओं' को ही नसीब होती हैं!

चरण कठोर काम करता है किन्तु जीवित व स्वस्थ रहनेके लिए वह उतना ही रस रक्त चाहता है जितना कोमल, सूक्ष्म, महत्वपूर्ण काम करनेवाला मस्तिष्क। दार्शनिक 'कुलगुरु' के मस्तिष्कके लिए यदि बादाम की चिकनाईकी जरूरत है तो अग्निकी ज्वालाके पार्श्वमें तपनेवाले पाचककी भी पावभर मलाई की। पर उसकी कौन खबर लेता है? श्रद्धासे गुरुकुल परिवारमें आया हुआ भक्त पाचक यहां भी टालस्टायके रंगमहल की दो ही वस्तुएं देखता है (१) भोगोंको भोगनेवाले 'कुलगुरु' (२) भोगोंसे वंचित, भोगोंका संग्रह करनेवाला याचक। भोगोंसे वंचित किया हुआ भक्त भृत्य ज्ञानी कुलगुरुओंको सुखमय भोग भोगते देखकर पदार्थोंसे भरपूर मन्दिरका चोटा मूषक बन जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार महात्मा टालस्टायके नौकर बन जाया करते थे।

कुल-माता, कुल-पिताका विषमतापूर्ण यह कैसा अनोखा परिवार है जहां पिता, माता, पुत्र, कलत्र सब ही 'नदीतीरतरुवत्' वेतनभोगी नौकर हैं!

जिस 'कुल-परिवार'में इस प्रकार ऊंच नीच, छोटेबड़ेका हकूमती, विषमतापूर्ण ऊपरी व्यवहार होता हो वहांपर आये हुए भक्त भृत्य, कर्मचारी तथा गुरुगण, अहंमन्यता, दम्भ, क्षुद्रता, भीरुता ही सीख सकते हैं। वे न खुद बन सकते हैं न बना सकते हैं और ना ही पराये बच्चोंको यथोचित लालन पालन शिक्षण कर सकते हैं। उदाहरण सर्वसाधारणके हुआ करते हैं जो अनुकूल संयोग प्राप्त होनेपर फूलते फलते हैं और प्रतिकूल संयोगमें पथभ्रष्ट हो जाया करते हैं। मानवजीवनमें अनेकबार विकृत घटनाएं हो जाया करती हैं जो अनुकूल संयोग, प्राकृत जीवन, सतर्क नीति तथा तापस साधनाके होते हुए भी पथभ्रष्ट कर डालती हैं तब उस वातावरणमें, जहां ऐन्द्रिक विषयों का अवरोध नहीं किया जाता, किस प्रकार मनकी दुर्बल वृत्तियोंपर विजयकी आशा की जा सकती है? जहांपर ऐन्द्रिक विषयोंकी प्रत्यक्ष व परोक्ष, न्यून वा अधिक पहुंच है, नेत्रोंके लिए खुला, निकट तक पहुंचा हुआ चमकदार रूप है और रसनाके लिए स्वादु भोजनों की प्रचुरता। इतनेपर भी यदि वहांका मानवजीवन निर्मल, निर्विषय, निर्विकार है तब वह या तो कृष्ण जनकादिके जीवनके समान आप्त गति को प्राप्त हो चुका है या वज्र मूढ है। अतएव इस विषमतापूर्ण कृत्रिम संकर चर्यामें हमारे 'गुरुकुल-परिवार' या तो ब्रह्मनिष्ठ योगियोंकी विभूतिको प्राप्त हो गये हैं या जन्मक्लीब हैं अन्यथा प्रकृतके प्रवाह में तीसरी गति निश्चित ही है।

यदि कुलमाताके परिवारकी ऐसी शोचनीय विषमताके होनेपर भी 'कुल' शब्दका प्रयोग निन्दनीय नहीं है तब तो इसका दुरुपयोग और भी निर्दयतासे किया जा सकता है और तब ग्रामोंको 'जमीदार-कुल' नगरोंको 'साहुकार-कुल' तथा छावनियोंको 'गवर्नर-कुल' से अलंकृत करना अवैदिक न होगा।

ब्रह्ममन्दिरका प्रवेशद्वार।

(ले०- श्री० रुलिया रामजी कश्यप, एम्. एस्सी.)

इस निरन्तर परिवर्तनशील, क्षणभंगुर, सतत चलायमान संसारमें जितने भी पदार्थ चञ्चल, अस्थायी दृष्टिगोचर होते हैं उन सबमें महाराजाधिराज ईश्वर भगवान्को बसा देना है। उनमेंसे जिनमें आगे भगवान् निवास कर रहे प्रतीत नहीं होते अर्थात् अपने निवासके अयोग्य मानकर उन्होंने जिन्हें मानो त्यागा हुआ है, उन्हींका उपभोग करना मुमुक्षुका धर्म है अर्थात् उसका स्वधर्म वास्तविक कर्तव्य यही है कि वह उन भगवान् के त्यागे हुए पदार्थोंमें अपने ज्ञानक्रिया-कौशल्यद्वारा ऐसा परिवर्तन कर दे कि भगवान् स्वयमेव उनमें निवास करनेकी इच्छा करें और प्रत्येक द्रष्टाको यह स्फुटरूपेन ब्रह्मके निवास योग्य प्रतीत होने लग जावे। चाहे कितना भी लालच धन, ऐश्वर्य, पुत्र, कलत्र आदिके रूपमें उसकेसामने आवे वह कभी उसके धोखेमें न आवे क्योंकि धन यहां किसका है? मरते समय एक पाई भी साथ नहीं जाती, केवल परमात्मध्यानही सहायक होता है।

अतः परमात्माके समीप बैठनेकेलिये सबसे प्रथम यही करना चाहिये कि हरएक वस्तुको परमात्माके रहनेका स्थान समझा जावे। इस चलायमान संसारमें जो कुछ भी चलता फिरता दिखाई देता है उस सभीमें ईश्वर निवास कर रहा है यह निश्चय दृढ स्थिर करना चाहिये। यदि आपको कोई वस्तु अथवा कार्य परमात्मासे रहित प्रतीत होता हो तो आपको चाहिये कि आप उसमें ऐसा परिणाम कर दें कि जिससे वह परमात्माके निवास योग्य बन जावे। बस कर्तव्यपरायण मननशील योगीका यह परम कर्तव्य स्वधर्म है कि जहां वह परमात्म-निवासके प्रतिकूल स्थिति पाये वहीं वह अपने पूरे यत्नसे ऐसा परिवर्तन उस स्थितिमें कर दे जिस से कि वह परमात्मनिवासयोग्य बन जावे।

यही कार्य महात्मा गान्धी करते हैं, यही स्वामि दयानन्दने किया, यही अपने समयमें श्रीशंकर तथा भगवान् बुद्धने किया। उनसे पहिले यही शुभ कार्य अवतारोंद्वारा भगवान् राम, कृष्ण द्वारा किया गया था और यही कार्य अभी थोडे दिन हुए गुरुओंने, श्री शिवाजी महाराज, महाराना प्रताप, बाल हकीकत राय आदिने सम्पादन किया था।

इसीके विषयमें वेदोपनिषत् सङ्केत करती है कि सभी दृश्यमान चराचर पदार्थ उस भगवान्के ही निवासार्थ मानों विविध प्रकारके गृह हैं। जहां वह नहीं रहता जो उसने त्यागा हुआ है उसीका भोग मनुष्य करे, उसी सम्बन्धी आवश्यक कर्तव्य पूरा करे कि जिससे वह पुनः ईश निवास योग्य हो जावे। यही उत्तम भोग मनुष्य भोगे, धनके लालचमें ही फँसकर आयु व्यर्थ न गंवा जावे। क्योंकि मरते समय धनाढ्य व्यक्ति बतलाता है कि धन किसका है? भाई! धर्म ही करो, धनका लालच निरर्थक है। मरते समय एक पाई भी साथ नहीं जाती।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनोहर गीतमें साफ शब्दोंमें कहा है कि जो कुछ भी ओजस्वी, लक्ष्मीसम्पन्न, वैभव ऐश्वर्य युक्त, उत्तम, शुभ्र, ज्योतिर्मय प्रतीत होवे उसे ही, हे प्रिय सखा अर्जुन! तू मेरे ब्राह्मतेजके अंशसे उत्पन्न हुआ पहचान लेना।

मनुष्योंका कर्तव्य यही है कि उनके सम्बन्धमें ऐसे जो भी पदार्थ आवें जिनमें उपरोक्त विभूति श्री ऊर्जका अभाव हो उनमें अपने क्रिया ज्ञान

कौशल्यसे उन शुभ गुणोंका भाव विद्यमान करा देना। क्योंकि मनुष्योंके अन्दरका जीवात्मतत्त्व परब्रह्म की सर्वोत्कृष्ट, शक्तिशालिनी विभूति होने के कारण, मनुष्योंके लिये ऐसा करा देना सम्भव है और इस कार्यकी पूर्तिके लिये उनके पास पर्याप्त सामग्री तथा शक्ति विद्यमान है।

बस इसी कार्यको अपने इस पार्थिव निवास कालमें करते हुए सौ साल तक जीनेकी इच्छा मुमुक्षु करे और कोई मार्ग अनासक्तियोगकी सिद्धिके लिये, मनुष्योंके सामने खुला हुआ नहीं दीखता। केवल उपरोक्त प्रकारसे कर्म करते हुए ही मनुष्य कर्मके बन्धनमें नहीं फंसता।

वास्तवमें इस संसारमें अग्राह्यको ग्राह्य बनाना ही मनुष्यका कर्तव्य है। यही स्वधर्म पालन करता हुआ मनुष्य सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे। केवल यही मार्ग ऐसा है जिस पर चलता हुआ भक्त कर्मसे निर्लेप रह सकता है, अन्य कोई पथ मनुष्यके लिये श्रेयस्कर नहीं। मुक्तिका द्वार यही है, अन्य इससे भिन्न कोई नहीं।

इसमें भेद गुह्य यह है कि मनुष्यका ध्यान जब उत्तम कर्ममें उलझा होता है तो नीच कर्मोंमें उस का मन जाही नहीं सकता, जैसे आजकल भ्रमणके लिये जाता हुआ एक तो इधर उधर चारों ओर देखता जाता है परन्तु दूसरा जो अपनीही धुनमें मस्त है उसे पता भी नहीं लगता कि कौन उसके पाससे निकल गया, कारण कि उसका ध्यान तो अपनी ही धुनमें उलझा हुआ है, उसका मनही उधरसे अन्य ओर नहीं डोलता तो उसके पीछे चलनेवाली आंख तो कैसे अन्य ओर जा सकती है? इसीका परिणाम यह भी होता है कि भ्रमण करनेवाला अपने ध्यानमें लगा कितनी दूर जा निकलता है! जब ध्यान टूटता है तो पता चलता है और वह विस्मित होता है कि हैं मुझे पता ही नहीं लगा और मैं कहीं का कहीं पहुंच गया हूं। फिलासफी का प्रोफैस्सर कभी कभी कालिज के स्थान में साथवाली किसी कोठी में ही प्रवेश कर अपने सामने पढनेवालों की श्रेणी बैठी कल्पना करके ही लैक्चर देता सुना गया है यद्यपि ऐसी विचित्र घटना बहुत कम घटती है। तथापि यह सुनी अवश्य गयी है और सम्भव भी है क्योंकि सारा खेल मन का, ध्यान का ही है। ध्यान परमात्मा में लग जावे तो मनुष्य गन्दे व्यवहारों की ओर आकर्षित हो ही नहीं सकता। इसी कारण मनुष्य अपने सामने यही उद्देश्य स्थिर करे कि जो पदार्थ परमात्मा के निवासयोग्य प्रतीत नहीं होता मैं उसे अवश्य ईशनिवास योग्य बना दूंगा और इसी उद्देश्य की पूर्तिके लिये सैंकडों साल जीते रहनेकी इच्छा करे।

जो लोग परमात्मा के ऐश्वर्य से विहीन पदार्थों को अपने " कर्मसु कौशलम् " योगद्वारा सर्वथा सम रहते हुए ऐश्वर्यवैभवसंयुक्त, ऊर्ज श्रीसम्पन्न न करके, उन्हें ईश के निवास योग्य नहीं बनाते वे आत्महत्यारे लोग अपनी इस जीवन की लीला समाप्त करके ऐसे जन्मस्थानों को प्राप्त होते हैं जहां उन्हें न वह विद्या न वह प्रकाश स्वप्नमें भी प्राप्त होता है जिसका इतना बाहुल्य यहां सर्वकाल उनके समीप होते हुए भी जिसका उपयोग उन्होंने सर्वथा परमात्मा के कार्य करनेके लिये नहीं किया। यह विद्याप्रकाशविहीन, अज्ञानान्धकारपूर्ण जन्मस्थान असुर्य लोक कहलाते हैं, क्योंकि यहांके वासीन सुखका आनन्द ही लूटते हैं, नहीं सुन्दर अथवा रमणीय हैं, प्राणपोषणा मात्र ही से तृप्त हो जाते हैं, आत्मज्योति सर्वथा इनमें नहीं जगती। ऐसे लोक अथवा योनियां भूमि के गर्भमें रहनेवाले, सूक्ष्म अथवा स्थूल, जानवरों अथवा पौदों की हैं. और वास्तवमें तो सम्पूर्ण जानवर तथा पौदें चाहे पार्थिव चाहे आप्य और चाहे वायव्य भी यदि हों तो भी असुर्यलोक ही मानने पडेंगे फिर यदि पत्थर धातु आदि में भी जीवनशक्ति का भाव माना जावे तो उन के असुर्य लोक होने में सन्देहही क्या हो सकता है? मनुष्ययोनि में

भी ऐसे प्राणपोषक व्यक्ति दृष्टिगोचर हो जाते हैं जिनका सम्पूर्ण समय देहरक्षा तथा शरीर की हानि लाभकी चिन्तामें ही निकल जाता है, आत्मविकासकी, ओर कभी भूलेसे भी मन जा ही नहीं सकता। इनको भी असुर्य लोक कहना न्यायसङ्गत् ही होगा।

इन, असुर्य लोकोंके विरुद्ध वह ब्रह्मलोक है जहां आत्मवित् पहुंच कर निरन्तर आनन्द भोगते हैं, वह उस भगवान्का साक्षात् दर्शन है जो न हिलता डोलताही मनसे अधिक तीव्रगति है,अद्वितीय शक्तिसम्पन्न है, इन्द्रियां अथवा अग्न्यादि देव जहांसे आरम्भ होते हैं उससे वह बहुत आगे पहलेही पहुंचा हुआ था, जहां तक अपनी सारी सामर्थ्यका उपयोग करके इन्द्रियां तथा देव दौड सकते हैं उससे कहीं आगे वह पहिले ही पहुंच जाता है, अधिक क्या कहा जावे? अन्तरिक्षशायी विद्युत् भी जो परमाणुओंका संघात विघात करवाकर वायुसे जल तथा जलसे वायु बनाती जाती है,वह भी निरन्तर उसीके अन्तर्गत हो हो रही है। उसके आधिपत्यसे बाहर नहीं हो रही।

वास्तवमें परमाणुओंमें प्रथम कम्प करवानेके कारण और स्वयं सदैव अकम्प अडोल रहने के कारण वह प्रत्येक प्राणी अप्राणी के अतीव निकट है। क्योंकि उसके रोम रोममें, परमाणु परमाणुमें स्थित है परन्तु क्योंकि सांसारिक विचारों व्यवहारों में उलझा कोई उस ओर ध्यान लगाता ही नहीं अतः उस का दर्शन पाना बडा दुष्कर हो रहा है। अतः वह बहुत दूर जान पडता है और सर्वव्यापक होने से भी अरबों खरबों भूमियोंमें भी विद्यमान है जिनका एकत्र अनुभव अत्यन्त कठिन है! इस वास्ते भी वह बहुत दूर है क्योंकि उस का सारे का सारा दर्शन एकही समय कौन पा सकता है क्योंकि भूत भविष्यत् वर्तमान तो उसके एकही अंशमें आ जाते हैं और आकाश केवल एक उपांश मात्र है। इसी कारण वह सब को गति देता है स्वयं गति नहीं करता, वही इस समग्र दृश्य अदृश्य संसारके भीतर है वही इस सब के बाहर है, वही निकट से निकट है और वही दूर से दूर।

इस प्रकार उसी परमात्मतत्त्वमें सभी प्राणिअप्राणियोंको जो सदैव विद्यमान देखता है और सभी पदार्थ मात्रमें उसी परमात्मसत्ता का दर्शन पाता है, तब फिर वह किसी की भी निन्दा अपमान आदि सर्वथा नहीं कर पाता, अतः शोक चिन्ता उसका पीछा सदाके लिये छोड देते हैं,वह आत्मामें सर्व, सर्वमें आत्मा देखनेवाला आनन्दित हो जाता है।

ऐसे देखते देखते जब उस ब्रह्म विज्ञाता की दृष्टिमें सम्पूर्ण भूतमात्र केवल आत्मतत्त्वका ही रूपान्तर हो जाते हैं, तब उस एकत्वद्रष्टाको फिर किस से राग और किससे द्वेष हो? क्योंकि मोह माया के फंदेसे तो वह निकल ही चुका है, जब किसीसे द्वेष नहीं तो शोककी सम्भावना ही कैसे रह सकती है?

ऐसी दशामें वह अनुभव करता है कि वह परमात्म देव सकल वस्तुओंको सब ओरसे अन्दर बाहर घेर रहा, व्याप रहा, उनमें एकरस भर रहा है और वह वस्तु वास्तवमें उसमें आरोपित मात्र है और उस भगवान् की सत्तासे ही सत्ताधार उससे भिन्न इन चर्मचक्षुओंको भास रही है, वास्तवमें उस लीलामयकी लीलाका एक व्यङ्ग विनोद मात्र है; महोदधि की एक तरङ्ग मात्र है, जिसके लिये अपनी स्वतन्त्र सत्ताकी डींग हांकना अतीव हास्यजनक है।

वह सर्वव्यापक, शीघ्रकारी, अशरीरी,रोमछिद्ररहित, नाडीनसरहित, पापसे सर्वथा अनाक्रान्त, शुद्ध, पवित्र, सर्वज्ञ, आदिकाव्यनिर्माता, मन को भी जाननेवाला, मनका स्वामी, स्वतःसिद्ध, सर्वतः सिद्ध, भगवान् नित्य निरञ्जन ओङ्कार है। उसीने यथोचित क्रम का अवलम्बन करके सभी अर्थ अपने अपने व्यक्तित्वसहित भिन्न भिन्न रच दिये जो सभी भगवान्के उपरोक्त गुणोंसे सर्वथा विपरीत गुण अधिक अथवा न्यून मात्रामें

अपनेमें दर्शा रहे हैं। अपनी मुख्य विभूति अल्पज्ञ जीवरूपी अन्य सकल प्रजा की अपेक्षा नित्य प्रजाके उपभोगार्थ सकल अर्थ निर्माण उस भगवान्ने कर डाले हैं। उस कवि ने वेद काव्य रचकर सभी अर्थोंका गुण ज्ञान, प्रयोग विधान, उनकी सत्ताका उद्देश अपनी प्रजाके हितार्थ सृष्टिके आरम्भमें ही कर डाला। भक्त, शरीरोंमें अशरीरी, मूर्तिमानोंमें अखण्डैकरस, देवोंमें महादेव, इन्द्रियोंमें आत्मतत्त्वका अनुभव ले और दोनों रूपोंमें उसी व्यक्ताऽव्यक्तके श्यामशबल रूपोंको एक ही आत्मतत्त्वके आत्मा तथा शरीरको पहिचान सभीको एकही ब्रह्मरूपी अखण्ड प्राणीके कल्पित् भाग मात्र देखे॥

जो इस दिव्यदर्शन विहीन जन केवल सांसारिक कर्मोंमें स्थूल पदार्थोंके उपभोग मात्रमें उलझे रहते हैं वह अज्ञानान्धकारमें ही प्रविष्ट हैं और उसीमें अधिकाऽधिक फंसते जायंगे। परन्तु जो शुष्क ज्ञानरत हैं वह उनसे भी अधिक बद्ध हैं क्योंकि विचारबन्धन कर्म बन्धनसे कहीं अधिक प्रबल होता है अतः वह भगवद्विषयक अज्ञानान्धकारमें कर्मियों की अपेक्षा भी अधिक गहरे गडे हुए हैं॥

बुद्धिपूर्वक जिन्होंने सदा धैर्यपूर्वक मुक्तिदायक शुभ ज्ञान कर्मका सेवन आनन्दसे किया है उन धीर पुरुषोंने हमें जो व्याख्यान विद्या अविद्या विषयक सुनाया है उसमें हमने यही श्रवण किया है कि ब्रह्मवादी कहते हैं कि ज्ञानका फल और है कर्मका और। जिन कर्मोंमें अज्ञानता ही उचित है उन कर्मोंका शुभ फल भिन्न है और जो ज्ञानपूर्वक ही करने चाहियें उनका फल और॥

ज्ञान तथा कर्म, विचार शून्य समाधि तथा निष्क्रय ब्रह्मविचार, निरन्तर ब्रह्मध्यान तथा ब्राह्मकर्मानुष्ठान इन द्वन्द्वको जो एक साथ यथार्थ एकरूप जानकर एकत्र कर देता है वह कर्म, विचारशून्यसमाधि, ब्राह्मकर्मानुष्ठानद्वारा मृत्युके पार उतरकर इस देहको स्वेच्छासे त्यागकर, ज्ञान, निष्क्रिय ब्रह्मविचार, निरन्तर ब्रह्मध्यानद्वारा अमृत भोगता है, परमात्मतत्त्वमें मुक्ति सुखका आनन्द लूटता है॥

इसी प्रकार जो प्रकृति की सूक्ष्म अदृश्य कारण रूपक अवस्थाओंके विचारमें ही उलझे रहते हैं वे परमात्मविचारविहीन जन अज्ञानान्धकारमें ही डूबे रहते हैं परन्तु जो विविध स्थूल कार्यरूप प्राकृतिक पदार्थोंमेंही आनन्द मानते रहते हैं वे उनसे भी गहरे अज्ञानगर्त्तमें गिरते हैं क्योंकि सुन्दर स्त्री, सुरूप सुशील पुत्र, हस्ति हिरण्य अश्वादि विभूति सम्भूति आदिमें वे ऐसे फंसते हैं कि कभी परमात्माकी ओर उनके ध्यान जानेकी आशाही कठिन है॥

जिन्होंने यह कार्यकारणतत्त्व हमारे समक्ष भिन्न भिन्न व्याख्यान करदिया हैं उन धीर पुरुषोंसे हमने यही सुना है कि ब्रह्मवादी कहते हैं कि संभूतिका फल अन्य है और असंभूतिका और॥

कार्यकारणरूप प्रकृतिके संभूति विनाश तत्त्वको जो एक साथ ही जानता है वह कारणप्रकृति को अपने वशमें कर स्वेच्छासे कारण शरीर (जो प्रकृति रूप है जिसमें जीव सुषुप्तिसुख अनुभव करता है) को त्याग, मृत्युके पार उतर, अमृत सुख भोगता है जहां स्वेच्छापूर्वक प्राकृतिक कार्यरूप दिव्य शरीर निर्माण धारण विनाश आदि करता आनन्द भोगता अमृतसुख लूटता स्वेच्छासे आनन्द विहार करता मोक्षकाल व्यतीत करता है॥

स्वर्णके लोभरूपी चमकीले ढक्कनसे यथार्थ तत्त्वज्ञानरूपी सत्यका मुख्य चिह्न तिरोहित् कर दिया गया है मायाके फेरमें पड सत्य वस्तु भगवानके दर्शनसे वञ्चित् ही रह जाता है। धनके आय तथा अभाव, जनोंमें सुयश अथवा अपमान, आदिके विचार मनुष्यकी सत्याऽसत्यनिर्णायक अन्तर दृष्टिको मींच देते हैं और उसके लिये सत्य मुखपर हिरण्मय पात्र डाल देते हैं। हे सकल जगद्रक्षक, संसारके पालक पोषक, प्रभु! हमें बचानेके लिये उस ढक्कनका उतार डालिये कि सत्य यथार्थ सार तत्त्वरूप धर्मकी हमें झांकी मिले हम आपके सच्चे स्वरूप वास्तविक धर्मको देख सकें॥

हे पुष्टिकर्ता, अद्वितीय, सर्वज्ञ तत्त्वद्रष्टा, सर्व-नियन्ता, सकल जगत उत्पादक तथा प्रकाशक, प्रजाओंके रक्षक राजा आदिमें भी विद्यमान, सर्व-रक्षक भगवान् किरणों, को ज्ञान विचारों तथा प्रकाश किरणोंको जो विस्तृत कर रक्खीं हैं फैलायी हुई हैं उन्हें कृपया अब एकत्र कीजिये ताकि जो आपका जाज्ज्वल्यमान सर्वज्ञाननिधान, परम तेज-स्वी, शुभ कल्याणमय, ब्राह्मस्वरूप है उसे मैं देख सकूं और यह अनुभव कर सकूं कि जो वह सूर्यमें पुरुष है वह मेरे शरीरमें है, जो सूर्यान्तर्गत द्यौः लोकस्थ है वही इस शरीरस्थ है, जिस पुरुषको 'वह' 'वह' कहा जाता है वह मैं, स्वयं ही हूं, वास्तवमें अन्तिम् सार इस शरीर का और उस द्यौः लोक सूर्य का एकही आत्मतत्त्व है और वास्तवमें वह मैं ही हूं॥

वायुः लोकमें तो आत्मा प्राणोंमें लिपटी पहुंच जायगी और जो स्थूल देह शवरूपमें पीछे रह जायगी वह जलाकर राखकी ढेरी कर दी जायगी अतः हे सत्कर्म के इच्छुक जीव तू ओ३म् का जाप तथा तद्वाच्य भगवान् का आराधन सदैव कर कि प्राणवियोग समय भी यही क्रिया साध सके और सारी आयुभर इस क्रिया के करते रहने की शुभ स्मृति उस समय तुम्हें आनन्द दे सके सदैव यही ओ३म् जाप तथा तदर्थ भावन तू जीवनभर करता रह कि मृत्यु समय भी इसी की स्मृति संस्कारमें उलझा हुआ तू यह देहत्याग अमृत का भागी बन सके॥

हे सर्वज्ञ सर्व प्रकाशक अन्धकार अज्ञान विना-शक अग्निदेव भगवान् हमें सत्कर्म पथ यज्ञ मार्ग से धन धर्म आदि की ओर ले चलिये। हे देव आप हमारे मानसिक विचारों तथा बाह्य व्यवहारों आचारों को सभी को जानते हैं अतः हमारे अन्दर बाहर जहां भी कहीं पाप कुटिलता आदि दुराच-रण तथा दुर्विचार विद्यमान् हों उन सब को भस्म कर दीजिये। इस आशय से हम बार बार आप नमस्कार करते हैं और नमः शिवाय, नमोऽग्नये, नमो भगवते ओङ्काराय आदि शब्दोच्चारण-पूर्वक बार बार दिन रात्रिमें अनेक बार हम आप को नमस्कार करते हैं॥

इस प्रकार उस पूर्ण भगवान् ओङ्कार से यह समग्र संसार सर्वथा पूर्ण व्यक्त किया जाता है। समग्र संसार उस पूर्ण भगवान् के अंशरूप ही बनता है परन्तु फिर भी वह भगवान् पूर्ण ही बच जाता है कुछ भी न्यून नहीं होता। अतः वास्तव में संसार भी उस भगवान् का रूपान्तर ही है उस से पृथक भिन्न जुदा नहीं है॥

ओ३म्कार ही त्रिविधतापनाशक होने से शान्ति शब्द का वास्तविक वाच्य है वही हम सब लेखकों तथा पाठकों को सब दुःखोंसे छुटकारा दिलाने को समर्थ है और उस का बताया उपरोक्त मार्ग यही है कि मनुष्य विभूति श्री ऊर्ज रहित मलिन पदार्थों को अपने क्रिया ज्ञान कौशल्यद्वारा उनकी मलीनता दूरकर उनको वैभव शोभा ओज सम्पन्न करनेके निमित्त सौ वर्ष नीरोग रहनेकी इच्छा करें और निरन्तर यह शुभकार्य सम्पादन करता हुआ ओ३म् का जाप तथा तदर्थ भावनम् करता रहे कि मरते समय भी ओ३म्में ही प्राणत्याग मुक्ति पा सके॥इति॥

॥ इति ईशोपनिषत् समाप्ता॥

परमात्मध्यान

अथवा पराविद्याके चमत्कार ।

(ले०-प्रो० रलियारामजी कश्यप, एम्. एस्सी.)

(७)

इस लेखमें लेखक अपने सम्बन्धियोंको प्राप्त हुए अनुभवोंको उद्धरित करनेका यत्न करेगा, क्योंकि वैज्ञानिक वार्ता एकत्र करते समय केवल उसकी सत्यता परही ध्यान रखना होता है इस बातपर नहीं कि इसकी प्राप्ति कहांसे हुई यदि अनुभव स्वप्न दिव्यदर्शन सत्य हों चाहे साधुके चाहे साधक के चाहे व्यक्ति अपनेके चाहे सम्बन्धियोंके चाहे योगीराजके चाहे भिखमंगे कंगालके वे सभी एक समान ही ग्राह्य हैं, अतः सत्य समझता हुआ मैं यह अनुभव लेखबद्ध करना अपना वैज्ञानिक कर्तव्य आर्ष धर्म समझता हूं और इस विचार से इन्हें यहां लिखता हूं कि सम्भव है मेरे न लिखनेपर संसार इनसे वञ्चित् ही रह जावे। अस्तु !

कल मुझे यह विचार प्रबल हुआ कि देखो मैं किधरका किधर भटक गया कहां 'परमात्मध्यान' और कहां 'वेद और क्रिमिः,' अथवा कहां 'वेद और सूद शब्द' इत्यादि लेख विषय । मैं तो फिर वेद चक्करमें ही उलझ गया हालांकि लगभग वर्ष १॥ वर्ष पूर्व जब मेरे पूज्य बडे भ्राताजीने मुझे यह कहा था कि तुम फिर वेदमें ही रीसर्च करने लग जाओ तो मैं ने यह कहकर साफ टाल दिया था कि अब मैं उस stage से कभीका निकल चुका हूं और जो वेदसे प्राप्तव्य था वह मैं कभी का प्राप्त कर चुका हूं। साथही मुझे कल ही यह विचार आया कि अब शुभ स्वप्न भी कई दिनसे नहीं आया। अस्तु इस हार्दिक व्यथाके परिणामस्वरूप यह लेखनी आज फिर चली है देखें क्या लिख डालेगी।

(१) एक दिन प्रातः ही उठकर यही भाई-साहिब बोले कि मुझे आज स्वप्न आया है कि काकेका नतीजा निकल आया है पर उसका नाव तो पासोंमें नहीं है । समाचार पत्र आया तो वास्तवमें नतीजा निकला हुआ था और उनके भतीजे का नाम पासोंमें नहीं था । अर्थात् वह एफ्. ए. फेल हो गया ।

इन भाईसाहिबको सदैव निद्रा बडी स्वच्छ जाती है स्वप्न सर्वथा नहीं आते जब चाहें सो अथवा जाग जाते हैं परमात्मा की कृपा है। साफ है कि स्वप्नमें ही आगेका वृत्तान्त कुछ समय पूर्व ही दृष्टिगोचर हो गया। इसीसे मानना पडता है कि आत्माके लिये देश कालका व्यवधान नहीं आगामी घटनायें प्रत्यक्ष वर्तमान् समान समाधिमें दीख जाती हैं इसी प्रकार दूरदेशस्थ घटनाएं भी अपने सामने ही रही प्रतीत पडती हैं, वास्तवमें आत्मतत्त्व स्वयं देशकालाऽनवच्छिन्न है। इस-लिये बिना आये गये तत्स्थ हो सब देख जाता है। हां मन प्राणसूत्रसे बन्धा, धागेसे बन्धी भिड समान भूत, भविष्य, दूर समीपस्थ सभी घटना-स्थलोंपर पहुंच निरीक्षण कर आता है ॥

(२) मेरे इसी भतीजे की कल सगाई हुई है बडा आनन्द सभीको होना स्वाभाविक था मुझे भी हुआ परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे यह घटना तीन बातोंसे सम्बन्धित् है, यह नहीं कि उनका प्रभाव इसके होनेपर पडा है पर वे इससे सम्बन्धित अव-

❀

इय हैं क्या सम्बन्ध है यह लेखकको नहीं पता पाठक स्वयं स्यात् ढूंड निकाले।

(क) इस लडके की माता को जब भीड पडती है तो यह बहुत परमात्माको दिलसे लगाकर पुकारती है ऊंचे ऊंचे भी। यह नहीं सोचती कि मेरा देवर या मेरी जेठानी मुझे हंसते हैं कि यह क्या करती है वह हंसते इसलिये हैं कि काम निकाला फिर यह परमात्माको नाममात्र ही स्मरण करेगी अब गरज है तो सारा दिन राम राम रटती है इत्यादि। अस्तु आजकल भी इस बात से घबराई हुई कि सगाई क्यों कहीं पक्की नहीं होती खूब गीता प्रतिदिन घोटने लगी अब सगाई हो गई है देखें कितने दिन तक गीता पाठ और चलता है। यही इन्होंने इस लडके के विलायत जानेपर किया था। यही कई बार अपने पतिदेव के बीमार होनेपर किया था। बहुधा परमात्मा देव इन का करुण क्रन्दन सुन ही लेते हैं और इन की इच्छा पूरी कर देते हैं पर फल मिलनेमें देर होने पर ये घबराती बहुत हैं अब भी दो चार दिन हुए कह रहीं थीं कि मैं तो अपनी गरज के लिये करती हूं।

यह गीतामें लिखे आर्त तथा अर्थार्थी भगवान् के भक्तोंमें से हैं जो जरूरत पडनेपर भगवान्का आवाहन करते हैं जरूरत पूरी होनेपर फिर केवल फरज पूरा ही मुश्किलसे करते हैं।

(ख) इस लडके के दादाजी, लेखकके पूज्य पिताजी लग भग ३०-३५ वर्ष बल्कि इससे भी अधिक कालसे घडी की सूइयोंकी तरह एक तार दोनों समय संध्या अवश्य कर रहे है उनको स्यात् पता हो कि कभी नागा पाया हो हम सबकी समझ में तो कभी स्मरण नहीं ही आता कि ऐसा हुआ हो। इनके आचरण को देखनेसे पूज्य माताजी भी मृत्युः के दशपंद्रह वर्ष पूर्वसे संध्या यथाशक्ति बराबर करने लग गयीं थीं। पूज्या बाबाजी भी पहिले जैनियोंका मन्त्र फिर राम राम फिर ओ३म् ओ३म् जाप आयुभर विशेषकर पिछले बीसियों वर्षोंमें तो अत्यधिक ही करते रहे थे लोभ, क्रोध, अहङ्कार आदिसे हमें अचम्भा है कि कैसे कोई व्यक्ति इसप्रकार रहित हो सकता है, जब किसी को गाली देते तो कहते 'ओह तेरा भला हो जाय' इसको ही गली चाहे समझ लो। यदि घरमें उनकी पुत्रवधुएं कभी कुछ कहतीं सुनतीं और हमारी दादीजी उनकी शिकायत करतीं तो बाबाजी कहते कि 'मां दियां लाडलियां अन कुछ बनाके एन्हां नूं खला पला' अर्थात् यह अपनी अपनी माताकी प्यारी पुत्रियां हैं तू भी इनको कुछ मा पिन्नो (मोदक) आदि बनाकर खुला फिर यह क्यों तुमसे लडें। इस प्रकार सदा शान्त रहना उनका स्वभाव था यदि कहना कि बाबाजी फुलके बहुत थोडे खायें हैं तो कहते 'ओह चल मुण्डिया कोई रज्जना ऐ' अर्थात् 'पुत्र ! क्या कोई पेट पूरा थोडा भरना है' इस प्रकार हंसीमें टाल देते कभी किञ्चित् भी अधिक नहीं खाते थे। आयु भी परमात्माकी कृपासे ९२ वर्षके लगभग सुखसे भोगी। उनके स्वप्न अच्छे बुरे आगामी घटनाओंके सूचक आ-जाया करते थे और घरवाले उनके मुखसे सुनकर निश्चन्त हो जाया करते। पूज्य चचाजी के चमत्कार तो मैस्मेरिज्मयोग आदिके बडे प्रसिद्ध हैं उनको तो जुदा लेखमें लिखा जा सकता है। अस्तु।

पूज्य पिताजीने कुछदिन हुए कि एक स्वप्न बतलाया कि कृष्णा सरीखे एक महापुरुषने १२-१४पुरुषोंके विरुद्ध युद्ध करके किसीको पछाड बाकी को भगा, एक देवीस्वरूप कन्याका हाथ काकेके हाथमें पकडा दिया और कहा इसके विवाहके सम्बन्धमें जो अडचनें डालते थे उनको परे हटा दिया है बस स्वप्न से तुरन्त जागरित दशामें पूज्यपिताजी आगये। मेरी स्त्रिसे उन्होंने बताया उसने मुझे कुछ कुछ बताया। मैं ने उनसे कहा 'उसकी माताको भी आपने बताया ?' उन्होंने उसे भी बताया ' मैंने कहा यही दिव्यदर्शन कहे जाते हैं समाधिमें यही दृश्य देखने होते है अब इस लडकेकी सगाई हुई ही जानो।

इससे पूर्व पूज्य पिताजी मुझे चिंगारियां, कभी चमक आदि दिखाई देती बतला चुके थे। वास्तवमें

बात भी सच्ची है कि जो प्रतिदिन 'दोषावस्त-र्धिया वयं नभो भरन्त एमसि' मन्त्रमें कहे अनुकूल रात्रि दिनमें नमस्कार करते हुए परमात्माके समीप रहें। बेशुमार बार ओ३म् ओ३म् जपें रात्रियें जागते यह शुभकार्य सम्पादन करें, गीता उपनिषदें प्रति दिन रगडते रहें तो फिर ऐसा कब हो सकता है कि परमात्माको सुनाई न पडे अवश्य ऐसे महात्माकी जो इच्छा होगी तद्विषयक दिव्य-दर्शन उसको अवश्य प्राप्त हो सकता है।

अस्तु लगभग एक महीनेके भीतर ही यह सगाई हो गई ॥

(ग) लेखक कई बार इस लडके के तायाजी पिताजी आदिको कहता रहा कि एक बार इश्तिहार ट्रिब्यूनमें दे दो कि लडके की सगाई करनी है तो अच्छेसे अच्छा सम्बन्ध आप को मिल सकता है परन्तु सर्वथा बडे भाई साहिब नहीं माने छोटे तो कभी कभी मान जाते थे अनेक बार मुझे यह कहने पर झाड भी खानी पडी कि हमारी हतक है तुम्हारी गलती है परन्तु मैं कहता था कि मैं नहीं समझता कि इसमें हतक कैसे हो सकती है, सारा जहान ही इश्तिहार दे देता है बडे बडे देते हैं इसमें बुरा ही क्या है अनुकूल सम्बन्ध मिलही बन सकता है इत्यादि अस्तु। पहिले किसी प्रकार कोई न माने । एकदिन बडे भाई साहिब कहीं बाहर गये हुए थे । पूज्य पिताजी को हमने पूछा नहीं । चुपके से मैं और मझले भाई साहिबने विज्ञापन दे ही दिया। लगभग दस १२ दिनके अन्दर अन्दरही जैसी लडकी लडका चाहता था वैसी लडकीसे सगाई बडी धूमधामसे आनन्द पूर्वक हो गई। सभी हर्ष हुआ। मुझे इस लिये भी कि मेरी वर्षोंसे निकली हुई वाणी पूरी हुई। यह सम्बन्ध इश्तिहार के द्वारा प्राप्त नहीं हुआ। पर इश्तिहारवाली बात पूरी हुई तब जाकर सच्ची पक्की वास्तविक सगाई हुई।

(३) लेखक को स्वप्न आया कि वह अपने भाई के घर पूछने गया कि उनके लडके का क्या हाल है तो उस की भौजाईने बतलया कि रात सोया रहा है ॥ प्रातः उठकर जब वास्तवमें वह उनसे पूछने गया तो यही उत्तर मिला कि हां ग्यारह बजे सो गया था फिर प्रातःकाल तक सोया ही रहा है ॥

(४) लेखककी धर्मपत्नी को स्वप्नमें दो व्यक्ति दृष्टिगोचर हुए एक ने कहा 'रगड के दिया रगड-के' 'रगडकर दो रगडकर' यह विस्मित सी हुई कि कौन यह क्या कह रहा है तो दूसरे साथी ने कहा 'एह बाबूजी अन' अर्थात् यह बाबूजी हैं। इन दोनों सूत्रोंका अर्थ समझाने के लिये यह लिखना आवश्यक है कि मेरी छोटी सी लडकी लगभग एक वर्ष से मुखपर सोजा रहने, कभी कम कभी अधिक होने, से बीमार रहती थी बहुत चिकित्सा कराई पर बीमारी जड से नहीं गई थी अन्तमें फिर मैं स्वयं ही हर्ड कालानून निशादर घिसकर उसको पिलाने लग गया। एक दिन उस की लगातार बीमारी से उदास हुई मेरी स्त्री दोपहरमें उस को लेकर लेट गई तो यह स्वप्न आया। बस उस दिन से फिर अति शीघ्र वह वर्षभर का रोग मानों सदा के लिये उड गया। यह बाबूजी लेखक के सिखचचा हैं जो स्वर्गवास किये ३५, ३६ वर्ष बीत चुके हैं तकलीफ में युक्तिपूर्वक स्मरण किये जानेपर दर्शन देकर कृतार्थ करतेहैं मेरी माताजी तो जब भी धूनि देती थीं तो तुरन्त कृपा करते थे एक बार मेरी बडी बहिन मरणासन्न हुई तो इन्होंने स्वप्नमें उन्हें दर्शन देकर कहा कि किधर जा रही हो अपने भाईयों के बीचमें जाकर खाट डालकर पडे रहो। बस उसी दिन से वह अच्छी होने लग गयीं इस बात को बीसियों वर्ष बीत चुके भगवान् की कृपासे हमारी बहिन जी अब तक आनन्द प्रसन्न हैं। एक बार लेखक जब अभी बच्चा ही था तो बारीक ऊन संवारने के कन्धे पर रात को पडा पडा सिर के बल गिरपडा और कंधा सिरमें लग जाने से घावसे रक्त निकलपडा माताजी घबरा कर साथ लेकर सो गई तो स्वप्नमें बाबूजीने कहा 'भाबो! क्यों घबराई पैं' अर्थात् 'भाबीजी! आप

घबराई हुई क्यों हैं' तो माताजीने उत्तर दिया कि देख तो भाई इस के कितनी चोट आई है तो आप बोले नहीं कुछ नहीं यह बिल्कुल ठीक है घबराओ मत। प्रातः मैं सोकर उठा तो खेलने लग गया कहते हैं कि सिरमें कुछ गडबड नही थी माताजी निश्चिन्त हो गई। मेरी चाचीजी की प्रार्थना भी सुनते लेते हैं। एकबार मेरी भौजाई, उनकी पुत्र-बधू के बीमार होनेपर भी उसे दर्शन दे गये और उसे आराम आना आरम्भ हो गया। इत्यादि उन की महिमा कहां तक वर्णन की जाय लेखक तो उनके पासङ्ग भी नहीं; हां उन का प्रियवत्स अवश्य है यह बडेभाईसाहिब बतलाते हैं कि लेखक से उनको बहुत प्रेम था, लेखक उस समय मोटा होता था तो बडी बहिनजी को उसे उठाने न देते थे कि कहीं गिरा न देवे इत्यादि ॥ (५) एक बार लेखक की स्त्री चेचक से सख्त बीमार हुई तो आठवीं रात्रि जब व्याधि जोर पर थी तो उसे स्वप्नमें अपने मृत दादा, दादी दिखाई पडे इसने कहा बाबा! मैं भी थ्वाडे (तुम्हारे) कोल (पास) आऊंदी (आ रही) ऐं (हूँ) उस ने उत्तर दिया 'नां पुत नां तेरा नी ऐत्थे आउनदा कम्मजां तूं मुड जा' अर्थात् 'नहीं बेटा नहीं तुम्हारा यहां आनेका काम नहीं लौट जा' यह कह कर उसे वापिस कर दिया। उस दिन से उसे आराम आना आरम्भ हो गया ॥

(६) एक वार लेखक की स्त्रिको एक फोडा ऐसा भयङ्कर निकला कि दशा शोचनीय हो गयी मैं और बडेभाईसाहिब ने उसकी खाट के साथ दूसरी खाट लगाकर उसे दूसरी बिछी खाट पर उठाकर डाला तो वह पसीना पसीना हो गई भाईसाहिब चिन्तित् हो गये तुरन्त लेडी डाक्टरको बुलाकर आपरेशन करवाया गया। इन्हींमें से किसी रात उस मेरी स्त्रि को स्वप्नमें मेरी पूज्य माताजी बडे शानदार कौचों आदि से सुसज्जित कमरेमें शान से बैठी हुई दृष्टिगोचर हुई और पूछने लगीं कि तुम इस प्रकार क्यों लेटी पडी हो तो इसने उत्तर दिया कि माताजी मैं तो इतनी बीमारहूं उन्हों ने कहा कोई न आराम आ जायगा दवाई कर लो। बस इतनी शोचनीय दशा से भी शीघ्रही स्वस्थ हो गयी जान बच गयी।

(७) एक बारसे उसे ही स्वप्न आया कि दीवार परसे एक सुन्दर मूर्ति एक बालक की, मेरी भौजाई ने उसे पकडाई है और कहा है कि 'लै कुडे तै नूं कृष्णादिंनी ऐं एहनूं स्वारके रक्खीं एह गल्लांभी कर न लग जांदा ऐ' 'अर्थात्,' ले बेटी तुझे कृष्ण देती हूं इसे संभालकर रखना यह बातें भी करने लग जाया करता है।' उसने वह मूर्ति ले ली और लाकर बिछे पलङ्पर उसे बिठला दिया। उस मूर्तिका चेहरा अत्यन्त जाज्ज्वमान था बडा सुन्दर सुसज्जित। वह मानों उपदेश साथी करने लग गये। और घरके सभी उनके पास आगए। बडेभाईसाहिब ने भी आदर और विस्मयसे कहा 'तभी तो इन्हें कहते हैं कि यह कृष्ण हैं' मैं ने उनका वाक्यार्थ औरोंको समझाया इत्यादि। यह सम्पूर्ण स्वप्नलीला देखकर मेरी स्त्रि अत्यन्त प्रसन्न हो गई। कि स्वप्नमें श्रीकृष्णजी के दर्शन हो गये ॥

इत्यादि घटनायें वर्णन करने का लेखकका उद्देश यह है कि परिस्थिति यदि ऐसी बना दी जावे तो स्वप्न शुभ, दिव्य आने आरम्भ हो जाते हैं दुःखी व्यक्तिके स्मरण करने पर परलोकस्थ आत्माएं सहायता कर देती हैं परमात्मा देवभी दुःखीका आर्तनाद सुनकर द्रवित् हो जाते हैं और उसका दुःख दूरकर देते हैं इत्यादि। दिन रात परमात्मा की ओर आकृष्ट रहनेसे भी शुभ स्वप्न आने लग जाते हैं। दिव्यदर्शन लेनेवाले व्यक्तिके सङ्ग रहने, उससे तद्विषयक वार्त्तालाप करने, उसके तद्विषयक लेख पढनेसे भी, शुभ स्वप्न, उसकी न्यायी, आने लग जाते हैं पितरोंके, कृष्णादिकोंके, दर्शन लग जाते हैं इत्यादि ॥

अब यहां पर कुछ ओश्मृकार महिमा भी वर्णन

करनी आवश्यक समझता हूं क्योंकि ओ३म्कार कुञ्जी है हृदयमंन्दिर का ताला खोलने की। खुलजानेपर आनन्दाऽनुभव होने लग जाता है। वास्तविक ओ३म् जाप की रीति, ओ३म्में मस्त हो कर, ओ३म्को भूल जाना है ओ३म् एक आधवार कह फिर चुप शान्त आनन्दित् ही उसी दशामें स्थिर रहना है। बद्धपद्मासन तथा दण्डासन द्वार सुषुम्ना द्वारा खुलकर तब ओ३म् जपना आता है फिर आनन्द ही आनन्द हो है एतद्विषयक् दो काव्य (१) योग काव्य (२) आनन्दाऽनुभव आगे लिखकर यह परमात्मध्यान नं० (७) यहीं समाप्त करते हैं:—

योगकाव्य ।

(ले०- श्री० हलियारामजी कश्यप एम्. एस्सी.)

नमो पतञ्जलि मुनिको, नमो भोज महाराज।
देह, वाणी, मन, सुखहित्, रचे ग्रन्थ ऋषिराज॥१॥
महऋषि वेदव्यासने, रचा भाष्या गुणखानि।
ऋद्धि, सिद्धि, मुक्ति, का एक मात्र जो ज्ञान ॥२॥
रचा महाभारत तथा रचा शास्त्रवेदान्त।
उस ब्रह्मर्षि सिद्धि को, नमः जो है शुभशान्त ॥३॥
भिक्षु जो विज्ञान का, पाण्डित्वर शुभ प्रज्ञ।
टीकारची अपूर्व जिस, योग विषय सर्वज्ञ ॥४॥
टीका को वाचस्पति मिश्र ने भी शुभसार।
उन भिक्षु तथा मिश्रको, करूं न क्यों नमस्कार ॥५॥
दिल न दुखाना किसीका, सर्व प्रथम यह योग।
सच्चा मीठा बोलना, हितकर दूजायोग ॥६॥
चोरी न करना कभी, सर्व रत्न की खानि।
सिद्ध जो होवे तभी तो, सभी धरो यह ध्यान ॥७॥
ब्रह्मचर्य सब से बडा, है ईश्वर प्रणिधान।
ईश ब्रह्म आश्रित विचर, रहना तद्वत् प्राण ॥८॥
अपरिग्रह सन्तोष है, चित्त फंसे कहीं न।
विषय अशुभ में सर्वथा, लोभ काम भी न ॥९॥
उत्तम तप स्वाध्याय है, करना स्वात्मध्यान।
सुखस्वरूप आनन्दमय, के अर्पण मन प्राण ॥१०॥
उत्तम आसन पद्म है, बद्ध कहाता जो।
पाओंमें सिर धर तथा, पवन भरी जब हो ॥११॥
दूजा आसन दण्ड कह, दूहरा करे शरीर।
भीतर के पट खोलता, साधक हो यदि धीर ॥१२॥
सर्व सुखद आसन यही, खुले सुषुम्ना द्वार।
दण्डी स्वामि की कृपा, होवे जो सुखसार ॥१३॥
महिमा प्राणायाम् की, वर्णन की कब जाय।
पहिला करे शरीरवश, दूजा चित्त ठहराय ॥१४॥
तीजा करे तुरन्त स्थिर, मन बुद्धि, चित्त, प्राण।
चौथा विषय छुडाय सब, कर दे ब्रह्म समान ॥१५॥
पहिला प्राणायाम तो, है उत्तम व्यायाम।
शुद्धि करे शरीर की, प्राण आत्मा बलवान ॥१६॥
चौथे प्राणायाम को, शुभसमाधि जान।
दूजे को लख धारणा, अरुतीजे को ध्यान ॥१७॥
परमात्मा के नाम में, लगा हमारा ध्यान।
कौन छुडा सकता हमें, यत्न करे सुमहान् ॥१९॥
वह तो हमें आता नहीं, सीखें किस से जा।
आत्मज्ञान शुभ शान्तिमय, नहीं सके अभी पा ॥१९॥
हलया कश्यप राममें, रमया मनस्विपूर्व।
ओ३म् मंत्र महां ध्यावते, पाते ब्रह्म अपूर्व ॥२०॥
धन्यवाद जगदीशको, जिस शुभ नाम ओ३म्कार।
जम्मूवासी गुरू को, नमः अनेकों बार ॥२१॥

आनन्दाऽनुभव।

मोहन आनन्द दे रहा, आत्मराम प्रवीण।
कौन गिरा वर्णन करे ? जो मोहन आधीन ॥१॥
अन्दर आनन्द भर रहा, पूर रहा हिय सिन्धु।
कारण आनन्दमय स्वयं, परम सखा सुबन्धु ॥२॥
उठ तरङ्ग पयनिधिमें, पूर रही दिव्य धाम।
सर्वस्व अन्तः स्थित् वही, मोहन प्रिय अभिराम॥३॥
मस्त रहा हो देह स्थित्, भर रहा जब आनन्द।
परमानन्द चिदस्थ हो, व्याप रहा सुखकन्द ॥४॥
जय जय आनन्दरूपजी, जय सुख सम्पद्मूल।
जय हृदयेश गुहाशय, जय परमानन्द मूल ॥५॥
नमो दिव्य अभिराम शुभ, नमो मनोहर वाम।
नमः धीर गम्भीर मधु, नमः भद्र सुखधाम ॥६॥
अन्दर आनन्द दे रहे, रम रहे दृष्टि मांह।
भृकुटि, मस्तक, पलक, में पड रही उनकी छांह॥७॥
आनन्दरूप उन देवको, कैसें धारे हृदय।
उछल उछल कर खिल रहा, छलक, छलक कर हृदय॥८॥
हंसी संभाली जाय न, मुख खोले सब भेद।
अन्दर हृदयानन्द जो, पूर रहा शुभ खेत ॥९॥
खेत रहा भर नीरसे, उछल रहा भरपूर।
हंसमुख सभी दिखा रहा, आनन्दरूप अपूर्व ॥१०॥

ध्यानसे क्या होता है ?

ध्यान अथवा मंत्रजाप करनेसे शरीर और मन स्थिर हो जाता है। जब साधक का मन शान्त स्थिर और अचल बनता है, तब उसके मन के कार्य बंद होते हैं और बुद्धि के कार्य शुरू होते हैं। इसी को उच्च मन भी कहते हैं। मन स्थिर होने के पूर्व यह उच्च बुद्धि कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। इस लिये उच्च अनुभव आनेके लिये हमारा जाग्रतिमें कार्य करनेवाला मन शान्त होना अत्यंत आवश्यक है। इसके शान्त करनेके लिये ही योगादि साधन, ध्यान धारणा आदि तथा अन्यान्य अनेक उपाय योगादि शास्त्रोंमें कहे हैं। चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेके पश्चात् ही उच्च अनुभव आ सकता है। जो लोग अपने चित्तको सदा व्यग्र करते हैं वे अपनी कितनी हानि करते हैं यह इस विचारसे पता लग सकता है। अतः पाठक जो उच्च अनुभव लेना चाहते हैं वे अपने मनको सुस्थिर करें। बस, यही एकमात्र साधन है।

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।

स्वर्गीय ला० लाजपतरायजी, लाहौर

[फोटो और ब्लॉक्स- श्री० एन्. व्ही. वीरकर, मोहन बिल्डींग, गिरगांव, मुंबई]

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।

स्व० श्री० मोतीलालजी नेहरू

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।

श्री. सी. के. रामस्वामी

[फोटो और ब्लॉक्स- श्री० एन्. व्ही. वीरकर, मोहन बिल्डींग, गिरगांव, मुंबई]

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला ।

ला. हरकिशनलालजी, लाहौर

प्राणकी विद्या।

(४)

(ऋषिः- भार्गवो वैदर्भिः। देवता-प्राणः)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥

अर्थ-(यस्य वशे) जिसके आधीन (इदं सर्वं) यह सब जगत् है उस (प्राणाय नमः) प्राणके लिये मेरा नमस्कार है। (यः सर्वस्य ईश्वरः) वह प्राण सबका ईश्वर (भूतः) है और (यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं) उसमें सब जगत् रहा है ॥ १ ॥

हे प्राण! (क्रन्दाय ते नमः) गर्जना करनेवाले तुझको नमस्कार है, (स्तनयित्नवे)मेघोंमें नाद करनेवाले तुझको नमस्कार है। हे प्राण! (विद्युते) चमकने वाले तुझको नमस्कार है और हे प्राण (वर्षते) वृष्टि करनेवाले तुझको नमस्कार है ॥ २ ॥

हे प्राण! (यत् स्तनयित्नुना औषधीः क्रन्दति) जब तू मेघोंके द्वारा औषधियोंके सन्मुख बडी गर्जना करता है, तब औषधियां (प्रवीयंते) तेजस्वी होतीं हैं, (गर्भान् दधते) गर्भ धारण करतीं हैं और (अथो बह्वीः विजायन्ते) बहुत प्रकारसे विस्तारको प्राप्त होतीं हैं ॥ ३ ॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे प्राण ! (ऋतौ आगते) वर्षा ऋतु आते ही जब तू (ओषधीः अभिक्रन्दति) औषधियोंके उद्देशसे गर्जना करने लगता है; (तदा यत् किं च भूम्यां अधि तत् सर्वं प्रमोदते) तब सब जगत् आनंदित होता है, जो कुछ इस पृथ्वीपर है ॥ ४ ॥

(यदा प्राणः) जब प्राण (वर्षेण महीं पृथिवीं अभ्यवर्षीत्) वृष्टिद्वारा इस बडी भूमिपर वर्षा करता है, (तत् पशवः प्रमोदन्ते) तब पशु हर्षित होते हैं [और समझते हैं कि] निश्चयसे अब (नः वै महः भविष्यति) हम सबकी वृद्धि होगी ॥ ५ ॥

(अभिवृष्टाः ओषधयः) औषधियों पर वृष्टि होनेके पश्चात् औषधियां (प्राणेन समवादिरन्) प्राणके साथ भाषण करतीं हैं कि हे प्राण ! (नः आयुः वै प्रातीतरः) तूने हमारी आयु बढा दी है और हम सबको (सुरभीः)सुगंधियुत (अकः) किया है ॥ ६ ॥

(आयते ते नमः अस्तु) आगमन करनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है, (परायते नमः अस्तु) गमन करनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है । हे प्राण ! (तिष्ठते) स्थिर रहनेवाले और (आसीनाय ते नमः) बैठनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है ॥ ७ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥८॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥ (११)

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥

अर्थ—हे प्राण! (प्राणते) जीवनका कार्य करनेवाले तुझे नमस्कार है, (अपानते) अपानका कार्य करनेवाले तेरे लिये नमस्कार है। (पराचीनाय) आगे बढनेवाले और (प्रतीचीनाय) पीछे हटनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है (सर्वस्मै त इदं नमः) सब कार्य करनेवाले तेरे लिये यह मेरा नमस्कार है ॥ ८ ॥

हे प्राण (या ते प्रिया तनूः) जो मेरा (प्राणमय) प्रिय शरीर है, (या ते प्रेयसी) और जो तेरे (प्राणापानरूप) प्रिय भाग हैं, तथा (अथो यत् तव भेषजं) जो तेरा औषध है वह (जीवसे नः धेहि) दीर्घजीवनके लिये हमको देओ ॥ ९ ॥

(पिता प्रियं पुत्रं इव) जिस प्रकार प्रिय पुत्रके साथ पिता रहता है, उस प्रकार (प्राणः प्रजाः अनुवस्ते) सब प्रजाओंके साथ प्राण रहता है। (यत् प्राणिति) जो प्राणधारण करते हैं और (यत् च न) जो नहीं धारण करते, (प्राणः सर्वस्य ईश्वरः) उन सब का प्राणही ईश्वर है ॥ १० ॥

(प्राणः मृत्युः) प्राण ही मृत्यु है और (प्राणः तक्मा) प्राणही जीवनकी शक्ति है। इसलिये (प्राणं देवाः उपासते) सब देव प्राणकी उपासना करते हैं। (प्राणः ह सत्यवादिनं) क्योंकि सत्यवादीको प्राणही (उत्तमे लोके आभरत्) उत्तम लोकमें पहुंचाता है ॥ ११ ॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥

अर्थ-प्राण (वि-राज्) विशेष तेजस्वी है, और प्राण ही (देष्ट्री) सबका प्रेरक है, इसलिये (प्राणं सर्वे उपासते) प्राणकीही सब उपासना करते हैं। सूर्य, चंद्रमा और प्रजापति भी (प्राणं आहुः) प्राणही है ॥१२॥

(प्राणापानौ व्रीहियवौ) प्राण और अपान ही चावल और जौ हैं। (अनडान्) बैल ही (प्राणः उच्यते) मुख्य प्राण है। (यवे ह प्राणः आहितः) जौ में प्राण रखा है और (व्रीहिः अपानः उच्यते) चावल अपानको कहते हैं ॥ १३ ॥

(पुरुषः गर्भे अन्तरा) जीव गर्भके अंदर (प्राणाति अपानति) प्राण और अपानके व्यापार करता है। हे प्राण ! जब तूं (जिन्वसि) प्रेरणा करता है तब वह (अथ सः पुनः जायते) जीव पुनः उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

(प्राणं मातरिश्वानं आहुः) प्राणको मातरिश्वा कहते हैं, और (वातः ह प्राणः उच्यते) वायुका नामही प्राण है। (भूतं भव्यं च ह प्राणे) भूत, भविष्य और सब कुछ वर्तमान कालमें जो है वह सब प्राणमें (सर्वं प्रतिष्ठितं) ही रहता है ॥ १५ ॥

हे प्राण ! (यदा) जबतक तूं (जिन्वसि) प्रेरणा करता है तब तक ही आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मनुष्यकृत (ओषधयः) औषधियां (प्र जायंते) फल देतीं हैं ॥ १६ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२०॥ (१२)

अर्थ--(यदा प्राणः महीं पृथिवीं अभ्यवर्षीत्)जब प्राण इस बडी पृथ्वीपर वृष्टि करता है तब (ओषधयः वीरुधः याः काः च प्रजायन्ते) औषधियां और वनस्पतियां बढ जातीं हैं ॥ १७ ॥

हे प्राण ! (यः ते इदं वेद) जो मनुष्य तेरी इस शक्तिको जानता है और (यस्मिन् प्रतिष्ठितः असि) जिस मनुष्यमें तू प्रतिष्ठित होता है, (तस्मै सर्वे बलिं हरान्) उस मनुष्यके लिये उस उत्तम लोकमें सबही सत्कारका समर्पण करते हैं ॥ १८ ॥

हे प्राण ! (यथा) जिस प्रकार ये (तुभ्यं सर्वाः इमाः प्रजाः बलिहृतः) सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं कि (यः) जो (सु-श्रवाः) उत्तम यशस्वी है और (त्वा) तेरा सामर्थ्य (शृणवत्) सुनता है (तस्मै बलिं हरान्) उसके लिये भी बली देते है ॥ १९ ॥

(देवातासु आभूतः) इंद्रियादिकोंमें जो व्यापक प्राण है वह ही (अंतः गर्भः चरति) गर्भके अंदर चलता है। जो (भूतः) पहिले हुआ था (सः उ) वह ही (पुनःजायते) फिर उत्पन्न होता है। जो (भूतः) पहिले हुआ था (स) वह ही (भव्यं भविष्यत्) अब होता है और आगेभी होगा। पिता (शचीभिः) अपनी सब शक्तियोंके साथ (पुत्रं प्रविवेश) पुत्रमें प्रविष्ट होता है ॥ २० ॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदाचन २१

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥

अर्थ—(सलिलात् हंस उच्चारन्) जलसे हंस ऊपर उठता हुआ (एकं पादं न उत्खिदति) एक पांवको उठाता नहीं । (अंग) हे प्रिय (यत् स तं उत्खिदेत्) यदि वह उस पावको उठावेगा (न एव अद्य स्यात्, न श्वः न रात्रीः न अहः स्यात्, न व्युच्छेत् कदाचन) तो आज, कल, रात्री दिन, प्रकाश और अंधेरा कुछभी नहीं होगा ॥ २१ ॥

(अष्टाचक्रं) आठ चक्रोंसे युक्त, (सहस्रारं) अक्षरोंसे व्यक्त और (एकनेमि वर्तते) जिसका है ऐसा यह प्राणचक्र (प्र पुरः नि पश्चा) आगे और पीछे चलता है। (अर्धेन विश्वं भुवनं जजान) आधे भागसे सब भुवनोंको उत्पन्न करके (यत् अस्य अर्धं) जो इसका आधा भाग शेष रहा है (कतमः सः केतुः) वह किसका चिन्ह है? ॥ २२ ॥

हे प्राण ! (अस्य विश्व--जन्मनः) सब को जन्म देनेवाले और इस सब (विश्वस्य चेष्टतः) हलचल करनेवाले (यः ईशे) जगतका जो ईश है, सब (अन्येषु) अन्योंमें (क्षिप्र--धन्वने नमः) शीघ्र गतिवाले तेरे लिये नमन है ॥ २३ ॥

(यः अस्य सर्वजन्मनः) जन्म धारण करनेवाले और (चेष्टतः सर्वस्य) हलचल करनेवाले सबका जो (ईशे) स्वामी है, वह धैर्यमय प्राण (अतन्द्र) आलस्य रहित होकर (ब्रह्मणा धीरः) आत्मशक्तिसे युक्त होता हुआ प्राण (मा) मेरे पास (अनुतिष्ठतु) सदा रहे ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥ (१३)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ-(सुप्तेषु) सब सो जानेपरभी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खडा रह कर (जागार) जागता है (ननु तिर्यङ् निपद्यते) कभी तिरछा गिरता नहीं । (सप्तेषु अस्य सुप्तं) सबके सो जानेपर इसका सोना (कश्चन न अनुशुश्राव) किसीने भी सुना नहीं है ॥ २५ ॥

हे प्राण ! (मत् मा पर्यावृतः) मेरेसे पृथक् न होओ । (न मत् अन्यः भविष्यसि) मेरेसे दूर न होओ । (जीवसे अपां गर्भ इव) पानीके गर्भके समान, हे प्राण ! (जीवसे मयि त्वा बध्नामि) जीवनके लिये मेरे अंदर तुझको बांधता हूं ॥ २६ ॥

प्राणसूक्त समाप्त ।

द्वितीय अनुवाक समाप्त ।

प्राणका महत्व।

प्राणकी जो विद्या होती है, उसको " प्राण-विद्या " कहते हैं। मनुष्योंके लिये सब अन्य विद्याओंकी अपेक्षा प्राणविद्याकी अत्यंत आवश्यकता है। मनुष्यके शरीरमें भौतिक और अभौतिक अनेक शक्तियां हैं। उन सब शक्तियोंमें प्राणशक्तिका महत्व सर्वोपरि है। सब अन्य शक्तियोंका अस्त होनेपर भी इस शरीरमें प्राणशक्ति कार्य करती है, परंतु प्राणका अस्त होनेपर कोई अन्य शक्ति कार्य करनेके लिये रह नहीं सकती। इससे प्राणका महत्व स्वयं स्पष्ट हो सकता है।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें " प्राण " शब्दसे परमेश्वरकी विश्वव्यापक जीवन शक्ति (Life energy) कही है। इस परमात्माकी जीवनशक्तिके आधीन यह सब संसार है, इसीके आधारसे रहा है और इसीसे सब संसारका नियमन भी हो रहा है। समष्टि दृष्टिसे सर्वत्र प्राणका राज्य है। व्यष्टि दृष्टिसे प्रत्येक शरीरमें भी प्राणकाही आधिपत्य है। प्राणिमात्रके प्रत्येक शरीरमें जो जो इंद्रियादिक शक्तियां हैं, तथा विभिन्न अवयव और इंद्रिय हैं, सब ही प्राणके वशमें हैं। प्राणके आधीनही सब शरीर है। शरीरमें प्राणही सब इंद्रियों और अवयवोंका ईश्वर है, क्योंकि उसीके आधारसे सब शरीर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुआ है। प्राणके विना इस शरीरकी स्थितिही नहीं हो सकती। अर्थात् प्राणके वश होनेसे सब शरीर सुदृढ और नीरोग हो सकता है और प्राणके निर्बल होनेसे सब शरीर निर्बल हो सकता है। इसलिये प्राणको स्वाधीन करनेकी आवश्यकता है।

अपने शरीरमें श्वास उच्छ्वास रूप प्राण चल रहा है और जन्मसे मरण पर्यंत यह कार्य करता है। सब इंद्रिय और अवयव मरजानेके पश्चात्भी कुछ देरतक प्राण कार्य करता है, इसलिये सबमें प्राणही मुख्य है और वह सबका आधार है। अपने प्राणको केवल साधारण श्वासरूपही समझना नहीं चाहिए, परंतु उसको श्रेष्ठ दिव्यशक्तिका अंश समझना उचित है। मनकी इच्छा शक्तिसे प्रेरित प्राण सबही शरीरका आरोग्य संपादन करनेमें समर्थ होता है, इस दृष्टिसे प्राणका महत्व सब शरीरमें अधिक है। इसके महत्वको समझना और सदा मनमें धारण करना चाहिये। " अपने प्राणके आधीन मेरा सब शरीर है, प्राणके कारण वह स्थिर रहा है और उसकी सब हलचल प्राणकी प्रेरणासे होती है, इस प्रकारके प्राणकी मैं उपासना करूंगा और उसको अपने

आधीन करूंगा। प्राणायामसे उसको प्रसन्न करूंगा और वशीभूत प्राणसे अपनी इच्छानुरूप अपने शरीरमें कार्य करूंगा।" यह भावना मनमें धारण करके अपने प्राणकी शक्तिका चिंतन करना चाहिए।

यह प्राण जैसा शरीरमें है वैसा बाहिर भी है। इस विषयमें द्वितीय मंत्र देखने योग्य है।

इस द्वितीय मंत्रमें केवल गरजनेवाले मेघोंका नाम 'क्रंद' है, बडी गर्जना और विद्युत्पात जिनसे होता है उन मेघोंका नाम 'स्तनयित्नु' है, जिनसे बिजुली बहुत चमकती है उनको 'विद्युत्' कहते हैं और वृष्टि करनेवाले मेघोंका नाम है 'वर्षत्'। ये सब मेघ अंतरिक्षमें प्राणवायुको धारण करते हैं और वृष्टिद्वारा वह प्राण भूमंडला-आता है। और वृक्षवनस्पतियोंमें संचारित होता है।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि अंतरिक्ष स्थानका प्राण वृष्टिद्वारा औषधिवनस्पतियोंमें आकर वनस्पतियोंका विस्तार करता है। प्राणकी यह शक्ति प्रत्यक्ष देखने योग्य है।

वृष्टिद्वारा प्राप्त होनेवाले प्राणसे न केवल वृक्षवनस्पतियां प्रफुल्लित होतीं हैं, परंतु अन्य जीव जंतु और प्राणीभी बडे हर्षित होते हैं। मनुष्यभी इसका स्वयं अनुभव करते हैं। यह तृतीय मंत्रका कथन है।

अंतरिक्षस्थ प्राणका कार्य इस प्रकार चतुर्थ और पंचम मंत्रमें पाठक देखें और जगत्में इस प्राणका महत्व कितना है, इसका अनुभव करें। पहिले मंत्रमें प्राणका सामान्य स्वरूप वर्णन किया है, उसकी अंतरिक्षस्थानीय एक विभूति यहां बता दी है। अब इसीकी वैयक्तिक विभूति सप्तम और अष्टम मंत्रोंमें बतायी जाती है।

श्वासके साथ प्राणका अंदर गमन होता है और उच्छ्वास के साथ बाहिर आना होता है। प्राणायामके पूरक और रेचकका बोध "आयत्, परायत्" इन दो शब्दोंसे होता है। स्थिर (तिष्ठत्) रहनेवाले प्राणसे कुंभकका बोध होता है। और बाह्य कुंभकका ज्ञान 'आसीन' पदसे होता है। "(१) पूरक, (२) कुंभक, (३) रेचक और (४) बाह्य कुंभक" ये प्राणायामके चार भाग हैं। ये चारों मिलकर परिपूर्ण प्राणायाम होता है। इनका वर्णन इस मंत्रमें "(१) आयत्, (२) तिष्ठत्, (३) परायत्, (४) आसीन," इन चार शब्दोंसे हुआ है। जो अंदर आनेवाला प्राण होता है, उसको "आयत् प्राण" कहा जाता है, यही पूरक प्राणायाम है। आने जानेकी गतिका निरोध करके प्राणको अंदर स्थिर किया

जाता है, उसको " तिष्ठत् प्राण " कहते हैं, यही कुंभक अथवा अंतःकुंभक प्राणायाम होता है। जो अंदरसे बाहिर जाता है,उसको " परायत् प्राण " कहते हैं, यही रेचक प्राणायाम है। सब प्राण रेचक द्वारा बाहिर निकालनेके पश्चात् उसको बाहिर ही बिठलाना " आसीन प्राण " द्वारा होता है, यही बाह्य कुंभक है। प्राणायामके ये चार भाग हैं। इन चारोंके अभ्याससे प्राण वश होता है। यही इस प्राणदेवताकी प्रसन्नता करनेका उपाय है। यही प्राणोपासनाका विधि है।

प्राण नाम उसका है कि जो नासिकाद्वारा छातीमें पहुंचता है। अपान उसका नाम है कि जो नाभिके निम्न देशसे गुदाके द्वारतक कार्य करता है। इन्हींके दो अन्य नाम "प्राचीन" और "प्रतीचीन" प्राण हैं। प्राणके स्वाधीन रखनेका तात्पर्य प्राण और अपानको स्वाधीन करना है। अपानकी स्वाधीनतासे मलमूत्रोत्सर्ग उत्तम प्रकारसे होते है और प्राणकी स्वाधीनतासे रुधिरकी शुद्धि होती है। इस प्रकार दोनोंके वशीभूत होनेसे शरीरकी नीरोगता सिद्ध होती है। इस प्रकारकी प्राणकी स्वाधीनता होनेसे प्राणके अधीन सब शरीर है,इसका अनुभव होता है। इसी उद्देश्यसे मंत्र कहता है कि " सर्वस्मै त इदं नमः " अर्थात् 'तू सब कुछ है, इसलिये तेरा सत्कार करता हूं'। शरीरका कोई भाग प्राण शक्तिके विना कार्य नहीं कर सकता, इसलिये सब अवयवोंमें सब प्रकारका कार्य करनेवाले प्राणका सदाही सत्कार करना चाहिये। हर एक मनुष्यको उचित है कि,वह अपने प्राणकी इस शक्तिका ध्यान करे, विश्वास-पूर्वक इस शक्तिका स्मरण रखे, क्योंकि निज आरोग्यकी सिद्धि इसीपर निर्भर है। इस प्राणशक्तिका इतना महत्त्व है कि इसकी विद्यमानतामें ही अन्य औषध कार्य कर सकते हैं, परंतु इस शक्तिके कमजोर होनेपर कोई औषध कार्य नहीं कर सकता। प्राणही सब औषधियोंकी औषधि है, इस विषयमें नवम मंत्र देखने योग्य है।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय ये पांच कोश हैं। इनको पांच शरीर भी कह सकते हैं। इन पांच शरीरोंमेंसे " प्राणमय शरीर " का वर्णन इस मंत्रमें किया है। " प्रिया तनू " यह प्राणमय कोश ही है। सब ही इसपर प्रेम करते हैं, सब चाहते हैं कि यह प्राणमय शरीर सदा रहे। प्राण और अपान ये इस शरीरके दो प्रेममय कार्य हैं। प्राणसे शक्तिका संवर्धन होता है और अपानसे विषको दूर करके स्वास्थ्यका संरक्षण होता है। प्राणके अंदर एक प्रकारका "भेषजं" अर्थात् औषध है, दोषोंको दूर करनेकी शक्तिका नाम (दोष-ध) औष-ध अथवा भेषज

होता है । शरीरके सब दोष दूर करना और वहां शरीरमें आरोग्यकी स्थापना करना, यह पवित्र कार्य करना प्राणकाही धर्म है । प्राणका दूसरा नाम "रुद्र" है और रुद्र शब्दका अर्थ वैद्य भी होता है ।

इस प्राणमें औषध है, यह वेदका कथन है । इसपर अवश्य विश्वास रखना चाहिये, क्यों कि यह विश्वास अवास्तविक नहीं है, अपनी निज शक्तिपर विश्वास रखनेके समानही यह वास्तविक विश्वास है। मानस-चिकित्साका यह मूल है। पाठक इस दृष्टिसे इस मंत्रका विचार करें । अपनी प्राणशक्तिसे अपनीही चिकित्सा की जा सकती है । 'मैं अपनी प्राणशक्तिसे अपने रोगोंका निवारण अवश्य करूंगा,' यह भाव यहां धारण करनेसे बडा लाभ होता है ।

दशम मंत्रमें ऐसा कहा है कि जिस प्रकार पुत्रका संरक्षण करनेकी इच्छा पिता करता है उसी प्रकार प्राण सबका रक्षण करना चाहता है । सब प्रजाओंके शरीरोंमें नसनाडियोंमें जाकर, वहां रहकर सब प्रजाका संरक्षण यह प्राण करता है । न केवल प्राणधारण करनेवाले प्राणियोंका, परंतु जो प्राण धारण नहीं करते हैं, ऐसे स्थावर पदार्थोंका भी रक्षण प्राणही करता है । अर्थात् कोई यह न समझे कि श्वासोच्छ्वास करनेवाले प्राणियोंमें ही प्राण है, परंतु वृक्षवनस्पति, पत्थर आदि पदार्थोंमें भी प्राण है और इन सब पदार्थोंमें रहकर प्राण सबका संरक्षण करता है । प्राणको पिताके समान पूज्य समझना चाहिए और उसको सब पदार्थोंमें व्यापक जानना चाहिए ।

शरीरसे प्राण चले जानेसे मृत्यु होती है और जबतक शरीरमें प्राण कार्य करता है, तबतक ही शरीरमें सामर्थ्य अथवा सहनशक्ति रहती है, यह ग्यारहवें मंत्रका कथन है । इस प्रकार एकही प्राण जीवन और मृत्युका कर्ता होता है । देव शब्दसे इस मंत्रमें इंद्रियोंका ग्रहण होता है । सब इंद्रियां प्राणकी ही उपासना करती हैं अर्थात् प्राणके साथ रहकर अपने अंदर बल प्राप्त करती हैं । जो इंद्रिय प्राणके साथ रहकर बल प्राप्त करता है वह ही कार्यक्षम होता है, परंतु जो इंद्रिय प्राणसे वियुक्त होता है, वह मर जाता है। यही प्राण उपासना और यही रुद्र उपासना है। सब देवोंमें महादेवकी शक्ति कैसी कार्य करती है, इसका यहां अनुभव हो सकता है । प्राणही महादेव, रुद्र, शंभु आदि नामोंसे बोधित होता है । व्यक्तिके शरीरमें प्राणही उसकी विभूति है । सब जगत्में उसका स्वरूप विश्वव्यापक प्राणशक्तिही है । इस व्यापक प्राणशक्तिके आश्रयसे अग्नि, वायु, इंद्र, सूर्य आदि देवता-गण रहते हैं और अपना

कार्य करते हैं। व्यष्टिमें और समष्टिमें एकही नियम कार्य कर रहा है। व्यष्टिमें प्राणके साथ इंद्रियां रहतीं हैं और समष्टिमें व्यापक प्राणशक्तिके साथ अग्नि आदि देव रहते हैं। दोनों स्थानोंमें दोनों प्रकारके देव प्राणकी उपासनासे ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं। तीसरे देव समाज और राष्ट्रमें विद्वान् शूर आदि प्रकारके हैं, वे सत्य-वादी, सत्यनिष्ठ, सत्यपरायण और सत्याग्रही बन कर प्राणायामद्वारा प्राणोपासना करते हैं। प्राणही इनको उत्तम लोकमें पहुंचाता है। अर्थात् इनको श्रेष्ठ बनाता है। अर्थात् प्राणोपासनासे सबही श्रेष्ठ बनते हैं।

सत्यसे बलप्राप्ति।

कई लोक यहां पूछेंगे कि 'सत्यवादिताका प्राण उपासनाके साथ क्या संबंध है?' उत्तरमें निवेदन है कि सत्यसे मन पवित्र होता है और उसकी शक्ति बढती है। प्राणकी शक्तिके साथ मानसिक शक्तिका विकास होनेसे बडा लाभ होता है। प्राणा-यामसे प्राणकी शक्ति बढती है और सत्यनिष्ठासे मनकी शक्ति विकसित होती है। इस प्रकार दोनों शक्तियोंका विकास होनेसे मनुष्यकी योग्यता असाधारण हो जाती है।

द्वादश मंत्रका अब विचार करिये। प्राण विशेष तेजस्वी है। जबतक शरीरमें प्राण रहता है, तबतक ही शरीरमें तेज होता है। प्राणके चले जानेसे शरीरका तेज नष्ट होता है। सब शरीरमें प्राणसे ही प्रेरणा होती है। बोलना, हिलना, चलना आदि सब प्राणकी प्रेरणासे ही होता है। अर्थात् शरीरमें तेज और प्रेरणा प्राणसे होती है। इसलिये सब प्राणिमात्र प्राणकीही उपासना करते हैं किंवा यों समझिए कि जबतक वे प्राणके साथ रहते हैं तबतकही उनकी स्थिति होती है। जब वे प्राणका साहचर्य छोड देते हैं तब उनका मत्युही होता है। इच्छा न होनेपर भी सब प्राणी प्राणकी ही उपासना कर रहे हैं। यदि मानसिक इच्छाके साथ प्राणोपासना की जायगी तो निःसंदेह बडा लाभ हो सकता है। क्यों कि इस जीवनका जो वैभव है, वह प्राणसेही प्राप्त हुआ है। इस लिये अधिक वैभव प्राप्त करना है, तो प्रयत्नसे उसकीही उपासना करना चाहिए। प्राणायामका यही फल है। इस जगत्में सूर्यचंद्र ये प्राणही हैं। सूर्य-किरणोंके द्वारा वायुमें प्राण रखा जाता है और चंद्र अपने किरणोंसे औषधियोंमें प्राण रखता है। मेघ विद्युत् आदि अपने अपने कार्यद्वारा जगत्को प्राण दे ही रहे हैं। अंतमें प्राणोंका प्राण जो प्रजापति परमात्मा है, वहही सच्चा प्राण है, क्यों कि

जीवनकी सब प्राणशक्तिका वह एक मात्र आधार है। यही कारण है कि वेदमें प्रजापति परमात्माका नाम प्राणही है। अन्य पदार्थोंमें भी प्राण है, उसका वर्णन तेरहवें मंत्रमें इस प्रकार किया है—

मुख्य प्राण एकही है, उसके बलसे शरीरमें प्राण और अपान कार्य करते हैं। इसी प्रकार खेतीमें बैलकी शक्ति मुख्य है, उसकी शक्तिसेही चावल और जौ आदि धान्य उत्पन्न होता है। वेदमें " अनड्वान् " यह बैलवाचक शब्द प्राणकाही वाचक है। समझो कि शरीररूपी खेतमें यह प्राणरूपी बैलही खेती करता है और यहांका किसान जीवात्मा है। शरीर क्षेत्र है, जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है, प्राण बैल है और जीवनव्यवहार-रूप खेती यहां चल रही है। वेदमें अनड्वान् शब्दका प्राण अर्थ है, यह न समझनेके कारण कईयोंने बडा अर्थका अनर्थ किया है।

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ (अथर्व. ४।११।१)

" प्राणका पृथिवी और द्युलोकको आधार है, " यह वास्तविक अर्थ न लेकर, बैलका पृथिवी और द्युलोकको आधार है, ऐसा भाव कइयोंने समझा है। यदि पाठक इस अनड्वान् सूक्तका अर्थ इस प्राण सूक्तके अर्थके साथ देखेंगे, तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि वहां अनड्वान्का अर्थ केवल बैलही नहीं है, प्रत्युत प्राण भी है। इसी कारण इस सूक्तमें प्राणका नाम अनड्वान् कहा है। यव प्राण है और चावल अपान है, यह कथन आलंकारिक है। धान्यमें प्राण और अपान अर्थात् प्राणकी संपूर्ण शक्तियां व्याप्त हैं; धान्यका योग्य सेवन करनेसे अपने शरीरमें प्राणादिक आते हैं और अपने शरीरके अवयव बनकर कार्य करते हैं।

गर्भके अंदर रहनेवाला जीव भी वहांही गर्भमें प्राण और अपानके व्यापार करता है। और इसीलिये वहां उसका जीवन होता है। जब जन्मके समय प्राण जन्म होने योग्य प्रेरणा करता है, तब उसको जन्म प्राप्त होता है। अर्थात् जन्मके अनुकूल प्रेरणा करना प्राणकेही आधीन है। इस चतुर्दश मंत्रमें " सः पुनः जायते " यह वाक्य पुनर्जन्मकी कल्पनाका मूल वेदमें बता रहा है, जीवात्मा पुनः पुनः जन्म धारण करता है, वह सब प्राणकी प्रेरणासे होता है, यह भाव इस मंत्रमें स्पष्ट है।

१५ वें मंत्रमें " मातरि--श्वा " शब्दका अर्थ ' माताके अंदर रहनेवाला, माताके गर्भमें रहनेवाला ' है। माताके गर्भमें प्राणरूप अवस्थामें जीव रहता है, इसलिये जीवका नाम ' मातरिश्वा ' है। गर्भमें इसकी स्थिति प्राणरूप होनेसे इसका नाम ही प्राण होता है। इस कारण प्राण और मातरिश्वा शब्द समान अर्थ बताते हैं।

'मातरिश्वा' का दूसरा अर्थ वायु है। वायु, वात आदि शब्द भी प्राणवाचक ही हैं। क्यों कि वायुरूप प्राणही हम अंदर लेते हैं और प्राणधारण कर रहे हैं। प्राणका विचार करनेसे ऐसा पता लगता है कि उसके आधारसे भूत, भविष्य और वर्तमानका सबही जगत् रहता है। प्राणके आधारसे ही सब रहता है। प्राणके विना जगत्में किसीकी भी स्थिति नहीं हो सकति। पूर्वजन्म, यह जन्म और पुनर्जन्म ये सब प्राणके कारण होते हैं। अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान कालमें जो कर्मके संस्कार प्राणमें संचित होते हैं, उसके कारण यथायोग्य रीतिसे पुनर्जन्मादि होते हैं।

औषधियोंका उपयोग तब तक ही होता है कि जब तक प्राणकी शक्ति शरीरमें है। जब प्राणकी शक्ति शरीरसे अलग होने लगती है, तब किसी औषधियोंका कोई उपयोग नहीं होता। इसी सूक्तके मंत्र ९ में "प्राण ही औषधि है कि जो जीवनकी हेतु है," ऐसा कहा है, उसका अनुसंधान इस १६ वें मंत्रके साथ करना उचित है।

इस मंत्रमें "(१) **आथर्वणीः** (२) **आंगिरसीः** (३) **दैवीः** और (४) **मनुष्यजाः**" ये चार नाम चार प्रकारकी चिकित्साओंके बोधक हैं। इसका विचार निम्न प्रकार है- (१) **मनुष्यजाः ओषधयः**=मनुष्योंकी बनाई औषधियां, अर्थात् कषाय, चूर्ण, अवलेह, भस्म, कल्प, आदि प्रकार जो वैद्यों, डाक्टरों और हकीमोंके बनाये होते हैं, उनका समावेश इसमें होता है। ये मानवी औषधियोंके प्रकार हैं। इससे श्रेष्ठ दैवी विधि है। (२) **दैवीः औषधयः**=आप, तेज, वायु, आदि देवोंके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह दैवी चिकित्सा है। जलचिकित्सा, सौरचिकित्सा, वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा आदि सब दैवी चिकित्साके प्रकार हैं। सूर्य चंद्र वायु आदि देवताओंके साक्षात्संबंधसे यह चिकित्सा होती है और आश्चर्यकारक गुण प्राप्त होता है, इसलिये इसकी योग्यता बडी है। इसके अतिरिक्त देवयज्ञ अर्थात् हवन आदि द्वारा जो चिकित्सा होती है उसका भी समावेश इसमें होता हे। देवयज्ञद्वारा देवताओंकी प्रसन्नता करके, उन देवताओंके जो जो अंश अपने शरीरमें हैं, उनका आरोग्य संपादन करना कोई अस्वाभाविक प्रकार नहीं है। यह बात युक्तियुक्त और तर्कगम्य भी है। (३) **आंगिरसीः औषधयः**=अंगों, अवयवों और इंद्रियोंमें एक प्रकारका रस रहता है, जिसके कारण हमारे अथवा प्राणियोंके शरीरकी स्थिति होती है। उस रसके द्वारा जो चिकित्सा होती है वह आंगि-रस-चिकित्सा कहलाती है। मानसिक इच्छाशक्तिकी प्रबल प्रेरणासे इस रसका अंगप्रत्यंगोंमें संचार करनेसे रोगोंकी निवृत्ति

होती है । मानसिक चित्तैकाग्र्यका इसमें विशेष संबंध है । रुग्ण अवयवको संबोधित करके नीरोगताके भावकी सूचना देना, तथा रोगीको निज अंगरसशक्तिकी प्रेरणा करनेके लिये उत्तेजित करना, इस विधिमें मुख्य है। निज आरोग्यके लिये बाह्य साधनोंकी निरपेक्षता इसमें होनेसे इसको आंगिरस-चिकित्सा अर्थात् अपने निज अंगोंके रसद्वारा होनेवाली चिकित्सा कहते हैं । (४) आथर्वणीः ओषधयः=' अ-थर्वा ' नाम है योगीका । मनकी विविध वृत्तियोंका निरोध करनेवाला, चित्तवृत्तियोंको स्वाधीन रखनेवाला योगी अथर्वा कहलाता है । इस शब्दका अर्थ (अ-थर्वा) निश्चल, स्तब्ध, स्थिर, गतिहीन ऐसा है । स्थितप्रज्ञ, स्थिरबुद्धि, स्थितमति आदि शब्द इसका भाव बताते हैं । योगी लोक मंत्रप्रयोगसे जो चिकित्सा करते हैं उसका नाम आथर्वणी-चिकित्सा होता है । हृदयके प्रेमसे, परमेश्वरभक्तिसे, मानसशक्तिसे और आत्मविश्वाससे मंत्रसिद्धि होती है। यह आथर्वणी-चिकित्सा सबसे श्रेष्ठ है क्यों कि इसमें जो कार्य होता है, वह आत्माकी शक्तिसे होता है, इस लिये अन्य चिकित्साओंकी अपेक्षा इसकी श्रेष्ठता है, इसमें कोई संदेहही नहीं है । ये सब चिकित्साके प्रकार तब तक कार्य करते हैं कि जब तक प्राण शरीरमें रहना चाहता है । जब प्राण चले जाता है, तब कोई चिकित्सा फलदायक नहीं हो सकती । इस प्रकार प्राणका महत्त्व विशेष है ।

प्राणकी वृष्टि ।

जो मनुष्य प्राणकी शक्तिका वर्णन श्रद्धासे सुनता है, प्राणके बलको विश्वाससे जानता है, प्राणका बल प्राप्त करनेमें यशस्वी होता है और जिस मनुष्यमें प्राण उत्तम रीतिसे प्रतिष्ठित और स्थिर रहता है, उसका ही सब सत्कार करते हैं, उसकी स्थिति उत्तम लोकमें होती है और उसीका यश सर्वत्र फैलता है । प्राणायामद्वारा जो अपने प्राणको प्रसन्न और स्वाधीन करता है, उसका यश सब प्रकारसे बढता है। इस उन्नीसवें मंत्रमें " बलि " शब्दका अर्थ सत्कार, पूजा, अर्पण, शक्तिप्रदान आदि प्रकारका है । सब अन्य देव प्राणको ही पूजते हैं, इस बातका अनुभव अपने शरीरमें भी आ सकता है । नेत्र कर्ण नासिका आदि सब अन्य देव प्राणकी ही पूजा करते हैं, प्राणकी उपासनासे ही प्राणकी शक्ति उनमें प्रकट होती है । इसी प्रकार प्राणायामकी साधना करनेवाले योगीका सत्कार अन्य सज्जन करते हैं और उसके

उपदेशसे प्राणोपासनाका मार्ग जानकर स्वयं बलवान् बन सकते हैं। यही कारण है कि प्राणायाम करनेवाले योगीकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

बीसवें मंत्रमें कहा है कि सूर्य चंद्र वायु आदि देवताओंके अंश मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरमें रहते हैं। वेही आंख नाक आदि अवयव किंवा इंद्रियोंके स्थानमें रहते हैं। इन देवताओंमें प्राणकी शक्ति व्याप्त है। यही व्यापक प्राण पूर्व देहको छोडकर दूसरे गर्भमें प्रविष्ट होता है। अर्थात् एकवार जन्म लेनेके पश्चात् पुनः जन्म लेता है। आत्माकी शक्तियोंका नाम शची है। इंद्रकी धर्मपत्नीका नाम शची होता है। धर्मपत्नीका भाव यहां निजशक्ति ही है। इंद्र जीवात्मा है और उसकी शक्तियां शची नामसे प्रसिद्ध हैं। पिताका अंश अपनी सब शक्तियोंके साथ पुत्रमें प्रविष्ट होता है। पिताके अंगों, अवयवों और इंद्रियोंके समानही पुत्रके कई अंग अवयव और इंद्रिय होते हैं। स्वभाव तथा गुणधर्म भी कई अंशमें मिलते हैं। इस बातको देखनेसे पता लग सकता है, कि पिता अपनी शक्तियोंके साथ पुत्रमें किस प्रकार प्रविष्ट होता है। गृहस्थी लोगोंको इस बातका विशेष विचार करना चाहिए, क्यों-कि प्रजा निर्माण करना उनका ही विषय है। मातापिताके अच्छे और बुरे गुणदोष संतानमें आते हैं, इसलिये मातापिताको स्वयं निर्दोष होकर ही संतान उत्पन्न करने-का विचार करना चाहिए। अर्थात् दोषी मातापिताको संतान उत्पन्न करनेका अधिकार नहीं है।

इक्कीसवें मंत्रमें " हंस " नाम प्राणका है। श्वास अंदर जानेके समय " स " का ध्वनि होता है और उच्छ्वास बाहेर आनेके समय " ह " का ध्वनि होता है। 'ह' और 'स' मिल कर " हंस " शब्द प्राणवाचक बनता है। उसीके अन्य रूप " अ-हंसः, सोऽहं " आदि उपासनाके लिये बनाये गये हैं। इनमें 'हंस' शब्द ही मुख्य है। उलटा शब्द बनानेसे इसीका " सोऽहं " बन जाना है, अथवा 'हंस' के साथ 'ओं' मिलानेसे 'सोऽहं' बन जाता है।

स—ह	ह—स
ओ--म्	म्--अओ (अः)
सोऽहं	हं सः

पाठक यहां दोनों प्रकारके रूप देख सकते हैं। सांप्रदायिक झगडोंसे दूर रहकर मूल वैदिक कल्पनाको यदि पाठक देखेंगे तो उनको बडा आश्चर्य प्रतीत होगा। 'ओं' शब्द आत्माका वाचक है और 'हंस' शब्द प्राणका वाचक है। आत्माका

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि० सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

(१) यजुर्वेद । बिना जिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥
कागजी जिल्द २) ")
कापडी जिल्द २॥) ",
रेशमी जिल्द ३) "

(३) संस्कृतपाठमाला १ अंकका मू. ।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥।=)

४ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू १) ।)

(५) अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।
१ प्रथम काण्ड २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड २) ॥)
३ तृतीय काण्ड २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड २) ॥)
५ पंचम काण्ड २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड २) ॥)
७ सप्तम काण्ड २) ॥)
८ अष्टम काण्ड २) ॥)
[illegible]वम काण्ड २) ॥)
[illegible]श काण्ड १) ।=)
[illegible]ांड १) ।)
[illegible]सक ४ काण्ड २॥) ॥)

[illegible]छूत और अछूत।
१-२ भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

श्रीपाद दा[illegible]
स्वाध्याय-मंडळ,

(७) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से ८ प्रत्येकका मू० ॥) डा०व्य० =)

(८) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(९) वेदका स्वयंशिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(१०) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन।(सचित्र) २) ।≡)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
३ सूर्यभेदन-व्यायाम। " ॥) =)
४ योगसाधनकी तैयारी। ॥।) ।)

(११) यजु.अ.३६ शांतिका उपाय ॥=) ।)

(१२) शतपथबोधामृत ।) -)

(१३) देवतापरिचय ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१४) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक ≡) -)

(१५) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ॥।) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) ॥)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता ॥।) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

१६ उपनिषदमाला। १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद्। १।) ।-)

(१७) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) ॥)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
५ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
6 Sun Adoration १) ।=)

gd.N.B.1463

गीता।

संपादक— पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०
"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु वी०पी०से ३।=) "
दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
" " " " " " वी. पी. से ५।।) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा अ वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्य माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिससे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है।

आदिपर्व ६॥≡) रु.; सभापर्व २॥) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५॥=) भीष्मपर्व ४॥≡) रु.; द्रोणपर्व ८॥) रु.; कर्णपर्व ३॥) रु.; शल्यपर्व २॥-) रु.; सौप्तिकपर्व ॥) स्त्रीपर्व ।॥-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६।≡) रु.; आश्वमेधिकपर्व २।।-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु.; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ।॥-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक—श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध.

आषाढ
संवत् १९९२
जोलाई
सन १९३५
वर्ष १६
अंक ७
क्रमांक
१८७

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३)　　वी० पी० से ३॥)　　विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृतपाठमाला"

क २४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये । २४ भागोंका मूल्य ६ ॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य १) और एक भागका मू० ॥) । वी०पी० द्वारा ।) चार आने अधिक मूल्य होगा ।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

विषयसूची

वैदिक प्राणविद्या
(नया संस्करण)

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है। मूल्य ॥) और डा० व्य०=) है।

मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ब्रह्मचर्यका विघ्न

मूल्य =) दो आने। डा० व्य-) डा० व्य० सहित मू०=) तीन आनेकी टिकट भेजकर पुस्तक मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा.)

नया संस्करण! नया संस्करण

योगसाधनकी तैयारी

योगसाधनसे हमारी शक्ति बढती है, इसलिये योगविषयक अत्यन्त आवश्यक प्रारंभिक बातोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया है।

अच्छी जिल्द मू० ॥।) बारह आने। डा०व्य० ।) इस लिये १) एक रु० म० आ० से या टिकट द्वारा भेजकर शीघ्र ही यह पुस्तक मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि०सातारा)

YOGA

An International Illustrated Practical Monthy on the Science of Yoga edited by Shri Yogendra

Specimen Copy As. 8.;
Annual Subscription Rs. 3

YOGA INSTITUTE
P. B. 481 BOMBAY

ग णे श

क्यों दिन दिन लोकप्रिय हो रहा है?
इसलिए कि

वह प्रजातंत्र का परम पक्षपाती है।
सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रांति का कट्टर समर्थक है।
दलितों, पतितों और पीड़ितों का सच्चा सखा है।
निरंकुश राजाओं और अत्याचारी शासकों से जमकर लोहा लेता है।
तथा महिला-संसार, बाल-विनोद, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति, राज्यों की हलचल आदि इसके विशेष स्तंभ हैं।

फिर भी वार्षिक मूल्य ३ रु. है।

मैनेजर 'गणेश' कार्यालय, राजामंडी, आगरा

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का
सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य २॥) रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे पूर्ण होनेसे देखनेलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। जादह हकीकत के लिये लिखो।

मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोदा

वर्ष १६

अंक ७

क्रमांक १८७

आषाढ
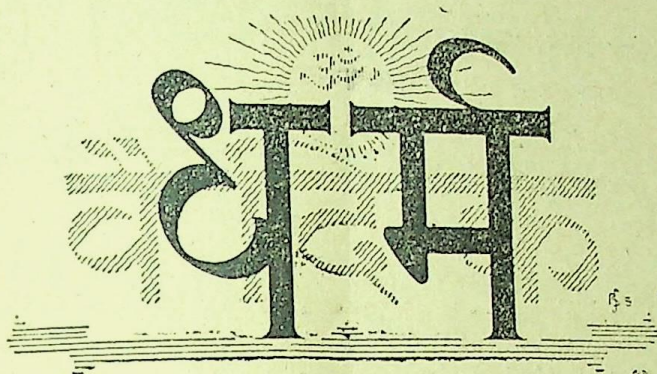
संवत् १९९२

जोलाई

सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

वीरकी प्रशंसा करो।

इमं वीरमनुहर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनुसंरभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥

अथर्ववेद ६।९७।३

"हे मित्रो! (इमं ग्रामजितं) शत्रुके ग्रामोंको जीतनेवाले, (अज्म जयन्तं) युद्धमें जय प्राप्त करनेवाले, (गोजितं) गौवें अथवा भूमिको प्राप्त करनेवाले, (ओजसा प्रमृणन्तं) वेगसे शत्रुका पराजय करनेवाले (वज्रबाहुं उग्रं वीरं इन्द्रं) वज्रधारी शूरवीर इन्द्रको (अनुहर्षध्वं) अनुकूलतापूर्वक हर्षयुक्त करो और (अनुसंरभध्वं) उसकी बधाईके लिये महोत्सव करो।"

जो शूरवीर होंगे, जो शत्रुको परास्त करके उसके ग्राम, कीले, भूमिके विभाग, गौ-बैल तथा ऐश्वर्य अपने आधीन करते हैं, वेगसे शत्रुपर हमला करते हैं और शत्रुको परास्त करते हैं, उन शस्त्रधारी सर्वविजयी शूरवीरकी प्रशंसा करो, उनके महोत्सव करो। इससे जो इन महोत्सवोंमें संमिलित होंगे उनमें वीरता आ जायगी और वे भी वैसे वीर बन जाँयगे। वीरोंके महोत्सवोंसे यह लाभ है।

वर्णव्यवस्था या जातिव्यवस्था और उसका शैक्षणिक महत्त्व।

आर्य लोगोंके सतलज नदी किनारे रहते तक उनमें ऋषियोंका कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं होने पाया था। प्रत्येक ऋषि, धर्मगुरु, लडाका वीर और किसान भी था। आजके हिन्दुसमाजकी खासियत या विशिष्टता जिन नियमों तथा समाजबंधनों द्वारा पहिचानी जाती है उनका तब अस्तित्व न था; यही बात वर्तमानकी उस कालसे भिन्नता दर्साती है। हाँ, उस कालमें भी कतिपय कुलोंको इसलिये महत्त्व दिया गया था कि उनमें धार्मिक यज्ञयाग करनेका विशेष ज्ञान और ऋचाओंकी दैवी शक्ति थी। दूसरे ऋषि क्षात्र पराक्रममें बढे चढे थे। कुछ समय के बाद सतलज पार कर आर्य गंगाकी तराइयों में आ बसे। यहां रहते रहते उनके समाजमें व्यवहारोंके कारण जटिलता आचली तथा उनकी सभ्यताके साधनोंका विकास विभिन्न स्वरूपोंमें होता रहा। वास्तवमें धार्मिक विधि उनकी सभ्यताका एक अंग मात्र था, पर वह इतना जटिल हो गया की, ये धार्मिकविधि उत्तम रीतिसे करनेके लिये तथा परंपरागत धर्मकार्य भावी पीढियोंमें अखंड चलता जावे इसलिये कई ऋषियोंने अपना समय और उत्साह उसीमें लगा दिया। समाजकी आवश्यकताएं बढ रही थीं, उसकी जटिलता भी वढ चुकी थी; समाजमें पृथकता अथवा भिन्नता पैदा होना अब तो असंभव था। प्लेटोके समान भारतीय आर्योंने भी श्रमविभागके तत्त्वकी कुशलतासे योजना की। गीताके श्लोकमें जैसा कहा है, उसी प्रकार वे अपने व्यवसाय एवं जन्मजात गुणोंके कारण चार वर्णोंमें या जातियोंमें आस्ते आस्ते विभाजित हुवे।

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।'

(गीता अ. ४ श्लो० १३)

'(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस प्रकार) चार वर्णोंकी व्यवस्था गुण एवं कर्मके भेदके अनुसार मैने ही की।'

हिन्दी दार्शनिकों का मत था, कि जिस प्रकृतिद्वारा मनुष्योंका स्वभाव ज्ञात होता है, वह प्रकृति सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणों अथवा तत्त्वोंद्वारा बनी है। ये (सत्त्व, रज और तम) तत्त्व प्रकृतिमें समप्रमाण नहीं रहते, वे कम या अधिक होते हैं। किसी व्यक्तिमें एककी मात्रा कम या ज्यादा हो तो दूसरेमें दूसरे तत्त्व की। व्यक्तिमें सत्त्व रज तममेंसे जो तत्त्व अधिक हो वही उसका स्वभाव होगा। यह वर्णव्यवस्था आज हमें कृत्रिम या बनावटी मालूम होती है; इन वर्णोंमें यथार्थ गुणकर्मोंका अभाव भी कईबार नजर आता है; परंतु, इसी वर्णव्यवस्थाका विकास प्राचीन हिन्दुस्थानमें आद्य भारतीय आर्योंकी सभ्यताके विविध अंगके नातेसे होना विलकुल स्वाभाविक था।

दीर्घकालपर्यन्त जातिभेद तीव्र न हो सका, मिश्र-विवाह निषिद्ध नहीं था। इस बात का पता नीचे लिखे श्लोकोंसे चलेगा–

ब्राह्मणीं क्षत्रियां कन्यां वैश्यां शूद्रीं तथैव च।
यस्या एते गुणाः सन्ति तां मे कन्यां प्रवेदय॥
न कुलेन न गोत्रेण कुमारो मम विस्मितः।
गुणे सत्ये च धर्मे च तत्रास्य रमते मनः।

मुझे तो वह कन्या बताओ, जो इन गुणोंसे युक्त हो; वह भलेही किसी ब्राह्मण की, या किसी क्षत्रिय की या शूद्रकी भी होवे। क्योंकि मेरा पुत्र (गौतम) का विश्वास कुल अथवा वंशपर (उतना) नहीं है।

उसका मन गुण, सत्य और धर्म ही में रमता है।' (ललितविस्तार अ. १२)

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अंत्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

शुभ (जिसका प्रत्यक्ष अनुभव हो सके) ऐसी विद्या श्रद्धायुक्त होकर शूद्रके पाससे भी गृहण की जावे। चांडालसे भी उत्तम धर्म (मोक्ष का उपाय) लिया जावे और सुंदर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त स्त्री अपनेसे नीच कुल की होनेपर भी स्वीकृत की जावे। (मनु अ. २ श्लो. २३८)

इसके सिवाय ब्राह्मणोंकी ज्ञानदात्री संस्थाओंमें क्षत्रिय और वैश्य भी प्रवेश कर सकते थे। जनक, जावाली तथा अजातशत्रु जैसे अनेक क्षत्रिय इतने महान् शास्त्रज्ञ हो गए थे, कि ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषासे ब्राह्मण लोग उनके समीप बारबार जाया करते थे। इसपर भी वैदिक साहित्य क्लिष्ट अर्थात् समझनेमें कठिन होनेसे सर्वसाधारण क्षत्रियोंने उस साहित्य का यथेष्ट उपयोग नहीं किया। इससे ब्राह्मणोंपर लगाए जानेवाले इस अपवादका निराकरण होता है, कि उन्होंने अपनी जातिके सिवाय अन्य जातिको अपने पवित्र साहित्य का उपयोग करने नहीं दिया। अपने साहित्य को चौकेमें रखने की तो बातही दूर रही, उसका अध्ययन सब कोई करे और जबर्दस्ती करना पडे, इसलिये भी उन्होंने खूब कोशिश की। जो कोई अध्ययन करना टाले उसे सक्त सजा का भी डर किस प्रकार बताया जाता था, इसका पता मनुस्मृति का श्लोक देता है-

'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥'

" जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) वेदका अध्ययन किये विना यदि अन्य बात (अर्थशास्त्रादि अध्ययन) में परिश्रम करे तो वह इसी जन्ममें पुत्रपौत्रादि सह शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है।" शंखलिखितों (स्मृतिलेखकों) का कहना है कि वेदाभ्यास के पहले स्मृति का अध्ययन करनेमें दोष नहीं है।" (मनु अ. २ श्लो. १६८) इन दलीलोंसे इस बातका पता चलता है कि, उन दिनों सद्गुण और विद्या ही श्रेष्ठता की प्राप्तिके राजमार्ग थे। उच्चवर्णीय विद्यावान् होते हुवे भी, यदि उनमें आत्मसंयमका अभाव होवे तो वे हीन गिने जाते थे। निम्नलिखित श्लोक यह बताता है-

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयंत्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥

" शास्त्र नियमके अनुसार बरतनेवाला ब्राह्मण, यद्यपि वह गायत्री मंत्रके सिवाय कुछ जानता नहीं, श्रेष्ठ है; और शास्त्रके नियमों को व्यवहारमें न पालनेवाला सब प्रकारके (निषिद्ध) भोजन करनेवाला, सब (निषिद्ध) चीजों को बेचनेवाला, तीनों वेद पठन कर लेने परभी श्रेष्ठ नहीं हो सकता।" (मनु. अ. २ श्लो. ११८)

इसलिये वे ब्राह्मण जो अपना सब समय वेदाध्ययनमें लगाते थे, धार्मिक शिक्षा देते थे, यज्ञयाग करते थे और आत्मसंयमन करते थे, खूब आदर पाते थे। दूसरी बात यह कि यद्यपि सब आर्यमात्र पर वेदाध्ययन करनेकी सख्ती थी। तिसपर भी हरएक का खास कार्य अथवा व्यवसाय और उसके लिये जरूरी लगनेवाले अध्ययन को अधिक मानते थे। मनुने कहा है-

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥
(मनु. अ. २ श्लो. १५५)

ब्राह्मणको ज्येष्ठत्व विद्यासे, क्षत्रियको पराक्रमसे, वैश्यको धान्यधनसे मिलता है, पर शूद्रको केवल जन्म (अधिक उम्र) से ही है।" प्राचीन हिंन्दी तत्त्ववेत्ताओंने इस बातपर अधिक जोर लगाया; क्यों कि ऐसा न करें तो व्यक्तिका हितसंबंध समाजके हितसंबंधमें, विलीन होजावेंगे, ऐसा डर उन्हें आधुनिक तत्त्ववेत्ताओंके समान लगा रहता था। वर्तमान शिक्षणशास्त्रज्ञों का कथन है, कि अपनी शिक्षा (सिखाने) की पद्धति या क्रम, दूसरोंके शिक्षाक्रम से बुद्धहीन होनेपर भी अच्छी होगी। ठीक यही मत गीताके इस श्लोकसे प्रगट होता है-

श्रेयान् स्वधर्मोविगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ गी.१८।४७

"दूसरे का धर्म व्यवहारके लिये सरल होवे और अपना धर्म अर्थात् चातुर्वर्ण्यविहितकर्म दोषयुक्त होवे, पर (दोनोंमें) श्रेष्ठ अपना धर्म ही है । अपना स्वभावसिद्ध अर्थात् गुणस्वभावानुरूप निर्माण की गई जो चातुर्वर्ण्यव्यवस्था उसकेद्वारा प्राप्त कर्म करनेवाले को दोष नहीं लगता।" सत्य तो यह है, कि शिक्षा के अनुसार ही अन्य बातों में भी किसी व्यक्ति की अभिरुचि तथा कार्य करनेकी पद्धतिका, विचार किये बिना ही उसपर कोई खास कर्म या पद्धति जबरन् लाद देना बेअक्ली है । क्योंकि विद्यार्थियोंकी अनुकरण प्रवृत्तिका महत्त्व मानते हुवे भी हम यह कह सकते हैं कि कार्य करनेमें, मनुष्य को जो यश मिलता है, वह यश उस मनुष्यकी कार्य करनेकी होशियारीपर अवलंबित है । हर्बर्ट स्पेन्सरने कहा है, 'उमदा और चुने हथियार हुवे भी अकुशल कारीगर काम बिगाड देगा, और सबसे अच्छी शिक्षाप्रणालीका अमलमें लाते हुवे भी अयोग्य शिक्षक असफल होगा । ' यथार्थमें, ऐसी बातोंमें तो शिक्षाप्रणालीका अच्छापन ही असफलताका कारण होता है; क्योंकि, अकुशल व्यक्तिके हाथ तीखी धारवाले हथियार देना ही काम बिगाडता है ।

कोई एक अच्छा धंधा है और अन्य वर्गीय व्यक्ति वह धंधा अच्छा है इसलिये करने जावे; यदि वह नालायक होवे, तो उस धंधेमें उसकी नालयकीका क्या परिणाम होगा, यह भी देखें । पहली बात तो यह है कि शायद वह मनुष्य इस प्रयत्नमें अपना और अपने कुटुंबका नाश करले । यदि कुछ सफलता वह प्राप्त भी करले. तो भी वह अपने बापदादोंका धंधा करनेके लिये नालायक हो जावेगा; इसके सिवाय जिस जातिका धंधा वह कर रहा है, उस जातिका एक सामान्य घटक बननेमें भी वह असमर्थ होगा । इस प्रकार जो व्यक्ति अपनी बुद्धिके प्रभावसे अपने कुल या वर्णका अति उपयोगी अंग बन जाता, वही अपने कुल या वर्णके कर्तव्यकर्म त्यागनेके कारण दोनों तरफसे नालायक बन बैठता है । इतना ही नही पर अपने समाज और कुलके लिये वह भारभूत हो जाता है । यही कारण है कि गीता हमें इशारा देती है-

श्रेयान् स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह: ॥

दूसरोंका धर्म आचारमें सुख देनेवाला होवे और अपना धर्म अर्थात् चातुर्वर्ण्यविहित कर्म उससे विगुण याने सदोष हो तब भी अपना धर्म उससे कहीं अच्छा है । स्वधर्म (के अनुसार आचार करने) से मृत्यु आवे तो भी उसमें कल्याण है; (परंतु) दूसरेका धर्म भयानक है । (गीता ३।३५)

कोई भी व्यक्ति अपनी जातीका परंपरागत धंदा न छोडे, वरन् उसे वह अविश्रांत करता रहे । वह स्वयं ऐसी शिक्षा हासिल करे, या अपने कुटुंबियोंसे और लडकोंसे करावे जिससे वह और उसके लडके या रिश्तेदार ऐसी पात्रता प्राप्त कर लेवें जिसके द्वारा वे या उनके वंशज अपनेसे उच्चवर्णीय कर्तव्यकर्मका सहजमें अंगीकार कर सकें, और वे कर्तव्यकर्मसे अपने कुटुंबको बिना तकलीफ या अडचनके निभा सकें । कारण यह है, कि यह आखिरी शर्त पूरी करनेके लिये, केवल भरपूर साधन होनेसे ही काम नहीं चलता, किंतु उस प्रथाके अनुसार कार्य करने के लिये उसमें खास सामाजिक और आनुवंशिक बडप्पन भी रहना आवश्यक है । दूसरी बात यह है, कि हमारे दार्शनिकोंने उन व्यक्तियों को सावधानी और दक्षता रखनेका आदेश दिया है, जो अपने कर्तव्यकर्म छोड अपनेसे ऊंचे वर्णका कार्य करना चाहते हैं । उस कालमें भिन्न भिन्न वर्णोंके बीच अभेद्य परकोटे खिंचे हुवे नहीं थे, बल्कि नीचे उद्धृत श्लोक से जान पडता है कि नीच वर्णके लडकेमें, यदि उच्चजातिके खास गुण मौजूद हों तो उसे उच्चजातिमें ले लिया करते थे-

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशय: ॥

' हे सन्मान्य यक्ष, सुनो । मनुष्यको द्विजत्व न तो जन्मसे, न शास्त्रावलोकनसे, न वेदाध्ययनसे मिलता

है; वह केवल कर्महीसे उसे प्राप्त होता है। (महाभारत वन. प. ३१२।१०३)

शूद्रे च यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्॥

जो बात शूद्रमें पाई जाती है सो ब्राह्मणमें नहीं दीखती। यह बात नहीं है कि जो (जन्मसे) शूद्र, वही शूद्र और ब्राह्मण सो ब्राह्मण है। हे सर्प। जिसमें ये लक्षण हों, वही ब्राह्मण, और जिसमें उनका अभाव हो उसे शूद्र कहना चाहिये।' (महा. भा. वन. प. अ. १८०)

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥ (३८)

"यदि किसी व्यक्तिमें अपने वर्णके सिवाय अन्य वर्णके लक्षण दीख पडें, तो वह व्यक्ति उस वर्णका समझा जावे" (श्रीमद्भागवत सर्ग ७ अ. ११)

इन दलीलोंसे दीख पडता है कि प्राचीन कालमें किसी भी व्यक्ति को अपना सामाजिक दर्जा बदलनेका अधिकार हम समझते हैं उससे कहीं अधिक था। नागरिकों की कार्यक्षमता बढानेके लिये जिस लोकशाहीके कार्यक्रमको अमलमें लानेके लिये पश्चिमी दुनियां इतनी उत्सुक है; वह बात उस समयके लचीली-सामाजिक स्थितिमें अनायास हो जाती थी। प्राचीन भारतमें समाज एक विराट् पुरुष था और भिन्न वर्ण उसकी सभ्यताके भिन्न भिन्न अंग थे।

जिस प्रकार आजकी दुनियां चाहती है उसी प्रकार हिन्दुस्थानमें व्यक्ति के विकासके लिये भरपूर अवकाश था। इतनी बात ऊपर दी हुई दलीलोंसे पूरी साबित होती है। यथार्थ में वर्णव्यवस्था ही के कारण आत्मज्ञान और समाजसेवा दोनोंका एक साथ निर्वाह हो सका। समाजकी कार्यक्षमताका विकास होनेके लिये व्यक्तिको अपनी श्रेष्ठतम शक्तियोंका विकास करनेके लिये, अवकाश मिलना जरूरी है, यह सत्य इतने प्राचीन कालमें भी भारतीय आर्य समझ चुके थे। हरएक मनुष्यकी नैसर्गिक श्रेष्ठतम शक्तिकी दिशा मालूम करलेना और उस दिशाके अनुसार उसे सेवा करने योग्य बनाना शिक्षाका कार्य है। शिक्षाका तत्त्वही यही है, और प्राचीन भारतमें जिस ध्येयकी उदार शिक्षाद्वारा पूर्ति करनी थी उस आदर्श या ध्येयका यह व्यक्त स्वरूप है।

कोई खास शिक्षा लेनेवालेकी प्रवृत्ति और पात्रता एवं अधिकार जान लेनेके लिये सबसे अधिक चेष्टा प्राचीन समयमें की जाती थी। उस कालके अध्यापक-गण पूर्णतया जान गये थे, कि व्यक्ति की चाह और कार्य पद्धतिको मालूम कर लिये विना यदि उसे ज्ञानदान किया जावे, तो उसका परिणाम अवश्य भयानक होगा। इसीसे यह कहा गया है:-

वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः॥

'प्राचीनकालमें प्रतिपादित किया हुआ यह वेदोंका परम गुह्य ऐसे व्यक्तिसे न कहा जावे जिसने मनोविकारों पर जय प्राप्त न करली हो। किंबहुना अपना पुत्र यदि अपात्र होवे या शिष्य उसके लायक न होवे, तो उसको भी वह न दिया जावे।' (श्वेताश्वर. उपनिषत् ६।२२)

'जो अपना शिष्य वा पुत्र नहीं, और जिसका अंतःकरण शुद्ध नहीं, ऐसेको कोई भी मनुष्य अपनी गुप्त विद्या न सिखावे। वह उसीको विद्या सिखावे जिसकी गुरुके प्रति अनन्य भक्ति हो और जिसमें सब आवश्यक गुण हों।'

विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मां मा दास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा॥
(मनु २।११४)

'विद्याकी अधिष्ठात्री देवताने विद्या पढानेवाले ब्राम्हणके पास आकर कहा की मैं तेरी निधि (रक्षायोग्य वस्तु) हूं; मेरी रक्षा कर और मुझे उस पुरुषको मत दे जो असूयादि दोषसे मुक्त न हो। इस प्रकार यदि तू मेरी रक्षा करेगा, तो मैं अत्यंत वीर्यवती होऊंगी।'

यमेव तु शुचिं विद्यां नियतं ब्रह्मचारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने॥ ११५॥

'जो ब्राह्मण पवित्र, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, (विद्यारूपी) निधिकी रक्षा करनेवाला और प्रमादरहित दिखे, उसी ब्राह्मण को मुझे अर्पण कर।'

विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत्॥ ११३

"वेदका अध्ययन करनेवाला घोर आपत्ति आनेपर विद्याको अपने साथ लिये पर भलेहि जावे; परंतु अयोग्य शिष्यमें उस विद्याके बीजको न बोवे।"

पांडूके पुत्रोंसे कला और शास्त्रों की भिन्न शाखाओंका अध्ययन कराया गया था; यह बात भी हमारे कथनका अनुमोदन करती है। पाटलिपुत्रके राजा शूरसेनने अपने अज्ञानी और दुर्गुणी पुत्रोंको गुरु विष्णुशर्मा के स्वाधीन किया था। विष्णुशर्मा ने जिस पद्धति * का अंगीकार किया उस से जान पडता है, कि प्राचीन भारत को भी शिक्षा के इस आधुनिक तत्वका परिचय हो चुका था, कि शिक्षाके लिये बालकोंकी प्रवृत्ति तथा उनकी आवश्यकता के अनुरूपही शिक्षाके विषय यथा प्रणालि भी नियत की जाय। इस सदीके शिक्षणशास्त्रज्ञोंके समान हमारे तत्ववेत्ता भी कोई शिक्षा प्रणालि मुकर्रर कर देनेके पहले शिष्यकी ग्राहकशक्ति और अधिकार का भी विचार कर लेते थे। जो अच्छा योद्धा हो सकेगा, ऐसे नागरिक को धर्मोपदेशक बनाने की चेष्टा करनेमें अपना समय और शक्ति नष्ट करना हानिकारक है! इससे तो यह जाहिर होता है कि, शूद्रोंको पवित्र वेदोंका अध्ययन करनेका अधिकार न देना ब्राह्मणोंकी क्षुद्र मनोवृत्ति का निदर्शक नहीं है; वह तो इस बातको सप्रमाण सिद्ध कर देता है, कि इतने पुरातन कालमें भी उन्हें एक ऐसे शैक्षणिक तत्त्व का पूरा ज्ञान था जो आधुनिक शैक्षणिक तत्वोंमेंसे एक है। मामुली तौर से शूद्रों को वेदाध्ययन करने का अधिकार नहीं दिया गया था; इसका कारण यह था कि उनमें वैदिक साहित्य की भाषा एवं उसका रहस्य समझ लेने की शक्ति नहीं थी। न परंपरा भी और न प्रवृत्ति या पात्रता ही थी। ऐसा नहीं है, कि यह बात आद्य हिन्दुओंकी ही खासियत थी। ग्रीकोंमें इस से भी कहीं अधिक खराबियां पाई जाती हैं। ॲरिस्टाटल का मत था, की गुलाम और कारागीरोंके लिये नागरिकत्व या उच्च आयुष्यक्रम प्राप्त कर लेना असंभव है; क्यों कि कारागीर या गुलामकी हैसियत से दिन बिताते हुवे उन्हें सद्गुण प्रवर्तक बातों की तरफ ध्यान देते नहीं बन सकता। प्लेटो की पद्धति भी इस विषय में ऐसी ही नबाबी या सुलतानी शान की थी। उसका कथन यों था, कि केवल दार्शनिक अर्थात् तत्ववेत्ताहि सिंहासनपर चढे, क्यों कि अधिकसे 'अधिक हित पहिचाननेवाला तत्ववेत्ता वही है,' और अधिकतम हित जाननेकी अभिलाषा, प्लेटोके मतानुसार, बहुत थोडे लोगों ही में दीख पडती है।

---

* विष्णुशर्माको पता लग गया था, कि उन राजपुत्रोंको कबूतर पालनेका इतना शौक हो गया था, कि वे उसके पीछे पागल हो गए थे। इसलिये उसने राजपुत्रोंसे कहा, "आपलोग सिवाय कबूतर उडाने, उन्हें खिलाने पिलाने और कबूतरखाने में उनकी निगाह रखनेके सिवाय और कोई काम न करें।" यह सुनकर स्वाभाविकतः राजपुत्रोंको बहुत आनंद हुआ। जैसे जैसे कबूतरोंकी संख्या बढने लगी, वैसे वैसे उन कबूतरोंको नाम देकर उनकी गिनती करना आवश्य हुआ। विष्णुशर्माने उन कबूतरोंके पंखोंपर लाल निशान देकर क, ख, ग, इ. तथा १, २, ३ इत्यादि नाम मुकर्रर किये। विष्णुशर्मा बहुत चतुर था; इस हिकमतसे राजपुत्रोंको मूलाक्षरों की पहचान हुई और उन्होने धीरे धीरे संयुक्ताक्षर और शब्द भी सीख लिये। उन कबूतरोंको गिनते गिनते, आसपासके दो या तीन खानोंमें मिलकर कितने हैं, एक या दो उड गए तो बाकी कितने बचे, यह बतलाते बतलते सहजहीमें अंकगणितके ज्ञानकी नींव पड गई। इस विलक्षण पद्धतिसे उन राजपुत्रोंको न केवल अंकोंके चिन्होंका, गिनती करनेका, जोड वसूल का ही ज्ञान हुआ, वरन् उन्हें कबूतरोंके घरोंकी योजना और रचना करते हुए आवश्यक ऐसे इंजिनियरिंगका, वास्तुशास्त्रका, (House building) तथा चित्रकला का भी थोडा बहुत शिक्षण मिल गया। इसके भी आगे उन्हें इसी पद्धतिसे नीतिशास्त्र और राजकारणका शिक्षण भी दिया गया। पंचतंत्र और हितोपदेश के कहानियोंसे यह बात साबित होती है।

दूसरी बात यह है कि प्राचीन भारतमें जीवन-कलह इतना तीव्र नहीं होने पाया था, इसी कारण सामाजिक या आर्थिक अडचनें भी न थीं। ऐसी अवस्थामें फल क्या होगा, इसकी चिन्ता लोगोंमें अधिक न थी। सिवाय इसके समाजमें किसी भी वर्णके मनुष्यका खास स्थान, उपयुक्तता और उसका दर्जा सब कुछ इतना निश्चित रहता था, कि उसे अपना धंधा या व्यवसाय बदलनेकी जरूरत मालूम नहीं होती थी। नतीजा यह हुवा कि जाति-विशिष्ट आदतों के कारण हरएक वर्ण का व्यवसाय और धंधा बहुत कुछ आनुवंशीक हो बैठा। इस वजहसे जिन ब्राह्मणोंने अपना समय और शक्ति वेद और तत्संबंधी शास्त्रों का अध्ययन करनेमें और यज्ञादि विधि का ज्ञान प्राप्त करनेमें खर्च किया, उनके पास आस्ते आस्ते उच्च शिक्षा देनेका अधिकार आ गया। इन दिनों जातिनिर्बंध की कठोरता प्रतीत होनेका कारण यही है, यही बात आगे कई वर्षतक हिन्दुस्थानको कलंक लगाने और उसको नीच दशाको ले जानेवाली अर्थात शापके समान बनी रहेगी, ऐसा जोरशोर से कहा जाता है। परंतु इसका दोष ब्राह्मणों के सिरपर ज्यादा नहीं है, कुछ थोडा दोष भलेही होवे, क्यों कि वे धंधे आनुवंशिक इसलिये हो सके कि उपर्युक्त बातों पर, देशकी अलग और दीवार से विभक्त ऐसी विशिष्ट परिस्थितिके कारण, बाह्य बातों का कुछ असर न हो सका। अल्पाधिक प्रमाणमें इन्हीं बातों के कारण, प्राचीन भारतमें (सामाजिक व्यवहारमें) जो लचीलापन था और जिस लचीलेपन की वर्तमान भारतकी राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितिमें अत्यंत आवश्यकता है, वह अबके समाज में नही रहा। सचमुचमें अभी अभी तक ब्राह्मणों ने वर्णव्यवस्थाका अर्थ ऐसी अनुदारतासे नहीं किया था। ऊपर दिये हुए कारणोंका यह परिणाम हुवा कि वर्णव्यवस्थाका असली मतलब लोग समझ न सके और जातिनिर्बंध तीव्र कर देने की प्रवृत्ति होने लगी। इस प्रवृत्ति को लगाम लगानेवाली शक्तियां हमेशा मौजूद रहीं। इन्हीं शक्तियोंका परिणत फल बौद्ध धर्ममें साफ दिखाई देता है। मध्ययुगमें वर्णव्यवस्थाकी तीव्रता या सख्ती कम करनेके लिये नानक, कबीर, चैतन्य द्वारा जो चेष्टा की गई, वह इस तीव्र जाति-निर्बंध को लगाम लगानेका प्रयत्न था। ब्राह्मणोंने जातिनिर्बंधों के बारेमें तब इसलिये सख्ती की थी जब कि परकीय सत्ताके कारण आरोग्य विषयक विचार, उत्तेजनद्वारा आध्यात्मिक नाशका डर, और अपना खून पाक बनाए रखने की तीव्र इच्छा आर्यों के दिलमें वर्तमान थीं।

आर्. सी. दत्त का कथन है कि वर्णव्यवस्था पर प्राचीन भारतके इतिहास लेखक भलेही शोक प्रदर्शित करें, पर वे यह कभी न भूलेंकि मुसलमानी सलनत के आक्रमण के पहले इस के दुष्परिणाम हिन्दुस्थानमें प्रतीत नहीं हुवे।

(Civilization in Ancient India, Vol. 156)

आजकी वर्णव्यवस्था के स्वरूपमें बहुतसी बुराइयां भले ही हों,उससे एक कार्य अवश्य साध्य होता है। जिस प्रकार कोमल अंकुरके बाढकी रक्षा चारों ओर लगी हुई बाडीसे होती है उसी प्रकार वर्णव्यवस्था से विशिष्टवर्णके बालकपर होनेवाले परकीय संस्कारोंसे उसका संरक्षण होता है। वास्तवमें वर्णव्यवस्था एक उत्कृष्ट नमूना है। इसका सुबूत यह है की इतने कालतक वह चली आती है। आजकल वह कुछ निर्जीवसी हुई है क्योंकि गुणकर्मकी दृष्टिसे उसका महत्त्व अब न रहा। तो भी एक समय था, कि जब उसने समाजकी रक्षा की है। परकीय परिस्थितिको अपनानेका विलक्षण गुण उसमें होनेके कारण वह आज भी हिन्दुसमाजकी उस क्रान्तिको लगाम लगा रही है जो क्रान्ति अपनाव्यक्तित्व खोये बिना नवीन परिस्थितिसे आस्ते आस्ते समरस होती जाती है।

यहां यह कहना आवश्यक है। कि वर्णव्यवस्था अपनी नैसर्गिक स्थितिमें दुनियामें सब जगह, कम या अधिक प्रमाणमें, मौजूद है, समाजके भिन्न

भिन्न दर्जेके लोगोंमें जो फरक मानाजाता है उसीसे हमारे कथनको पूरा प्रमाण मिलता है ।

अंतमें, मध्ययुगीन युरुपीय संस्था और भारतीय वर्णव्यवस्थामें जो आश्चर्यकारक साम्य है, उसपर एक नजर डालना मनोरंजक होगा । मध्ययुगीन युरुपके धर्मोपदेशक (clergy), सरदार (Knight) और सामान्य लोग, हिन्दुस्थानके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंसे मिलते जुलते हैं । हिन्दुस्थानके समान वहां भी धर्मगुरुओंकी संगोपनात्मक चिंता ही से काफी समय तक विद्या की अभिवृद्धि होती रही; और, उन पुरोहितोंने विद्यापर इतना जबर्दस्त कब्जा कर लिया था, कि राष्ट्रीय शिक्षाप्रणालीका विकास करते समय शिक्षासंबंधी संपूर्ण अधिकार अपने हाथमें लेनेके लिये राष्ट्रको इन धर्मोपदेशकोंके साथ बहुतही झगडना पडा ।

सर् मॉनिअर् विलयम् ने लिखा है, "इसमें शक नहीं, कि सामाजिक घटना की हैसियतसे वर्ण और जाति हरएक देशमें मौजूद है, इंग्लैंडमें भी उसका उतना ही प्राबल्य है।"

यदि आपको अपने धर्मका अच्छी प्रकार अध्ययन करना है, तो आप

वैदिक संपत्ति

पुस्तक मंगवाईये । मूल्य ६) रु० और डा० व्य० १) रु० है । यह पुस्तक आप प्रारंभसे अन्ततक पढिये । एक वार अथवा दो वार पढिये । मननपूर्वक पढनेपर भी यदि आपको पसंद न आवे तो हमें लिखियें, हम आपके दाम वापस करेंगे और पुस्तक वापस मंगावेंगे। इसमें आपका कोई नुकसान नहीं है । एक वार यह पुस्तक आप पढेंगे, तो इसे आप छोड नहीं सकते । यह पुस्तक आपके साथ आजन्म रहनेयोग्य है । डा०व्य०सहित ७) सात रु० म० आर्डर द्वारा भेजकर पुस्तक मंगवाइये । शीघ्रता कीजिये ।

—स्वाध्यायमंडल, औंध, (जि० सातारा)

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।

स्व० लोकमान्य बाळ गंगाधर टिळक

[फोटो और ब्लॉक्स- श्री० एन्. व्ही. वीरकर, मोहन बिल्डींग, गिरगांव, मुंबई]
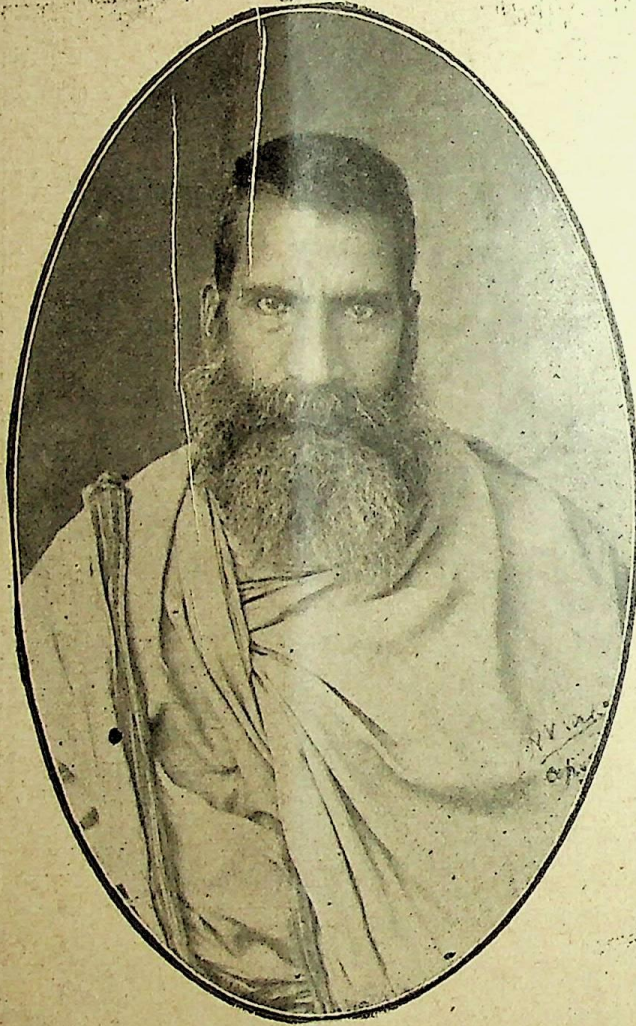
राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।

स्वर्गीय श्री० मुन्शीरामजी (श्री स्वामी श्रद्धानंदजी महाराज)

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।
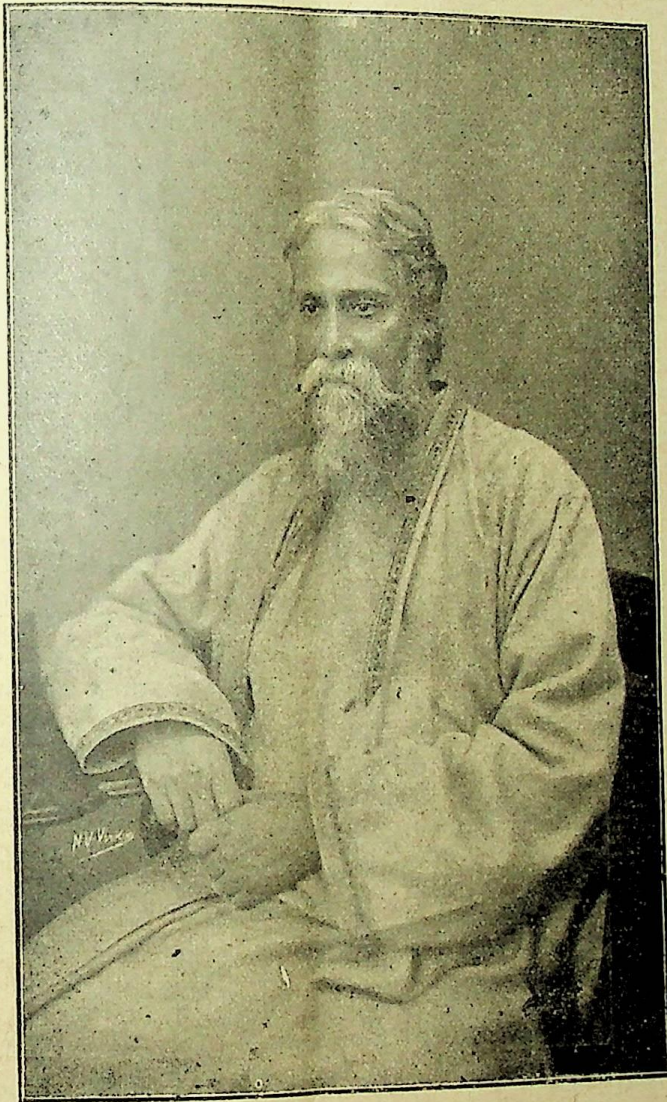
श्री. कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ टागौर

[फोटो और ब्लॉक्स-श्री०एन्. व्ही. वीरकर, मोहन बिल्डींग, गिरगांव, मुंबई]

राष्ट्र-धुरीण-चित्रमाला।

खडे हुए –स्व० दादासाहेब करंदीकर, श्री० न. चिं. केळकर

कुर्सीपर–स्व० बिपिनचन्द्र पाल, स्व० लो. बा. गं. टिळक, श्री० दादासाहेब खापर्डे

ॐ तत्सत्

अध्यात्म-विज्ञान का महत्त्व !

लेखक— श्री० ब्र० सच्चिदानन्दजी, नेपाली, राँची (विहार प्रान्त)

हमारे धर्मशास्त्रोंमें वेद ही अग्रणीय और सर्वमान्य कहे गये हैं; क्योंकि इनमें साद्यन्त अध्यात्म-विज्ञान का ही महत्व भरा हुआ दिखाई देता है। यों तो वेदोंमें समस्त सद्विषयों का निरूपण किया गया है; पर विशेषतया उनमें अध्यात्म-विज्ञान की ही गूढता दिखाई देती है। यहाँ तक कि ' वेद ' शब्द के धातुजन्य शाब्दिक अर्थोंमें भी अध्यात्म-विज्ञान का ही रहस्य छिपा हुआ है।

वेद के आध्यात्मिक- रहस्यों का मनन करने के लिये, सर्वप्रथम ' वेद ' के शाब्दिक अर्थोंपर दृष्टिपात करना चाहिए। जब तक हमें ' वेद ' शब्द के शाब्दिक अर्थों की विलक्षणता विदित न होगी, तब तक वेदमन्त्रों के अध्यात्म- विषयक भावों को समझना अत्यन्त दुस्तर है। अतएव पाठकों के लाभार्थ सर्वप्रथम ' वेद ' शब्दके शाब्दिक अर्थों-पर निम्नप्रकार विचार किया जाता है—

' वेद ' शब्द इन चार धातुओंके योग से बना है-(१) विद-ज्ञाने, (२) विद-विचारणे, (३) विद्ल-लाभे और (४) विदु-सत्तायाम्।

धातुज अर्थ

(१) ईश्वरीय ज्ञान (२) सृष्टिविचार (३) सत्य का अस्तित्व और (४) कैवल्य प्राप्ति।

वेदोंमें इन चार विषयोंपर प्रकाश डाला गया है, अतएव वे ' यथा नाम तथा गुणाः ' इस कथनानुसार ' वेद ' इस सर्वोच्च नाम के अधिकारी हैं; अन्यथा वे 'अध्यात्म-विज्ञानके भण्डार' किस प्रकार कहलाते? अस्तु, पूर्वोक्त कथनों का तात्पर्य यह है कि वेद ही चारों दिशाओं तथा चार प्रकार की सिद्धियों के जयध्वज हैं। मानव-समाज के पथ- प्रदर्शक और उभयलौकिक सिद्धियों के परिचायक भी वेद ही हैं। वेद ही अज्ञान-तम-तमो-भेदक, भयनिवारक एवं शत्रु- सन्तापक ' सूर्य ' हैं। वेद ही मानव समाज की अन्तर्वेदनाओं का उपशमन करनेवाले, तापनिवारक तथा शान्तिप्रदायक ' चन्द्रमा ' हैं। दुर्दैव-चक्र-प्रहार-पीडित मनुष्य— समाज की शोचनीय दीन—दशा को परिवर्तित करने के लिये, वेद ही ' परब्रह्म स्वरूप ' हैं। वेद ही मृगतृष्णा के समान व्याकुल एवं तृषित मनुष्य की, तृषाको मेटनेके लिये 'शीतल सलिल स्वरूप' हैं।

वेदही हिमालय के तुषार परिवेष्ठित शिखरोंपर विचरण करनेवाले, प्रशान्तात्मा तथा जितेन्द्रिय ऋषि, महर्षि और योगियों के प्राण हैं। भागीरथी अथवा नर्मदा तीरस्थ तपस्वियोंके शरीरोंको शीतल करनेके लिये वेद ही 'पवन' हैं। वेद ही ब्रह्मचारियों को अमर बनानेवाले 'अमृत' हैं। वेद ही वान-प्रस्थियों को आनन्द देनेवाले 'नन्दन विपिन' हैं। वेद ही वीतराग संन्यासियों के 'जीवन' हैं। गृह-स्थियोंके 'आधार-स्थल,' वेद ही हैं। वेद योगियों के लिये 'योगरूप' और भोगियों के लिये 'भोग-रूप' हैं। कहाँ तक वेदोंकी महिमा का गान करें? जैसे अगाध जलवाले सप्तसिन्धु, सप्त द्वीप और आकाश की महिमा का आद्योपान्त कोई वर्णन नहीं कर सकता, ठीक इसी प्रकार वेदोंकी महिमाका कोई भी पुरुष विशद रूपेण निरूपण नहीं कर सकता। तात्पर्य ईश्वरके समान वेदकी महिमा भी अज्ञेय, अगम्य और अनिर्वचनीय है।

वेदोंको अपौरुषेय, पूर्ण, अज्ञेय, अगम्य और अनिर्वचनीय कहनेका वास्तविक अभिप्राय क्या है ? इस बात पर युक्तिपूर्वक निम्नप्रकार विचार किया जाता है।

(१) वेद अ-पुरुष अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मासे प्रादुर्भूत हुए हैं।

(२) वेद यदि मनुष्य-कृत होते तो उनके अन्दर 'पूर्णता' अथवा 'सर्वज्ञता' न पायी जाती; क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है, अतएव एकदेशीय अल्पज्ञ व्यक्तिके ज्ञानमें सार्वभौमी पूर्ण-विज्ञानका उपलक्षित होना सर्वथा असंभव है।

(३) ईश्वर 'पूर्ण' है। ज्ञान, बल, विद्या, बुद्धि, शक्ति, ऐश्वर्य आदि समस्त श्रेष्ठ विभूतियोंकी 'पूर्णता' उसमें है। यहाँ तक कि वह जगत्में भी 'पूर्ण' है, अतएव उसका 'वैदिक-विज्ञान' 'अपूर्ण' सिद्ध नहीं हो सकता। तात्पर्य उसका वैदिक विज्ञान पूर्ण और सार्वभौम स्वतः सिद्ध है।

(४) मनुष्य 'अल्पज्ञ' है- अपूर्ण है। ज्ञान, बल, विद्या, बुद्धि आदि सभी श्रेष्ठ विषयोंमें उसकी 'अपूर्णता' 'अल्पज्ञता' किंवा 'असर्वज्ञता' दिखाई देती है, अतएव उसके 'विज्ञान'में किसप्रकार पूर्णता की प्रतीति हो सकती है ? इस हेतुसे भी वेदोंको अपौरुषेय ही मानना पडेगा।

(५) वेदोंके अपौरुषेय होनेमें सबसे बडी सतर्क युक्ति यह है कि- 'वेदके अक्षर-अक्षरके अनगिनती अर्थ हैं, और इन अक्षरोंके द्वारा धातुएँ बनीं, जिनमें न जाने कितने अर्थोंका समावेश हुआ होगा, और फिर उन अर्थमय धातुओंसे 'शब्द' बने, जिनमें न जाने कितने अर्थ-गंभीर; क्लिष्ट एवं सरल भावोंका समावेश हुआ होगा, और फिर ऐसे क्लिष्ट तथा अर्थ-गंभीर शब्दोंके सहचारसे 'वाक्य' बने, और ऐसे अनगिनती वाक्यों के सहयोगसे 'वेदोंकी भाषा' बनी, और वह भाषा भी कैसी कि क्लिष्ट-पद्य-रूपात्मक। वेदोंकी भाषा पद्यरूपात्मक संस्कृत होनेसे यह आपत्ति आई कि 'वेदोंके छन्द, ऋषि, स्वर, देवता आदिका पूर्ण बोध इस जीवन-कालमें किस प्रकारसे हो ? इस तरह वेदोंकी भाषा अज्ञेय, अगम्य, अनिर्वचनीय, क्लिष्ट और सुगुह्य हुई। क्या देववाणी की इतनी क्लिष्ट पद्यरूपात्मक भाषा (जिसकी महिमाका दिग्दर्शन लाखों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता) एक अल्पज्ञ एवं बन्दर के समान अल्पकाय मनुष्यके दिमागसे प्रसूत हो सकती है ? इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि वेदोंका पूर्ण-विज्ञान पूर्ण परब्रह्मसे ही प्रसूत हुआ है, अपूर्ण मनुष्यसे नहीं। जिस 'अपूर्ण' मनुष्यको 'पूर्ण' ब्रह्मने रचा, उस पूर्ण परब्रह्मका ज्ञान क्या 'अपूर्ण' हो सकता है ?'

वेदकी भाषा स्वाभाविक है। यह भाषा 'स्व-भाव' अर्थात् अध्यात्म ब्रह्मसे उद्गत हुई है। 'स्व-भाव' और 'अध्यात्म' ये दोनों 'ईश्वरीय भाव' अथवा ईश्वरके उद्बोधक शब्द हैं। अब 'स्वभाव' और 'अध्यात्म' शब्दों पर भी दृष्टिपात कीजिए।

स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते। गी० ८।३

'' अध्यात्म ' को ही ' स्वभाव ' कहा गया है।' भगवान् श्रीकृष्ण के इस कथन का अभिप्राय यह है, कि परमात्मा आत्मा का अधिष्ठाता होने से ' अध्यात्म ' (अधि + आत्मन्) संज्ञक है, उसका जो स्व- भाव अर्थात् निज भाव है उसका नाम ' स्वभाव ' अथवा ' अध्यात्म ' है। ' स्व ' शब्द का अर्थ ' सुख ' और ' भाव ' शब्द का अर्थ ' चैतन्य पदार्थ ' है अर्थात् आनन्दस्वरूप चैतन्य पदार्थ का नाम ' स्व- भाव ' है। इसी ' स्वभाव ' का दूसरा नाम ' अध्यात्म है। यहाँ ' स्वभाव ' और 'अध्यात्म' शब्द के विषयमें प्रकाश डालकर मैंने इस बात के सिद्ध करने की कोशिश की है कि वेद ' स्वभाव ' किंवा ' अध्यात्म ' नामक पर-ब्रह्म की स्वाभाविक अर्थात् नैसर्गिक रचना के नमूने हैं, अतएव उनमें यत्र तत्र अध्यात्म विज्ञान की ही गूढता दिखाई देती है। इसीकारण संसार का कोई भी मजहबी ग्रन्थ हमारे वेदों का मुकाबला नहीं कर सकता।

वैदिक वाङ्‌मयमें इतना कूट रहस्य है, कि हम क्या कहें ? नमूने के लिये 'वेद' शब्द के निम्न-लिखित धातु विश्लेषणों और अर्थों पर ध्यान दीजिए—

(१) 'वेद' शब्द वि उपसर्ग पूर्वक 'डुदाञ् दाने' इस धातुके योग से बना है। 'वि' उपसर्ग के 'विशेष' और 'रहित' ये दो अर्थ हैं। इन अर्थों के अनुसार 'वि + द' अथवा 'वे + द' शब्द का अर्थ हुआ–

'विज्ञान- वर्धक दान' 'विचित्र दान' और 'अ- दान'। 'पात्रों को जो धन अथवा विद्या आदि का दान दिया जाता है वह 'विज्ञान वर्धक विचित्र दान' कहाता है। इस दान का वेदोंमें उल्लेख है तथा इस बात का भी वेदोंमें उल्लेख है कि 'कुपात्रों को दान नहीं देना चाहिए। 'प्रमाणार्थ निम्नलिखित मन्त्र विचारशील, पाठकों के समक्ष उपस्थित किये जाते हैं–

ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति प्रजाः। न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् । ऋ. १।१९०।५.

इस मन्त्रमें पापी तथा कुपात्र आदि को धन न देने की प्रार्थना की गई है। तथा—

इन्द्रमीशानमोजसाऽभिस्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसी ॥
ऋ. १ । ११ । ८

इस मन्त्रमें– 'परमेश्वर पात्रों को सहस्रों विज्ञानवर्धक, विचित्र दान देता है'– यह बात बताई गई है।

(२) वि उपसर्ग पूर्वक 'दाप् लवने' इस धातुसे भी 'वेद' शब्द सिद्ध होता है– 'जो 'वि' = विशेषतया भव- बन्धनों को 'द' = काटने का उपाय बतावे वह 'वेद' कहाता है। प्रमाणार्थ निम्नलिखित मन्त्रोंपर दृष्टिपात कीजिए–

न पापासो मनामहे नारायासो न जळहवः ।
यदि न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै।
ऋ. ८ । ६१ । ११

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ ऋ. ५ । ८२ । ५

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमो ऽवति हन्त्यासत् ॥ ऋ. ७ । १०४ । १२

इन मन्त्रोंमें – 'पापों का निराकरण और सत्य का समर्थन करते हुए, कैवल्य प्राप्ति के अधिकारी बनो' इस बात की सूचना दी गई है।

(३) 'वेञ् तन्तुसन्ताने' और 'डुदाञ् दाने' इन दोनों धातुओं के सहयोग से भी 'वे + द' शब्द की सिद्धि होती है। 'जिसमें सूत कातकर कपडे बुनने की विधि, बताई गई हो वह 'वेद' कहता है। देखिए निम्नलिखित मन्त्र क्या कहते हैं: —

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्। प्रान्या तन्तूँस्तिरते धत्ते अन्या नापवृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥ अ. १०।७

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न विजानामि यतरा परस्तात्। पुमानेनद्वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद्विजभाराधिनाके ॥ अ. १०।७

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्। तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ य. २० । ४१।

वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ॥ ऋ. ५।४७।६

इन मन्त्रोंमें सूत कातकर कपडे बुनने की विधि बताई है। 'माताएं अपने बच्चोंके लिये कपडे बुने' यह वेदोपदेश माताओंको स्मरण रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त ज्ञानी पुरुषोंको भी कपडा बुननेका आदेश है—

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ॥ य. १९।८०

भोग-विलासके चक्करमें फँसे हुए तथा कामासक्त पुरुष वेदके इस सुन्दर आदेशका पालन करके अपने गृहको स्वर्गधाम बनानेकी चेष्टा करें, और भोगकी लालसाका विसर्जन करें, अन्यथा भोग

शत्रु उन्हें सांसारिक बन्धनोंमें फँसा कर मोक्ष फल-सिद्धिसे वञ्चित कर देगा।

ऊपरके मन्त्रमें वर्णित उपदेशोंका सार विशेष-तया धनवानोंको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि भोग-विलासके चक्करमें फँस कर, वे समाजमें निन्द्य और परिहार्य हो रहे हैं। वे आज भोग-विलासके कारण इतने नीच विचारवाले, धृष्ट और अभिमानी हो गये हैं, कि हम क्या कहें ? निम्नलिखित कविताओंमें उनकी वर्तमान दशाका बहुत ही अच्छा चित्र खींचा गया है-

जो हैं धनी रहते सदा मदके नशेमें चूर हैं। वे निर्बलों पर बल दिखाना जानते भरपूर हैं। पाण्डित्य छिद्रान्वेषणोंमें शूरता है बातमें, बल, क्रोधमें है कान्ति उनकी शान्ति है अप-घातमें ॥ १ ॥

हो ब्रह्मचारी या गृही या वानप्रस्थी या यती। उनके समक्ष सभी अशिक्षित हैं वही शिक्षित-पती। वे वाग्विशिखसे शिक्षितोंके चित्तको-हैं फोडते। वे धर्मपथसे क्या कभी सम्बन्ध अपना जोडते ॥ २ ॥

मोटार विना दो पैर भी पैदल कभी चलते नहीं। बन्दूक ले पहुचैं जहाँ वनजन्तु होवें वे वहीं। हा ! उन अभागोंने विगाडा क्या वहाँ उनका कहो? जो बल दिखाने जा रहे वे उन अबोधों पर अहो ॥ ३ ॥

नर क्या, विहग भी देखकर उनको सदा हैं भागते। मृगराज सिंह, वराह, भालू शौर्य अपना त्यागते। इससे पता चलता यही 'वे क्रूरताके सद्म हैं। अन्याय, कोप, अधर्मसे संयुक्त वे छल-छद्म हैं॥ ४ ॥

पतलून धारण कर जरा निकले कि बाहर शानसे। वे दूसरोंको हीन पशु-सम देखते अभिमानसे। मानों, वही त्रैलोक्यमें सम्पन्न हैं, बलवान हैं। सुर भी नहीं हैं दीखते उनके सदृश गुणवान हैं ॥ ५ ॥

करते सलाम उन्हें सभी वे विष्णु-सम सम्मा-न्य हैं। लुच्चों, लफङ्गों, स्वार्थियोंके मध्यमें सुवदान्य हैं। 'बैगुन गुणी' 'वेगुन' बना सम्राट अकबरके यहाँ। क्या बीरबल-से स्वार्थियोंकी है कमी उनके यहाँ ॥ ६ ॥

धनवान 'इन्द्र' खुशामदी 'देवर्षि'सम विख्यात हैं। 'पौलोमि'[1] सम हैं श्रीमती जो कोमलाङ्गी ख्यात हैं। उनकी सभामें लेडियाँ 'देवाङ्गना'-सी सोहतीं। जो चन्द्रवदनी बन सदा सबके मनोंको मोहतीं ॥ ७ ॥

गृह 'वैजयन्त' 'जयन्त' सुत, पुत्री 'जयन्ती' तुल्य हैं। हैं ज्येष्ठ-बन्धु विरञ्चि-सम मध्यम हरीके तुल्य हैं। लघु शम्भु-सम हैं, गृहिणियाँ लक्ष्म्यादि देवीतुल्य हैं। पीयूष, 'मदिरा' 'चा-गरम' शुचि सोमरसके तुल्य हैं ॥ ८ ॥

वे मांस, मछली, वारुणी, सिगरेट, बीडी, चा-गरम। नमकीन चीजें, पूरियाँ, हलुवा उडावें बेशरम। लड्डू, जलेबी, मगद, पेडे और रसगुल्ले कभी। पर, देशकी दुर्भिक्षताका ध्यान क्या रखते कभी ॥ ९ ॥

"हमको पडी क्या देशसे? जब अन्न-पूरित गेह है। धन, पुत्र, मित्र, कलत्र आदिकसे हमारा स्नेह है।'

यों कह रहे अज्ञान के अनुचर धनी फूले हुए। वे आज है उन्मार्गगामी मार्ग को भूले हुए ॥१०॥

विद्वज्जनों का वे अनादर खूब करना जानते। अपने समक्ष समस्त जग को मूक-सम वे मानते। अधिकार पाकर गर्व करना अज्ञात का चिह्न है। होना रसाल- सदृश रसिक ही विज्ञता का चिह्न है " ॥ ११ ॥

जो वृक्ष गर्वोन्नद्ध हैं वे वायु के उद्वेग से। होते पतित हैं सर्वथा या वज्रके ही वेग से। अतएव धनियों को सँभल कर पैर रखना चाहिए। संसा-रमें आकर सदा ही 'सार' लेना चाहिए"॥१२॥

---

1 इन्द्राणी

'बन कर अहङ्कारी कभी पाता न कोई मान है। रावण तथा कंसादि का क्यों हो रहा अपमान है? क्या वे नहीं थे विज्ञ शिक्षित? यदि नहीं, कैसे हुए-। वे भूप? तो फिर खुद बताओ आज तुम कैसे हुए? ॥ १३ ॥

इन कविताओं को पढकर कोई भी समझदार व्यक्ति, धनवानों की अवस्थापर अफसोस प्रकट किये विना नहीं रह सकता। अतएव धनियों को चाहिए कि वे अपनी दशाओं को आप सुधारने का प्रयत्न करें और वेद की राह पर आ जायँ। अन्यथा उनके इस विलासपूर्ण जीवन से देश, जाति और समाज का अहित होने की संभावना है। अस्तु-

पाठक वर्ग! ऊपर के मन्त्रों में सूत कातकर कपडा बुनने का सर्वसाधारण के लिए विधान किया गया है। अतएव 'वे + द' इस द्व्यक्षर धातुजन्य शब्द के तन्तु, सन्तानादि पूर्वोक्त अर्थ यथार्थतया पुष्ट हुए। अब इसी [वेद] शब्द के अन्य अर्थोंपर पुनः दृष्टिपात कीजिए—

(४) 'विद सत्तायाम्' इस धातु से भी वेद शब्द सिद्ध होता है। विद' इस धातुमें दो अक्षरोंका समावेश है- 'वि' और 'द'। 'वि' का अर्थ विशेषतया और 'द' का अर्थ है अविच्छिन्न, अर्थात् जो विशेषतया अविच्छिन्न यानी पूर्ण व्यापक हो वह 'वेद' कहाता है। वेद का ज्ञान सर्वव्यापक परमात्मा की तरह अविच्छिन्न त्रिकालाबाधित एवं कूट है। इसमें परमात्माके ज्ञान, बल, बुद्धि, शक्ति, ऐश्वर्य आदि विभूतियोंका विस्तृत वर्णन है। नमूनेके लिए अधोलिखित मन्त्रों पर दृष्टिपात कीजिए—

नहि ते क्षत्रं, न सहो, न मन्युं, वयश्च नामी पतयन्त आपुः। नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ऋ. १।२।१५।६

इस मन्त्रमें ईश्वरीय सत्ताका वर्णन करते हुए कहा गया है कि- 'हे महामहनीय कीर्तिमन्! (अमी) ये (पतयन्तः) उत्थान-पतनधर्मी (वयः) मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चैतन्य प्राणी तथा सूर्य चन्द्रादि तैजस पदार्थ, (ते) तेरी (मन्युम्) मनन शक्ति (क्षत्रम्) क्षात्र शक्ति (च) और (सहः) सहनशक्तिका (न-न-न-न आपुः) सर्वथा पार नहीं पा सकते। (अनिमिषं चरन्तीः इमा आपः अपि) निर्निमेष भावसे विचरण करनेवाले ये जलस्रोत भी (ते न आपुः) तेरे उक्त गुणोंका पार नहीं पा सकते, और (ये) जो (वातस्य) वायुकी वेगवान् शक्तियाँ हैं, वे भी (ते) तेरी (अ—भ्वम्) अभूतपूर्वशक्ति का (न प्र-मिनन्ति) विघात नहीं कर सकतीं।

'ईश्वरकी अपार महिमा है! उसकी अनन्तशक्ति का कोई भी विघात नहीं कर सकता' यह इस मन्त्रका भाव है। अब देखिए दूसरा मन्त्र—

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥
अ. १०।७।२८

इस मन्त्रका भाव यह है कि- 'लोग सूर्यको ही परमाधिष्ठान और अवर्णनीय समझते हैं, परन्तु उस सूर्यको भी परमात्माने सृष्ट्युत्पत्ति कालमें दोनों लोकोंके बीचमें बनाकर रक्खा।'

जो * सूर्य विज्ञानवेत्ताओं द्वारा १२००००० (बारह लाख) पृथिवीके जितना महत्परिमाणवाला सिद्ध किया जा चुका है, उस महान् तेजस्वी सर्वाधार हिरण्यगर्भ (सूर्य) का रचयिता सर्वाधार हिरण्यगर्भ कितना महान् तेजस्वी होगा? विद्वान् पुरुष इस बात का स्वयं अनुभव करें।

ऊपर के मन्त्रमें सूर्य की महत्ता दिखाकर, परमेश्वर की अनन्त शक्तिमत्ता का दिग्दर्शन कराया है। इसके अतिरिक्त दैवज्ञों का कथन है कि आकाश

* वैज्ञानिकोंका कथन है कि सूर्य पृथिवी की अपेक्षा १२००००० गुणा बडा है, और पृथिवीसे ३००००१०० माइल दूर है। सुदूरवर्ती होनेके कारण यह छोटासा दिखाई देता है।

में कई तारे ऐसे हैं जो कि पृथिवी, सूर्य चन्द्रादि से भी बडे हैं। अब विचारशील पुरुष ईश्वर की महत्ता, पूर्णता और अखण्ड शक्तिमत्ता पर स्वयं विचार करें।

पाठक गण! वेदोंमें ऐसे सहस्रों मन्त्र हैं, जो ईश्वरीय महिमा का दिग्दर्शन कराते हैं, परन्तु वे सब लेखनी और वाणी से अवर्णनीय हैं, अतएव विद्वानों को चाहिए कि वे ऐसे मन्त्रों का स्वयमेव अनुसन्धान करें।

(८) वेद शब्द 'विद्–ज्ञाने' इस धातु से भी बनता है। तदनुसार वेद शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ–'सत्य विज्ञान'। वेदमें सब प्रकार की सत्य विद्याओं का उल्लेख है। यथा—

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥ अ. ७।६।३

इस मन्त्र के अनेक अर्थ हैं। इसमें प्रकृति, शक्ति, विद्या, बुद्धि, मेधा, धृति, क्षमा आदि अनन्त विषयों का निरूपण करके 'दैवी नौका' = विमान का वर्णन किया गया है। इस मन्त्र के लिखने का तात्पर्य यह है कि, वेदमें समस्त सत्य विद्याओं का उल्लेख है, अन्यथा वैदिक वाङ्मय की पूर्णता किस प्रकार से उपलक्षित होती?

(९) वेद शब्द 'विद्–विचारणे' और 'विद्लृ लाभे' इन दो धातुओं के सहचार से भी बनता है। तदनुसार वेद का लक्षण यह हुआ कि–'जिसमें मोक्ष प्राप्ति के साधनोंपर विचार किया गया हो वह वेद कहाता है।' यथा—

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ य. ३६।१८॥

समानं मनः सह चित्तमेषाम्॥ ऋ. १०-१९१-३

अकामो धीरो अमृतः॥ अ. १०।८।४४

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥
अ. १०।८।२६

इन मन्त्रोंमें मोक्षप्राप्ति के ये निम्नलिखित साधन बताये गये हैं—

(१) समदर्शी बनकर समस्त प्राणियों को परमेश्वर के समान मित्रवत् दृष्टि से देखना।

(२) प्राणियों को सहयोग देना तथा उनके साथ सहानुभूति रखना।

(३) संसारमें निष्काम कर्म करते हुए धैर्यशाली और अमर बनने की चेष्टा करना। तथा—

(४) ज्ञानवान् बनकर ईश्वराराधन करना।

ये मोक्षप्राप्ति के चार उपाय हैं। इन का वेदों में यथा स्थान सुविस्तृत रूप से, वर्णन किया गया है।

पाठक वृन्द! देखिए, 'वेद' शब्द में कितनी गूढता है! यही कारण है कि संसार के समस्त धर्मग्रन्थ वेदों के समक्ष निस्तेज से प्रतीत होते हैं। वेदों में शाब्दिक अर्थों की गूढता और सार्वभौमिक-सार्वज्ञ-विज्ञान होने से वे ईश्वरकृत स्वतः सिद्ध हैं। दूसरी बात यह है कि वेद स्वतः प्रमाण हैं, उन्हें किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं। मनुष्यकृत ग्रन्थ परतः प्रमाण होने से अन्य प्रमाणों की अपेक्षा रखते हैं।

वेदों की भाषा प्राकृतिक अर्थात् नैसर्गिक है, और मनुष्यों की भाषा अप्राकृतिक अर्थात् अस्वाभाविक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो भाषा अस्वाभाविक होती है, उसे नैसर्गिक भाषा (वेद) की सहायता अपेक्षित है। अतएव इस दृष्टि से यदि वेदों को सम्पूर्ण भाषाओं, सभ्यताओं और आचार-विचारों की जननी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं।

ईश्वरीय ज्ञानकी आवश्यकता

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ यजुः ३१।१८

पदार्थः- (अहम्) मैं (तमसः) अन्धकारसे (परस्तात्) परे (आदित्य-वर्णम्) सूर्यके समान विशुभ्र वर्णवाले (एतं महान्तं पुरुषम्) इस महा-

पुरुष व पुराण पुरुष को (वेद) जानता हूँ। मनुष्य (तं एव) उसे ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम्) मृत्युका (अति+एति=अत्येति) अतिक्रमण कर सकता है (अयनाय) मोक्षप्राप्तिके लिये [ईश्वरीय ज्ञानसे बढकर श्रेयस्कर] (अन्यः) दूसरा (पन्थाः) मार्ग (न विद्यते) है ही नहीं।

इस मन्त्रका आशय यह कि— 'मनुष्य 'ईश्वरीय-ज्ञान' द्वारा मृत्युका अतिक्रमण कर सकता है। मोक्ष-प्राप्तिके लिए 'ईश्वरीय-ज्ञान' से बढकर श्रेयस्कर अन्य मार्ग है ही नहीं।' अर्थात् मोक्ष प्राप्तिका सर्वोच्चतम साधन 'ईश्वरीय-ज्ञान' है। मनुष्य इस सर्वोत्तम ज्ञानका आश्रय किये विना कदापि मुक्त हो नहीं सकता। जैसा कि श्रुतियोंमें कहा भी है- 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' 'अ-वेदवित् अर्थात् वेदानभिज्ञ पुरुष, उस परब्रह्मकी ब्राह्मी शक्तिको नहीं पहचान सकता, और उस दिव्य शक्तिको विना पहिचाने मुक्ति मिलनी असंभव है।' इससे यह सिद्ध हुआ कि मोक्षप्राप्ति के लिये ईश्वरीय-ज्ञान अर्थात् वेदोंका स्वाध्याय करना अत्यावश्यक है। इस विषयमें अथर्ववेद भी कहता है कि—

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।
अथर्व· १०।८।३२

'त्रिकालाबाधित, अजर-अमर ईश्वरीय काव्य का अनुशीलन करना अत्यावश्यक है।' क्योंकि-

'इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।'
अथर्व १०।८।२६

'प्रयत्नसे अनुशीलन की हुई यह अजर अमर वेदवाणी जरामरणधर्मी मानव-गृह (अन्तःकरण) में अवस्थित होकर सबका कल्याण करती है।'

इन मन्त्रों के कहने का तात्पर्य यह है कि—— "ईश्वरीय स्वरूप का अनुभव करने के हेतु वेदों का स्वाध्याय करना अत्यावश्यक है। मनुष्यमात्र को वेदों के स्वाध्याय का पूर्ण अधिकार है। अतएव मुक्ति की स्पृहा रखनेवाले प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति का कर्तव्य है, कि वह वेदों का कुछ न कुछ स्वाध्याय प्रतिदिन अवश्य किया करे।' यजुर्वेदमें भी लिखा है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजुः २६।२

'यह कल्याणकारिणी वेदवाणी, सर्वसाधारण के लिये कही गई है। अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रीपुत्रादि आत्मीय जन तथा भाट आदि को भी वेदों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन का पूर्णाधिकार है। इस विषय में किसी को हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं।'

यह ईश्वरीय- विज्ञप्ति है। प्रत्येक विचारशील पुरुष को यह विज्ञापन सावधानी से पढना या सुनना चाहिए। तदनन्तर जगत्पति सम्राट् के उक्त आदेशका समुचित रीति से पालन करनेमें समुद्यत होना चाहिए। जो लोग इस विज्ञप्ति पर ध्यान न देंगे, उन्हें अवश्य ही चिरकाल तक नरकरूपी बन्दीगृहमें वास करना पडेगा। अतएव सावधानी से जगत्पति सम्राट् के आदेशों को पढो और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने की कोशिश करो। अन्यथा तुम्हें ऋचाओं के अध्ययन मात्र से कुछ भी लाभ न होगा। सुनो—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ऋ·१।१६४।३९

[यह कूट मन्त्र है। इसके अनेकों अर्थ हैं]

पदार्थः— (यस्मिन्) जिस (अक्ष-रे) अक्षिगोचर अर्थात् १ साकार (अ- क्षरे) अविनाशी अर्थात् निराकार (व्योमन् = 'व्योमनि') आकाशवत् व्यापक (परमे ब्रह्मणि) परब्रह्ममें

(१) 'द्वे वाव ब्रम्हणो रूपे मूर्तममूर्तं चेति' वचनप्रामाण्यात्साकारो निराकारश्चेत्यभिहितः।

(देवाः) अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा आदि देवगण और (ऋचः) वैदिक ऋचाएँ (अधि+नि+सेदुः) अधिष्ठित हैं (तत्) उस (महामहनीय परब्रह्म) को (यः) जो (पुरुष) (न वेद) जानने की चेष्टा नहीं करता (सः) वह (ऋचा) ऋचा द्वारा (किं करिष्यति) क्या करेगा ? (ये) जो (इत्) निश्चय ही (तत् विदुः) उसको जानने की कोशिश करेंगे (ते) वे (इमे[१]) इन दोनों को ही (सम् + आसते) उत्तम रीति से प्राप्त कर सकेंगे ।

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि— 'जो ईश्वरीय स्वरूप को समझने की चेष्टा न करके, नास्तिक बनने की इच्छा रखता हो, वह ऋचाओं के समूह यानी वेदों का अध्ययन करना छोड दे। वेद उन नास्तिक पुरुषों के लिये नहीं रचे गये हैं, जो कि ईश्वरीय स्वरूप को समझे विना वैदिक ऋचाओं से लाभ उठाने की फिक्र में हैं। जो निश्चयात्मक दृष्टि से ईश्वरीय स्वरूप का अनुभव करना चाहते हैं, ऐसे ही आप्त पुरुषों के लिये वैदिक ऋचाओं का विधान किया गया है। '

उक्त मन्त्र का द्वितीय अर्थः-

(यस्मिन्) जिस (परमे अ- क्षरे) परम अविनाशी (व्योमन् = वि- ओम्- अन्) ईश्वर, जीव और प्रकृति के रहस्यों से युक्त (वेद में) (देवाः ऋचः) समस्त दिव्य ऋचाएँ अथवा देवता, मन्त्र, ऋषि, स्वर आदि (अधिनिषेदुः) अधिष्ठित हैं, उस वेद की महिमा या गूढता को जो नहीं जानता, वह मन्त्र-पाठक मात्र बनकर क्या करेगा अथवा मन्त्रों से उसे क्या लाभ होगा ? परन्तु जो लोग मन्त्रोंकी महिमाको जानते हैं,वे ही स्वर्ग, नरक-धर्म, अधर्म-जय, पराजय-लाभ, हानि-सुख दुःख,इत्यादि विषयोंके जटिल रहस्योंको सुलझा सकते हैं ।

'वेदोंका स्वाध्याय करनेके पूर्व 'वेद' शब्द की महिमा और शाब्दिक अर्थोंकी गूढता समझनी उचित है' इस बातकी सूचना ऊपर दी गई है। बुद्धिमान् पाठक उक्त मन्त्रका तीव्र दृष्टिसे स्वाध्याय करें ।

तृतीय अर्थः— (यस्मिन् परमे अक्षरे) वेदोंके जिन परम अविनाशी अक्षरों में (वि- ओम्- अन् = व्योमन्) ईश्वर, जीव, प्रकृति (देवाः) देवगण (ऋचः) ऋचाएँ अथवा ऋत मार्ग में विचरण करानेवाले भाव (अधिनिषेदुः) गुप्त हैं, उन अक्षरों की महिमा को जो नहीं जानता, वह ऋचाओं का गूढ मतलब कैसे समझेगा ? जो लोग अक्षर- विज्ञान की महत्ता को जानते हैं, वे ही ज्ञान और कर्म की उपासना कर सकते हैं ।

ऊपर के कथन का अभिप्राय यह है कि- ' जो लोग अक्षरविज्ञान की महिमा को विना समझे वेदों की महिमा जानने की इच्छा रखते हैं वे भी मूढ हैं । अतएव वेदों की महिमा जानने के पूर्व अक्षर- विज्ञान का महत्त्व जानना अत्यावश्यक है।'

चतुर्थ अर्थ — (यस्मिन्) जिस (व्योमन्) व्योमवत् सर्वतो विस्तृत (अक्ष- रे) दृश्यमान (परमे) स्थूल जगत् में (ऋचः देवाः) ऋचाओं का मनन करनेवाले देवगण या ऋषिगण और (देवाः) समस्त तृण वीरुधादि दिव्य पदार्थ (अधिनिषेदुः) अधिष्ठित व प्रतिष्ठित हैं, उस जगत् के महत्त्व को जो जानना नहीं चाहता वह ऋचाओं का कीडा यानी वेद- वाद- रत बनकर क्या लाभ उठायगा ? जो लोग इस स्थूल जगत् को सूक्ष्म-दृष्टि से देखने की चेष्टा करते हैं, वे ही योग (२) और भोग का सुख लूट सकते हैं ।

' केवल ऋचाओं का ही मनन करने के उद्देश्यसे वेद- वाद- रत न बनना चाहिए, किन्तु

---

(१) ' इमे ' इति- ' इदम् ' शब्दस्य द्विवचनान्तं रूपमिदं निर्देशात्मकम् । तेन ' ऋग्ब्रह्मणी ' त्यर्थो विधेयः ।
(२) मन्त्रे ' इमे ' इति द्विवचनप्रयोगाद् ' योगभोगा ' वित्युक्तौ ।

जगत् की महिमा का भी मनन करना आवश्यक है' यह उपदेश उन लोगों के लिये है, जिन का मस्तिष्क ऋचाओंके गूढ विषयों का मनन करते करते कुछ सुसंभ्रमित सा हो गया है। अर्थात् जो लोग जरा जरा सी बातों पर बहस करने के लिये विना सोचे समझे वेदों के प्रमाणों के राग अलापा करते हैं, परन्तु युक्ति और तर्क से सम्बन्ध रखनेवाली प्राकृतिक वस्तुओं व दिमागी बातों पर ध्यान नहीं देते; ऐसे पुरुषोंको चाहिए कि वे प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु को गौर से देखे और अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास करें।

पञ्चम अर्थ- (यस्मिन्) जिस (अ-क्षरे) अदृश्य (परमे) महान् (व्योमन् = 'व्योमनि') नभोमण्डलमें (ऋ- चः) प्रगतिशील (देवाः) सूर्य चन्द्रादि दिव्य ग्रहगण और नक्षत्र (अधि निषेदुः) विराजमान हैं, उस अचिन्त्य, अवर्णनीय तथा व्यापक आकाश की महिमा को जो लोग जानने की कोशिश नहीं करते, वे लोग भला ऋचाओंके अध्ययन से क्या लाभ उठायेंगे? परन्तु जो लोग आकाश की महिमा या आकाश के स्वरूप को यथावत् जानते हैं, वे ही ईश्वर और धर्म के स्वरूपका निर्णय कर सकते हैं।

'ईश्वरीय स्वरूप के ज्ञान के लिये 'आकाश तत्त्व' का सर्वप्रथम मनन करना आवश्यक है। यह बात ऊपर बताई गई है। अब इस बातकी परीक्षा के लिये 'ओ३म् खं ब्रह्म' इस मन्त्र पर विचार कीजिए। 'ओम्' का अर्थ 'रक्षक' और 'ब्रह्म' का अर्थ 'बडा' है। इन दोनों शब्दों का सम्मिलित अर्थ हुआ- संरक्षक परमात्मा। अब पाठकों के मनमें यह शङ्का उत्पन्न हो सकती है कि- 'वह कैसा है और कहाँ रहता है?' इस का एक मात्र उत्तर यह है कि 'वह 'खम्' अर्थात् आकाश जैसा है।' कहने का अभिप्राय यह निकला कि- 'जैसे आकाश हस्तपादादि दैहिक अवयवों से रहित, निराधार, निराकार, अदृश्य, सूक्ष्म, अव्यक्त, आद्यन्तरहित, अनादि, अजन्मा, अजर अमर और सर्वव्यापक है, वैसे ही परमात्मा के विषयमें जानना चाहिए।' यदि आकाश के स्वरूप का यथावत् ज्ञान न होता, तो परमात्मा के यथावत् स्वरूप का निर्णय करना मुश्किल हो जाता और 'खं ब्रह्म' आदि ऋचाओं का अर्थ भी यथार्थतया समझमें न आता। अतएव 'ऋचो अक्षरे' इस ऋचा का यह कहना कि-

'परमेश्वरीय स्वरूप की अनुभूति के लिये आकाश-तत्त्व का मनन करना चाहिए'

यहाँ तक यथार्थ है इस बात का विचारशील पुरुष स्वयं अनुभव करें।

षष्ठ अर्थ- (यस्मिन्) जिस (व्योमन्) व्योमवत् अवर्णनीय (परमे अक्षरे) परम सूक्ष्म अदृश्य शरीरमें अथवा (परमे अक्ष-रे) परमस्थूल दृश्यमान शरीर में (ऋ-चः) ऋत अर्थात् वेदोक्त मार्ग में चलनेवाले (विश्वे देवाः) समस्त इन्द्रियगण (अधिनिषेदुः) निवास करते हैं, (तत् यो न वेद) उस 'शरीर' को जो नहीं जानता (सः ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचा द्वारा क्या करेगा? (ये + तत् इत् विदुः) जो उस (शरीर) को निश्चयात्मक दृष्टि से जानते हैं (ते 'इमे' सम+आसते) वे ही मस्तिष्क और हृदयकी शक्तिको पहिचान सकते हैं।

ऊपरके कथनोंका अभिप्राय यह है कि 'जो शारीरिक-विज्ञान' का अध्ययन किये विना 'ईश्वरीय-विज्ञान' अर्थात् वेदोंका अध्ययन करेगा, उसे वैदिक ऋचाओंसे कुछ भी लाभ न होगा, अर्थात् वेदोंका अध्ययन करनेके पूर्व शारीरिक विज्ञानके महत्त्व को जानना आवश्यक है। उदाहरणार्थ अधोलित मन्त्रोंपर विचार कीजिए-

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति
सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र
जागृतो अ-स्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
यजुः ३४।५५

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्। रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥ अ. ११।८।२९

ऊपरके मंत्रोंका भावार्थ यह है कि- 'जैसे आकाशमें सप्तर्षि-मण्डल विराजमान है, वैसे ही इस देहाकाशमें भी (पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि) ये सप्तर्षिगण प्रतिष्ठित हैं। ये प्रमाद-रहित होकर देहकी रक्षा करते हैं। जब ये उक्त सात जल प्रवाहिनी शक्तियाँ अर्थात् इन्द्रियाँ प्रसुप्त अवस्थामें परिणत हो जाती हैं, तब सदा जागृत रह कर शरीर की सत्ताको कायम रखनेवाले श्वासोच्छ्वासरूपी दो देव इस शरीररूपी प्रासादमें जाग्रत् अवस्थामें विचरण करते हैं ॥ १ ॥ देवोंने आठ प्रकार जलतत्त्वोंका संमिश्रण करके वीर्यको घी, और हड्डियोंको समिधा बनाकर इस अविनाशी पुरुषमें प्रवेश किया है ॥२॥'

यह शरीर 'देव-मन्दिर' अथवा 'सप्तर्षि-मन्दिर' कहाता है। यहाँ जो 'शतवार्षिक यज्ञ' चल रहा है, उसका संरक्षण श्वासोच्छ्वासरूपी दो देव करते हैं। जिस समय उक्त दोनों देवोंका कडा पहारा बन्द हो जाता है, अर्थात् श्वासोच्छ्वास की गति रुक जाती है उसी समय इस यज्ञ-वेदी (शरीर) पर काम क्रोधादि राक्षसोंका आक्रमण होता है और यज्ञ का विध्वंस होता है। 'सप्त नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रोतसः' इस वैदिक ऋचा के कथनानुसार उक्त यज्ञ 'सप्त नद' के संगम पर धूमधाम से चल रहा है। पूर्वोक्त सप्तर्षियों की अध्यक्षता में यह यज्ञ चलाया जा रहा है। उक्त 'सप्त नद' के किनारे पर जो 'देव- मन्दिर' 'यज्ञ मन्दिर' अथवा 'सप्तर्षि आश्रम' सुशोभित है, वहीं सप्तर्षिगण देवों के साथ उपर्युक्त 'वीर्य' और 'अस्थि' की सामग्री बनाकर यज्ञ कर रहे हैं।

अहा! वेदोंमें क्या ही सुमनोरम 'शारीरिक तत्त्व' है! इस तत्त्व का वे ही विद्वान् अनुभव कर सकते है, जिन्हें कि वेदोक्त 'शारीरिक विज्ञान का महत्त्व' भलीभाँति विदित है। वेदों में इस प्रकार के शारीरिक विज्ञान- सम्बंधी सैकडों मन्त्र हैं। यहाँ स्थानाभाव के भय से हम उन समस्त मन्त्रों पर प्रकाश डालना नही चाहते। आशा है वैदिकधर्मी पण्डित उन मन्त्रों के महत्त्व को स्वयं समझकर दूसरों को समझाने की कोशिश करेंगे।

वाचक वर्ग! 'ऋचो अक्षरे' इस ऋचा में- वेदों का अध्ययन करने के पूर्व 'शारीरिक- विज्ञान' के महत्त्व को जानो'- यह एक बडे मार्के की बात कही गई है। इस बात के असली उद्देश्य का विद्वानों को अनुसन्धान करना उचित है। आजकल वेदादि शास्त्रों के विषय में जो वितण्डावाद पण्डित- समाज में फैल रहा है, वह शारीरिक व भौतिक विज्ञान के तत्त्व को न समझने के कारण ही फैल रहा है। यदि शारीरिक व भौतिक ज्ञान का तत्त्व भली भाँति विदित हो जाय तो वितण्डावाद भी हटे और ईश्वरीय विज्ञान की उपलब्धि भी हो। अतएव ऊपर की ऋचा का यह कहना बिलकुल यथार्थ प्रतीत होता है-

"पहिले शारीरिक व बाह्य पंचभौतिक तत्त्व का अनुशीलन करो, तत्पश्चात् वैदिक ऋचाओं का। ऐसा करने से तुम्हें समस्त ऋचाओंके अर्थमय भाव विदित हो जायेंगे।'

सप्तम अर्थः— (यस्मिन्) जिस (व्योमन्) सर्वतो विस्तृत (अ-क्षरे) अदृश्य अथवा अविनाशी (प-रमे) परम पावनीय वस्तुओंमें रमण करनेवाले मस्तिष्कमें (ऋ-चः विश्वे देवाः) ऋत नियमों में चलनेवाली समस्त दिव्य ज्ञानतन्तुएँ (अधिनिषेदुः) निवास कर रही हैं (तत् यो न वेद) उस मस्तिष्क-शक्तिको जो नहीं पहचानता (सः ऋचा किं करिष्यति?) वह ऋचाओंसे क्या करेगा अर्थात् वह ऋचाओंका मर्म नहीं समझ सकता। (ये इत् तत् विदुः) जो लोग उस मस्तिष्ककी महती शक्तिको पहचानते हैं (ते इमे समासते) वे ही उभय लौकिक सुखोंको प्राप्त कर सकते हैं।

यहाँ यह बात बताई गई है कि- 'जिस सर्वतो विस्तृत, अदृश्य, अविनाशी एवं परम पावनीय वस्तुओंमें रमण करनेवाले मस्तिष्कमें प्रगतिशील समस्त दिव्य ज्ञानतन्तुएँ अधिष्ठित हैं, उस मस्तिष्क-शक्ति का रहस्य विना जाने ऋचाओंका मतलब कैसे समझमें आ सकता है? अर्थात् मस्तिष्क-शक्तिका महत्व सर्व प्रथम जानकर ही ऋचाओंका रहस्य समझना चाहिए, अन्यथा लाभ होनेके बजाय हानि होनेकी संभावना है।'

'जो लोग मस्तिष्क-शक्तिको विना परिष्कृत किये ऋचाओंका अध्ययन करते हैं, उनकी बुद्धि वेदोंके गूढ रहस्योंको समझनेमें असमर्थ हो जाती है, और समाजमें नाना प्रकारके भेदभावोंको उत्पन्न करती है। अतएव सर्वप्रथम मस्तिष्क शक्तिको विकसित एवं परिमार्जित करके ही वैदिक ऋचाओंका अध्ययन करना चाहिए।'

मस्तिष्क-शक्ति ब्रह्माण्डके प्रत्येक पदार्थमें परमेश्वरकी तरह ओतप्रोत है। त्रैलोक्य की समस्त वस्तुएँ मस्तिष्क-शक्तिके ही महत्त्वको सूचित करती हैं। यहाँ तक कि परमेश्वर भी मस्तिष्क शक्तिका ही उपासक है, अन्यथा वह जगत् में सर्वोच्च और शुद्ध बुद्ध स्वरूप कैसे बनता? वेद इसी चैतन्य ब्रह्म की मस्तिष्क शक्ति के केन्द्रस्थल हैं। जगत् के प्रत्येक नव्य भव्य यन्त्रों और कला कौशलादिकों का आविष्कार इस बात को सूचित करता है कि-'मस्तिष्क शक्ति की बहुत विस्तृत महिमा है। इस के आदि अन्त का भेद किसी को भी विदित नहीं है।' अतएव प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि वह अपनी मस्तिष्क शक्ति का सदुपयोग करे। जो व्यक्ति अपनी उस अनुत्तम एवं अनुपम मस्तिष्क-शक्ति का दुरुपयोग करता है, वह कदापि उन्नति के उच्च शिखर पर नहीं चढ सकता। अतएव वेदों में यथास्थान मस्तिष्क शक्ति की अभिवृद्धि के हेतु प्रार्थना की गई है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित मन्त्रों को लीजिए-

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ य. ३६।६
चतुर्षु वेदेष्वयं मन्त्रः।

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु॥ अ. ६।१०८
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ यजुः ३२। १४
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥ यजुः ३२।१५

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा॥ य. ३२।१३
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः। ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्यावेशयामसि
अ. ६। १०८

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्। प्र- पीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥ अ.६।१०८

इन मन्त्रों का सहमत सार यह है कि—'जिस मेधा अर्थात् धारणवती मस्तिष्क शक्ति के महत्त्व को अनेक ऋषि, महर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, तपोव्रती मुनि, ब्रह्मचारी और असुरोंने जाना, वह परम पावनी, धर्ममार्गानुसारिणी मेधा बुद्धि परमेश्वर की कृपा से मुझे प्राप्त होवे।'

मस्तिष्क शक्ति की अपार एवं अवर्णनीय महिमा है!! अतः प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को इसका सदुपयोग करना चाहिए, तथा परमेश्वर से प्रातः सायं ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि-'हे परमेश्वर आप हमारी मेधा अर्थात् धारण सामर्थ्यवती मस्तिष्क-शक्ति को सूक्ष्मविज्ञान मार्ग में प्रेरित कीजिए।'

अष्टम अर्थ- (यस्मिन् परमे अक्षरे[1]) जिस परम आश्रणीय एवं (व्योमन्) व्योमवत् [अनिर्वचनीय सत्तावाले ब्रह्मचर्य में] (विश्वे) समस्त (ऋचः) वैज्ञानिक (देवाः) दिव्यशक्तियाँ (अधिनिषेदुः) अन्तर्निहित हैं (तत् यः न वेद) उस ब्रह्मचर्य के महत्त्व को जो नहीं जानता (सः ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचा ओं से क्या करेगा, अर्थात् जो ब्रह्मचर्यानभिज्ञ व्यक्ति है, वह ऋचाओं का यथार्थ मर्म नहीं समझ सकता। (ये तत् इत् विदुः) जो उस ब्रह्मचारी की महती शक्ति का अनुभव करते हैं (ते इमे समासते) वे ही विज्ञान और वैभव प्राप्त कर सकते हैं।

'जिस ब्रह्मचर्य में समस्त वैज्ञानिक दिव्यशक्तियाँ

1 'अक्षरं न क्षरं विद्यादश्नातेर्वा सरोऽक्षरम्।' इति भाष्यकारः पतंजलिः।

अन्तर्निहित हैं, उस ब्रह्मचर्य की महती शक्ति का अनुभव विना प्राप्त किये वेदों का अध्ययन करने से उन [वेद मन्त्रों] का रहस्य कुछ भी समझ में नही आ सकता । अतएव ब्रह्मचर्य का महत्त्व सर्व प्रथम जान कर ही वैदिक ऋचाओं में प्रवेश करना चाहिए। अन्यथा ऋचाओं का रहस्य समझ में न आयगा ।' यह ऊपर के कथनों का अभिप्राय है । अब इस अभिप्राय के परीक्षणार्थ अधोलिखित ब्रह्मचर्य विषयक मन्त्रों का मनन कीजिए-

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।'
अथर्व. ११।८

पदार्थ- (ब्रह्मचर्येण कन्या) ब्रह्मचर्य से युक्त अर्थात् ब्रह्मचारिणी कन्या (युवानं पतिम्) हृष्टपुष्ट एवं विद्वान् युवा पति को (विन्दते) प्राप्त करती है ।

'कन्या और युवा पुरुष दोनों को ही ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए' यह उक्त मन्त्र का आशय है ।

द्वितीय अर्थ- (कन्या) कान्तिमती वाणी अथवा बुद्धि (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्म-विचारिणी शक्ति के साहाय्य से (पतिम्) समस्त सृष्टि के अधिपति तथा (यु- वानम्) परमाणु- संघ का संघट्टन और वियोजन करनेवाले परब्रह्म के समीप (विन्दते) पहुँचती है ।

'ब्रह्मचारी की वाणी अथवा बुद्धि ब्रह्मविचारिणी शक्ति का सहाय्य लेकर परब्रह्म के समीप पहुँचती है ।' यह उपर्युक्त कथन का अभिप्राय है ।

अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥
अ. ११।५

परमात्मपरक अर्थ- (१) (अ- नड्वान्) अविनाशी (अश्वः२) परमात्मा (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के ही बल से, (प्रलय काल में) (घासं जिगीर्षति) समस्त अन्नमय विश्व का जिगीर्षण यानी भक्षण करता है ।

'परमात्मा ब्रह्मचर्य की अद्भुत शक्ति के साहाय्य से ही प्रलय काल में समस्त विश्व का संहार करता है ।' यह उक्त मन्त्र का मूल सारांश है ।

'ब्रह्मचर्य की महिमा अपरम्पार है! परमात्मा इसी शक्ति का आश्रय लेकर समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करता है । अतएव- प्रत्येक पुरुष को इस की महिमा जानने के लिये सनुद्यत होना चाहिए ।'

जीवात्म परक अर्थ- (अश्वः)✍ज्ञानी या भोगी (अनड्वान) शरीररूपी गाडी को हाँकनेवाला (अ- नड्वान्) अविनाशी जीवात्मा (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के द्वारा (घासम्) समस्त भोग्य पदार्थों का (जिगीर्षति) संजिगीर्षण अर्थात् उपभोग करता है ।

ऊपर जो 'अनड्वान्' शब्द का 'गाडीवान' अर्थ किया गया है वह 'आत्मानं रथिनं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च' इसी प्रमाण के आधारपर किया गया है। 'अनस्' शब्द 'गाडी' आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है और 'अनड्-वान्' शब्द 'रथवान' 'गाडीवान' इत्यादि

---

(१) नञ् पूर्वकाद् ' णश अदर्शने ' इत्यस्माद् ' अ-नड्वान् ' इत्यस्य सिद्धिः ।.

(२) अश्व, अश्वत्थ, आश्वत्थ, इति नामत्रयं ब्रम्हणो जीवात्मनश्च बोध्यम् । तदुक्तं गीतायाम्- ' ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ' इति । अश्वत्थ शब्दस्य पिप्पलमित्यर्थः ।

✍' अश भोजने ' इत्यस्माद् ' अश्व ' शब्दस्य सिद्धिः । अश्नात्यन्नमयं विश्वमिति वैदिकव्युत्पत्तिः । तत्र प्रमाणम् ' अग्रतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते । ' अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ' ' अहमन्नादः ' इत्यादि तै० उ० २।१०

'अत्ता चराचरग्रहणात् इति वेदान्तदर्शनम् १।२।२९

'अद भक्षणे' इत्यस्माद् 'बहुलं छन्दसी'ति सूत्रेण 'घस्ल' आदेशे 'घास'-मित्यास्योत्पत्तिः । तेन मन्त्रे घासं जिगीर्षतीत्यस्यान्नमयं विश्वमिदं प्रलयकाले जिगीर्षतीत्यर्थो विधेयः ।

आर्थोंमें प्रयुक्त होता है। तदनुसार 'अनड्वान्' शब्दका वैदिक अर्थ हुआ — 'शरीररूपी रथका अधिनायक=रथी आत्मा। आत्माको रथी कहनेका तात्पर्य यह निकला कि- 'शरीररथ, इन्द्रियगण घोडे, और मनः शक्तियाँ प्रग्रह अर्थात् लगाम हैं।' आत्मा मनरूपी लगामके द्वारा शरीररूपी रथमें स्थित इन्द्रियरूपी घोडोंका नियन्त्रण करता है, अतएव उसे रथी, रथवान,' अनड्वान्' इत्यादि कहा गया है।' सम्पूर्ण कथनोंका सहमत सार यह निकला कि- 'जैसे जीवात्मा ब्रह्मचर्यके बलसे इन्द्रियरूपी वेगवान् घोडोंका नियन्त्रण करता है। वैसेही प्रत्येक ब्रह्मचर्य सेवी पुरुषको उचित है कि वह मनसमेत एकादश इन्द्रियोंको अपने नियन्त्रणमें रक्खे।'

पशु-परक सामान्य अर्थः- (अश्वः अनड्वान् च) घोडे और बैल आदि पशु (ब्रह्म-चर्येण) भोग्य पदार्थोंकी चर्वण-शक्तिके साहाय्यसे ही (घांस जिगीर्षति) घांस खाते हैं।

'घोडे बैलादि पशु ब्रह्मचर्यके ही बलसे घास खाते हैं।' यह मन्त्राशय है।

मनुष्यों और पशु पक्षियोंमें भोग्यपदार्थोंके चबाने की जो शक्ति है, वह ब्रह्मचर्यसेही प्रसूत हुई है। अतएव वेदोंका यह कहना सर्वथा सत्य है 'घोडे, बैल और कृमि-कीटादि समस्त जन्तु ब्रह्मचर्यके ही बलसे भोग्य पदार्थोंका सेवन करते हैं ' इत्यादि।

' ब्रह्मचर्य की शक्ति समस्त विश्व में ओत- प्रोत है। यद् 'यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ' संसार में जितने भी विभूतिमान् पदार्थ हैं, वे सब (१) ब्रह्मचर्य के तेज से उद्भूत हुए हैं। '

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा (२)मृत्युमुपाघ्नत। (३)इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः (४) स्वराभरत् (५) ॥ अ. ११।५

प्रथम अर्थ— (ब्रह्मचर्येण तपसा)। ब्रह्मचर्य के तेज से (देवाः) समस्त दिव्यशक्तियाँ (मृत्युम्) इस मरणधर्मी पुरुष के (उप) समीप (अघ्नत) रहती हैं (इन्द्रः) जीवात्मा (ब्रह्मचर्येण ह) ब्रह्मचर्य के ही साहाय्य से (देवेभ्यः) इन्द्रियों को(स्वः) आनन्द (आ- भरत्) प्रदान करता है।

' ब्रह्मचारी के समीप समस्त सिद्धियाँ हाथ जोडे खडी रहती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि- 'ब्रह्मचर्यमें बडी भारी शक्ति है। जीवात्मा इसी शक्ति के साहाय्यसे इन्द्रियोंका आनन्द प्रदान करता है।'

द्वितीय अर्थः- (तपसा ब्रह्म-चर्येण) तेजस्विनी ब्राह्मी शक्तिके साहाय्यसे ही (देवाः) इन्द्रियोंने (मृत्युम्) इस मरणधर्मा मानव शरीरमें (उप+ अघ्नत) प्रवेश किया है (इन्द्रः६) मन (ब्रह्म-चर्येण) मनन शक्ति के ही बल से (देवेभ्यः) मस्तिष्क-शक्तियों को (स्वः) ज्ञान-तन्तुओं से (आ-भरत्) पुष्ट करता है।

---

(१) 'ब्रह्मचर्य' शब्द इन दो शब्दों के साहचर्य से बना है- 'ब्रह्म' और 'चर्य'। इनमेंसे प्रथम 'ब्रह्म' शब्द के निम्नलिखित अर्थ हैं- (१) ईश्वर (२) वेद (३) वीर्य (४) अन्न (५) जीवात्मा (६) धर्म (७) कर्म (८) सूर्य (९) जल (१०) वायु (११) अग्नि (१२) विद्युत् (१३) मेघ (१४) शक्ति (१५) उपाय (१६) मोक्ष (१७) अर्थ (१८) मन (१९) बुद्धि (२०) ज्ञान (२१) ध्येय, लक्ष्य अथवा उद्देश्य (२२) ऊर्ध्वगमन अर्थात् प्रगति (२३) योग (२४) भोग। ये 'ब्रह्म' शब्द के चौबीस अर्थ हैं। दूसरा 'चर्य' शब्द है। इसके निम्नलिखित अर्थ हैं- (१) चिन्तन (२) अध्ययन (३) रक्षण और (४) भक्षण। इस प्रकार 'ब्रह्मचर्य' शब्द के प्रसंगानुसार अनेक अर्थ लागू हो सकते हैं, परन्तु यहाँ मुख्यतया ये तीन ही अर्थ अभिप्रेत हैं— (१) ईश्वरचिन्तन (२) वेदाध्ययन और (३) वीर्यसंरक्षण।

(२) मर्त्यम् = मरणधर्मिपुरुषमित्यर्थः।

(३) जीवात्मेत्यर्थः।

(४) इन्द्रियेभ्य इत्यर्थः।

(५) स्वः = शान्तिः, सुखमित्यर्थः।

(६) इन्द्रियाधिपं मन इत्यर्थः।

'देवों ने ब्रह्मचर्य के ही तेज से मानव शरीरमें प्रवेश किया है। इन्द्र (मन) ब्रह्मचर्य के ही द्वारा देवों (मस्तिष्क-शक्तियों) को स्व अर्थात् ज्ञानतन्तुओंसे परिपुष्ट करता है।'

तृतीय अर्थः- (ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य के ही तपसे (देवाः) विद्वानों, ऋषि-महर्षियों और ब्रह्मचारियों ने (मृत्युम् उप+अघ्नत) मृत्यु का उपहनन किया है अर्थात् मृत्यु को जीता है। (इन्द्रः) परमात्मा (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से ही (देवेभ्यः) विद्वानों को (स्वः) ज्ञान, बल, बुद्धि, ऐश्वर्य आदि (आभरत्) प्रदान करता है।

'ब्रह्मचारियोंने ब्रह्मचर्य के ही तेज से मृत्यु को जीत लिया है। परमात्मा भी ब्रह्मचर्य के ही बल से ब्रह्मचारियोंको ज्ञान, बल, बुद्धि तथा ऐश्वर्य आदि प्रदान करता है।'

अतएव विचारवान् पुरुषों का कर्तव्य है कि वे उक्त ब्रह्मचर्य की महती शक्ति की उपासना करके ईश्वर के दया-भाजन बनें। ब्रह्मचर्य के अन्दर बडी भारी शक्ति है। मृगराज सिंह इसी ब्रह्मचर्य के तप से समस्त वन्य जन्तुओंपर शासन करता है-

'केसरी गहनकानने यदा, ब्रह्मचर्यतपसा विगर्जति ।
निःस्वनैश्च सघनैर्घनैर्भृशम्, वन्यजन्तुगण एव धावति ॥'

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि- 'जब मृगराज सिंह सघन वनमें ब्रह्मचर्य के तेज से बडे जोर से कडकने वाले घने बादलोंके साथ गर्जना करता है, तो जंगलमें रहनेवाले समस्त जीव-जन्तु भाग जाते हैं।' इस कथन का सार यह निकला कि- 'ब्रह्मचर्य के तेज के सन्मुख कोई भी टिक नहीं सकता। तथा—

ब्रह्मचर्यसुहृदन्वितं जनम्, नार्हतीह नृपतिर्विनिन्दितुम् । चेतसेति परिबुध्य कोविदाः, संश्रयन्तु तदनन्तशक्तिदम् ॥'

'ब्रह्मचर्य है सखा जिसका ऐसे पुरुष का राजा भी तिरस्कार नही कर सकता। अतएव विद्वानोंको उचित है वे मन से ब्रह्मचर्य की महिमा जानकर उस अनन्त-शक्ति-दायक ब्रह्मचर्य का आश्रय करें।'

पाठकवृन्द ! आपने अब तक पूर्वोल्लिखित 'ऋचो अक्षरे' इस ऋग्वेदीय मन्त्र के आठ अर्थोंका सप्रमाण परीक्षण किया है; अब उसी मन्त्र का नवम अर्थ देखिए-

नवम अर्थः- (यस्मिन्) जिस (पर-मे१) पराविद्या द्वारा अनुमान करने योग्य, अथवा उत्कृष्ट बुद्धि से जानने व अनुमान करने योग्य, (अ-क्षरे) अविनाशी एवं (अक्ष-रे) आँखोंमें रममाण होनेवाले (वि२+ओम्३+अन्३) ईश्वर जीव और प्रकृति के अन्दर (ऋ-चः) समस्त विज्ञान शक्तियाँ और (विश्वे देवाः) समस्त दैवी शक्तियाँ (अधि+नि+षेदुः) परिनिष्ठित हैं (यः तत् न वेद) उस ईश्वर, जीव और प्रकृति के गूढ रहस्यों को जो नहीं जानना चाहता (सः ऋचा किं करिष्यति) वह वेद मन्त्रों के द्वारा क्या फायदा उठायगा ? (ये इत् तत् विदुः) जो निश्चयात्मक दृष्टि से ईश्वर, जीव और प्रकृतिको पहिचानते हैं (ते एव) वे ही (इमे समासते) उभय लोकों को अलङ्कृत करते हैं।

' वेदों में ईश्वर जीव और प्रकृति के गूढ भेदों का निरूपण किया गया है, अतएव इन तीनोंके तात्त्विक मर्म को जानने की उत्कट इच्छा अपने अन्दर उत्पन्न किये विना वेदों का स्वाध्याय न करना चाहिए' यह मन्त्राशय है। अब इस मन्त्राशय के परीक्षणार्थ निम्नलिखित मन्त्र का स्वाध्याय कीजिए—

' सङ्गच्छध्वं संवदध्वम् ' ऋ. १०।१९१।२

पदार्थ- (सङ्गच्छध्वम्) सत्संगति करो और (सं + वदध्वम्) [सज्जनों के साथ] संवाद आदि करो।

इस मन्त्र में- ' वेदज्ञ पण्डितों की सङ्गति करनी चाहिए, उनके साथ बैठ कर संभाषण यानी शङ्का-

(१)-'माङ् माने' इत्यस्मादुक्तरूपस्य सिद्धिः ।
(२) 'अवति रक्षणादिकं करोतीत्योम्' इति विग्रहः ।
(३) अनिति प्राणितीत्यन् । (४) विः=प्रकृतिः । व्योमन् [वि+ओम्+अन्] इत्यत्र 'सुपां सुलुक्' इति विभक्ति-लुक् ।

समाधान आदि करना चाहिए ' – यह बात बताई गई है। जो लोग वेदज्ञ पण्डितों के साथ झूठी बहस करके अपना पाण्डित्य दिखाना ही परम सौभाग्य समझते हैं, उन्हें ऊपर के मन्त्र से कुछ शिक्षा लेनी चाहिए।

अर्धशिक्षित टटपूँजिये पल्लवग्राही पण्डितों की सङ्गति करने से समाज अशिक्षित बनता है, अतएव ऐसे पुरुषों की सङ्गति कभी भी न करनी चाहिए। जो लोग वेदज्ञ हैं– अर्थात् जिन्हें ईश्वर, जीव और प्रकृति के रहस्य भली भाँति विदित हैं, जो संयमी और परोपकारी हैं तथा जिन्हें कुतर्क (झूठीशङ्का) से घृणा है, ऐसे ही सदाशय पुरुषों के पास बैठकर ईश्वर– जीव–प्रकृति के भेदों को समझना चाहिए। इस प्रकार सज्जनों के पास बैठकर ईश्वर, जीव और प्रकृति के भेदों को समझने की उत्कट इच्छा अपने अन्दर उत्पन्न करने के अनन्तर वैदिक ऋचाओं में प्रवेश करने से बहुत कुछ लाभ होने की संभावना है। अन्यथा ' ऋचो अक्षरे ' इस मन्त्र के 'किमृचा करिष्यति' इस कथनानुसार वैदिक ऋचाओंसे कुछभी लाभ न होगा।

दशम अर्थः– (यस्मिन् परमे व्योमन्) जिस अत्यन्त विस्तृत एवं (अ–क्षरे) अक्षय शिक्षा–तत्त्व में (विश्वे देवाः ऋचः अधि–नि–षेदुः) सार्वभौमिक दिव्य विज्ञान–शक्तियाँ रम रही हैं: जो उस [illegible]त् शिक्षा–तत्त्वके महत्त्वको नहीं जानता वह ऋचाओंसे क्या लाभ उठायगा? अर्थात् जिस शिक्षाका तत्त्व ही विदित नहीं है उसे वैदिक ऋचाओंका मनन नहीं करना चाहिए– (ये इत् तत् विदुः) और जिन्हें उस अविनाशी शिक्षाका तत्त्व भलीभाँति विदित है (ते एव) वे ही (१इ–मे) प्रज्ञाशक्तिसे अनुमान करने योग्य स्थान यानी मोक्ष धाममें (समासते) समासीन होते हैं।

'जिस अक्षय शिक्षा–तत्त्वमें सार्वभौमिक दिव्य विज्ञान शक्तियाँ रममाण हैं, उस [शिक्षा–तत्त्व] के महत्त्वको जो व्यक्ति नहीं जानता, उसे वैदिक ऋचाओंसे क्या लाभ होगा? अर्थात् शिक्षा–तत्त्वके महत्त्वको बिना समझे बूझे और बिना (२) पूर्ण–शिक्षित हुये वैदिक ऋचाओंमें प्रवेश नहीं करना चाहिये। जिन्हें वेदोक्त वैज्ञानिक–शिक्षा का महत्त्व भलीभाँति विदित है, वे ही वेदाध्ययन और मोक्षप्राप्ति के अधिकारी हैं।' [यह पूर्वोक्त 'ऋचो अक्षरे' इस मन्त्र का तात्पर्य है। यह कूट मन्त्र है, इसके कई अर्थ हैं। पाठकोंको ध्यानपूर्वक इस मन्त्र का स्वाध्याय करना उचित है]

उपरिलिखित समस्त कथनों का तात्पर्य यह है कि ' जिन्हें ईश्वर, जीव, प्रकृति, वेद, मस्तिष्क इत्यादि गूढ विषयों का बोध नहीं है, और जो नास्तिक, अश्रद्धालु, भोगी और पाखण्डी हैं ऐसे पुरुषों को (चाहे वे किसी भी वर्ण में सम्मिलित क्यों न हों) वेदों के पढने का पूर्ण अधिकार नहीं दिया जा सकता। वेदाध्ययन के अधिकारी वे ही हैं जिन्हों ने कि वेदज्ञ पण्डितों की सुसङ्गति करके अपना जीवन सुशिक्षित, त्यागमय और परिष्कृत बना लिया है– चाहे वे शूद्र ही क्यों न हों ?

आज शिक्षा का तत्त्व लोगों ने कुछ और ही समझ रक्खा है। वेद तो यह आदेश दे रहे हैं कि– ' जो त्यागी, संयमी, जितेन्द्रिय और परोपकारी पुरुष हैं, वे ही वेदों का अध्ययन करें। ' परन्तु इस आदेश

---

१ इः कामः प्रज्ञाशक्तिर्वा। 'इ' शब्देन जीवात्मनोऽपि ग्रहणम्। एत्यधीते वा स इरिति विग्रहः। 'इण् गतौ' 'इङ् अध्ययने' इत्येताभ्यां धातुभ्यां 'क्विप्चे'ति सूत्रेण क्विप्।

२ जो भोगवादी हैं अर्थात् जो शिक्षासे सरोकार नहीं रखते, जो नास्तिक और पाश्चात्य–शिक्षाके प्रेमी हैं और जिन्हें संस्कृत विद्यासे बडी भारी घृणा है; ऐसे अर्ध–शिक्षित पुरुषोंको (चाहे वे ब्राह्मण हों अथवा क्षत्रिय) वेदोंके पढनेका सर्वथा अधिकार नहीं है। क्योंकि ऐसे अर्धशिक्षित पुरुषोंसे अर्थानर्थ होनेकी संभावना है उदाहरणार्थ सायण, महीधर, उव्वट और मैक्समूलर आदिको लीजिए। 'यथेमां वाचम्। य० २६।२ इस मन्त्रका यह अभिप्राय नहीं है कि— 'अशिक्षित पुरुष भी वेद पढें।' वेद पढनेके वे ही अधिकारी हैं जो कि पूर्ण शिक्षित हैं और जिनकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र और परिष्कृत है– चाहे वे ब्राह्मण हों अथवा शूद्र।'

को सुनता कौन है ? सब लोग एम्. ए. बी. ए. की डिग्री प्राप्त करके वैतनिक कर्मचारी या शिक्षक बनने की धुन में मस्त हैं । हा ! आज इस घासलेटी साहित्य की प्रबल जिज्ञासा ने लोगों को इतना अधिक बोध- शून्य और निर्जीव- सा बना दिया है कि कोई भी व्यक्ति वैदिक- शिक्षा- तत्त्व की अभिवृद्धि के लिये प्रयत्न करता हुआ दिखाई नहीं देता। केवल 'बोल गई माइ डियर कुकडूँ कूँ' का राग अलापना ही आज लोगों ने शिक्षा का ध्येय समझ रक्खा है, यह कितनी बडी भारी अज्ञानता है । गुरुकुलों के शिक्षक वर्गों और ब्रह्मचारियों की भी आज शोच- नीय अवस्था हो गई है । हमारा ध्यान उनकी ओर विशेष-तया आकृष्ट इसलिये था कि- 'वे वैदिक शिक्षा के पुजारी बन कर देशका उपकार करेंगे'- परन्तु हम आज उन्हें भी पाश्चात्य-सभ्यता- तरङ्गि- णी के कलुषित जल-प्रवाह में प्रवाहित होते हुए देख रहे हैं । गुरुकुलों में ऐसा कोई भी शिक्षक (Teacher) या अधिकारि वर्ग दिखाई नहीं देता जो अवैतनिक कार्य करना पसन्द करता हो। प्राचीन समयमें गुरुजन स्वयं अवैतनिक कार्य करते हुए विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा दिया करते थे-वे पहिले स्वयं शिक्षित तथा आदर्श रूप बनकर विद्यार्थियोंको अपने जैसा बननेके लिये प्रेरित करते थे- परन्तु आज वेतनकी लालसा और शुल्क-शिक्षाकी प्रबल परिपाटीने गुरुओंको भी मूढ-सा बना दिया है । ऐसी अवस्थामें- 'विद्यार्थी शिक्षित बनकर देशका उपकार करेंगे'- ऐसी आशा करना सर्वथा निर्मूल है ।

आज शिक्षा की ऐसी दुरवस्था है कि हम क्या कहें ? जो विद्यार्थी पहिले निःशुल्क शिक्षा यानी मुफ्त तालीम पाते थे वे आज फीस न दे सकनेके कारण अशिक्षित बने बैठे हैं । वर्तमान समयमें गुरुकुल महा- विद्यालय ज्वालापुरके व्यतिरिक्त भारतवर्षमें ऐसा कोई भी शिक्षणालय नहीं है, जहाँ विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा (मुफ्त तालीम) दी जाती हो। गुरु- कुल काङ्गडीकी गणना भारतवर्षके सर्वोच्च शिक्षणा- लयोंमें है, परन्तु भी फैशनेबिल-सभ्यतासे मुक्त नहीं है। वहाँके शिक्षकवर्ग और छात्रगण सबके सब विलास प्रेमी हैं । क्या पूर्वजोंकी वैदिक शिक्षाका यही रहस्य है कि- 'विलासमय जीवन व्यतीत किया जाय?' यदि नहीं, तो हम यह पूछना चाहते हैं कि- 'अपने आरामके लिये फीस लेकर देशका धन वृथा क्यों बहा- या जा रहा है ? क्या वैदिक शिक्षाका यही तत्त्व है कि फीस लेकर विद्या-विक्रय किया जाय ? अथवा सादा जीवन व्यतीत करके निःशुल्क देना ही पाप है ?' यदि इन प्रश्नोंके उत्तरमें यह कहा जाय कि- 'सादा जीवन व्यतीत करके निःशुल्क शिक्षा देना ही श्रेयस्कर है'— तो हम पुनः यह पूछना चाहते हैं कि 'वैदिक-परिपाटी का अनुसरण करनेमें क्या हानि है ? जान बूझकर पूर्वजोंके शिक्षामार्गको संकीर्ण, क्लिष्ट एवं दूषित प्रथाओंसे युक्त क्यों बनाया जाय?' हम भारतीय शिक्षणालयोंके विद्यार्थियों अध्यापकों, अधिकारियों और निरीक्षकोंसे सादर, सविनय, साग्रह, सप्रेम और सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वे विद्यार्थियोंकी शिक्षाका समुचित प्रबन्ध करनेका आयोजन करें; अन्यथा भविष्यमें वैदिक शिक्षा-तत्त्व का उद्धार होना सर्वथा असंभव हो जायगा।

वर्तमान समय की भारतीय शिक्षा की दुरवस्था को देखकर कौन ऐसा सहृदय पुरुष होगा, जिस का ह्रदय स्वभावतः न पसीजता हो ? अस्तु, इस विषय में अधिक न कहते हुए हम सिर्फ इतना ही कहते हैं कि-

पाते थे निशुल्क शिक्षा शुल्क बिन अशिक्षित,
दीन- हीन होय वे बेचारे फिरै दर दर ।
मारे मारे शिशु- गण हाय वे अनाथ-सम,
कोऊ न सहारा बिनु विश्वनाथ स्मर- हर ॥
भूतनाथ, उमानाथ दीननाथ नाथनाथ
तात मात भ्रात वही है गरीब परवर ।
अध-पेट रह कर काटते हैं तीस दिन,
फीस लावैं कहाँ से वे आप ही रहे हैं मर ॥ १ ॥
बी. ए. एम्. ए. [B. A. M; A.] उपाधियाँ
धारिबे के हेत आज,
पढत हैं मूढ- जन गूढ ज्ञान तज कर ।
बन कर मुहर्रिर, जज, मजिस्ट्रेट 'पेट-
पूजा ' करें दिनरात दैन्य- भाव भजकर ॥

अब दासता के हेत पढत हैं हाय शोक !
'फैशन' पियारे सारे सादापन तज कर।
जग-उपकारी व्रत-धारी ब्रह्मचारी आज,
दीखैं नाहिँ कहूँ हाय ? जग-अघ-भय हर ॥ २ ॥
इँगलैण्ड, जरमन, अमेरिका, चीन, रूस,
पारस में जावैं सब अफिसर सैर हेत।
बारिस्टर, डिग्रीगर सौ सौ दण्ड पेलिबे को,
जावैं मुसटण्ड तहाँ मजा उडाने के हेत ॥
देश की न ले खबर खूनरव्वार(१) जालिम वे,
कोऊ करै बात जदि सात आठ लात देत।
चहूँ दिशि शिक्षा की अवस्था अति शोचनीय,
भारत की दुरवस्था भई आज इसी हेत ॥ ३ ॥

आज इसी शिक्षा की दुरवस्था के कारण द्विजातियों की शोचनीय अवस्था हो गई है

मारतण्ड-चण्ड-चक्षु-रश्मि-जाल-ज्वाल जिन,
रिपु-पुंज परजारे धारि परचण्ड रूप ।
निज भुजदण्ड अति उद्दण्ड सों खण्ड खण्ड,
करि वैरि बरबण्ड जीते जे सहस भूप ॥
करमें सँवार खर करवार तरवार,
तजि घरबार दरबार हो या रङ्क-भूप।
समरमें टूटते थे शत्रु-सङ्घ सिंह जिमि,
आज सब श्वान सम कातर अतेज रूप ॥ ४ ॥
रक्षक थे देशके वे क्रूर हैं तक्षक-सम,
कर्तबके केन्द्र बसे आलस के घरमें।
शिक्षक थे लोकके जो भक्षक बने हैं आज,
दैन्य रस पागे वे अभागे मरैं घरमें ॥
अहिंसा पुजारी थे जो आज महाहिंसक वे,
बन, वन-वन धावैं शस्त्र गहि करमें।
थे जो वनराज सम राजराज महाराज,
स्यार-सम घूमते वे आज घर घरमें ॥ ५ ॥
देशके अधारे थे जो द्वारे द्वारे मारे फिरैं,
आजु ये कहत—'प्रभु ? अन्न-दान अक्षय।
देइ सुधि लीजियो हमारी,'—'गुण गावैं नाथ ?
तिहारी मनावैं जय जय जय जय जय ॥'

लात मारैं अफिसर बात सुनि ततकाल,
हाय ! वे बेचारे रहैं कबहुँ ना निर्भय।
होवैं पद-विदलित पद-पदमें विपद-
ग्राह-गण-ग्रसित 'गुपत'-पद-संशय ॥ ६ ॥
सेवकाई करि जो रिझावै द्विज-गनन को,
आज उसे देखकर कहैं-'यो अछूत है।
मेले आदि देखने को भिलि जात जात गात,
तब नहीं जात जात नेकु छुआछूत है ॥
हलुवा, मिठाई, पूरी रेल माहिं भिलि जुलि,
उडाते हो ऐक्यका बताओ क्या सबूत है ?
खाने पीनेमें तो कहा जाना गया भेद नहीं,
खेद है महान यह कौन, क्या अछूत है ? ॥ ७ ॥

उपसंहार-

कुविचार, अत्याचार और व्यभिचार अन्धाचार की,
सर्वत्र ही जड जम रही अज्ञानतर व्यवहार की।
अब तो युवक ! खोलो दृगोंको एकबार निहार लो,
मरघट सदृश इस देशका दयनीय-वृत्त विचार लो॥८॥

इन कविताओंको पढकर ऐसा कौन सदय-हृदय पुरुष होगा जिसका हृदय यकबारगी अन्तर्वेदनाओंकी तीव्र ज्वालाओं से न दहक उठे । अतएव प्रत्येक भारतीय व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह वैदिक-शिक्षा-तत्त्वके प्रचार के लिये तन-मन-धनसे प्रयत्न करे; अन्यथा भविष्यमें यह भारतवर्ष पश्चिमीय-शिक्षा-तरङ्गिणीके प्रबल-तरङ्गोंमें प्रवाहित होते होते नष्ट हो जायगा। अस्तु-

पाठक गण ! आपको- 'ऋचो अक्षरे' इस ऋचा के- 'जो वैदिक-शिक्षा--तत्त्वको नहीं जानता, वह ऋचाओंसे क्या करेगा?' इस कथन का वास्तविक अभिप्राय समझमें आगया होगा। अब इसी ऋचाका 'स्वप्न-तत्त्व' विषयक ग्यारहवाँ अर्थ देखिए—

ग्यारहवाँ अर्थः- (यस्मिन्) जिस (प-रमे) परम पावन प्राकृतिक वस्तुओंमें रमनेवाले (अक्षरे) सूक्ष्म एवं (व्योमन्)२ व्योमवत् अवर्णनीय-सत्तावाले

१ यह शब्द खूँरव्वार का अपभ्रंश है।
२ सुपां सुलुगिति डेर्लुक्।

स्वप्न तत्त्वमें (विश्वे) समस्त (ऋचः)१ स्तवनीय तथा विज्ञानशील (देवाः) दिव्य मानसी शक्तियाँ (अधिनिषेदुः) गुप्तरूपेण अधिष्ठित हैं (तत् यः न वेद) उस स्वप्नतत्त्व को जो नहीं जानता (सः ऋचा किं करिष्यति?) वह ऋचाओंसे क्या करेगा? (ये इत् तत् विदुः) जो उस स्वप्न-तत्त्वके महत्त्व-को यथार्थतया जानते व अनुभव करते हैं (ते एव 'इ-मे' सम्+आसते) वेही कामनासे अनुमान करने योग्य स्थानअर्थात् अन्तरिक्षादिलोकोंमेंविचरण करतेहैं।

उपरोक्त कथनोंका सारांश यह है कि- "जिस स्वप्नतत्त्वमें समस्त दैवी तथा मानसी शक्तियाँ गुप्तरूपेण अधिष्ठित हैं, उस सूक्ष्म एवं अपार महिमामय स्वप्नतत्त्वको जो व्यक्ति जानने व अनुभव करनेकी चेष्टा नहीं करता, वह वैदिक स्वप्न-विषयक ऋचाओंका मर्म कैसे समझ सकता है? अर्थात् वैदिक-स्वप्न-तत्त्व-विषयक ऋचाओंका गूढ मर्म समझनेके लिये स्वप्न-तत्त्व का अनुशीलन करके मानसी शक्तियोंके पता लगाना आवश्यक है। जो व्यक्ति स्वप्न-तत्त्वके महत्त्वको यथार्थतया जाननेकी चेष्टा करता है, वह ध्यान, धारणा, योग, समाधि इत्यादि प्राणायाम-के साधनोंसे मनका निरोध (वशीकरण) करके अपने इच्छानुसार अन्तरिक्षादि लोकोंमें विचरण कर सकता है।" (३)

पाठक वृन्द! आइए, ऊपरके स्वप्न- तत्त्वका गंभीर- दृष्टिसे मनन करें और मनः शक्तिकी प्रबलताका पता लगा कर वेदादि शास्त्रोंके कथनोंकी पुष्टि करें—

स्वप्नके विषयमें विचार करते हुए सर्व प्रथम इस बात पर प्रकाश डालना आवश्यक है कि स्वप्न है क्या वस्तु, और वह कैसे होता है? तथा स्वप्न का अधिष्ठाता कौन है? इत्यादि। स्वप्नका अर्थ है 'सोना' और पूर्वानुभूत विषयके अनुस्मरण-कालका नाम है स्वप्न-काल यानी स्वप्नावस्था तथा उस (स्वप्न-काल) के अनुभवकी यथार्थताका नाम 'स्वप्नतत्त्व' है। यह स्वप्न दो प्रकारका होता है- (१) सु-स्वप्न और (२) दुःस्वप्न [स्वप्न-दोष] सोते समय जो शिव-सङ्कल्पमय विचार मनमें उत्पन्न होते हैं अथवा जिन अभीष्ट वस्तु ओं का दिन में दर्शन श्रवण व चिन्तन किया जाता है, उनका पुनः स्वप्नावस्थामें यथावत् उद्भूत होना 'सु-स्वप्न' कहाता है तथा वीर्य-स्खलनादि पापयुक्त कर्मों एवं दम्भमय विचारोंका स्वप्नावस्थामें उद्भूत होना 'दुः-स्वप्न' किं वा 'स्वप्न-दोष' कहाता है। कहने का आशय यह है कि सुस्वप्न और दुःस्वप्नसें क्रमशः पूर्व जन्मोपार्जित सुसंस्कारों और कुसंस्कारोंका आविर्भाव होता है। सुस्वप्न उन्नतिका तथा दुःस्वप्न अवनतिका सूचक है। तात्पर्य मनुष्यको दैवी व आसुरी मार्गमें प्रवृत्त करानेवाले 'सुस्वप्न' और 'दुःस्वप्न' हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह सोते समय मनमें शिव-सङ्कल्पमय भावोंको धारण करके सुस्वप्न की अभिवृद्धि के लिये प्रार्थना करता हुवा सोवे। प्रार्थना करनेके निम्नलिखित मन्त्र हैं—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे० ॥ २ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे० ॥ ३ ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः० ॥४॥ यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभा

(१) ऋच स्तुताविति धातुः। ऋ गतावित्यस्मादपि 'ऋच' इत्यस्य सिद्धिः।

(२) इः कामः। योगदर्शनमें कहा है कि-ध्यान धारणादि योग-साधनों द्वारा मनको अन्तरिक्षादि लोकोंमें भेजा जा सकता है। इसी भावको उपरोक्त ऋचाने- 'त इमे समासते' (प्रज्ञाशक्तिसे जानने योग्य स्थान [अन्तरिक्षादि लोकों] में पहुँच सकते हैं) इन शब्दोंसे स्पष्ट कर दिया है।

विवाराः। यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे० ॥५॥ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभि र्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे० ॥ ६ ॥ (यजुः ३४ । १, २, ३, ४, ५, ६) अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिषीमहि । रक्षा णो अप्रयुच्छन्प्र बुधे नः पुनस्कृधि ॥ ७ ॥ पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्, पुनः प्राणः, पुनरात्मा म आगन्, पुनश्चक्षुः, पुनः श्रोत्रं म आगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ ८ ॥ (यजुः ४ । १४, १५) यो मे राजन युज्यो वा, सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह। स्तेनो वा यो दिप्सति वृको वा, त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥ (ऋ. २। २८ । १०)

इन मन्त्रों का अत्यन्त संक्षिप्त सार यह है कि –'जो दैवीशक्तिसम्पन्न मेरा (१) मन जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में दूर दूर चला जाता है, अथवा दूरस्थ विषयों का चिन्तन करता है, वह (२) सुदूर संचारी महान् ज्योतिर्मय मेरा मन शिव-संकल्पमय बने। '... ' सोते समय सुदूर-संचारिणी मेरी मानसी शक्ति का संरक्षण होवे। ' .... 'सोकर उठने के पश्चात् मेरे मन, आयु, प्राण, आत्मा, चक्षु और श्रोत्र की समस्त शक्तियाँ पुनः जागृत होवें। अर्थात् मैं रातभर आनन्द के साथ निर्भय हो कर सोउँ और प्रातः सकुशल उठूँ। उठते समय मेरी उक्त शक्तियां भी जागृत होवें। अर्थात् उन शक्तियोंके अन्दर क्षीणता दिखाई न दे। ' ... 'हे वरूणराजन्! मुझ भीरुको सोते समय जो कोई सतावे उससे मुझे बचाना।'

सोते समय उपरोक्त मन्त्रोंको पढकर सोना चाहिए। अस्तु।

ऊपर यह कहा गया गया है कि- स्वप्न कैसे उत्पन्न होता है और उसका अधिष्ठाता कौन है ?' इसका उत्तर यह है कि- (१) चिरकालीन रोग (२) धातु क्षीणता (३) दरिद्रता (४) उदासीनता (५) नियम विरुद्ध आचरण (६) अन्तवेंदनाएँ ये स्वप्नोत्पत्तिके कारण हैं। 'मन और आत्मा' ये दो देव स्वप्नके अधिनायक हैं।' इस तत्त्वका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें किया गया है–

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। 'निर्ऋत्या' ...'अभूत्या'...निर्भूत्याः' 'पराभूत्याः' पुत्रोऽसि ॥ अथर्व. १६।५।१-८

---

(१) अवरुद्ध अर्थात् रुकावट पूर्ण एवं व्यवहित– शक्ति। 'मनकी शक्ति किसी वस्तुके व्यवधान से स्वप्नावस्थामें रुक जाती है।'

(२) 'मन स्वप्नावस्थामें दूर दूर जाता है–' ऐसा जो ऊपर कहा है वह बिलकुल सत्य है। हमारे कई अनुभवी वृद्ध पुरुषोंका कहना है कि मन स्वप्नमें सूक्ष्म शरीर धारण करके यत्र तत्र (अन्तरिक्षादि लोकोंमें) विचरण करने जाता है और जाग्रत् अवस्थामें देखी हुई वस्तुओंका दर्शन, श्रवण, मनन और अनुभव करता है। कभी कभी वह अननुभूत एवं अदृश्य विषयोंका अनुभव करता है। कभी वह पक्षियोंका रूप धारण करके आकाशमें उडता है, कभी कूएँमें गिरता है, कभी समुद्रमें तैरता है, कभी वनमें सिंहादि हिंस्र जन्तुओंसे आक्रान्त होता है, कभी भयंकर और अचिन्त्य दृश्योंका अनुभव करता है, कभी मीठे और सुस्वादु वस्तुओंका उपभोग करता है, कभी कर्ममें प्रवृत्त होता है, कभी वह इतनी सूक्ष्म--वस्तुके अन्दर समा जाता है कि स्वप्नस्थ प्राणीको यह अनुभव होने लगता है– लो, अब मैं मेरा कहनेका सार यह निकला कि मनकी शक्ति परब्रह्मके समान अचिन्त्य एवं अवर्णनीय है। अतएव उपनिषत्कारोंने कहा है कि-- 'मनो ब्रह्मेत्युपासीत' अर्थात् मनो--ब्रह्म की उपासना करो। यहाँ मनको ब्रह्म कहनेका सार यह है कि वह परब्रह्मके समान व्यापक-शक्ति-शाली, सुदूर-संचारी एवं तैजस तत्त्व है। वह असंभव बातको भी परब्रह्मके समान संभव कर दिखता है। वह कूट, अव्यक्त एवं सूक्ष्म है। उसकी शक्तिमत्ता तथा आदिमध्यान्त-भेदका पता लगाना सर्वथा असंभव है। इसी कारण हमारे अनुभवी वृद्ध पुरुष कहा करते हैं कि— 'रातको जब प्यास लगे तो पानी पीनेके पश्चात् घडे आदिका मुँह बन्द न करना चाहिए, कारण उस समय सुप्त पुरुषका चैतन्य मन उन वस्तुओंके अन्दर प्रविष्ट होता है, अतएव उस [मन]को अवरुद्ध करनेसे प्राणी की मृत्यु हो जाती है।'

*

इस मन्त्रमें दुःस्वप्नका लक्षण किया गया है, अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सु-स्वप्न-वर्धक उपायोंका अवलम्बन करे तथा सोते समय मनमें ऐसी धारणा करे कि—

असन्मन्त्राद्दुःष्वप्न्याद्दुष्कृताच्छमलादुत।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात्तस्मान्नः पाह्यंजन॥
(अथर्व ४।९।६)

दुःष्वप्न्यं सुव (श्रुतिः)
दुःष्वप्न्यं दुरितं निष्वाथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्
(अथर्व. ७५३।४)

'हे निरंजन! हमें असद्विचार, दुःस्वप्न शान्तिविघातक कुकृत्य और विकट नेत्रों से प्रकट होनेवाले दुर्भावों से बचाओ।' ……… 'दुःष्वन का सब प्रकार से अपहरण करो।' ... 'अब हम पापमार्ग में प्रेरित करने वाले दुःस्वप्न को पार करके पुण्यलोकमें ले जानेवाले सुस्वप्न की शरण में जाते हैं।

यदि इस प्रकार सच्चे मन से प्रार्थना करके सोने पर भी स्वप्नावस्था मे कुछ पाप हो जाय तो सवरे उठकर ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि-

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः॥
(यजुः २०।१६)

'हे तेजस्वी परमेश्वर! हमने जाग्रत् अथवा स्वप्नावस्थामें जो कुछ पाप किया है, उन समस्त पापोंको आप शीघ्र ही अपने तेजसे भस्म कीजिए।'

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि।
प्रचेता न अङ्गिरसो दुरितात्पात्वंहसः॥
(अथर्व ६।४५।२)

'हे शक्तिके अधिनायक इंद्र! हमने अज्ञानतावश जो कुछ मिथ्याचरण किया है, उन समस्त पापों व दोषोंसे हमें बचाइए।'

(क्रमशः)

प्राणके साथ इस प्रकारका संबंध है। आत्मा ब्रह्माका वाचक है और ब्रह्माका वाहन हंस है, इस पौराणिक रूपकमें आत्माका प्राणके साथका अखंड संबंधही वर्णन किया है। यह हंस मानस सरोवरमें क्रीडा करता है। यहां प्राणभी हृदयरूपी अंतःकरण-स्थानीय मानस सरोवरमें क्रीडा कर रहा है। हृदयकमलमें जीवात्माका निवास सुप्रसिद्ध है। अर्थात् कमलासन ब्रह्मदेव और उसका वाहन हंस, इसकी मूल वैदिक कल्पना इस प्रकार यहां स्पष्ट होती है—

ब्रह्मा, ब्रह्मदेव	आत्मा, जीवात्मा, ब्रह्म
हंस-वाहन	प्राण-वाहन
कमल—आसन	हृदय कमल
मानस सरोवर	अंतःकरण (हृदय)
प्रेरक कर्ता देव	प्रेरक आत्मा

वेदमें हंसका वर्णन अनेक मंत्रोंमें आगया है, उसका मूल आशय इस प्रकार देखना उचित है। वेदमें " असौ अहं (यजु० ४०।१७) " कहा है। " असु अर्थात् प्राण-शक्तिके अंदर रहनेवाला मैं आत्मा हूं। " यह भाव उक्त मंत्रका है। वही भाव उक्त स्थानमें है। प्राणके साथ आत्माका अवस्थान है। यह प्राण ही " हंस " है वह (सलिलं) हृदयके मानस सरोवरमें क्रीडा करता है। श्वास लेनेके समय यह प्राण उस सरोवरमें गोता लगाता है और उच्छ्वास लेनेके समय ऊपर उडता है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है, कि जब उच्छ्वासके समय प्राण बाहिर आता है तब प्राणी मरता क्यों नहीं? पूर्ण उच्छ्वास लेकर श्वासको पूर्ण बाहर निकालनेपर भी मनुष्य मरता नहीं। इसका कारण इस मंत्रमें बताया है। जिस प्रकार हंस पक्षी एक पांव पानीमें ही रखकर दूसरा पांव ऊपर उठाता है, उसीप्रकार प्राण ऊपर उठते समय अपना एक पांव हृदयके रक्ताशयमें दृढतासे रखता है और दूसरे पांवकोही बाहिर उठाता है। कभी दूसरे पांवको हिलाता नहीं। तात्पर्य प्राण अपनी एक शक्तिको शरीरमें स्थिर रखता हुआ दूसरी शक्तिसे बाहिर आकर कार्य करता है। इसलिये मनुष्य मरता नहीं। यदि यह अपने दूसरे पांवको भी बाहिर निकालेगा तो आज कल, दिन रात, प्रकाश अंधेरा आदि कुछभी नहीं होगा अर्थात् कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकेगा। जीवनके पश्चात ही काल का ज्ञान होता है। इस प्रकारका यह प्राणका संबंध है। प्रत्येक मनुष्यको उत्तम विचार करके इस संबंधका ज्ञान ठीक प्रकारसे प्राप्त करना चाहिए। 'हंस' शब्दके साथ प्राण

उपासनाका प्रकार भी इस मंत्रसे व्यक्त होता है। श्वासके साथ ' स 'कारका श्रवण और उच्छ्वासके साथ ' हं ' कारका श्रवण करनेसे प्राण उपासना होती है। इससे चित्तकी एकाग्रता शीघ्रही साध्य होती है। यही " सो " अक्षरका श्रवण श्वासके साथ और "हं" का श्रवण उच्छ्वासके साथ करनेसे 'हंस' काही जप बन जाता है। यह प्राण उपासनाका प्रकार है। सांप्रदायिक लोकोंने इनपर विलक्षण और विभिन्न कल्पनाएं रचीं हैं, परंतु मूलकी ओर ध्यान देकर झगडोंसे दूर रहनाही हमको उचित है। अब इसका और वर्णन देखिये—

इस शरीरमें आठ चक्र हैं जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है यह बात २२ वें मंत्रमें कही है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार ये आठ चक्र हैं, क्रमशः गुदासे लेकर सिरके ऊपरले भाग तक आठ स्थानोंमें ये आठ चक्र हैं। पीठके मेरुदंडमें इनकी स्थिति है। इस प्रत्येक चक्रमें प्राण जाता है और अपने अपने नियत कार्य करता है। जो सज्जन प्राणायामका अभ्यास करते हैं उनको अपना प्राण इस चक्रमें पहूंचा है इस बातका अनुभव होता है, और वहांकी स्थितिका भी पता लगता है। ऊपर मस्तिष्कमें सहस्राक्षर चक्रका स्थान है। यही मस्तिष्कका मध्य और मुख्य भाग है। प्राणका एक केंद्र हृदयमें है। इस प्रकार एक केंद्रके साथ आठ चक्रोंमें सहस्र आरोंके द्वारा आगे और पीछे चलनेवाला यह प्राणचक्र है। श्वास उच्छ्वास तथा प्राण अपान द्वारा प्राणचक्रकी आगे और पीछे गति होती है। पाठकोंको उचित है कि वे इन बातोंको जानने और अनुभव करनेका यत्न करें। प्राणका एक भाग शरीरकी शक्तियोंके साथ संबंध रखता है और दूसरा भाग आत्माकी शक्तिके साथ संबंध रखता है। शारीरिक शक्तिके साथ संबंध रखनेवाले प्राणके भागका ज्ञान प्राप्त करना बडा सुगम है, परंतु आत्मिक शक्तिके साथ संबंध रखनेवाले प्राणके भागका ज्ञान प्राप्त करना बडा कठिन है। आधे भागके साथ सब भुवनको बनाता है, जो इसका दूसरा अर्ध है वँह किसका चिन्ह है अर्थात् उसका ज्ञान किससे हो सकता है ? आत्माके ज्ञानके साथ ही उसका ज्ञान हो सकता है।

प्राण सबकाही ईश है इस विषयमें पहिले ही मंत्रमें कहा है। सबमें गतिमान और सबमें मुख्य यह प्राण है। ब्रह्म अर्थात् आत्मशक्तिके साथ रहनेवाला यह प्राण आलस्य रहित होकर और धैर्यके साथ कार्य करनेमें समर्थ बन कर मेरे शरीरमें अनुकूलताके साथ रहे। यह इच्छा उपासकको मनमें धारण करना चाहिए। अन्य इंद्रियोंमें

आलस्य होता है, प्राणमें आलस्य कभी नहीं होता; इसलिये प्राणका विशेषण 'अ-तंद्र' अर्थात् आलस्य रहित ऐसा रखा है। यही भाव पंचीसवें मंत्रमें कहा है।—

सब इंद्रियां आराम लेतीं हैं, आलसी बनतीं हैं, सो जातीं हैं और नीचे गिर जातीं हैं; परंतु प्राणही रातदिन खडा रहकर जागता है, अथवा मानो इस मंदिर का संरक्षण करनेके लिये खडा रहकर पहारा करता है। कभी सोता नहीं, कभी आराम नहीं करता और अपने कार्यसे कभी पीछे नहीं हटता। सब इंद्रियां सोती हैं परंतु इस प्राणका सोना कभी किसीने सुना ही नहीं। अर्थात् विश्राम न लेता हुआ यह प्राण रातदिन शरीरमें कार्य करता है।

इसीलिये प्राण उपासना निरंतर हो सकती है। देखिए, किसी आलंबनपर दृष्टि रख कर ध्यान करना हो तो दृष्टि थक जाती है। दृष्टि थकनेपर उसकी उपासना नेत्रों द्वारा नहीं हो सकती। इसी प्रकार अन्य इंद्रियां थकतीं हैं और विश्राम चाहतीं हैं, इसलिये अन्य इंद्रियोंके साथ उपासना निरंतर नहीं हो सकती। परंतु यह प्राण कभी थकता नहीं और कभी विश्राम नहीं चाहता। इसलिये इसके साथ जो प्राण उपासना की जाती है वह निरंतर हो सकती है। विना रुकावट प्राणोपासना हो सकती है, इसलिये इसका अत्यंत महत्त्व है। तथा अब इस सूक्तका अन्तिम मंत्र कहता है कि--

"हे प्राण! मेरेसे दूर न हो जाओ, दीर्घ काल तक मेरे अंदर रहो, मैं दीर्घ जीवन व्यतीत करूंगा, मैं दीर्घ आयुष्यसे युक्त होकर सौ वर्षसेभी अधिक जीवन व्यतीत करूंगा। इसलिये मेरेसे पृथक् न होओ!" यह भावना उपासकको मनमें धारण करना चाहिए। अन्नमय मन है और आपोमय प्राण है। इसलिये प्राणको पानीका गर्भ कहा है। उपासकके मनमें यह भावना स्थिर रहनी चाहिए, कि मैंने प्राणायामादि द्वारा अपने शरीरमें प्राणको बांधकर रख दिया है। इसलिये यह प्राण कभी वियुक्त होकर दूर नहीं होगा। प्राणायामादि साधनोंपर दृढ विश्वास रखकर, उन साधनोंके द्वारा मेरे शरीरमें प्राण स्थिर हुआ है, ऐसा दृढ भाव चाहिए और कभी अकाल मृत्युका विचारतक मनमें नहीं आना चाहिए। आत्मापर विश्वास रखनेसे उक्त भावना दृढ हो जाती है। इस प्राण सूक्तमें निम्न भाव हैं—

प्राणसूक्तका सारांश।

(१) प्राणके आधीन ही सब कुछ है, प्राणही सबका मुखिया है।

(२) प्राण पृथ्वीपर है, अंतरिक्षमें है और द्युलोकमें है।

(३) द्युलोकका प्राण सूर्य किरणों द्वारा पृथ्वीपर आता है, अंतरिक्षका प्राण वृष्टिद्वारा पृथ्वीपर पहुंचता है, और पृथ्वीपरका प्राण यहां सदाही वायुरूपसे रहता है।

(४) अंतरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ प्राणसे ही सबका जीवन है। इस प्राणकी प्राप्तिसे सबको आनंद होता है।

(५) एक ही प्राण व्यक्तिके शरीरमें प्राण अपान आदि रूपमें परिणत होता है। शरीरके प्रत्येक अंग, अवयव और इंद्रियोंमें अर्थात् सर्वत्र प्राण ही कार्य करता है।

(६) प्राणही सब औषधियोंकी औषधि है। प्राणके कारण ही सब शरीरके दोष दूर होते हैं। प्राणकी अनुकूलता न होनेपर कोई औषध कार्य नहीं कर सकता, और प्राणकी अनुकूलता होनेपर विना औषध आरोग्य रह सकता है।

(७) प्राण ही दीर्घ आयु देनेवाला है।

(८) प्राण ही सबका पिता और पालक है। सर्वत्र व्यापक भी है।

(९) मृत्यु, रोग और बल ये सब प्राणके कारण ही होते हैं। सब इंद्रिय प्राणके साथ रहनेपर ही बल प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष प्राणको वशमें करके बल प्राप्त कर सकते हैं। सत्यनिष्ठ पुरुष प्राणकी प्रसन्नतासे उत्तम योग्यता प्राप्त करते हैं।

(१०) प्राणके साथ ही सब देवताएं हैं। सबको प्रेरणा करनेवाला प्राण ही है।

(११) धान्यमें प्राण रहता है। वह भोजनके द्वारा शरीरमें जाकर शरीरका बल बढाता है।

(१२) गर्भमें भी प्राण कार्य करता है। प्राणकी प्रेरणासे ही गर्भ बाहिर आता है और बढता है।

(१३) प्राणके द्वारा ही पिताके सब गुण कर्म स्वभाव और शक्तियां पुत्रमें आतीं हैं।

(१४) प्राण ही हंस है और यह हृदयके मानस सरोवरमें क्रीडा करता है। जब यह चले जाता है तब कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

(१५) शरीरके आठ चक्रोंमें, मस्तिष्कमें तथा हृदयके केंद्रमें भिन्न रूपसे प्राण रहता है। यह स्थूल शक्तिसे सब शरीरका धारण करता है और सूक्ष्म शक्तिसे आत्माके साथ गुप्त संबंध रखता है।

(१६) प्राणमें आलस्य और थकावट नहीं होती है। भीति और संकोच नहीं

होता। क्योंकि इसका ब्रह्म अथवा आत्माके साथ संबंध है।

(१७) यह शरीरमें रहता हुआ खडा पहारा करता है। अन्य इंद्रिय थकते, दमते और सोते हैं; परंतु यह कभी थकता नहीं और कभी विश्राम नहीं लेता। इसका विश्राम होनेपर मृत्यु ही होती है।

(१८) इसलिये सबको प्राणकी स्वाधीनता प्राप्त करना चाहिए। और उसकी शक्तिसे बलवान होना चाहिए।

इस प्रकार इस सूक्तका भाव देखनेके पश्चात् वेदोंमें अन्यत्र प्राण विषयक जो जो उपदेश है उसका विचार करते हैं।

ऋग्वेदमें प्राणविषयक उपदेश.

ऋग्वेदमें प्राणविषयक निम्न मंत्र हैं, उनको देखनेसे ऋग्वेदका इस विषयमें उपदेश ज्ञात हो सकता है।—

प्राणाद्वायुरजायत ॥ ऋ. १०।९०।१३; अथ. १९।६।७

" परमेश्वरीय प्राण शक्तिसे इस वायुकी उत्पत्ति होगई है। " यह वायु हमारा पृथ्वीस्थानीय प्राण है। वायुके विना क्षणमात्र भी जीवन रहना कठिण है। सबही प्राणी इस वायुको चाहते हैं। परंतु कोई यह न समझे कि यह वायुही वास्तविक प्राण है, क्यों कि परमेश्वरकी प्राणशक्तिसे इसकी उत्पत्ति है। यह वायु हमारे फेंफडोंके अंदर जब जाता है, तब उसके साथ परमेश्वरकी प्राणशक्ति हमारे अंदर जाती है, और उससे हमारा जीवन होता है। यह भाव प्राणायामके समय मनमें धारण करना चाहिए। प्राणही आयु है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिए—

आयुर्न प्राणः ॥ ऋ. १।६६।१

" प्राणही आयु है। " जबतक प्राण रहता है तब तक ही जीवन रहता है। इसलिये जो दीर्घ आयु चाहते हैं उनको उचित है, कि वे अपने प्राणको तथा प्राणके स्थानको बलवान बनावें। प्राणका स्थान फेंफडोंमें होता है। फेंफडे बलवान करनेसे प्राणमें बल आजाता है और उसके द्वारा दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है।

असु—नीति।

राजनीति, समाजनीति, गृहनीति इन शब्दोंके समान " असुनीति " शब्द है। राज्य चलानेका प्रकार राजनीतिसे व्यक्त होता है, इसी प्रकार " असु " अर्थात्

प्राणोंका व्यवहार करनेकी रीति " असुनीति " शब्दसे व्यक्त होती है। Guide to life, way to life अर्थात् " जीवनका मार्ग " इस भावको " असु-नीति " शब्द व्यक्त कर रहा है, यह प्रो० मोक्षमुल्लर, प्रो. रॉथ आदिका कथन सत्य है। देखिये—

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुन प्राणमिह नो धेहि भोगं ॥
ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरंतमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ ऋ. १०।५९।६

" हे असुनीते ! यहां हमारे अंदर पुनः चक्षु, प्राग और भोग धारण करो। सूर्यका उदय हम बहुत देर तक देख सकें। हे अनुमते ! हम सबको सुखी करो और हमको स्वास्थ्यसे युक्त रखो। "

" असुकी नीति " अर्थात् " प्राण धारण करनेकी रीति " जब ज्ञात होती है, तब चक्षुकी शक्ति हीन होनेपर भी पुनः उत्तम दृष्टि प्राप्त की जा सकती है, प्राण जानेकी संभावना होनेपर भी पुनः प्राणकी स्थिरता की जा सकती है, भोग भोगनेकी अशक्यता होनेपर भी भोग भोगनेकी शक्यता हो सकती है। मृत्यु पास आनेके कारण सूर्य-दर्शन अशक्य होनेपर भी दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति होनेके पश्चात् पुनः सूर्यकी उपासना हो सकती है। प्राण-नीतिके अनुकूल मति रखनेसे यह सब कुछ हो सकता है, इसमें कोई संदेह ही नहीं। तथा—

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवतावे सु प्रतिरानु आयुः ॥
रारंधि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ऋ. १९।५९।५

" हे असुनीते ! हमारे अंदर मनकी धारणा करो और हमारी आयु बडी दीर्घ करो। सूर्यका दर्शन हम करें। तू घीसे शरीर बढाओ। "

आयुष्य बढानेकी रीति इस मंत्रमें वर्णनकी है। पहिली बात मनकी धारणा की है। मनकी धारणा ऐसी दृढ और पक्की करनी चाहिए कि, मैं योगसाधनादि द्वारा अवश्यही दीर्घ आयु प्राप्त करूंगा, तथा किसी कारण भी मेरी आयु क्षीण नहीं होगी। इसप्रकार मनकी पक्की धारणा करनी चाहिए। मनकी दृढ शक्तिपर ही और मनके दृढ विश्वास परही सिद्धि अवलंबित होती है। सूर्य प्रकाशका दीर्घ आयुके साथ संबंध वेदमें सुप्रसिद्ध ही है। प्राणायाम आदि द्वारा जो मनुष्य प्राणका बल बढाना चाहते हैं उनको घी बहुत खा कर अपना शरीर पुष्ट रखना चाहिए। प्राणायाम बहुत करनेपर घी न खानेसे शरीर कृश होता है। इसलिये प्राणायाम करनेवालोंको उचित है कि वे अपने भोजनमें घी अधिक सेवन करें।

इस प्रकार यह प्राणनीतिका शास्त्र है। पाठक इन मंत्रोंका विचार करके दीर्घ आयु प्राप्त करनेके उपायोंका साधन प्राणायामादि द्वारा करें।

यजुर्वेदमें प्राणविषयक उपदेश।

प्राणकी वृद्धि

प्राणका संवर्धन करनेके विषयमें वेदका उपदेश निम्न मंत्रमें आगया है-

प्राणस्त आप्यायताम् ॥ यजु० ६।१५

" तेरा प्राण संवर्धित हो। " प्राणकी शक्ति बढानेकी बडी ही आवश्यकता है, क्योंकि प्राणकी शक्तिके साथही सब अवयवोंकी शक्ति संबंध रखती है, इसकी सूचना निम्न मंत्र दे रहा है—

ऐंद्रः प्राणो अंगे अंगे निदिध्यदैंद्र उदानो अंगे अंगे निधीतः॥ य० ६।२६

" (ऐंद्रः प्राणः) आत्माकी शक्तिसे प्रेरित प्राण प्रत्येक अंगमें पहूंचा है, आत्माकी शक्तिसे प्रेरित उदान प्रत्येक अंगमें रखा है। " इस प्रकार आंतरिक शक्तिका वर्णन वेदने किया है। प्रत्येक अंगमें प्राण रहता है और वहां आत्माकी प्रेरणासे कार्य करता है। इस मंत्रके उपदेशसे यह सूचना मिलती है, कि जिस अंग, अवयव अथवा इंद्रियमें प्राणकी शक्ति न्यून होगी, वहां आत्माकी प्रबल इच्छाशक्ति द्वारा प्राणकी शक्ति बढाई जा सकती है। यही पूर्व सूक्तोक्त " आंगि-रस-विद्या " है। अपने किस अंगमें प्राणकी न्यूनता है, इसको जानना और वहां अपनी आत्मिक इच्छा शक्ति द्वारा प्राणको पहुंचाना चाहिए। यही अपना आरोग्य बढानेका उपाय है। वेदमें जो " आंगिरस विद्या " है वह यही है। प्राणका रक्षण करनेके विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिए—

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि ॥ य० १४।८; १७

" मेरे प्राण, अपान, व्यानका संरक्षण करो।" इनका संरक्षण करनेसे ही ये प्राण सब शरीरका संरक्षण कर सकते हैं। तथा—

प्राणं ते शुंधामि ॥ यजु. ६--१४
प्राणं मे तर्पयत ॥ यजु. ६-३१

" प्राणकी पवित्रता करता हूं। प्राणकी तृप्ति करो। " तृप्ति और पवित्रतासे ही प्राणका संरक्षण होता है। अतृप्त इंद्रिय होनेसे मनुष्य भोगोंकी ओर जाता है, और पतित होता है। इस प्रकार भोगोंमें फंसे हुए मनुष्य अपनी प्राणकी शक्ति व्यर्थ खो बैठते हैं। इसलिये प्राणका संवर्धन करनेवाले मनुष्योंको उचित है कि वे

अपना जीवन पवित्रतासे और नित्यतृप्त वृत्तिसे व्यतीत करें। अपवित्रता और असंतुष्टता ये दो दोष प्राणकी शक्ति घटानेवाले हैं। शक्ति घटानेवाला कोई कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि—

प्राणं न वीर्यं नसि। य० २१।४९

" नाकमें प्राणशक्ति और वीर्य बढाओ। " प्राणशक्ति नासिकाके साथ संबंध रखती है, और जब यह प्राणशक्ति बलवान होती है, तब वीर्य भी बढता है और स्थिर होता है। वीर्य और प्राण ये दोनों शक्तियां साथ साथ रहतीं हैं। शरीरमें वीर्य रहनेसे प्राण रहता है, और प्राणके साथ वीर्य भी रहता है। एक दूसरेके आश्रयसे रहनेवाली ये शक्तियां हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यकी रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बनते हैं, उनका प्राण भी बलवान हो जाता है, और उनको आसानीसे प्राणायामकी सिद्धि होती है। तथा जो प्रारंभसे प्राणायामका अभ्यास नियम पूर्वक करते हैं, उनका वीर्य स्थिर हो जाता है। यद्यपि किसीका किसी कारणवश प्रथम आयुमें ब्रह्मचर्य न रहा हो, तो भी वह नियमपूर्वक अनुष्ठानसे उत्तर आयुमें प्राणसाधनसे अपने शरीरमें प्राणशक्तिका संवर्धन और वीर्यरक्षण कर सकता है। जिसका ब्रह्मचर्य आदि प्रारंभसे ही सिद्ध होता है, उसको शीघ्र और सहजसिद्धि होती है; परंतु जिसको प्रारंभसे सिद्ध नहीं होता, उसको वह बात प्रयत्नसे सिद्ध होती है। प्राणशक्तिके संवर्धनके उपायोंमें गायन भी एक उपाय है—

गायन और प्राणशक्ति।

साम प्राणं प्रपद्ये। य. ३६।१

'प्राणको लेकर सामकी शरण लेता हूं।' सामवेद गायन और उपासनाका वेद है। ईश उपासना और ईशगुणोंके गायनसे प्राणका बल बढता है। केवल गानविद्यासे भी मनकी एकाग्रता और शांति प्राप्त होती है। इसलिये गायनसे दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। गायक लोग यदि दुर्व्यसनोंमें न फसेंगे तो वे अन्योंकी अपेक्षा अधिक दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। गायनका आरोग्यके साथ अत्यंत संबंध है। उपासनाके साथ भी गायनका अत्यंत संबंध है। मन गायनसे उपासनामें अत्यंत तल्लीन होता है और यही तल्लीनता प्राणशक्तिको प्रबल करनेवाली है। यह बात और है कि गायनका धंदा करनेवाले आजकलके स्त्रीपुरुषोंने अपने आचरण बहुतही गिरा दिये हैं। परंतु यह दोष गायनका नहीं है, वह उन मनुष्योंका दोष है। तात्पर्य यह है कि जो पाठक अपने प्राणको बलवान करना चाहते हैं, वे सामगान

अवश्य सीखें, अथवा साधारण गायन सीखकर उसका उपासनामें उपयोग करके मनकी तल्लीनता प्राप्त करें ।

मयि प्राणापानौ । य० ३६।१

' मेरे अंदर प्राण और अपान बलवान रहें । ' यह इच्छा हर एक मनुष्य स्वभावतः धारण करता ही है । परंतु कभी कभी व्यवहार उस इच्छासे विरुद्ध करता है । जब इच्छाके अनुसार व्यवहार हो जायगा, तब सिद्धिमें किसी प्रकारका विघ्न हो नहीं सकता । प्रस्तुत प्राणका प्रकरण चला है, इसका संबंध बाहिरके शुद्ध वायुके साथ है, और अंदरका संबंध नासिका आदि स्थानके साथ है इसलिये कहा है—

वातं प्राणेन अपानेन नासिके ॥ य० २५।२

" प्राणसे वायुकी प्रसन्नता और अपानसे नासिकाकी पूर्तता करना चाहिए । " बाह्य शुद्ध और प्रसन्न वायुके साथ प्राण हमारे शरीरोंमें जाता है, और नासिका ही उसका प्रवेश द्वार है । बाह्य वायुकी प्रसन्नता और नासिकाकी शुद्धि अवश्य करना चाहिए । नाककी मलिनता और अपवित्रताके कारण प्राणकी गतिमें रुकावट होती है । प्राणकी प्रतिष्ठाके लिये ही हमारे सब प्रयत्न होने चाहिए, इसकी सूचना निम्न मंत्रोंसे मिलती है—

प्राणकी प्रतिष्ठा ।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ॥
य० १३।१९; १४।१२; १५।६४

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ॥
य० १३।२४; १४।१४; १५।२८

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा ॥ य० २२।२३; २३।१८

" प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि सब प्राणोंकी प्रतिष्ठा और उनका व्यवहार उत्तम रीतिसे होना चाहिए । सब प्राणोंको तेजस्वी करो । सब प्राणोंके लिये त्याग करो । "

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह देखे कि, अपने आचरणसे अपने प्राणोंका बल बढ रहा है या घट रहा है, अपने प्राणोंकी प्रतिष्ठा बढ रही है या घट रही है; अपने प्राणोंके सब ही व्यवहार उत्तम चल रहे हैं अथवा किसीमें कोई त्रुटी है; अपने प्राणोंका तेज बढ रहा है या घट रहा है । इसका विचार करना हरएकका कर्तव्य है । क्योंकि इनका विचार करने

से ही हरएक जान सकता है कि मैं प्राणविषयक अपना कर्तव्य ठीक प्रकार कर रहा हूं या नहीं। प्राणविषयक कर्तव्यका स्वरूप "स्वाहा" शब्दद्वारा व्यक्त हो रहा है। सब अन्य इंद्रिय गौण हैं और प्राण मुख्य है, इसलिये अन्य इंद्रियोंके भोगोंका स्वाहाकार प्राणके संवर्धनके लिये होना चाहिये। अर्थात् इंद्रियोंके भोग भोगनेके लिये जो शक्ति खर्च हो रही है, उसका बहुतसा हिस्सा प्राणकी शक्ति बढानेके लिये खर्च होना चाहिए। मनुष्योंके सामान्य व्यवहारमें देखा जायगा तो प्रतीत होगा कि इंद्रियभोग भोगनेमें यदि शक्तिके १०० मेंसे ९९ भागका खर्च हो रहा है, तो प्राणसंवर्धनमें एक भाग भी खर्च नहीं होता है। मुख्य प्राणके लिये कुछ शक्ति नहीं खर्च होती परंतु गौण इंद्रिय-भोगके लिये ही सब शक्तिका व्यय हो रहा है !! क्या यह आश्चर्य नहीं है ? वास्तवमें मुख्यके लिये अधिक और गौणके लिये कम व्यय होना चाहिए। यही वेदने कहा है, कि प्राणसंवर्धनके लिये अपनी शक्तिका स्वाहा करो। अपना समय, अपना प्रयत्न, अपना बल और अपने अन्य साधन प्राणसंवर्धनके लिये कितने खर्च किये जाते हैं और भोगोंके लिये कितने खर्च किये जाते हैं, इसका विचार कीजिए। मनुष्योंका उलटा व्यवहार हो रहा है, इसलिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिए। प्रतिदिनका ऐसा विभाग करना चाहिए कि जिसमें बहुतसा हिस्सा प्राणवर्धनके कार्यके लिये समर्पित हो सके। देखिए—

राजा मे प्राणः ॥ य० २०।५

"मेरा प्राण राजा है" सब शरीरका विचार कीजिए तो आपको पता लग जायगा कि सबका राजा प्राण ही है। आप समझ लीजिए कि अपना प्राण यह सचमुच राजा है। जब आपके घरमें राजा ही अतिथी आता है, उस समय आप राजाका ही आदरातिथ्य करते हैं, और उनके नौकरोंके तरफ ध्यान अवश्य देते हैं, परंतु जितना राजाकी ओर ध्यान दिया जाता है उतना अन्योंके विषयमें ध्यान नहीं दिया जाता। यही न्याय यहां है। इस शरीरमें प्राण नामक राजा अतिथी आया है और उसके अनुचर अन्य इंद्रियगण हैं। इसलिये प्राणकी सेवा शुश्रूषा अधिक करना चाहिए, क्योंकि वह ठीक रहा, तो अन्य अनुचर ठीक रह सकते हैं। परंतु यदि राजा असंतुष्ट होकर चले गया तो एक भी अनुचर आपकी सहायता नहीं कर सकेगा।

आजकल इंद्रियोंके भोग बढानेमें सब लोक लगे हैं, प्राणकी शक्ति बढानेका कोई ख्याल नहीं करता !!! इसलिये प्राण अप्रसन्न होकर शीघ्रही इस शरीरको छोड देता है। जब प्राण छोडने लगता है, तब अन्य इंद्रियशक्तियां भी उसके साथ इस शरीर

को छोड देती हैं। यही अल्पायुताका कारण है। परंतु इसका विचार बहुतही थोडे लोक प्रारंभसे करते हैं। तात्पर्य इंद्रियभोग भोगनेके लिये शक्ति कम खर्च करनी चाहिए, इसका संयमही करना चाहिए; और जो बल होगा उसको अर्पण करके प्राणकी शक्ति बढानेमें पराकाष्ठा करनी चाहिए। अपने प्राणको बुरे कार्योंमें समर्पित करनेसे बडी ही हानी होती है। कितने दुर्व्यसन और कितने कुकर्म हैं कि जिनमें लोक अपने प्राण अर्पण करनेके लिये आनंदसे प्रवृत्त होते हैं!! वास्तवमें सत्कर्मके साथही अपने प्राणोंको जोडना चाहिए। देखिए वेद कहता है—

सत्कर्म और प्राण।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां॥

य० ९।२१; १८।२९; २२।३३

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मे असुश्च मे........यज्ञेन कल्पंताम्॥

य० १८।२

प्राणश्च मे यज्ञेन कल्पंताम्॥ य० १८।२२

"मेरी आयु यज्ञसे बढे, मेरा प्राण यज्ञसे समर्थ हो। मेरा प्राण, अपान, व्यान और साधारण प्राण यज्ञद्वारा बलवान बने। मेरा प्राण यज्ञके लिये समर्पित हो।"

यज्ञका अर्थ सत्कर्म है। जिस कर्मके साथ बडोंका सत्कार होता है, सबमें विरोध हटकर एकताकी वृद्धि होती है और परस्पर उपकार होता है वह यज्ञ हुआ करता है। यज्ञ अनेक प्रकारके हैं, परंतु सूत्ररूपसे सब यज्ञोंका तत्त्व उक्त प्रकारकाही है। इसलिये यज्ञके साथ प्राणका संबंध आनेसे प्राणमें बल बढने लगता है। स्वार्थ तथा खुदगर्जीके कर्मोंमें लगे रहनेसे प्राणशक्तिका संकोच होता है, और जनताके हितके व्यापक कर्म करनेमें प्रवृत्त होनेसे प्राणकी शक्ति विकसित होती है। आशा है कि पाठक इस प्रकारके शुभ कर्मोंमें अपने आपको समर्पित करके अपने प्राणको विशाल करेंगे। वेदमें अग्नि आदि देवताओंका जहां वर्णन आया है वहां उनका प्राणरक्षक गुण भी वर्णन किया है। क्यों कि जो देवता प्राणरक्षक होगी उसकी ही उपासना करनी चाहिये। देखिये—

प्राणदाता अग्नि।

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः॥ य० १७।१५

प्राणपा मे अपानपाश्चाक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे॥

वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ य० २०।३४

" तू प्राण, अपान, व्यान, तेज और स्वातंत्र्य देनेवाला है । तू मेरे प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र आदिका संरक्षक है, मेरे वाणीके दोष दूर करनेवाला तथा मनको शुद्ध और पवित्र करनेवाला है । "

प्राणका सत्कर्ममें प्रदान करना, प्राणका संरक्षण करना, इंद्रियोंका संयम करना, वाचाके दोष दूर करने और मनकी पवित्रता करना, यह कार्य सूक्ष्मरूपसे उक्त मंत्रमें कहा है । इतना करनेसे ही मनुष्यका बेडा पार हो सकता है । मन और वाणीकी शुद्धता न होनेसे जगत्में कितने अनर्थ हो रहे हैं, इसकी कोई गिनती नहीं हो सकती । मन, वाणी, इंद्रियां और प्राण इनकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये ही सब धर्म और कर्म होते हैं । इसलिये अपनी उन्नति चाहनेवालोंको इस कर्तव्यकी ओर अपना ख्याल सदा रखना चाहिये । अब प्राणकी विभूति बतानेवाला अगला मंत्र है, देखिए—

अयं पुरो भुवः । तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनः॥ य० १३।५४

" यह आगे भुवर्लोक है, उसमें रहता है इसलिये प्राणको भौवायन कहते हैं। वसन्त प्राणायन है । "

भूलोक पृथ्वी है, और अंतरिक्ष लोक भुवर्लोक है । यह प्राणका स्थान है, इस अवकाशमें प्राण व्यापक है, वायुका और प्राणका एकही स्थान है । अंतरिक्षमें ही दोनों रहते हैं। वसंत प्राणका ऋतु है। क्योंकि इस ऋतुमें सब जगतमें प्राणशक्तिका संचार होकर सब वृक्षोंको नवजीवन प्राप्त होता है । यह प्राणका अवतार हरएकको देखना चाहिए । प्राणके संचारसे जगतमें कितना परिवर्तन होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव यहां दिखाई देता है । इस ऋतुमें सब वृक्ष आदि नूतन पल्लवोंसे सुशोभित होते हैं, फलोंसे युक्त होनेके कारण पूर्णताको प्राप्त होते हैं । फल, फूल और पल्लव ही सब सृष्टिके नवजीवनकी साक्षी देते हैं । इसीप्रकार जिनको प्राण प्रसन्न होता है उनकोभी स-फल-ता प्राप्त होती है । जिसप्रकार सब सृष्टि प्राणकी प्रसन्नतासे पुष्पवती और फलवती होती है, उसी प्रकार मनुष्य भी प्राणको वश करनेसे अपने अभीष्टमें सफलता प्राप्त कर सकता है ।

प्राणके साथ इंद्रियोंका विकास ।

सोनेके समय अपने इंद्रिय कैसे लीन होते हैं और फिर जागृतिके समय कैसे व्यक्त

होते है, इसका विचार प्रत्येकको करना चाहिए । इससे अपने आत्मा और प्राण-शक्तिके महत्त्वका पता लगता है । इसका प्रकार देखिए—

> पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् ॥
> पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः
> पातु दुरिताद्वद्यात् ॥　　　　　　　　　　य० ४।१५

" मेरा मन, आयुष्य, प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र आदि पुनः मुझे प्राप्त हुए हैं । शरीरका रक्षक, सब जनोंका हितकारी आत्मा पापोंसे हम सबको बचावे । "

सोनेके समय मन आदि सब इंद्रियां लीन हो गई थीं, यद्यपि प्राण जागता था तथापि उसके कार्यका भी पता हमको नहीं था । वह सब कलके समान आज पुनः प्राप्त हुआ है । यह आत्माकी शक्तिका कितना आश्चर्यकारक प्रभाव है ! वह आत्म-शक्ति हमको पापोंसे बचावे । प्राणशक्तिके साथ इन शक्तियोंका लीन होना और पुनः प्राप्त होना, प्रतिदिन हो रहा है । इसका विचार करनेसे पुनर्जन्मका ज्ञान होता है । क्यों कि जो बात निद्राके समय होती है वह ही वैसीही मृत्युके समय होती है । और उसीप्रकार महाप्रलयके समयमें भी होती है । नियम सर्वत्र एकही है । प्राणके साथ अन्य इंद्रियां कैसी रहतीं हैं, प्राण कैसा जागता है और अन्य इंद्रियां कैसीं थक कर लीन होतीं हैं, इसका विचार करनेसे अपनी आत्मशक्तिका ज्ञान होता है, और वह ज्ञान अपनी शक्तिका विकास करनेके लिये सहायक होता है । अपने प्राणका विश्वव्यापक प्राणके साथ संबंध देखना चाहिये इसकी सूचना निम्न मंत्र देते हैं—

विश्वव्यापक प्राण ।

> सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् ॥　　　　　　य० ६।१८
> सं ते प्राणो वातेन गच्छताम् ॥　　　　　य० ६।१०

" अपना प्राण विश्वव्यापक प्राणके साथ संगत हो । तेरा प्राण वायुके साथ संगत हो । " तात्पर्य अपना प्राण अलग नहीं है, वह सार्वभौमिक प्राणका एक हिस्सा है । इस दृष्टिसे अपने प्राणको जानना चाहिए । सब अंतरिक्षमें प्राणका समुद्र भरा है, उसमेंसे थोडासा प्राण मेरे अंदर आकर मेरे शरीरका जीवन दे रहा है, श्वास प्रश्वास द्वारा वह ही सार्वभौमिक प्राण अंदर जा रहा है, इत्यादि भावना मनमें धारण करना चाहिए । तात्पर्य यह सार्वभौमिक दृष्टि सदा धारण करना चाहिए । सबकी उन्नतिमें एककी उन्नति है, समष्टिकी उन्नतिमें व्यष्टिकी भलाई है यह वैदिक

सिद्धांत है। इसलिये समष्टिकी व्यापक दृष्टि प्रत्येक उपासकके अंदर उत्पन्न होनी चाहिए। वह उक्त प्रकारसे हो सकती है। इस प्राणकी और बातें निम्न मंत्रमें देखिए—

लडनेवाला प्राण।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय, प्राणस्य पंथा अमृतो ग्रहाभ्याम्।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ य० १९।९०

"(मेषः न) मेंढेके समान लडनेवाला (अविः) संरक्षक प्राणवायु वीर्यके लिये (नसि) नाकमें रखा है। (ग्रहाभ्यां) श्वास उच्छ्वास रूप दोनों प्राणोंसे प्राणका अमृतमय मार्ग बना है। (बदरैः उपवाकैः) स्थिर स्तुतियोंके द्वारा (सरस्वती) सुषुम्ना नाडी (व्यानं) सर्व शरीर व्यापक व्यान प्राणको तथा (नस्यानि) नासिकाके साथ संबंध रखनेवाले अन्य प्राणोंको (बर्हिः जजान) प्रकट करती है।"

स्पर्धा करनेवाला, शत्रुके साथ युद्ध करके उसका पराजय करनेवाला मेंढा होता है। यही प्राणका कार्य अपने शरीरमें है। सब व्याधियों और शरीरके सब शत्रुओंके साथ लडकर शरीरका आरोग्य नित्य स्थिर रखनेका बडा कार्य करनेवाला महावीर अपने शरीरमें मुख्य प्राण ही है। यह मेंढेके समान लढता है। इसका नाम "अविः" है क्यों कि यह अवन अर्थात् सब शरीरका संरक्षण करता है। अवनके अन्य अर्थ भी यहां देखने योग्य हैं—रक्षण, गति, कांति, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान, प्रवेश, श्रवण, स्वामित्व, प्रार्थना, कर्म, इच्छा, तेज, प्राप्ति, आलिंगन, हिंसा, दान, भाग और वृद्धि इतने अव् धातुके अर्थ हैं। ये सब अर्थ प्राणवाचक "अवि" शब्दमें हैं। प्राणके कार्य इन शब्दोंसे व्यक्त होते हैं। पाठक इन अर्थोंको लेकर अपने प्राणके धर्म और कर्म जाननेका यत्न करें।

इतने कार्य करनेवाला संरक्षण प्राण हमारी नासिकामें रहा है। नासिका स्थानीय एक ही प्राण हमारे शरीरमें उक्त कार्य करता है। यही इसका महत्त्व है। यह प्राणका मार्ग "अ-मृत" मय है। अर्थात् इस मार्गमें मरण नहीं है। इस मार्गका रक्षण करनेवाले दो ग्रह हैं। "श्वास और उच्छ्वास" ये दो ग्रह इस मार्गका संरक्षण कर रहे हैं। सबको स्वाधीन रखनेवाले, सबका ग्रहण करनेवाले ग्रह होते हैं। श्वास और उच्छ्वासोंसे सब शरीरका उत्तम ग्रहण हो रहा है, इसलिये ये ग्रह हैं। इन दो ग्रहोंके कार्यसे प्राणका मार्ग मरण रहित हुआ है, जब तक

श्वास और उच्छ्वास चलते हैं, तब तक मरण होता ही नहीं, इसलिये श्वासोच्छ्वासके अस्तित्व तक शरीरमें " अमृत " ही रहता है। परंतु जब ये दो ग्रह दूर हो जाते हैं, तब मरण आता है।

" इडा, पिंगला और सुषुम्ना " ये तीन नाडियां शरीरमें हैं। इनहीको क्रमसे " गंगा, यमुना और सरस्वती " कहा जाता है। अर्थात् सरस्वती सुषुम्ना है। इसमें प्राणकी प्रेरक शक्ति है। स्थिर चित्तसे जो उपासना करते हैं, अर्थात् दृढ विश्वास-से जो परमात्मभक्ति करते हैं, उनके अंदर सुषुम्नाद्वारा यह प्राण विशेष प्रभाव बताता है। तात्पर्य उपासनाके साथ ही प्राणका बल बढता है। व्यान प्राण वह है कि जो शरीरमें व्यापक है, और अन्य नस्य अर्थात् नासिकाके साथ संबंध रखनेवाले प्राण हैं। इन सब प्राणोंकी प्रेरणा उक्त सुषुम्ना करती है। परमेश्वर भक्तिका बल इस सुषुम्नामें बढता है और इसके द्वारा प्राणोंका सामर्थ्य भी प्रकट होता है।

सरस्वतीमें प्राण।

इस मंत्रमें प्राणायाम साधनकी बहुतसीं गुह्य बातें सरल शब्दोंद्वारा लिखीं हैं, इसलिये पाठकोंको इस मंत्रका विशेष विचार करना चाहिए। इस मंत्रमें जिस सरस्वती का वर्णन आया है उसीका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिए—

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यं ॥
वाचेंद्रो बलेनेंद्राय दधुरिंद्रियम् ॥ य० २०।८०

" अश्विदेव तेजके साथ चक्षु देते हैं, सरस्वती प्राण शक्तिके साथ वीर्य देती है, इंद्र (इंद्राय) जीवात्माके लिये वाणी और बलके साथ इंद्रियशक्ति अर्पण करता है। "

इसमें सरस्वती जीवनशक्तिके साथ वीर्य देती है ऐसा कहा है। यह सरस्वती शब्द भी पूर्वोक्त सुषुम्ना नाडीका वाचक है। अश्विनौ शब्द धन और ऋण शक्तियोंका वाचक है। इस मंत्रमें दो इंद्र शब्द हैं। पहिला परमात्माका वाचक और दूसरा जीवात्माका वाचक है। इंद्रिय शब्द आत्माकी शक्तिका वाचक है। कई लोक सरस्वती शब्दका नदी आदि अर्थ लेकर विलक्षण अर्थ करते हैं, उनको यह बात स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक शब्द आध्यात्मिक शक्तियोंके वाचक मुख्यतः हैं, पश्चात् अन्य पदार्थोंके वाचक हैं। अस्तु अब प्राणविषयमें और दो मंत्र देखिए—

भोजन और प्राण।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा ॥
दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां ॥　य० १।२०
प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वो-
दानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ॥　य० ७।२७

" तू धान्य है। देवोंको धन्य करो। प्राण, उदान और व्यानके लिये तेरा स्वीकार करता हूं। आयुष्यके लिये दीर्घ मर्यादा धारण करता हूं॥ मेरे प्राण, व्यान और उदानके तेजकी वृद्धि लिये शुद्ध बनो।"

सात्त्विक धान्यका आहार इंद्रियादिक देवोंको शुद्ध, पवित्र और प्रसन्न करता है। सात्त्विक भोजनसे प्राणका वल बढता है और आयुष्य बढता है। शुद्धतासे प्राणकी शक्ति विकसित होती है। इत्यादि बहुत उत्तम भाव उक्त मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं। तथा और एक मंत्र देखिए—

सहस्राक्ष अग्नि।

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्ध्व छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ॥
त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥ य० १७।७१

" हे सहस्र नेत्रवाले अग्ने ? तेरे सैंकडों प्राण, सैंकडों उदान और सहस्र व्यान हैं। सहस्रों धनोंपर तेरा प्रभुत्व है। इसलिये शक्तिके लिये हम तेरी प्रशंसा करते हैं।"

इस मंत्रका " सहस्राक्ष अग्नि " आत्मा ही है। शतक्रतु, इंद्र, सहस्राक्ष आदि शब्द आत्मावाचक ही हैं। सहस्र तेजोंका धारण करनेवाला आत्माही सहस्राक्ष अग्नि है। प्राण, उदान, व्यान आदि सब प्राण सैंकडों प्रकारके हैं। प्राणका स्थान शरीरमें निश्चित है। हृदयमें प्राण है, गुदाके प्रांतमें अपान है। नाभिस्थानमें समान है, कंठमें उदान है और सर्व शरीरमें व्यान है, प्रत्येक स्थानमें छोटे मोटे अनेक अवयव हैं, और प्रत्येक अवयवके सूक्ष्म भेद सहस्रों हैं। प्रत्येक स्थानमें और सूक्ष्मसे सूक्ष्म भेदमें उस उस प्राणकी अवस्थिति है, तात्पर्य प्रत्येकके प्राणके सैंकडों और सहस्रों भेद हो सकते हैं। इस प्रकार यह प्राणशक्तिका विस्तार हजारों रूपोंसे सब शरीर भर सूक्ष्मसे सूक्ष्म अंशमें हुआ है। यही कारण है, कि प्राणशक्ति वश होनेके कारण सब अंग प्रत्यंग अपने आधीन हो जाते हैं और प्राणशक्तिके वश होनेसे सब शरीरकी निरोगता भी सिद्ध हो सकती है।

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें

(१) यजुर्वेद। विना जिल्द मू. १॥) डा॰व्य॰॥)
कागजी जिल्द २) ”
कापडी जिल्द २॥) ”

(२) संस्कृतपाठमाला । १ अंकका मू.।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥।=)

३ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू. १) ।)

(४) अथर्ववेदका सुबोधभाष्य।
१ प्रथम काण्ड सजिल्द २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड ,, २) ॥)
३ तृतीय काण्ड ,, २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड ,, २) ॥)
५ पंचम काण्ड ,, २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड ,, २) ॥)
७ सप्तम काण्ड ,, २) ॥)
८ अष्टम काण्ड ,, २) ॥)
९ नवम काण्ड ,, २) ॥)
१० द्वादश काण्ड ,, २) ॥)
११ त्रयोदश काण्ड ,, १) ।=)
१२ चतुर्दश कांड ,, १) ।)
१३ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(५) छूत और अछूत।
१-२ भाग दोनोंका मू॰ १॥।) ॥)

(६) भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से १० प्रत्येकका मू॰॥) डा॰ व्य॰=)

(७) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(८) वेदका स्वयंशिक्षक । भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(९) योगसाधनमाला ।
१ संध्योपासना । १॥) ।-)
२ योगके आसन । (सचित्र) २) ।=)
३ ब्रह्मचर्य । १) ।-)
४ सूर्यभेदन-व्यायाम । ” ॥) ॥)
५ योगसाधनकी तैयारी । ।॥) ।)

(१०) यजु. अ. ३६ शांतिका उपाय॥=) ।)

(११) शतपथबोधामृत ।) -)

(१२) देवतापरिचय-ग्रंथमाला ।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार । ≡) -)
५ अग्निविद्या । १॥) ।-)

(१३) बालकधर्मशिक्षा ।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा। द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक ≡) -)

(१४) आगमनिबंधमाला ।
१ वैदिक राज्यपद्धति । ।-) -)
२ मानवी आयुष्य । ।) -)
३ वैदिक सभ्यता । ।॥) =)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र । ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा । ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय । ॥) =)
८ वेदमें चर्खा । ॥) =)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता। ।॥) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ । ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र । ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या । ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या । =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला । ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

(१५) उपनिषद्माला । १ ईशोपनिषद् १) ।-)
२ केन उपनिषद् । १।) ।-)

(१६) अन्य ग्रंथ ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) =)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
४ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
5 Sun Adoration १) ।=)

Regd.N.B.1463

गीता।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०

"वैदिक धर्म" का" " म० आ० से ३) रु वी०पी०से ३।=) "

दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

" " " " " " वी. पी. से ५॥।) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रखा गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है।

आदिपर्व ६॥=) रु.; सभापर्व २॥) रु.; वनपर्व ९=) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५॥=) भीष्मपर्व ४॥=) रु.; द्रोणपर्व ८॥) रु.; कर्णपर्व ३॥) रु.; शल्यपर्व २॥-) रु.; सौप्तिकपर्व ॥।) स्त्रीपर्व ॥-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६।=) रु.; आश्वमेधिकपर्व २॥-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु.; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ॥।-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपको अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री-स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक—श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध.

वर्ष १६

अंक ७

क्रमांक १८८

वैदिक धर्म

श्रावण संवत् १९९२

अगस्त सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि०सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृतपाठमाला"

के २४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये। २४ भागोंका मूल्य ६॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य १) और एक भागका मू० ॥)। वी०पी० द्वारा।) चार आने अधिक मूल्य होगा।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

Regd.N.B.1463

गीता।

संपादक– पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०

"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु वी०पी०से ३।=) "

दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

" " " " " " वी. पी. से ५॥) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

आर्यसमाज आगरा का सचित्र साप्ताहिक मुखपत्र।

सम्पादक-विष्णुदत्त कपूर साहित्याचार्य, एम्. ए.

दिवाकर-आर्यवैदिक संस्कृतिके पुनरुत्थान के लिये उदित हुआ है।

दिवाकर-इस महान् उद्देश्यकी पूर्तिके लिये धर्म, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, कला-विज्ञान, आदि विविध विषयोंपर उच्च कोटिके लेख प्रकाशित करता है।

दिवाकर-सरस कविता, मनोरंजक कहानियां, विचित्र विश्वघटनायें, आदर्श महापुरुषोंकी जीवनकृतियां, एवं अन्य रोचक तथा शिक्षाप्रद रचनाओंद्वारा पाठकोंके हृदयकमलोंको विकसित करता है॥

दिवाकर-बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी को समान रूपसे जीवन-निर्माण-शक्ति प्रदान करता है।

दिवाकर-विज्ञापनदाताओंके लिये अत्यन्त लाभ दायक पत्र है। वार्षिक मूल्य २॥)

मैनेजर, दिवाकर कार्यालय, आगरा.

क्यों दिन दिन लोकप्रिय हो रहा है ?

इसलिए कि

वह प्रजातंत्र का परम पक्षपाती है।

सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रांति का कट्टा समर्थक है।

दलितों, पतितों और पीडितों का सच्चा सखा है।

निरंकुश राजाओं और अत्याचारी शासकों से जमकर लोहा लेता है।

तथा महिला-संसार, बाल-विनोद, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति, राज्यों की हलचल आदि इसके विशेष स्तंभ हैं।

फिर भी वार्षिक मूल्य ३ रु० है।

मैनेजर 'गणेश' कार्यालय, राजामंडी, आगरा

कुस्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का

सचित्र **व्यायाम** मासिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य २॥) रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे पूर्ण होनेसे देखनेलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। जादह हकीकत के लिये लिखो।

मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बड़ोदा।

वर्ष १६
अंक ७
क्रमांक
१८८

श्रावण
संवत् १९९२
अगस्त
सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

स्त्रीकी योग्यता।

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥

ऋग्वेद १०।१५९।३

" (मे पुत्राः शत्रुहणः) मेरे पुत्र शत्रुका नाश करनेवाले बनें। (मे दुहिता विराट्) मेरी पुत्री विशेष तेजस्विनी हो, (उत) और (अहं संजया अस्मि) मैं स्वयं उत्तम विजयशालिनी हूँ, तथा (मे पत्यौ उत्तमः श्लोकः) मेरे पतिको उत्तम कीर्ति प्राप्त हो।"

गृहस्थाश्रममें रहनेवाली स्त्रीको कौनसी इच्छा धारण करना चाहिये उसका वर्णन इस मंत्रमें किया है। इस मंत्रका विचार सबको करना चाहिये। अपने लडके शत्रुका निःपात करनेवाले शूरवीर धीर बनें, लडकियां भी वैसीही तेजस्विनी बननी चाहिये। स्वयं धर्मपत्नी उत्तम विजयी हो, और पति भी कीर्तिमान और यशस्वी हो। गृहस्थाश्रममें रहनेवाला पुरुष भी यही इच्छा करे। दोनों इसी आदर्शको अपने सामने रखें। सब एक दूसरेको सहायता करें। और परस्परका यश बढाते हुए सबकी उन्नतिका साधन करें।

वेदार्थमें गंभीर दृष्टि ।

(ले०—ब्र० लक्ष्मणसिंहजी उपस्नातक, गुरुकुल कांगडी)

यदि मनुष्य जाति वेदोंको गंभीर दृष्टिसे देखने में अभ्यस्त हो जाये, तो वह वेदोंकी गंभीरताको जानकर सर्वसाधारणमें प्रकट करनेका साहस कर सकती है । क्या कारण है कि एक मनुष्य वेदोंमें बडी ऊंची ऊंची उडान लेता है, विज्ञान तथा नानाविध विद्याओंके ऊंचे ऊंचे असूलोंको पाता है, पर दूसरा पुरुष उन्हीं वेदोंमें निरर्थक, सर्वसाधारणज्ञात, तुच्छ सिद्धान्तोंको देखता है ? क्या आपने कभी इस प्रश्नपर कुछ सोचनेका प्रयत्न भी किया है ? यदि आपमेंसे किसीने इस प्रश्नपर विचार किया हो, तो हमारा ख्याल ही नहीं, निश्चय है- कि आप भी इसी परिणामपर पहुंचे होंगे कि एक मनुष्य वेदोंपर विश्वास कर, उसे सब सत्य विद्याओंका मूल समझ, उसमें ऊंचे सिद्धान्तोंको ढूंढनेकी कोशिश करता है और दूसरा व्यक्ति अन्यमनस्क भावसे वेदोंपर श्रद्धा न रखते हुए, साधारण पुस्तकोंकी न्याईं, केवल पृष्ठोंको पलटनेका काम करता है । यही कारण है कि जहां प्रथम व्यक्ति वदिक उच्च सिद्धान्तोंमें भ्रमण करता है, वहां दूसरा व्यक्ति अपने मनकी तुच्छ भावनाओंके कारण उसके उथलेपनमें ही रह जाता है और उसीमें अपनेको धन्य मानने लगता है ।

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'

के अनुसार जो व्यक्ति अपनी कुंठित मनरूपी ऐनकसे वेदोंको देखेगा, वह उसको कुंठित ही पायेगा, ठीक ऐसे ही जैसे एक हरे शीशेकी ऐनकसे संसार हरा दिखाई देने लगता है । इसी तरहसे जो व्यक्ति अपनी निर्मल तथा उच्च भावनाओंसे वेदोंको देखेगा, वह उसमें अपनी बुद्धिके अनुसार ही विज्ञान आदि विषयोंके ऊंचेसे ऊंचे सिद्धान्तोंको पायेगा । हमारा यह सिद्धान्त और भी अधिक पुष्ट होता है, जब हम देखते हैं कि एक भूगर्भशास्त्रका विशारद वेदोंमें भूगर्भशास्त्र (Geology) के ऊंचेसे ऊंचे सिद्धान्तोंको (१) पाता है । एक शरीर-विज्ञानका विशारद उसमें शरीरविज्ञानके नियमों (२) (Laws) को देखता है ।

आज हम अपनी इसी स्थापनाको अथर्ववेदके एक मंत्रद्वारा आपके सामने रखनेका प्रयत्न करेंगे। वह मंत्र इस प्रकार है—

> अग्निः प्राणान् संदधाति
> चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
> व्यहं सर्वेण पाप्मना
> वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ अ० ३-३-६

(1) The Rigvedic rishis and subsequent sages had in truth very wide acquaintance with, intimate knowledge of Geology (Vedic Fathers of Geology, Page3)

(2) The Vedas are books on the Physiology of the nervous system written by different vedic seers. (The Vedic Gods, P. 8.)

सूक्तके मंत्रोंपर विचार करते हुए ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदके इस सूक्तमें जिसमें कि ग्यारह मंत्र हैं दो स्थापनायेंकी गई हैं—

१ व्यहं सर्वेण पाप्मना वियक्ष्मेण।

२ समायुषा।

इन्हीं दोनों स्थापनाओंको जो कि जीवनकी मुख्य समस्यायें हैं, दृष्टान्तोंद्वारा इन ग्यारह मंत्रोंमें समझाया गया है। प्रथम पांच मंत्रोंद्वारा प्रथम स्थापना तथा पिछले छः मंत्रोंके द्वारा दूसरी स्थापना को समझाया गया है। इन्हीं पिछले छः मंत्रोंमें से एक यही निर्दिष्ट मंत्र है।

जैसा कि हम पहले लिख आये हैं- मनुष्य दो प्रकारके होते हैं- एक शास्त्रोंमें गंभीर दृष्टि तथा आस्थाबुद्धिको रखनेवाले और दूसरे उथली या मोटी बुद्धिवाले जो कि शास्त्रोंके अक्षरोंको केवल अक्षरसमुदाय जो कि ज्ञानके द्योतक नहीं है समझते हैं। अंग्रेज आदि जो लोग वेदोंको गडरियोंके गीत समझते हैं वे चाहे अपने विषयमें संसारके शिरोमणि विद्वान् हो, वेदोंके विषयमें वे दूसरी कोटिमें ही आयेंगे।

देखनेमें इस मंत्रके शब्द जितने सरल, स्पष्ट और सादे हैं उतने ही अधिक ये विशेष अर्थके द्योतक हैं। इस मंत्रके अर्थोंपर विचार करते हुए सबसे पूर्व आध्यात्मिक अर्थको लेंगे या इस मंत्र को योगीके ज्ञान नेत्रोंसे देखेंगे।

(क) बिल्कुल साधारण अर्थ है। वह अग्नि (१) परमेश्वर प्राणोंको धारण करता है, अर्थात् परमेश्वरको वे ही मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं, जो प्राणशक्ति (Vitality) से युक्त हो। उस परमात्माकी भक्ति करनेके लिये और उसके दर्शन के लिये शरीरके पांचों प्राण- प्राणापानसमानव्यानोदान- ठीक तरहसे कार्य करने चाहियें, अर्थात् पांचों प्राण खूब प्रवृद्ध शक्तिशाली हों, ताकि शरीरमें किसी भी प्रकारकी विक्षिप्तता पैदा न हो। परमात्मदर्शनके लिये- समाधिके लिये- शरीरका स्वस्थ होना तथा चित्तका एकाग्र (२) होना अत्यन्त आवश्यक है और इसका एकमात्र साधन प्राणों की शक्तिको केन्द्रित करना-प्राणायाम(३) करना-है।

मंत्रके दूसरे भागमें कहा है- चन्द्रः प्राणेन संहितः-। जिस प्रकार 'अग्निः प्राणान् संदधाति,' पंच प्राणोंसे युक्त मनुष्य अग्नि प्रभु (परमेश्वर) का दर्शन करता है उसी प्रकार एक प्राणसे युक्त मनुष्य चन्द्र परमेश्वरका दर्शन करेगा। अब देखना यह है कि चन्द्र परमेश्वर क्या है? चन्द्रके प्रतियोगित्वमें अग्नि शब्दका वर्णन है। अतः कहना होगा कि अग्नि शब्द सूर्यवाची है। अग्निका अर्थ जान लेनेपर चन्द्रका क्या अर्थ है तुरन्त ही बुद्धिमें आसकता है।

अग्निसूर्यको यदि परमात्मज्योतिकी इकाई मान लें तो सूर्यज्योतिका और चन्द्रज्योतिका जो अनुपात है, वही अनुपात उन मनुष्योंके प्रभुदर्शनमें होगा, जो पूर्णतः स्वस्थ हैं, जिनके पांचों प्राण नियमतः कार्य करते हैं और उन मनुष्योंके, जिनका केवल एक प्राण ठीक है, जो अभी अपने एक ही प्राणको काबू कर सके हैं। योगदर्शनकी परिभाषामें हम यह कह सकते हैं कि, " अग्नि प्रभुको " प्राप्त करनेवाले योगी यदि " निरुद्ध " नामक चित्तभूमिमें निवास करते हैं, तो " चन्द्र-प्रभुके" दर्शन करनेवाले " एकाग्र " नामक चित्तभूमिमें निवास करते हैं। एक असंप्रज्ञात योगी है तो दूसरा संप्रज्ञात। संप्रज्ञात योग और असंप्रज्ञात योगमें स्थित योगियोंके दर्शनमें अनुपात वेदके निम्न शब्दोंसे ज्ञात होता है। यजुर्वेद कहता है—

(१) यजु० ३२-१।
(२) योगदर्शन भाष्य- १-१
(३) योगदर्शन- १-३४

सुषुम्णः सूर्यरश्मिः चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य । (१)

अर्थात् चन्द्रमामें सूर्यकी केवल एक किरण चमकती है । बस, समझ लीजिये कि संप्रज्ञात योगियोंको परमात्माका कितना दर्शन होता होगा। इतना ही जितना कि सूर्यका चन्द्रमें ।

संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात योगमें प्रभुकी प्राप्ति के अनन्तर उनका क्या स्वरूप होता है, इसका भी हमें संक्षेपसे यही संकेत मिलता है। असंप्रज्ञात योगी " अग्नि " स्वरूप है, जो भाव अग्निसे प्रकट होनेवाले हैं, वे सब असंप्रज्ञात योगीमें भासित होते हैं। वह सर्वज्ञ(२) होता है, योगमें अग्रणी(३) होता है, सब प्राचीन संस्कारोंको जलाकर (४)शुद्ध स्वरूप हो जाता है । दूसरी ओर संप्रज्ञात योगी " चन्द्र" (चदि आह्लादे) को आनन्द (५) की प्राप्ति होती है । बस उसे परमात्मदर्शनमें केवल आनन्द प्राप्त होता है । उसको असंप्रज्ञात योगीके गुण अलंकृत नहीं करते । ज्यादा विस्तारसे हम प्रसंगसे बाहर हो जायेंगे । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कपिलमुनिको योगदर्शनका ज्ञान इसी मंत्रसे भासित हुआ था ।

इस प्रकार योगमय ऐनकसे इस मंत्रको देखने पर निम्न सिद्धान्तोंपर पहुंचते है—

१. प्रभुके दर्शनके लिये चित्तकी एकाग्रता आवश्यक है । उसके लिये स्वास्थ्य । स्वास्थ्यका उत्तम साधन प्राणायाम है ।
२. एक प्राणशक्तिके उन्नत होनेपर भी योग की तरफ जाते हुए को प्रभुदर्शन होता है, पर बहुत थोडा, जितना सूर्यका चंद्रमें ।
३. अग्निशब्द असंप्रज्ञात योगका सूचक है और चन्द्रशब्द संप्रज्ञात योगका संकेत करता है ।
४. 'अग्नि' योगी तत्त्ववेत्ता (ज्ञानी), श्रेष्ठ योगी, तथा नवीन संस्कारमय होता है। और ' चन्द्र ' योगी केवल आनन्दको अनुभव करनेवाला होता है।

(ख) आइये, अब आध्यात्मिक ऐनकको उतार कर अपनी आंखोंपर आधिदैविक ऐनक लगाइये और आकाशमें उडकर नक्षत्रोंको देखिये । अब आपको जो दिखाई देगा वह निम्न शब्दोंमें प्रकट किया जा सकता है ।

सबसे पूर्व मंत्रमें आये हुए ' प्राण ' शब्दको लीजिये । प्रश्नोपनिषद्का मंत्र है—

आदित्यो ह वै प्राणः । १-५.

अर्थात् निश्चयसे प्राण ही आदित्य है। इससे ज्ञात हुआ कि प्राणका अर्थ आदित्य है। पुनः प्रश्न करिये। आदित्य क्या है? निघंटुको देखनेसे पता लगता है कि "आदित्याः सुर्यरश्मयः" सूर्यरश्मिको आदित्य कहते हैं । इस प्रकार परिणामतः प्राणका अर्थ सूर्यरश्मि-प्राणाः सूर्यरश्मयः-हुआ । अब मंत्रका आधिदैविक अर्थ स्पष्ट है ।

मंत्रार्थ =(अग्निः)(६) सूर्य (प्राणान्) किरणोंको (सं) समानान्तर (दधाति) धारण करता है। इससे विज्ञानका यह नियम कि सूर्यसे आनेवाली किरणें (Rays) समानांतर (Parallel) होती हैं सिद्ध होता है ।

अब मंत्रके अगले भाग - चन्द्रः प्राणेन संहितः- को लीजीये । इस भागको पढते हुए आप बडे भारी

---

(१) यजु० १८-४०
(२) योग. १-४
(३) योग० १-२ का भाष्य ।
(४) योग० १-५०
(५) योग० १-१७
(६) उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते । निरुक्त० ७-१६

Astronomer (खगोल विज्ञ) हो जायेंगे। मनुष्यके संपर्क में प्रतिदिन आनेवाले चन्द्रमाके विषयका कितना महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त मंत्रके इस भागसे ज्ञात होता है। प्राणका क्या अर्थ है यह अभी हम ऊपर देख आये हैं। प्राणका अर्थ है किरण।

मंत्रार्थ- (चन्द्रः) चन्द्रमा (प्राणेन) सूर्यरश्मि द्वारा (सूर्यसे) (संहितः) जुडा हुआ है। इससे यह पता लगा कि सूर्यकी कुछ ऐसी किरणें भी हैं जो सूर्यसे चन्द्रमा पर गिरती हैं और उन किरणोंद्वारा सूर्य चन्द्रमा से मिला हुआ है, अर्थात् चंद्रमामें अपना प्रकाश नहीं है, वह स्वतः प्रकाशित नहीं है, किन्तु सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित है। हमारी यह धारणा और भी अधिक पुष्ट होती है, जब हम वेदके " सुषुम्णः सूर्यरश्मिः चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य ' इत्यादि मंत्र देखते हैं। इस प्रकार आधिदैविक ऐनकद्वारा देखने पर हम निम्न परिणामों पर पहुंचे—

१ सूर्यकी किरणें समानान्तर हैं।

२ चन्द्रमामें अपना प्रकाश नहीं है।

३ चन्द्रमा सूर्यसे प्रकाशित है।

(ग) अब इस आधिदैविक ऐनकको उतार कर अपनी आंखोंपर आधिभौतिक ऐनक लगाइये। अभी तक आप उस अनन्त शक्तिमान् प्रभुमें योगीके रूपमें उड चुके हैं और उसके बाद आकाशकी भी यात्रा की है। अब इस पृथिवीपर आइये। यहांके निवासियोंके मध्यमें बसिये और फिर इस मंत्र पर विचार कीजिये। वर्तमान कालमें जब हमने अपनी आंखोंपर आधिभौतिक ऐनक लगाई है, हमारा अधिकार है कि भौतिक विषयोंपर पृथक् पृथक् विचार किया जाये। इस पृथिवीपर आयुर्वेदशास्त्र, समाजशास्त्र आदि अनेक विद्यायें हैं, जिनके आधारमें बहुत गहन सिद्धांत कार्यकर रहे हैं। अब हम उन्हींमेंस दो एक विद्वानोंके संबंधमें इस समय प्रस्तुत मंत्रद्वारा विचार करेंगे। प्रथम आयुर्वेदशास्त्र लीजिये और इस ऐनकमें उसीके शीशे लगाइये।

(१) यहां यह प्रतिपादित करनेकी आवश्यकता नहीं कि जीवन धारणके लिये स्वस्थ प्राणोंकी कितनी अधिक आवश्यकता है। कौन सुखी है, कौन नहीं ? यह जानने का सर्वोत्तम साधन स्वास्थ्यका अच्छा और खराब होना है। जिसका स्वास्थ्य अच्छा है, नीरोग है वही सुखी है और इसके विपरीत रोगी और अस्वस्थ मनुष्य दुःखी है। स्वास्थ्यके लिये प्राणशक्ति (Vitality) का होना अत्यावश्यक है। जिस मनुष्यकी प्राणशक्ति कमजोर हो जाती है उसको हर एक प्रकारकी यातनायें घेर लेती हैं। इस प्राणशक्तिको बढानेका क्या साधन है, यह इस वेद-मंत्रमें अत्यधिक सुन्दर शब्दोंद्वारा प्रकट किया है। वेद कहता है—

मंत्रार्थ- (अग्निः) सूर्य (प्राणान्) प्राणोंको (सं) अच्छी प्रकार (दधाति) धारण करता है। उनको परस्पर उत्तम प्रकार संयुक्त करता है। जिस मनुष्यको क्षय आदि रोग लग जाते हैं उनके लिये सर्वोत्तम औषध यही सूर्य है। आजकल बडे बडे अनुभवी चिकित्सक सूर्यस्नान के लिये बहुत जोर देते हैं। वे तो यहां तक कहते हैं कि जो मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता हो उसे चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल अपने शरीरको नंगा कर सूर्यके प्रकाशका सेवन करे। हृदयके रोगोंके लिये तो सूर्य-औषधसे बढ कर कोई दूसरी दवाई ही नहीं है। जो मनुष्य कमजोर होता है उसके लिये डाक्तरों का सबसे प्रथम यही संकेत होता है, कि वह अपने आपको खूब गर्म रखे और इस प्रकार अपने अंदरकी उष्णता को सुरक्षित करता हुआ सूर्यप्रकाशद्वारा निरन्तर गर्मीका सेवन करे। वेदकी यह संमति केवल यहीं दिखाई देती हो ऐसी बात नहीं। ऋग्वेदमें एक मंत्र आता है उसमें तो बिल्कुल स्पष्ट कहा है। वह मंत्र इस प्रकार है—

उद्यन् अद्य मित्रमह आरोहन् उत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं च मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

१-५०-११

मंत्रार्थ- आज उदय होता हुआ यह सूर्य मेरे हृद्रोग को, उत्तर-पिछले द्युलोकको चढता हुआ

आयुर्वेद की सच्ची सेवा।

जनता के हित के लिये

काशी में अनेक आयुर्वैदिक औषधालयों के रहते हुए भी चरक-अनुसन्धान-भवन ने चिकित्सा के लिये एक नयी योजना की है। जनता को चाहिये कि वह एकवार अवश्य अनुभव करे। उसकी विशेषताएँ क्या हैं:—

१—आजकल आयुर्वैदिक दवाओं के दामों के सम्बन्ध में इतनी धाँधली मची है कि एक पैसे की दवा आठ आने और एक रुपये तक बिकती है। दवाओं के दाम का कोई स्टैण्डर्ड नहीं है। कोई सस्ती, कोई मँहगी और कोई ग्राहक या बीमार की हैसियत पर दाम लगाया करते हैं। हमने इस धाँधली को मिटा कर उचित दाम का स्टैण्डर्ड बना दिया है, जिससे प्रत्येक खुराक का दाम होमियोंपैथी से भी सस्ता अर्थात्-दो पैसे खुराक से दो आने खुराक तक पड़ता है। गरीब अमीर सबके लिये एक ही भाव है।

२—इसी तरह दवा बनाने में भी बड़ा घपला है। अनुसन्धानभवन इस घपले को दूर करने के लिये ठीक २ शास्त्रीय विधि से ताजी और उत्तम सामग्रियों से बड़ी छान बीन के साथ दवाएँ बनाता है, जो अचूक का काम करती हैं।

३—अनुसन्धान भवन ने काष्ठ औषधियों की प्राचीन चिकित्सा को ही प्रधान रक्खा है। ये दवाएँ यदि दैव-योग से लाभ न पहुँचा सकें तो हानि किसी हालत में पहुँचा ही नहीं सकती।

४—वैद्य लोग चीरफाड़, घाव, इन्जेक्शन आदि की चिकित्सा नहीं करते। इससे डाक्टरलोग मनमाना दाम लिया करते हैं। गरीब बेचारे तंग आजाते हैं। इसके लिये इस औषधालय में भिन्न २ रोगों को इन्जेक्शन, घाव, फोड़े, नाक, कान, आँख, दाँत, आदि के रोगों की सरल और सस्ती चिकित्सा का भी प्रबन्ध किया गया है।

५—राजयक्ष्मा, दमा आदि भयानक रोगों की सस्ती वैज्ञानिक चिकित्सा का पूरा प्रबन्ध किया गया है।

६—इसके सञ्चालक और काम करनेवाले वैद्य संस्कृत और अंग्रेजी के बड़े विद्वान् अनुभवी और प्रतिभाशाली वैद्य एवं डाक्टर हैं।

७—सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अनुसन्धान भवन ने समय के अनुकूल जनता को सुविधा प्रदान करने के लिये अनुपान वगैरह की झञ्झटों को दूर करने के साथ बिस्कुट, अवलेह, तरह २ के साबुन, लोशन पेय आदि अनेक सुविधाजनक नए प्रकारों का आविष्कार किया है।

८—आवश्यकतानुसार निर्धन रोगियों को घर जाकर देखने और लागत मात्र मूल्यपर दवा और व्यवस्था देने का प्रबन्ध किया है।

९—शास्त्रीय रीति से छानबीन के साथ बनाई हुई औषधियाँ सस्ते मूल्य पर बिकती हैं।

१०—अनुसन्धान भवन का आडम्बरशून्य दवाखाना साक्षी विनायक लेन और टेढ़ीनीम के संगम पर है; जो सबेरे ७ से ११ और शाम को ४ से ८ तक खुला रहता है।

एक बार इसकी परीक्षा कर देखिये। ये वास्तविक आयुर्वेद सेवा के लिये खोला गया है।

चरक-अनुसन्धान-भवन
साक्षीविनायकलेन
(टेढ़ीनीम का मोड़)
काशी।

व्यवस्थापकः—
चिकित्सा-विभाग

ज्योतिष प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस सिटी। १६१७

अर्थात् अस्त होता हुआ सूर्य (हरिमाणं) कमला रोग (Jaundice) को दूर करे। इस प्रकार (अग्निः प्राणान् संदधाति) का अर्थ हुआ कि सूर्य प्राण-शक्तिको खूब बढाये और इस प्रकार मुझे नीरोग बनाये, क्योंकि वह प्राणशक्तिको धारण करता है, जिसे वह अपनी किरणोंद्वारा वरसाता रहता है।

(चन्द्रः प्राणेन संहितः) चन्द्रमा भी एक प्राण शक्तिसे युक्त है। वह भी निरन्तर सूर्यकी न्याईं प्राणशक्ति को वरसाता है, क्योंकि वह भी (प्राणेन) एक प्राणशक्तिसे (संहितः) जुडा हुआ है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि चन्द्रमाका प्रकाश सूर्यका प्रतिक्षिप्त प्रकाश है। इसलिये जब सूर्य प्राणशक्तिको वरसाता है तो चन्द्रमा क्यों नहीं वरसायेगा। यही कारण है कि चन्द्रमाको (ओषधीनां अधिपतिः) ओषधियोंका स्वामी-सर्वश्रेष्ठ ओषधि-कहते हैं। इससे जहां ज्ञानरूपमें यह पता लगता है कि ओषधियोंमें जो रोगनिवारक शक्ति है वह चन्द्रमासे ही प्राप्त होती है, वहां हम प्रत्यक्ष रूपमें देखते हैं कि जो प्राचीन सिद्धियोंको जाननेवाले हैं वे आज भी शरद् पूर्णिमाकी रातको खीरके साथ दवाई पकाकर चांदनीमें रखते हैं और उसको दमा खांसीके रोगियोंमें वितरण करते हैं। सोम ओषधि जो कि अभी तक अज्ञात है उसका चन्द्रमाके साथ कितना संबन्ध है यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। हमारे आयुर्वेदशास्त्र तो सोम ओषधिके गुणगानसे भरे पडे हैं। यहां तक तो चिकित्सा (Medicine) की बात हुई।

अब शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) की तरफ मुडते हैं।

(२) अग्नि प्राणोंको धारण करती है। शरीर जब तक अग्निवत् गर्म है, उसमें प्राण है, वह जीवित है, चाहे प्राणी की अवस्था कैसी भी हो। उस समय उसमें पांचों प्राण किसी न किसी अनुपातमें विद्यमान हैं। प्राणी जीवित है या मृत, इसका यही एक सूचक है कि वह गर्म है वा ठंडा। यदि मनुष्य देह ठंडा भी होने लगा हो, पांच प्राणोंमेंसे किसी भी प्राणसे रहित होने लगा हो, तो वह अग्निद्वारा प्रविष्ट कराया जा सकता है। यह तो साधारणसा नियम है। मार्केकी बात तो मंत्रके अगले भागसे ज्ञात होती है।

चन्द्रः प्राणेन संहितः।

(चन्द्रः) शीतल, ठण्डा देह भी एक प्राणसे युक्त है। शरीर जब तक गर्म है तब तक तो उसमें प्राण है ही, इसमें संशय भी नहीं, किन्तु मरणासन्न अवस्थामें तुरन्तका शीतल हुआ हुआ देह, जिस क्षणमें डाक्टर कहता है मृतशरीर, उस समय भी वेद बतलाता है कि उसमें एक प्राण विद्यमान होता है और उस प्राणके द्वारा शेष खोई हुई शक्ति-चारों प्राण-प्राप्तकी जा सकती है। यही मंत्रके इस भागका तात्पर्य है। हमारी यह स्थापना और भी अधिक पुष्ट होती है, जब कि हम उपनिषदोंमें भी इस बातका प्रतिपादन देखते हैं। प्रश्नोपनिषदमें कहा है-

तेजो ह वाव उदानः तस्माद् उपशान्ततेजाः,
पुनर्भवं इन्द्रियैः मनसि संपद्यमानैः। ३-९

अर्थात् उदान वायु शरीरसे अन्य चारों वायुओं (प्राणों) के निकलनेके पश्चात् निकलता है और उसके द्वारा निकले हुए शांत हुए हुए प्राण भी पुनः बुलाये जा सकते हैं। इस प्रकार हम निम्न सिद्धान्तों पर पहुंचे-

१ सूर्य अपनी किरणोंद्वारा प्राणशक्तिको वरसाता है और उन किरणोंद्वारा मनुष्यस्थ प्राणों को पुष्ट करता है।
२ चन्द्रमा भी एक प्राणशक्तिको वरसाता है।
३ सूर्य और चन्द्रमा बडी भारी औषध है।
४ जीवित शरीरकी पहिचान गर्मी है। चाहे नाडी इत्यादि न भी मिलती हो।
५ तुरन्तका शीतल हुआ हुवा शरीर प्राणरहित नहीं होता। उस समय भी उसमें एक प्राण विद्यमान होता है।
६ उस प्राणकेद्वारा शेष प्राणोंको बुलाया जा सकता है।

अब हम आपको सामाजिक क्षेत्रमें ले जायेंगे। किसी भी समाजके लिये सबसे मुख्य वस्तु उस

समाज का नेता है। नेताको कैसा होना चाहिये, इसका इस मंत्रमें कितना सुन्दर वर्णन है। नेता भी ऐसे वैसे समाजका नहीं। जो समाज संगठन पैदा करना चाहता है उस समाजका नेता कैसा होना चाहिये-उसी नेताका वर्णन यहां किया गया है।

(अग्निः) अग्र-णी=आगे ले जानेवाला=नेता (प्राणान्) मनुष्योंको (संदधाति) इकट्ठा करता है। जो मनुष्य संगठन पैदा करना चाहता है उसे अग्निस्वरूप होना चाहिये। उसे वे गुण धारण करना चाहिये, जो अग्निशब्दका उच्चारण करते हुए भासित होते हैं। जो मनुष्य संगठन करना चाहता है उसे अग्निके समान उग्र, तेजस्वी तथा किसीसे न दबनेवाला होना चाहिये। यह इतना सरल वर्णन है कि इस अर्थको विशेष व्याख्यायित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इस अग्निस्वरूप नेताका उदाहरण देखना हो तो वह राणा प्रताप, शिवाजी या लाला लाजपतराय थे और वर्तमान समयमें यदि किसी पर नजर जाती है तो वह जर्मनीका सर्वेसर्वा हिटलर है। जिसको साक्षात् अग्निका स्वरूप कह सकते हैं।

दूसरेभागमें चन्द्र= शान्त नेताका वर्णन है। वेद कहता है कि शांत स्वभावका नेता भी संगठन कर सकता है, पर उग्र स्वभावके नेताकी अपेक्षा कम। यदि उग्र नेताके साथ सौ आदमी होंगे तो शांत नेताके साथ मुश्किलतासे बीस। इसके उदाहरणके लिये आप बहुत दूर क्यों जाते हैं। पिछले भारतीय स्वातंत्र्यसंग्रामके नेता महात्मा-गांधीको ही इसमें ले सकते हैं। जब तक महात्मा जीने अंग्रेजोंसे लडनेका उग्र रूप धारण किया, लोगोंने उनका साथ दिया, किन्तु समयके साथ महात्माजी ज्यों ज्यों शांतिका रूप धारण करते गये उनका संगठन ढीला हो गया और आज इसी शांतिके कारण जब कि कॉंग्रेसमें महात्माजीका पक्ष कमजोर हो गया, उनको कॉंग्रससे विदाई लेनी पड गई।

इसलिये वेदका यह आदेश, - "यदि तुम संगठन करना चाहते हो, किसी समाजका नेतृत्व स्वीकार करने लगे हो तो अग्निके समान उग्र नेता बनो, ताकि पतंगों की न्याई लोग तुम्हारी तरफ स्वयं खिचते चले आये और तुम्हारा संगठन मजबूत हो" - प्रत्येक मनुष्यको याद रखना चाहिये। यही अग्निका बहुवचनान्त प्राणशब्दसे और चंद्रका एकवचनान्त प्राण शब्दसे संबन्ध होनेका तात्पर्य है। इस प्रकार समाजशास्त्रके एक बहुत बडे भागको वेदने निम्न शब्दोंमें हमारे सामने रख दिया है।

१ नेता को अग्निके समान उग्र होना चाहिये।

२ नेता किसीसे दबनेवाला न होना चाहिये।

३ कमसे कम संगठन कर्ताके लिये अपने अन्दर अग्निके गुण धारण करना आवश्यक है।

इस प्रकार वेदने, एक मंत्रके द्वारा कितने महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंको बतलानेके साथ साथ अपनी उपरोक्त स्थापना- समायुषाको पुष्ट किया है। वेद वार वार उच्चारण करता है- हे मनुष्यो, तुम आयुसे उसी प्रकार युक्त होओ, जैसे एक योगी परमात्मासे, सूर्य चन्द्रमासे, गर्मी प्राण शक्तिसे, शरीर उदानवायुसे और एक नेता उग्रतासे युक्त होता है। जिस प्रकार ये कभी एक दूसरेसे अलग नहीं हो सकते, इसी प्रकार तुम भी दीर्घायुसे कभी अलग न होओ। कभी भूलकर भी आयु तुम्हारेसे किसी भी हालतमें सौ वर्षसे पूर्व अलग न हो। कमसे कम तुम्हारी आयु तो सौ वर्षकी अवश्य हो। वेदके-जीवेम शरदः शतं-वाक्यको अपने जीवनके साथ संयुक्त कर लो, यह तुम्हारे जीवनका धर्म-लक्षण-हो जाये। क्योंकि विना धर्मके धर्मी रह नहीं सकता।

इसकी तुम्हारे जीवनके साथ इतनी घनिष्ठता हो जाये कि किसी मनुष्यके जीवन पर भविष्यवाणी करते हुए ज्योतिषिओंको आयुके विषयमें कुछ न कहना पडे। यह स्वयंसिद्ध हो कि जो प्राणी है वह कमसे कम सौ साल अवश्य जियेगा। संसारमें यह एक व्याप्ति बन जाये- ये ये प्राणिनः ते ते शतायुषः। यही इस मंत्रद्वारा वेदका संदेश है, जीवनका सार है, प्राणिका प्राणित्व है। इसके साथ साथ हम अपने उसी वाक्यको-जिसको इस लेखद्वारा एक सिद्धान्तका रूप दिया गया है-दोहरा देते हैं-किसी भी ग्रन्थको पढते हुए उसमें दृढ विश्वास और आस्थाबुद्धिको रखना उस ग्रन्थके अमूल्य रत्नोंमें निवास करना है, ऊंची ऊंची उडानोंके आनन्दमें जीवनको समाप्त करना है और ग्रन्थकर्ताके परिश्रमको सफल बनाना है।

सुभाषित-प्रश्नोत्तरीके कुछ पद्यांश

[नेपाली-भाषामें निर्मित]

(रचयिता- श्री पण्डित वेदनिधि शर्मात्मज, ब्रह्मचारी सच्चिदानन्द नेपाली, राँची (विहार)

(छन्दः वसन्त-तिलका)

(१)

हे विज्ञ हो! तिमहरू गर लक्ष्यभेद,
छोडी सदा अशुभ-कर्म, महान खेद।
वेदोक्त कर्म गर, कर्म-विभेद जान,
" को हूँ म " यो बुझ सदा गर सभ्य-मान ॥

हिन्दी अनुवादः- 'हे विज्ञ पुरुषो! तुम अपने दिव्य लक्ष्य का अवभेदन करो - मानसिक सन्ताप और अशुभ कर्म या अशिव-सङ्कल्प का परित्याग करके वेदोक्त कर्म करनेमें अग्रसर होओ - कर्म प्रक्रिया के रहस्यों या भेदों को पहचानने की चेष्टा करो - ' मैं कौन हूँ ' इस तत्त्व को समझो और सभ्य जनों का सन्मान करो।'

(२)

पृथ्वी-समान तिमि होउ क्षमी-मनस्वी,
गङ्गा सरी सरस-चित्त, गुणी तपस्वी।
वायूपमान तिमि होउ प्रवाहयुक्त,
वृक्षादि तुल्य तिमि होउ उदार चित्त ॥

हिं० अ० - ' तुम लोग पृथ्वी के समान क्षमाशील और मनस्वी, -गङ्गा के समान सरस-स्नेहयुक्त-चित्त, गुणवान् और तपस्वी-वायुके समान वेगवान्. प्रगति-शील एवं प्रवाहयुक्त तथा वृक्षादि पदार्थों के समान उदार-चित्त बननेका प्रयत्न करो।'

(३)

ऊखू सरी रहु सदा तिमि लोक माहाँ,
आकाश झैं विमल होउ प्रसन्न याहाँ।
अग्नागो सरी भुवन मा भइ, नम्र होऊ-
पानी सरी सरल-शान्त-स्वभाव होऊ ॥

हिं० अ० - ' संसारमें तुम हमेशा गन्ने के रस से भी बढकर रसीले बनने का प्रयत्न करो। सदा आकाश के समान ' निर्मल ' और 'प्रसन्न' रहा करो। संसारमें अग्नि के समान प्रचंड विक्रमशाली बनकर भी नम्र एवं पानी के समान सरल तथा प्रशान्त-स्वभाववाले बनो।'

(४)

संसार मा तिमिहरू शुभ-कर्मवीर,
देखाउ भै कन स्वयं रणवीर धीर।
पश्चात् समस्त जगलाइ बनाउ ज्ञानी,
दानी, धनी, सुहित-कर्मपथाभिमानी ॥

हिं० अ० - ' संसारमें तुम लोग पहिले स्वयं शुभ कर्मवीर, रणवीर और धीर बनो; तदनन्तर समस्त संसार को ज्ञानी,, दानी, धनी, मानी और हितयुक्त कर्ममें अग्रसर होनेवाला बनाओ।

(५)

को धर्मवीर जगामा ? जसले अधर्म,
सक्दैन गर्न कहिल्यै पनि निन्द्य-कर्म।

को कर्मवीर ? जसले शुभ-कर्म गर्छ,
संसार लाइ 'गर कर्म' भनेर मर्छ॥

हि० अनु० - [प्रश्न नं० १] संसारमें धर्मवीर कौन है ? [उत्तर नं० १] जो कभी भी निन्दनीय एवं अधर्मयुक्त कर्म नहीं कर सकता वही धर्मवीर है। [प्रश्न नं० २] कर्मवीर कौन है? [उत्तर नं० २] जो पहिले स्वयं शुभ-कर्म करके संसार को 'कर्म कर' ऐसा आदेश देकर मरता है, उसे ही कर्मवीर जानना चाहिये।

(६)

को ज्ञानवीर ? सबलाइ विवेक दिन्छ,
जस्ले यहाँ अमरतुल्य बनाइ दिन्छ।
को शूर वीर ? दस इन्द्रिय-जित् जगत्मा '
विख्यात को छ ? गुण लिन्छ गुणी बखत्मा॥

हि० अनु० - [प्रश्न नं ३] ज्ञानवीर कौन है? [उत्तर नं०३] जो सबको अपने विज्ञानदान द्वारा अमर-तुल्य बनाने की शक्ति या योग्यता रखता है, वही ज्ञानवीर है। [प्रश्न नं० ४] शूरवीर कौन है ? [उत्तर नं० ४] दसों इंद्रयों को जीतनेवाला पुरुषही इस संसार में सच्चा शूरवीर कहाता है। [प्रश्न नं० ५] विख्यात कौन है? [उत्तर नं० ५] जो गुण-ग्राही बनकर यथासमय सम्पूर्ण पदार्थों के गुण-मात्र को लेने की चेष्टा करता है वही विख्यात है।

(७)

को युद्धवीर? रिपुलाइ कृपाण-धारा-
द्वारा पछार्छ जसले -'रिपुलाइ मार।'
साहस दिलाउँछ भनी-रणशूर भाई।'
उत्साह-पूर्वक सदा सब सैन्यलाई॥

हि० अनु० - [प्रश्न नं० ६] युद्धवीर अर्थात् युद्ध करनेमें बहादुर कौन है ? [उत्तर नं० ६] जो युद्ध में -'हे वीर सैनिको! तुम अपने प्रतिपक्षियों का पराभव करो' - इत्यादि शब्दों के द्वारा अपने सैनिकोंको प्रोत्साहित करता है, और स्वयं भी जो अपनी तेज तलवार की धारद्वारा प्रतिपक्षी-शत्रुओं को पछाडने की योग्यता रखता है वही युद्धवीर कहाता है।

(८)

को बुद्धिवीर ? जसले सबलाइ मार्छ,
तत्क्षण गुणी भइ वही सबलाइ पार्छ।
छक्कै स्व-बुद्धि-बलले बलवान् हरू को,
मिथ्याभिमान हरि लिन्छ धनी हरू को॥

हि० अ० - [प्रश्न नं० ७] बुद्धिवीर अर्थात् महा बुद्धिमान् कौन है ? (उत्तर नं० ७)जो अपने बुद्धि-बलसे धनवान् और बलवान् पुरुषोंके मिथ्याभिमानको हर लेता है और जो सहसा गुणी बनकर सब को आश्चर्यचकित कर देता है तथा जिसमें सब को मारने की या स्तम्भित करने की अपूर्व शक्ति सन्निहित है वही बुद्धिवीर कहलाने का हकदार है।

(९)

को भाग्यवान ? धनवान र ज्ञानवान,
को भाग्यहीन ? सुत, मित्र, कलत्र हीन।
को विज्ञ मूढ पशु-सदृश लोकमाहाँ,
जो बुद्धिमान भइ मग्न छ शोकमाहाँ॥

हि० अनु० - (प्रश्न नं० ८) भाग्यवान कौन है? (उत्तर नं० ८) धनवान् और ज्ञानवान पुरुष ही भाग्यवान है। (प्रश्न नं० ९) भाग्य-हीन कौन है? (उत्तरनं० ९) स्त्री, पुत्र, मित्रादिकोंसे रहित पुरुष ही भाग्यहीन कहाता है। (प्रश्न नं०१०) संसारमें कौन पुरुष विज्ञ होकरभी पशुओंके समान निन्दनीय और मूढ-स्वभाव वाला है ? (उत्तर नं० १०) जो बुद्धिमान् होकर भी शोकमें निमग्न है वही पुरुष पशुओं के समान निन्दनीय और मूढ है।

(१०)

को हुन्छ नास्तिक ? जगत्पति वेदलाई,
मान्दैन मूढमति धर्म र कर्मलाई।
को हुन्छ शोच्य ? जसले तजि दिन्छ धर्म,
देशाभिमान निज-गौरव आदि कर्म॥

हि० अनु० - (प्रश्न नं० ११) नास्तिक कौन है ? (उत्तर नं० ११) जो " ईश्वर, वेद, धर्म, कर्म " इन में से किसी एक को भी नहीं मानता वही नास्तिक है। (प्रश्न नं० १२) शोचनीय कौन है ? (उत्तर नं० १२) जो धर्म का परित्याग कर देता है

और देशाभिमान, आत्मगौरव आदि भावों से जो शून्य है वही शोचनीय है ।

(११)

को भीरु ? मूक पशु-तुल्य छ जो जगत्मा,
सक्दैन बोल्न कहिल्यै पनि जो बखत्मा ।
को पुच्छ-हीन पशु ? जो शुभ-ज्ञान-हीन,
को नेत्र-हीन नर ? उत्तम-बुद्धि-हीन ॥

हि० अनु०- (प्रश्न नं० १३) भिरु कौन है? (उत्तर नं० १३) जो पशुओं के सदृश मूक है अर्थात् जो कभी भी अवसर पडने पर संभाषण नहीं कर सकता वही भीरु कहाने के योग्य है । (प्रश्न नं० १४) पूंछ से रहित पशु कौन है ?(उत्तर नं० १४) जो उत्तम विज्ञान से रहित है वही पुच्छ-विहीन पशु है । (प्रश्न नं० १५) कौन मनुष्य नेत्र-हीन अर्थात् अन्धा है ? (उत्तर० नं १५) सद्‌बुद्धी विहीन मनुष्य अन्धे के बराबर है ।

(१२)

को गर्दभोपम मनुष्य ? चरित्र-हीन,
शिक्षा-प्रदान-विधि-हीन, स्वरूप-हीन ।
को दुष्ट ? उत्तम कुरा गुरुले भनेका,
सुन्दैन बाबु शुभ-शिक्षकले भनेका ॥

हि० अनु०- (प्रश्न नं०१६) कौन मनुष्य गधे के समान हेय है ? (उत्तर नं० १६) जिसे अपने असली स्वरूप का पता नहीं है, जिसे शिक्षाप्रदान की विधि भली भांती विदित नहीं है और जो चरित्य-विहीन है ऐसा व्यक्ति गधे के सदृश निन्दनीय है। (प्रश्न नं० १७) दुष्ट कौन है? (उत्तर नं०१७) जो अपने माता-पिता, गुरु, अतिथि आदि शुभ-शिक्षक भद्र पुरुषों की कही हुई उत्तम बातों को नहीं सुनता वही दुष्ट है ।

(१३)

को सर्पसदृश मनुष्य? अ-बुद्धिमान,
को नीच? गर्छ जसले अभिमान, मान ।
गर्दैन विज्ञहरु को, हरि लिन्छ प्राण,
को हेय ? स्वच्छ जलसे अपमान जान ॥

हि० अनु०- [प्रश्न नं०१८] कौन मनुष्य सर्पके समान कुटिल प्रकृतिवाला है ? (उत्तर नं० १८) मूढ पुरुष ही सर्पके समान कुटिल प्रकृतिवाला है । (प्रश्न नं० १९) नीच कौन है? (उत्तर नं०१९) जो मिथ्याभिमान करता है- जिसे सज्जनोंके सम्मानका कुछ खयाल ही नहीं और जो सबकी जान लेनेमें उतारू रहता है वही नीच है । (प्रश्न नं० २०) हेय अर्थात् गर्हित कौन है? (उत्तर नं० २०) जो अपमानको सहता है उसे ही हेय अर्थात् निन्दनीय जानना चाहिए।

(१४)

को त्याज्य-श्वान-सम? लोभ सदा गरेर,
जस्ले धनीहरु प्रसन्न रहुन् मनेर ।
नाना खुशामद गरी पदमा परेर,
दासत्व-कर्म सब गर्छ खुशी भएर॥

हि० अनु०- [प्रश्न नं० २१] कुत्तेके समान परिहार्य और गर्तित कौन है? (उत्तर नं० २१) जो हमेशा लोभी बनकर धनियोंको प्रसन्न करनेके हेतु उनकी खुशामद और पद-वन्दना करके समस्त दासत्व—कर्मोंको प्रसन्नता-पूर्वक करता है। वही कुत्तेके समान गर्हित है ।

(१५)

कस्को छ जीवन वृथा? जसले बरवत्मा,
गर्दैन केहि शुभ-कार्य अहो! जगत्मा ।
आपर मूक पशु झैं भइ बस्न खोज्छ,
जस्ले कुकर्म गरि शान्ति र सौख्य खोज्छ ॥

हि० अनु० (प्रश्न नं० २२) किसका जीवन व्यर्थ है? (उत्तर नं० २२) जो संसारमें आकर पशुओंके समान मूक होकर रहना कबूल करता है— जो कुकर्म करके सुख-शान्ति की कामना करता है और जो सुअवसर पाकर भी कोई शुभ-कार्य नहीं करता उसीका जीवन व्यर्थ है ।

(१६)

भ्याउतो सरी जगमहाँ कसलाइ जान्नू?
छोड् दैन ठाउँ जसले त्यसलाइ जान्नू ।
को नीच काक-सम? जो छ महान धृष्ट,
पाखण्ड—संयुत अपावन जो छ दुष्ट ॥

हि० अनु०- (प्रश्न नं० २३) संसारमें मेंढक के जैसा किसे जानना चाहिए? (उत्तर नं० २३) जो अपने आवास-स्थलको छोडकर अन्यत्र कहीं जाना नहीं चाहता उसे ही मेंढकके जैसा समझना चाहिये। (प्रश्न नं० २४) कौवेके समान नीच-प्रकृतिवाला कौन है ? (उत्तर नं० २४) जो अपवित्र, पाखण्डी, महाधृष्ट और दुष्ट है उसे ही कौवेके समान नीच प्रकृतिवाला समझना चाहिए।

(१७)

कुन् हो मनोज्ञ-तम वस्तु? विवेक शीला,
नारी प्रसन्न-वदना रमणीय-लीला।
को धन्य? यस भुवनमा जसको छ दानी,
ज्ञानी, गुणी सुत-'अवञ्चक मित्र मानी'॥

हि० अनु०- (प्रश्न नं० २५) कौनसी वस्तु अत्यन्त सुन्दर है? (उत्तर नं० २५) विवेक शालिनी, परम-रमणी, प्रसन्न-मुखी स्त्री ही अत्यन्त सुन्दर वस्तु है। (प्रश्न नं० २६) इस संसारमें कौन धन्य है? (उत्तर नं० २६) इस संसारमें वही पुरुष धन्य और बडभागी है जिस का पुत्र ज्ञानवान्, गुणवान् और ज्ञानी तथा मित्र आत्माभिमानी और अवञ्चक है।

(१८)

संग्राह्य-वस्तु कति छन्? धृति, धर्म, बुद्धि,
विद्या, क्षमा, सरलता, शुभ-शान्ति, सिद्धि।
अस्तेय, सौख्य, धन, पुत्र, कलत्र, मित्र,
अक्रोध, सत्य, शुचिता, बल, सच्चरित्र॥

हि० अनु०- (प्रश्न नं० २७) संग्रहणीय वस्तुएँ कितनी हैं? (उत्तर नं० २७) ये उन्नीस वस्तुएँ संग्राह्य अर्थात् संग्रह करने योग्य हैं—

(१) धैर्य (२) धर्म (३) बुद्धि (४) विद्या (५) क्षमा (६) सरलता (७) उत्तम शान्ति (८) सिद्धि (९) अस्तेय अर्थात् चौर्य-कर्म-परित्याग (१०) सुख (११) धन (१२) पुत्र (१३) स्त्री (१४) मित्र (१५) अक्रोध (१६) सत्य (१७) पवित्रता (१८) शक्ति (१९) और सच्चरित्र।

❀

(१९)

सन्त्याज्य-वस्तु कति छन्? मधु, मांस, मीन,
' कामादि-षड्रिपु-जयी जगमा अदीन।
को हुन्छ?' राख्छ मनलाइ सदा अधीन,
जस्ले सुसंयम गरी भइ दैन्य-हीन॥

हि० अनु०- [प्रश्न नं० २८) त्याज्य वस्तुएँ कितनी हैं? (उत्तर नं० २८) ये पाँच वस्तुएँ विशेषतया सन्त्याज्य हैं—

(१) मधु (२) मांस (३) मत्स्य (४) वेश्या-सङ्ग (५) द्यूत—क्रीडा। (प्रश्न नं० २९) संसार में (१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह (५) मद (६) अहंकार इन छे प्रबल अन्तःशत्रुओं को जीतनेवाला और स्वाधीन कौन है ? (उत्तर नं० २९) जो दीनता परित्याग करके योग, धारणा, ध्यान, समाधि आदि संयम-साधनोंके द्वारा अपने मनको स्वाधीन बनानेकी चेष्टा करता है वही व्यक्ति इस संसारमें षड्रिपु-जयी और स्वाधीन कहलाने का अधिकारी यानी हकदार है।

(२०)

के सौख्य-मूल जगमा? असुखानुराग,
के दुःख-मूल छ? अहो! विषयानुराग।
के शान्ति-मूल छ यहाँ? ममता-विराग,
के पुण्य-मूल छ ? रमेश-पदानुराग॥

हि० अनु०- (प्रश्न नं०३०) संसारमें सुखकी जड क्या है? (उत्तर नं० ३०) असुखानुराग अर्थात् सुखमें स्पृहा न रखना ही सुखकी जड है। (प्रश्न नं० ३१) दुःखकी जड क्या है? (उत्तर नं० ३१) विषयानुराग अर्थात् विषय स्पृहा ही दुःखकी जड है। (प्रश्न नं० ३२) शान्ति की जड क्या है? (उत्तर नं० ३२) ममता-विराग अर्थात् ममताका परित्याग। (प्रश्न नं०३३) पुण्यकी जड क्या है? (उत्तर नं० ३३) प्रभुके चरण-कमलोंमें अनुरक्त होना ही पुण्य-मूल या पुण्यलोकका संसर्ग करनेके बराबर है।

(२१)

के शान्ति-कारक छ? शुद्ध विवेक आफ्नो,
के क्लेश-हारक छ? उत्तम भाव आफ्नो ।
के मोह-वारक छ? तारक-ज्ञान-शक्ति,
के विश्व-हारक छ? धारक-विष्णु-भक्ति ॥

हि० अनु०-(प्रश्न नं०३४) कौनसी वस्तु शांति-प्रदायक है? (उत्तर नं० ३४) अपना निष्कलंक तथा निर्मल ज्ञान ही शान्ति-दायक है । (प्रश्न नं० ३५) क्लेश, दुःख, सन्तापादि को हरनेवाली क्या वस्तु है? (उत्तर नं० ३५) अपना उत्तम भाव ही क्लेशादिका अपहरण करनेवाला है । (प्रश्न नं० ३६) मोहका निवारण करने वाली कौनसी वस्तु है? (उत्तर नं०३६) सबको तारने-वाली ज्ञान-शक्ति ही मोह-निवारक है । (प्रश्न नं० ३७) जगत्को हरनेवाली क्या चीज है? (उत्तर नं० ३७) धारण की हुई विष्णु-भक्ति ही जगत्को हरने या मुग्ध करनेवाली है ।

(२२)

के क्लेश-वर्धक छ? दुष्ट स्वभाव आफ्नो,
के शोक-नाशक छ? शान्ति स्वभाव आफ्नो ।
के ताप-हारक छ? कर्म-विवेक-शक्ति,
के धर्म-वारक छ? लोक-सुखानुरक्ति ॥

हि० अनु०-(प्रश्न नं०३८) क्लेशका बढानेवाला कौन है? (उत्तर नं० ३८) अपना दुष्ट स्वभाव । (प्रश्न नं० ३९) शोकका अपहरण करनेवाला कौन है? (उत्तर नं० ३९) अपना प्रशान्त एवं गम्भीर स्वभाव । (प्रश्न नं०४०) कौन कौन सी शक्तियां सन्ताप-विनाशक हैं? (उत्तर नं० ४०) कर्म-शक्ति और विवेक-शक्ति । (प्रश्न नं०४१) कौन धर्मका निवारण करनेवाला है ? (उत्तर नं० ४१) लौकिक सुखानुराग ही धर्मका निवारक है।

(२३)

सौहार्द घट्छ कसरी ? धन-याचना ले,
सम्मान बढ्छ कसरी ? प्रण-पालना ले ।
सम्पत्ति घट्छ कसरी ? मद आउँना ले,
मात्सर्य्य बढ्छ कसरी ? पद पाउँना ले ॥

हि० अनु० (प्रश्न नं० ४२) सौहार्द अर्थात् स्नेह किस प्रकार घटता है ? (उत्तर नं० ४२) सौहार्द यानी प्रेम धन मांगने से घटता है । (प्रश्न नं० ४३) क्या करने से सम्मान बढता है ? (उत्तर नं० ४३) प्रतिज्ञा पालन करने से सम्मान बढता है । (प्रश्न नं०४४) किसके उदय होनेसे सम्पत्ति घटती है? (उत्तर नं० ४४) मद अर्थात् अभिमान के उदय होने से सम्पत्ति घटती है । (प्रश्न नं० ४५) क्या प्राप्त करने पर ईर्ष्या बढती है ? (उत्तर नं०४५) पद प्राप्त करने पर मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या बढती है ।

(२४)

विज्ञान घट्छ कसरी ? ठग-सङ्गती ले,
दौर्जन्य बढ्छ कसरी ? अ-सुसङ्गती ले ।
सद्बुद्धि बढ्छ कसरी ? अ-कुसङ्गती ले,
वीरत्व बढ्छ कसरी ? धृती-सङ्गती ले ।

हि० अनु०- (प्रश्न नं०४६) ज्ञान कैसे घटता है ? (उत्तर नं० ४६) ज्ञान घटता है धूर्तों की सङ्गति करने से । (प्रश्न नं० ४७) किस प्रकार दौर्जन्य बढता है ? (उत्तर नं० ४७) सज्जनोंकी सङ्गति न करने से दौर्जन्य बढता है । (प्रश्न नं० ४८) सद्बुद्धि किस प्रकार बढती है ? (उत्तर नं ४८) सद्बुद्धि दुर्जनों की सङ्गति न करनेसे ही बढती है । (प्रश्न नं० ४९) किसका आश्रय करनेसे वीरता बढती है ? (उत्तर नं०४९) धैर्यका आश्रय करने से वीरता बढती है । अर्थात् वीरत्व की अभिवृद्धि के लिये धैर्य का सहारा लेना चाहिये ।

भारतीयोंका लिपिज्ञान ।

(ले०- श्री० के० र० काशीकर)

लिपि निर्माण होनेके पहले कोई जब पत्र लिखनेकी इच्छा करता था, तो लेखक काठके टुकडेपर टेढी तिरछी, सादी, आडी लकीरें खींचता था। पत्रवाहक उनका अर्थ समझकर पत्रग्राहक को समझा देता था। इस प्रकार दस पांचबार जब पत्रव्यवहार होवे, तब परिचित लकीरोंका थोडाबहुत मतलब समझमें आजाता था और एक दूसरेका मनोगत भी समझने लगता था। प्रत्येक परिवार अपने लिये 'ट्रेडमार्क' सरीखा एक सांकेतिक चिन्ह रख लेता था। उत्खननमें मिले हुवे मृत्पात्रोंपर ऐसे खुदे हुवे चिन्ह मिलते हैं। विद्वानोंके मतानुसार इसी प्रकार लिपि निर्माण हुई और इसी आधारपर चित्रलिपिकाभी उदय हुवा।

भारतीय वैदिक आर्योंकोभी लिपिका ज्ञान था। अंकज्ञानके बारेमें तो वैदिक ग्रंथोंमें भरपूर प्रमाण दिखा सकते हैं। लो. तिलक, जॅकोबी इत्यादि विद्वान् भी आर्योंको गणितज्ञ मानते थे। ऋग्वेदमें कहा है (उनके मतसे ऋग्वेद काल ई. पूर्व २०००--१५००), कि सूर्य (वरुण) रोज ५०५६ योजन चलता है। उषा सूर्यके आगे ३० योजन रहती है। इसलिये वह सूर्यके आधा दंड पहले ऊगती है (१।१२३।८)। शुक्ल यजुर्वेदके (ई. पू. १५००--१०००) सत्रहवें अध्यायके दूसरे मंत्रमें परार्ध संख्या बताई गई है। एकाच, दशच दशच, शतंच शतंच, सहस्रंच सहस्रंच, चायुतंच चायुतंच, नियुतंच नियुतंच' इत्यादि। शतपथ ब्राह्मण के अग्निचयन प्रकरणमें वेदाक्षरोंका हिसाब ऐसा किया है।' प्रजापतिने ऋग्वेदके अक्षरोंसे १२०००, यजुर्वेदके अक्षरोंसे ८००० और सामवेदके अक्षरोंसे ४००० बृहती (३६ अक्षरोंके) छंद बनाए।' इस हिसाबसे ऋग्वेदमें १२०००×३६=४३२००० अक्षर, और यजुर्वेद और सामवेद मिलाकर ८०००+४०००×३६ =४३२००० अक्षर होते हैं। इतने अक्षरोंकी गिनती अंकलेखन के अभावसे अशक्य है, इसलिये हमारे आर्य पूर्वजोंको अंकलेखन मालूम था, यह बात निःसंदेह सत्य ठहरती है।

गुरु-मुखसे सुन सुनकर वेद पाठ किये जाते थे (इसीसे वेद का नाम 'श्रुति' भी है) यह बात जैसे सत्य है वैसे ही जोड, बाकी, गुणा (संकलन, व्यकलन, और गुणन) इत्यादि क्रिया आर्योंको आती थीं और इसलिये वे गणितज्ञ समझे जाते थे। पंद्रहमें १०+५ तीसमें १०×३ और उन्नीसमें २०-१ इस प्रकारसे जोड, गुणा बाकी करके उन्होंने ऐसी संख्या तय की थी। ऋग्वेदमें ऐसे बहुत मंत्र है। 'द्विदश' २×१० षष्टिं सहस्रा नवतिं नव '६००००+९०+९' इत्यादि, प्रयोग हैं। सुप्रसिद्ध संशोधक और भारतीय लिपिशास्त्रज्ञ पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का मत है, कि अंकोंका क्रमविकास भारतमें ही हुआ।

अक्षर लेखन भी भारतीयोंको अवगत था यह बात, कई पाश्चिमात्य पंडित ही साधार सिद्ध कर रहे हैं। 'जबसे हिन्दुओंके पास साहित्य है तबसे उनके पास लिपि है। ऐसा प्रो० विल्सन का कहना है। इस कथन को पुष्टि देते हुवे प्रो० हरिन भी कहते हैं।' अत्यंत प्राचीन कालमें भी भारत को लिपिकला का ज्ञान था, यह बात हरएक संशोधनसे सिद्ध होती है।' काउन्ट जोन्स जेना भी इसी मत के हैं और वे कहते हैं, कि ई० पूर्व २८०० वर्ष हिन्दुओं-के पास धर्मग्रंथ तैयार थे। पं० गौरीशंकर ओझा इत्यादि भारतीय पंडित इसी सिद्धान्त का समर्थन करनेवाले हैं।

पुराणवस्तुसंशोधन मुहकमेने कुछ खास स्थानोंके अवशेषोंका उत्खनन किया, उसपरसे लिपिज्ञानके प्रत्यक्ष प्रमाण ई० पूर्व पांचवी सदी से मिलते

हैं। ऐसा एक ब्राह्मी लिपिमें लिखा हुआ लेख पिपरहवामें मिला है। इस लेखके अक्षर सर्वावयवपूर्ण हैं और अक्षरविकास को लगनेवाले दीर्घकाल का स्मरण रख कर यद्यपि यह लेख ई० स-पूर्व पांचवीं सदी का है, तथापि लेख जिस लिपिमें है, उस लिपिका आरंभकाल ईसवी सदी पूर्व पांचवी सदी के कई सदियों पहले का है, यह बात कोई नामंजूर न करेगा। जैसवालको संबलपुरमें एक शिलालेख मिला है। यह अति प्राचीनकालका समझा जाता है, परंतु अबतक वह पढा नहीं गया। बंगालके बोगरा जिलेमें एक शिलालेख मिला है। यह ई० पूर्व चौथी सदीका है और इसमें दुष्काल पीडितोंकी हकीकत ब्राह्मी लिपिमें दी गई है।

ब्राह्मी लिपिका जन्म सेमिटिक लिपि से हुवा। ईस्वी सन पूर्व ७५० से ८९० वर्ष तक फिनिशियन व्यापारी व्यापार के लिये ईरानकी खाडीसे हिन्दुस्थान में आते थे। भडोच और सुरत उनके दो व्यापारी केन्द्र थे। व्यापार के साथ वे अपनी लिपिभी लाए। सेमिटिक-फिनिशियोंके कुल २० अक्षर हैं। अलिफ़, बेथ, गिमेल, दलेथ, हे, वाव, जईन, चेथ, योद्, काफ़, लमेद, मीम, नुन, समेछ, फे, छदे, कोफ़, रेष, थिन और तो। अर्थात् अ, ब, ग, द, ह, व, ज, च, य, क, ल, म, न, स, फ, छ, ख, र, ष, त अथवा ट ये अक्षर दाहिनी ओर से बांई ओर लिखते हैं।

ब्राह्मी लिपि के कई अक्षरोंसे इस वर्णमाला का साम्य है और जैसा सेमिटिक अक्षरसमूहोंको वर्णसंकेत होता है, वैसा ही वर्णसंकेत उसी स्थितिमें ब्राह्मी लिपिका भी होनेसे ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्ति सेमिटिक लिपिसे मानी जाती है।

यद्यपि सेमिटिक लिपिमें अकेले 'अलिफ़' स्वरको छोडकर बाकी सब व्यंजन हैं, तथापि आइ, ई इत्यादि अक्षर अलिफ़काहि क्रमविकास है। सेमिटिक दाहिनी और ब्राम्ही बांई ओरसे लिखी जाती है। अर्थात् यह लेखनभिन्नता लेखकके इच्छास्वातंत्र्यका परिणाम हैं। ग्रीक लिपिभी सेमिटिक लिपिसे उत्पन्न हुई है, परंतु वह बांईसे दाहिनी ओर लिखी जाती है। लिप्युत्पत्तिका विचार करते समय केवल वामावर्त या दक्षिणावर्तके कारण उसके संबंधमें संदेहको स्थान नहीं रहता।

एरणके सिक्केपर ब्राह्मी लिपिका लेख देखकर 'ब्राह्मी लिपि दोनों बाजूसे लिखी जाती थी' ऐसा जनरल कनिंगहमने कहा, वह गलत है। अबतक जितने ब्राह्मी लिपिमें लेख मिले हैं, उन्हें देखकर बांईसे दाहिनी ओर ब्राह्मीकी एक ही गती, बिलकुल सिद्ध होती है।

ग्रीक तत्त्ववेत्ता प्लेटो और इतिहासकार प्लूटार्क व हसिटस चित्राक्षरोंकी आद्य निर्मिति का मान इजिप्त देशको देते हैं, और वह है भी ठीक। आरंभमें देवों की मूर्तिके बदले सांकेतिक चिन्ह पुजते थे और उन्ही संकेत चिन्होंका विकास ब्राह्मी लिपि है, ऐसा पं. श्यामशास्त्रीका मत है। कनिंघम साहबको तो अशोक लिपिमें चित्राक्षरोंका छायाचित्र दिखता है, परंतु इस छायाचित्रका बीज अशोक लिपिमें कब पडा, इसका निर्णय वे न कर सके।

पाश्चात्य पंडित बुल्लरके मतानुसार भारतीय खरोष्ठी लिपिकी उत्पत्ति भी फिनीशीय लिपिकी आर्मियन शाखासे हुई है। सक्कर की शिलालिपि एकत्र करनेपर आर्मियनका अलिफ और खरोष्ठीका अ, आर्मियन पेपरीका बेथ और खरोष्ठीका व, इजिप्तके शिलाफलकोंपर का गिमेल और खरोष्ठीका ग, मेसापोटेमिया की शिलालिपिका दलेथ और खरोष्ठीका द, बिलकुल मिलते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि अन्य शिलालेखोंमें भी अर्मियन अक्षरोंसे खरोष्ठीका मेळ दीखता है। तात्पर्य अर्मियनके बीस अक्षर किसी न किसी रूपमें खरोष्ठीसे मिलते हैं। सेमिटिक लिपिके समान खरोष्ठी लिपि भी दाहिनीसे बांई ओर लिखी जाती है।

लगभग ईसवी सन पूर्व आठवीं सदीसे ब्राह्मी लिपिका प्रचार खूब तेजीसे अशोकके कालतक भारतवर्षमें होता रहा। उसके बाद भी कुछ कालतक होता रहा। जयपुर राज्यके नागर गांवमें कार्लाइल साहब

को जितने तांबेके सिक्के मिले उन सबपर ब्राह्मी लिपिके अक्षर हैं। ये सिक्के चौथी सदीसे चालू थे। फिर खरोष्ठीने पैर फैलाना शुरू किया। ईसवी सन पूर्व पाचवीं सदीमें भारतकी वायव्य सरहद-के प्रान्त ईरानी साम्राज्यमें शामिल थे। उस समय खुसश, दरियाउस इत्यादि हाखामानिसीय (Achalmenian) वंशके पारसी सम्राटोंका साम्राज्य भूमध्यसागर से पंजाब तक फैला था और इसी कालमें खरोष्ठी लिपिका अंगीकार भारतीयोंने किया। ईसामसीहकी मृत्यु के बाद कइ सदियोंतक खरोष्ठीका प्रचार जारी था। उत्तरापथ में तो वह १२ वीं सदी तक चालू रहा होगा।

शिलालेख और सिक्कोंके द्वारा पुराणवस्तुसंशो-धकोंने यह बात सिद्ध कर दी है, कि ईसवी सन पूर्व पांचवी सदीमें भारतीयों के अक्षर पूर्ण विकास की स्थितिमें थे। अब यह देखना है, कि वे केवल पत्थर-पर या और किसी चीज पर लिखते थे। कागजपर (भूर्जपत्रपर) अथवा कपडोंपर के लेख इतने दिन सुर-क्षित नहीं रह सकते। ऐसे लेखों की पुस्तकें कीलका-क्षर की ही मिलेंगी। कीलकाक्षरों के लेख ईंटोंपर कीलकोंके द्वारा लिखकर वे ईंटें भुनते थे। ऐसे कील-काक्षरों में लिखी हुई पुस्तकों की एक लायब्ररी मेसापोटेमिया में मिली है, और उसका काल ई० स० पूर्व २३०० वर्ष समझा जाता है। भारतीयों में कील-काक्षर की पद्धति नहीं थी। ईसवी सन पूर्व चौथी सदी में ग्रीक लेखक निर्यासने ऐसा लिखा है कि भारतीय लोग कपास के वस्त्रपर या कागजपर लिखते थे।

ईसवी सन पूर्व पहिली सदी पाणिनिका काल है। इस काल में भी एक यवन लिपि प्रचार में थी; चाहे फिर उसका अंतर्धान यवन लिपिमें हुवा हो या कील काक्षरकाही नाम यवन लिपिहो। ई० स० पूर्व पहली सदीमें संगृहीत ललितविस्तर नामक बौद्धोंके ग्रंथमें ब्राह्मी वगैरह १८ लिपियोंका उल्लेख है। वे कहां कहां चालू थीं, यह नहीं समझता। ब्राह्मी खरोष्ठी लिपियों के हजारों लेख पुराणवस्तुसंशोधन मुहकमे को मिले हैं।

हिन्दुओंके (वैदिक) धर्मग्रंथ, बौद्धोंके धर्मग्रंथ और जैनोंके धर्मग्रंथ पहिले पठन पद्धतिसे ही जीवित रखे जानेके कारण उनमें कुछ कम ज्यादा होना शक्य है। भूगर्भ के प्रत्यक्ष पोषक प्रमाण जितने मिलेंगे उतनाहि इन ग्रंथोंमें लिखी हुई बातों का प्रामाण्य निर्विवाद ठहरेगा। अब तक प्राचीन लिपियोंमें पृथ्वी के पेटसे अकेली ब्राह्मी लिपि ही निकली है।

आजकाल भारतमें जितनी लिपियां हैं वे सब ब्राह्मी लिपिसे निर्माण हुई हैं। अशोक के समय तक सारे भारतमें एक ब्राह्मी लिपि रूढ थी। खरोष्ठी भी ब्राह्मी से निकली, ऐसा पं. ओझाजी का कथन है। उन के मतानुसार खरोष्ठी और ब्राह्मी एक मूल की शाखा-एं हैं, फिर सात सौ सालही में इन अक्षरोंकी समानता क्यों न रही? तात्पर्य यह है कि खरोष्ठीका मूल फिनिशीय नहीं है, परंतु ओझाजीके मत से अनेक विद्वान् मतभेद रखते हैं।

ब्राह्मी लिपिके उत्तरी और दक्षिणी ऐसे दो भेद हैं। गुप्त, कुटिल, नागरी, शारदा, बंगाली इत्यादि लिपि-यां उत्तरी ब्राह्मीमें शामिल हैं, और पश्चिमी, मध्य-प्रदेशी, तेलगू, कानडी, ग्रंथ, कलिंग, तामिल इत्यादि दक्षिणी ब्राह्मीमें आती हैं।

ब्राह्मीका सिर बढकर जब वह लंबी होने लगी तब उसका रूप विकृत होने लगा और स्वरोंका चिन्ह बदला तब गुप्त लिपिका जन्म हुआ। गुप्तोंके काल में यह लिपि थी, इसलिये इसका नाम गुप्तलिपि पडा। यह ई० सनके चौथी पांचवी सदीतक चालू थी। इसी लिपि के आधारपर कुटिललिपि निकली। ई० स० के ६ वीं से नववीं सदीतक वह चालू भी। इस लिपिकी आकृति कुटिल होनेके कारण वह लोगोंमें 'कुटिल' कहलाई गई। काश्मीर और पंजाबमें प्रचलित शारदा लिपि कुटिल लिपि ही की कन्या है। वह आठवीं सदीमें प्रचारमें थी।

ऐसा कहते हैं, कि नागरी और बंगाली लिपि भी

कुटिल लिपिसे पैदा हुई हैं। सिक्के और शिलालेखोंके आधारपर इन दोनों लिपियोंका प्रचार नववीं दसवीं सदीमें हुवा दीख पडता है।

दक्षिणी ब्राह्मीमें अंतर्भूत होनेवाली लिपियोंमें पश्चिमी लिपि काठेवाड, खानदेश, हैद्राबाद वगैरह स्थानोंमें पांचवींसे नववीं सदीतक; मध्य प्रदेशी लिपि मध्य-प्रदेश, उत्तर हैद्राबाद और बुंदेलखंडके कुछ भागोंमें पांचवींसे आठवीं सदीतक, तेलगू और कानडी लिपि बंबईके दक्षिणभागमें, सोलापूर, विजापूर, बेलगांव इत्यादि स्थानोंमें पांचवीं से १४ वीं सदीतक; ग्रंथ लिपि मद्रासके कुछ भागोंमें सातवीं से पंद्रहवीं सदीतक, कलिंग लिपि मद्रासके चिकाकोल और गंजाम भागोंमें सातवीं से ग्यारहवीं सदी तक और तामिल लिपि मद्रास के पश्चिमी किनारेमें सातवीं सदी से चालू हुई दीख पडती है। तामिल लिपिका ही एक प्रकार बेटद्लुत लिपि है। सातवीं से चौदहवीं सदी तक इसका प्रचार दीख पडता है। इस लिपिमें वर्णों का बहुत अभाव है। संस्कृत श्लोक बेटद्लुत लिपि में बडी मुष्किल से लिखते बनते हैं। आजकल दिखनेवाली भिन्न भिन्न भाषाओं की लिपियां रूपान्तर होते होते इस स्थिति तक आ पहुँचीं हैं।

सब लिपियां ब्राह्मी से निर्माण होनेके कारण एक ब्राह्मी लिपि अच्छी तरह सीखलेनेसे अन्य लिपियोंका ज्ञान अल्प प्रयास से हो जाता है और शिलालेख भी समझने लगते हैं। शिलालेखोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी और अपने प्राचीन लिपिकी बनावट तथा उत्क्रांतिका जिन्हें यथार्थ ज्ञान करने की इच्छा हो, वे पं. गौरीशंकर ओझा कृत 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' नामक बहुमूल्य पुस्तक का अभ्यास करें। इस पुस्तक में शिलालेखोंके भी भरपूर नमूने हैं और हरएक अक्षरका क्रमविकास भी अच्छी तरह समझाया है। भारतीय भाषामें इस विषयकी ही एकमात्र किताब है, इसकी कीमत २५ रु. है और वह अजमेरके राजपुताना म्यूझियममें मिलती है।

चित्राक्षरोंकी उत्पत्तिका स्थान इजिप्त समझते हैं। कोई हर्षवार्ता सुनाना हो तो पूर्वकालमें हाथमें मजीरे लिये हुई स्त्रीका चित्र बनाते थे। वैसे ही दुःख प्रदर्शित करना हो तो सिरपर हाथ रखे हुई स्त्रीका चित्र खींचते थे। बादमें इन्ही चित्रके आधारपर ध्वन्यात्मक (Phonetic) अक्षर निर्माण हुवे। उदाहरणार्थ ईगल पक्षी की आकृति 'इ' की हुई, हाथकी 'ह' हुई। अक्षरोंके बदले ये ही चित्र लिखनेमें आने लगे।

चिनी अक्षर भी एक प्रकारसे चित्रात्मक ही हैं। चिनी भाषामें पंडित होनेके लिये १५००० अक्षर जानना आवश्यक है। इस लिपिकी गति भी और सब लिपियोंसे भिन्न है। यह न तो दाहिनीसे बाईं ओर न बांईसे दाहिनी ओर जाती है; ऊपर से नीचे और फिर बांईसे दाहिनी ओर लिखी जाती है।

पत्थरोंपर, काष्ठफलकोंपर, और कीलकाक्षरोंमें ईंटोंपर तो सब जगह लोग लिखते थे; पर कागजोंपर लिखनेका सुबूत बहुत थोडा मिलता है। 'वस्त्रपर अथवा कपाससे तयार किये हुए कागजपर भारतीय लोग लिखते थे;' ऐसा ग्रीक यात्री नियार्कसने अपने ई० स० पू० ३२७ सालमें लिखे हुए वृत्तांतमें लिखा है। सातवीं सदीमें चिनी प्रवासी हुएनत्संग हिन्दुस्थानसे लौटते समय २० घोडोंपर किताबें लादकर लेगया।

भारतसे अन्य देशोंमें 'पेपिरस' की छालपर लोग लिखते थे। पेपिरस एक वृक्ष है। इसकी खेती इजिप्त देशमें और नाईल नदीके दलदलमय प्रदेशमें होती थी। झाडकी छाल धूपमें सुखाते थे और फिर एक चिपकनेवाले पदार्थमें उसे घोंटकर बादमें उसपर लिखते थे। अब भी इजिप्तमें पुरानी कब्रोंमें 'पेपिरस' की ऐसे छालोंपर लिखे हुए कुछ थोडे लेख मिलते हैं। ऐसे लेख कमसे कम दो हजार साल पूर्वके हैं। पत्थरोंके बाद 'पेपिरस' पर के लेख टिकाऊ होते हैं।

अध्यात्मविज्ञानका महत्त्व।

(लेखक- ब्र० सच्चिदानन्दजी, नेपाली, रांची-विहार)

(२)

अवशसा निःशसा यत्पराशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः। अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥ - अथर्व० ६।४५।२

'और हे तेजस्विन् ! हमने जागते व सोते हुए जो पाप (१) दुर्भावनासे (२) बुरी कल्पनासे अथवा (३) दुःस्वप्नके कारण किये हों, उन समस्त असेव्य दुष्कर्मोंको हमसे पृथक् कीजिये।'

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद्वरणा वारयिष्यते ॥
अथर्व० १०।३।७

'हे वरुण ! आप इन असेव्य कर्मोंसे हमारा संरक्षण कीजिए- (१) द्रोह (२) दुःस्वप्न (३) व्यभिचार (४) मृत्यु और (५) अन्याय पूर्ण वध अर्थात् हिंसा।'

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाऽतितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ य० ३६।२

'हे भुवनेश्वर ! आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे तथा चक्षु, मन और अन्तःकरण समस्त छल छिद्रोंका विनाश होवे।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेसे मन कुमार्गमें प्रवृत्त नहीं होता तथा दुःस्वप्न आदिका भय नहीं रहता।

दुःस्वप्नके कारण मनुष्यका इतना पतन होता है कि वह निर्बलचित्त बन जाता है और यही चित्तकी निर्बलता मनुष्यको विनाश पथ की ओर घसीट ले जाती है।

निर्बल-चित्त पुरुष बहुधा स्वप्नमें ही काल कवलित हो जाते हैं, जाग्रत् अवस्थामें तो कहना ही क्या? कभी उनका मन चिन्तासे व्यग्र रहता है तो कभी उन्हें अनेक आपदाएँ घेरे रहती हैं और कभी वे स्वप्नके भयङ्कर दृश्योंको देखकर स्तम्भित एवं मूर्च्छित हो जाते हैं। अतएव हमारे शास्त्रकारोंने कहा है कि- 'चित्त को कभी भी निर्बल नहीं बनाना चाहिए, अपि तु सदा सबल एवं शिवसङ्कल्पमय बनाना चाहिए।'

चित्त की निर्बलता को दूर कर के हमेशा उन्नति के उच्च शिखर पर चढने का प्रयत्न करना चाहिए और मनमें ऐसी धारणा करनी चाहिए कि-

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षाँ वनानि संचर ॥
(अथर्व० ६। ४५। १)

'हे पापी मन ! तू क्यों अप्रशस्त अर्थात् अप्रशंसनीय कर्मों की प्रशंसा करता है ? अतएव तू मुझ से पृथक् हो जा और अभी पृथक् हो जा। मैं तेरी कामना नहीं करता। चाहे तू वृक्षोंमें संचार कर अथवा सघन वनोंमें चला जा।'

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥
(ऋ० १०। १६४। १)

'हे मन को अधःपतित बनानेवाले दुर्भाव ! तू हम से सर्वथा पृथक् हो जा। तेरी हमें जरूरत नहीं है। और हे अनेक प्रकार की चैतन्य शक्ति से युक्त मन ! तू उस स्वप्नावस्था का (जो कि जाग्रत् अवस्था से परे है) सब प्रकार से अनुभव कर।'

इस मन्त्रमें यह आदेश दिया गया है कि-'प्रत्येक मनुष्य को अपनी उत्कृष्ट स्वप्नावस्था का अनुस्मरण करना चाहिये।'

ऊपर यह कहा जा चुका है कि- 'स्वप्न का प्रवर्तक व अधिष्ठाता आत्मा है। यही स्वप्नमें गौरव के साथ चलता है तथा अत्यन्त प्रसन्नता- पूर्वक मस्त निद्रामें मग्न होकर अपनी द्वन्द्वातीत अवस्था का अनुभव करता है। यह [आत्मा] सन्धिस्थान यानी

स्वप्नस्थानमें रहता हुआ भूर्भुवादि लोकों को देखता है। उस समय [स्वप्नकालमें] यह जो कुछ [अनुभूत व अननुभूत] दृश्य देखता है, वह जागृतिमें आकर कहता है । स्वप्नमें यह अपनी महिमा का अनुभव करता है। जाग्रत् अवस्थामें देखी हुई वस्तुओंको पुनः स्वप्नमें यथावत् देखता है, सुनी हुई बातोंका यथार्थतया सुनता है, देश देशान्तर की अनुभूत अथवा निरनुभूत घटनाओं व आश्चर्य जनक दृश्योंका अनुभव करता है, कभी कभी पूर्व जन्मके संस्कारोंका स्मरण करता है, कभी वर्तमान व भविष्यकालिक घटनाओंका बारम्बार स्मरण करता है और उनसे प्रकट होनेवाले हर्ष, भय, विषाद, सुख, दुःख इत्यादि की सूचना पूर्व ही दे देता है। कहनेका अभिप्राय यह है, कि- 'आत्मा सत्, असत्, भले, बुरे, दृष्ट, अदृष्ट, श्रुत, अश्रुत, अनुभूत, अननुभूत इत्यादि सब प्रकारके दृश्योंको स्वप्नमें देखता, सुनता या अनुभव करता है।' उपनिषदोंमें लिखा हुआ है कि- स्वप्नस्थान आत्माका तैजसलोक है ! यहीं बैठकर वह जाग्रत् और सुषुप्ति की विचित्र अवस्था और ओङ्कारके स्वरूपका चिन्तन करता है।' इन विचारोंसे स्वप्नकी वास्तविक-दशाका ज्ञान होता है ? अतएव विचारशील पुरुष इन बातोंकी सत्यताका स्वयं अनुभव करें।

* पहिले यह कहा जा चुका है कि स्वप्न दो प्रकारके होते हैं- (१) सुस्वप्न और (२) दुःस्वप्न। सुस्वप्न पूर्वजन्मके सुसंस्कारों व इहजन्मके सुकर्मोंसे होते हैं और दुःस्वप्न यानी स्वप्नदोष पूर्वजन्मके कुसंस्कारों, तंद्रा व नियमविरुद्ध आचरणों से होते हैं। अथर्ववेदमें कहा है कि—

'स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः' अथर्व. ११।८।१९

'स्वप्न तन्द्रा व नियम विरुद्ध आचरण का सूचक है।' इस मन्त्रमें स्वप्नदोष के दो कारण बताये गये हैं- (१) तन्द्रा और (२) नियम विरुद्ध कर्म। यदि तन्द्रा का परित्याग करके वैदिक नियमानुकूल कर्म किये जायँ तो स्वप्नदोष आदि के होने की संभावना ही न रहे। अतएव वैदिक धर्मी पुरुषोंसे हमारा प्रबल अनुरोध है कि वे तन्द्रा, सुस्ती व प्रमाद का परित्याग करके वेदविहित नियमों का विधिवत् पालन करना सीखें तथा सोते समय नित्य विमल तथा सुशीतल जलसे हाथ, मुख, पैर धोकर समाहित चित्तसे अपने बिस्तरे पर बैठे हुए गायत्र्यादि पूर्वोल्लिखित वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करके सोवें। यदि प्रत्येक व्यक्ति इस नियमका विधिवत् पालन करेंगे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हें कभी भी स्वप्नदोष होने की शिकायत ही न रहेगी। जिन्हें मेरी उक्त बातोंका विश्वास न हो, वे स्वयं अनुभवात्मक दृष्टि से परीक्षा कर के देखें। मैं पुनः अपने पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूँ कि- 'वे सोते समय नित्य शुद्ध-जल से हाथ, पैर, मुख धोकर सोया करें, ताकि उन्हें स्वप्नदोषसे

---

* 'स्वप्न-तत्त्व' का वर्णन उपनिषदोंमें इस प्रकार किया गया है-

'स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रमति । तस्य वा एतस्य द्वे एव स्थाने भवतः— इदं च परलोकस्थानं चेति। सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं, तस्मिन्सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च। (बृ. ४।३।९) य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति (छा. ८।१०।१) सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति (छा. ८।११।१) स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः । स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति (माण्डूक्य उपनिषत्) अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति-यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति, श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति, देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति । दृष्टमदृष्टमाकर्णितमनाकर्णितमनुभूतमननुभूतं सदसच्च सर्वमेवानुपश्यति । (प्र. ४।५) स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो, रूपाणि देवः कुरुते बहूनि । उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो, जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन् । स वा एष एतस्मिन् स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं चेति ।' (बृहदारण्यक उपनिषत् ४।३।८,१५)

'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति । समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥' (छा. उ. ५।२।९)

दूषित न होना पडे वेदमें जल के गुणों की तारीफ करते हुए लिखा है कि-

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ यजु० ३६।१२

'शान्तिकारक दिव्यगुणयुक्त जल हमारी अभिलषित इच्छापूर्ति के लिये है, अतएव वह हमारे ऊपर सुख- शान्ति की वर्षा अवश्य करेगा।'

इस मन्त्रमें जल को (१) इच्छापूरक (२) शान्ति व शीतलता प्रदान करनेवाला तथा (३)दिव्य-गुणयुक्त बताया है। यदि जल के अन्दर विचित्र शक्ति न होती तो निम्नलिखित अथर्ववेदीय मन्त्र 'जल- सेवन से स्वप्नदोष दूर करने का उपाय' ही न बताता, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि जल सेवन से सब प्रकार के दोष दूर किये जा सकते हैं+-

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मात्। प्राम्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु॥
(अथर्व० १०।५।२४)

पदार्थ- (अ- रिप्राः आपः) निर्मल जल (रिप्रम्) बाह्य मलों को (अस्मात्) हमारे शरीर से (अप-वहन्तु) पृथक् करे तथा (अस्मत्) हमारे (एनः) पाप (दुः + इतं) दुर्विवेक (सुप्रतीकाः) दुष्ट स्वभाव आदि (मलम्) आन्तरिक मलों व (दुःष्वप्न्यम्) दुःस्वप्नों को (प्र- वहन्तु) प्रवाहित करे अर्थात् दूर करे।

इस मन्त्र में बाह्य व आन्तरिक मलों के दूर करने का एक मात्र साधन जल बताया गया है, अतएव हमारे विचारशील एवं अनुभवी पाठकों को उचित है कि वे उक्त मन्त्र में वर्णित जल- तत्त्वका विधि-वत् सेवन करके शारीरिक और आन्तरिक मलों के दूर करने का उपाय सोचें तथा साथ ही साथ अपनी तन्दुरुस्ती का भी ख्याल रक्खें।

ऊपर के मन्त्र में 'जल दुःस्वप्न को प्रवाहित करे' यह एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। इस बात की सत्यता का अनुभव जल- तत्त्व का बिना सेवन किये नहीं हो सकता। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जल-तत्त्व का विधिवत् सेवन करने से स्वप्नदोष अवश्यमेव दूर किया जा सकता है। जिन्हें इस बात पर यकीन न हो वे जल-तत्त्व का सेवन करके उक्त बात की सत्यता का अनुभव व बोध प्राप्त करें।

जिन्हें दुःस्वप्न होते हैं उन्हें चाहिए कि ऊपर के मन्त्र में कही हुई निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें—

(१ तन्द्रा, प्रमाद, सुस्ती व नियम विरुद्ध आचरणों से दुःस्वप्न होते हैं।

(२) शरीरमें नाना प्रकार की व्याधियों के प्रविष्ट होने से दुःस्वप्न होते हैं।

(३) द्रव्य हरण करने की इच्छा, कामवासना व चिन्ता से दुःस्वप्न (स्वप्नदोष) होते हैं।

अतएव सुस्वप्न की अभिकाङ्क्षा करनेवाले पुरुषों को उचित है कि वे—

(१) तन्द्रा, प्रमाद, सुस्ती व नियम विरुद्ध आचरणोंका परित्याग करें।

(२) शरीरमें नाना प्रकार की व्याधियों को प्रविष्ट न होने दें।

(३) द्रव्यापहरण- भाव, कामुकता व चिन्ता का परित्याग करें।

इन नियमों का विधिवत् पालन करनेवाले व्यक्ति कभी भी दुःस्वप्न से व्यथित न होंगे। इस (दुःस्वप्न) के विषय में अथर्ववेद में लिखा है कि-

यत्ते स्वप्न अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद्दृश्यते दिवा॥
(अथर्व० ७।१०१।१)

'स्वप्न में मैं जो अन्न खाता हूँ, वह दिनमें अथवा प्रातः काल में (जाग्रत अवस्था में) दीखता नहीं है। जाग्रत् अवस्था में न दीखनेवाला वह समस्त अन्न मेरे लिये कल्याण कारक होवे।'

स्वप्नमें अन्नादि पदार्थों का उपभोग करने से जाग्रत् अवस्थामें कहीं बीमारी न हो जाय, अतएव मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि— 'स्वप्न का अन्न मेरे लिये अशुभ अर्थात् रोगोत्पादक न होवे।' इस के अतिरिक्त निम्नलिखित मन्त्र में बताया गया है कि-

+ जल के अन्दर विचित्र गुण होनेके कारण ही आजकल वैद्य, हकीम व डाक्टर 'जल- चिकित्सा' से रोगियों को आराम करते हैं।

'यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते'
अ० २०।९६।१६

'तमोभूत स्वप्नद्वारा पुरुष मोहित होता है।'

स्वप्न में नाना प्रकार की जो आकृतियाँ दिखाई देती हैं, वे तमोगुण की सूचना देती हैं अर्थात् तमोगुणकी प्रधानता से दुःस्वप्न की उत्पत्ति होती है-

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपाँस्तिरीटिनः॥
अ० ८।६

'जो तेरे स्वप्नमें भाई व पिता आदि का रूप धर कर तेरे सन्मुख आ खडा होता है, उन समस्त आततायी क्लीबरूपोंको मनःशक्ति की प्रबलता से जीतने की कोशिश कर।'

इन पूर्वोक्त मन्त्रोंमें दुःस्वप्न दूर करने के निम्नलिखित नियम, साधन व उपाय बताये गये हैं-

(१) परिमित आहार करना।
(२) तमो-गुण को हटाना अर्थात् सात्त्विक गुणों की वृद्धि करना। और-
(३) मनःशक्ति को प्रबल बनाना।

बस, ये ही तीन उपाय ऐसे हैं, जिनसे दुःस्वप्न दूर किये जा सकते हैं। ✍ अतएव पाठकोंको चाहिए कि वे पूर्वोक्त 'अरात्यास्त्वा' अ० १०।३।७ इस मन्त्रमें वर्णित निर्ऋति (नियम विरुद्ध आचरण) के मार्गसे अपने आपको बचानेकी कोशिश करें। ऋग्वेदमें लिखा है कि-

'स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता' ऋग्० ७।८६।६

पदार्थः- (चन) कोई कोई (स्वप्नः) स्वप्न (अनृतस्य) असत्कर्म का (इत्) ही (प्र-योता) प्रयोक्ता अथवा सूचक होता है।

इस मन्त्रमें दो प्रकारके स्वप्न बताये गये हैं (१) नियम-विरुद्ध-कर्म-सूचक स्वप्न और (२) नियमानुकूल-कर्म-सूचक स्वप्न। कई ऐसे स्वप्न हैं जो नियम-विरुद्ध कर्मकी सूचना देनेवाले हैं, और कई ऐसे हैं जो नियमानुकूल कर्मके सूचक हैं। अर्थात् नियम विरुद्ध और नियमानुकूल कर्मकी सूचना देनेवाले क्रमशः दुःस्वप्न और सुस्वप्न हैं। सत्कर्म का प्रयोक्ता वा प्रेरक सुस्वप्न है, अर्थात् असत्कर्मका प्रयोक्ता प्रेरक व सूचक दुःस्वप्न है। सुस्वप्न भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालिक शुभ घटनाओंका सूचक है और दुःस्वप्न अशुभ घटनाओंका। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध होगया कि सुस्वप्न सच्चे और दुःस्वप्न झूठे होते हैं। अन्यथा 'स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता' इस वचन का कुछ भी महत्त्व विदित न होता।

अधिकांश स्वप्न अपने मन के विचारानुकूल होते हैं, अतएव अपनी हितकामना करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने मन में सदा उच्च तथा शुभ सङ्कल्पमय विचार उत्पन्न करे, जिससे दुःस्वप्न-दूषित न होना पडे। *

पाठक वृन्द! यहाँ तक मैंने 'स्वप्न-तत्त्व' के विषय में यथाशक्य किंचित प्रकाश डालने की चेष्टा की है, आशा है विद्वान् पाठक इस से बहुत लाभ उठायेंगे। तथा मुझ अल्पवयस्क अबोध शिशु के श्रम को सफलीभूत बनायेंगे।

मेरे स्वप्न- तत्त्व विषयक सम्पूर्ण कथनों का सार पाठकों की समझ में भलीभाँति आ गया होगा तथा 'ऋचो अक्षरे' इस ऋचा के निम्नलिखित कथनों का सारांश भी स्पष्टतया विदित हो गया होगा कि- 'जिस स्वप्न-तत्त्व में समस्त मानसी शक्तियाँ रम

✍ सोकर उठनेके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र पढना चाहिए-

'पर्यावर्ते दुःस्वप्न्यात्पापात्स्वप्न्यादभूत्याः। ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे स्वप्नमुखाः शुचः।' अथर्व० ७।१००।१

'मैं ऐश्वर्यनाशक, पराभवसूचक एवं पापमूलक दुःस्वप्नसे बचनेके अनन्तर ब्रह्ममें प्रवेश करता हूँ, ताकि मैं स्वप्नोत्पादक शोक-सङ्कीर्ण मार्गसे पृथक् हो सकूँ।

* जो स्वप्न- तत्त्व के जिज्ञासु है, उन्हें चाहिए कि वे भविष्य में प्रकाशित होनेवाले 'एक अद्भुत चमत्कारपूर्ण स्वप्नकथा' नामक मेरे निबन्ध को ध्यान-पूर्वक पढने का कष्ट उठायेंगे तथा अपनी अनुमति से मुझे कृतकृत्य करेंगे।

रही हैं उस स्वप्न-तत्त्व के महत्त्व को जो व्यक्ति जानने की चेष्टा नहीं करता, वह वैदिक स्वप्न-तत्त्व विषयक ऋचाओंका आशय कैसे समझ सकेगा और जो व्यक्ति स्वप्नतत्त्व के महत्त्व को निश्चयात्मक दृष्टि से जानता है, वही मन और मस्तिष्क की शक्ति को पहचान सकता है ।' ऊपर इस ऋचा के दस अर्थ किये जा चुके हैं, यह अन्तिम ग्यारहवें स्वप्न-तत्त्व विषयक अर्थ का अभिप्राय है। इस प्रकार उक्त ऋचा के अनेक अर्थ किये जा सकते हैं, परन्तु यहाँ समयाभावके कारण हम उक्त ऋचा पर विशेष प्रकाश डालना नहीं चाहते । आशा है विचारशील पुरुष उक्त ऋचा से बहुत कुछ शिक्षा लेंगे और देश, जाति, समाज का हित साधन करनेमें प्रवृत्त होंगे ।

यह एक ऐसा गूढ विषय है कि इस विषय पर जितना लिखा जाय उतना ही थोडा है। अध्यात्म-विज्ञानमें इतनी गूढता है कि हम क्या कहें ? वेदके एक एक अक्षर की व्याख्यामें पोथेके पोथे तैयार किये जा सकते हैं। यही कारण है कि संसार का कोई भी धर्मग्रन्थ करोडों कल्पान्तोंमें भी हमारे वेदोंका मुकाबला करनेका साहस नहीं कर सकता। आज तक कोई भी विद्वान् पुरुष वेदसिन्धु की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँच सका है । इससे क्या सिद्ध हुआ कि वेदका ज्ञान अज्ञेय, अगम्य और अनिर्वचनीय है ? अन्यथा प्रत्येक ऋषिमहर्षि वेदकी अन्तिम सीमा तक अवश्यमेव पहुँच जाते। यह एक अगाध-जल-युक्त समुद्रके समान गम्भीर एवं गहन विषय है। इसकी आद्योपान्त महिमाको जानना सर्वथा असंभव है !! जैसे गलेमें पत्थर बाँधकर समुद्रमें तैरनेवाला मूढ पुरुष डूबकर रसातलमें विलीन हो जाता है, वैसे ही अज्ञानका आश्रय लेकर वेदमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष (चाहे वह विद्वान् हो या अविद्वान्) डूब जाता है। शक्तिका आश्रय किये विना मनुष्य तैर नहीं सकता। अतएव वेद सिन्धुमें तैरनेके लिये कितनी बडी भारी शक्तिकी आवश्यकता है, इस बातका पाठक स्वयं अनुमान करें ।

वेदोंका ज्ञान सर्वतः पूर्ण है ! वेदोंके एक एक अक्षरमें विज्ञानकी पूर्णता भरी हुई है !! यहाँ तक कि वेदोंके (१) ऋक् (२) यजुः (३) साम और (४) अथर्व (छन्द वेद) इन चार शब्दोंमें भी विज्ञान की ही पूर्णता छिपी हुई है। नमूनेके लिये संक्षेपसे इन चारों शब्दों पर प्रकाश डाला जाता है—

(१) 'ऋक्=ऋचा, ज्ञान, गमन, प्राप्ति, स्तुति, स्थान, उपार्जन, ऋत नियम का प्रवर्तक इत्यादि ।

(२) यजुः=देवपूजा, सत्सङ्गति, दान इत्यादि ।

(३) सामन् (साम) = शान्ति, उपासना, सामसम्बन्धी गायन ।

(४) अथर्वन् = छल, कपट, दम्भ पाखण्ड, मत्सरता, चंचलता आदि दोषों से रहित अर्थात् स्थितप्रज्ञ । 'अ— थर्व शब्द का दूसरा अर्थ है ' न चलनेवाले पदार्थ ।' जैसे- गृह, रथ, विमान इत्यादि। इन के निर्माण की विधि अथर्ववेद में वर्णित है ।

इस प्रकार विज्ञान- पूर्ण होने के कारण ही आज वेद समस्त आर्य जगत् में सम्मान्य हैं । वेद के अक्षर, धातु, शब्द, वाक्य इत्यादि में इतने गूढ भाव छिपे हुए हैं कि उनका रहस्य लाखों वर्षों में भी नहीं बताया जा सकता। यही कारण है कि भारत के समस्त ऋषि-मुनि वेदों की महिमा लिखते लिखते हार गये, परन्तु किसी ने भी आज तक वेदों की अगाध-विज्ञान- गंभीरता का पता न लग पाया। नमूने के

---

(१) 'ऋतु स्तुतौ' 'ऋ गतिप्रापणयोः' 'ऋ गतौ' 'ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु' इति धातवः ।
(२) 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु ' इति धातुः ।
(३) 'साम सान्त्वप्रयोगे ' इति धातुः ।
(४) नञ् पूर्वेणा 'थुर्वी हिंसाया' मित्यनेनाथर्व शब्दस्य सिद्धिः । थुर्वीत्यत्र वर्णविपर्ययेणोकारस्याकार इकारस्याकारे पर्वेनित्यस्य सिद्धिरिति केचित् । न थर्व अथर्व इति ।

लिये वेदों के निम्नलिखित अक्षरार्थों पर ध्यान दीजिए—

(१) स्व-- र

(१) अ = अखण्ड, अव्यक्त, अनादि, अजन्मा, अव्यय, पूर्ण, विराट्, तैजस्, अग्नि, अभाव, शून्य, एक, सब, अनिश्चय निषेध आदि।

(२) आ = सब ओर, सब प्रकार, मर्यादा व सीमा, थोडा इत्यादि ।

(३) इ = कामना, प्रज्ञाशक्ति, जीवात्मा, गति अर्थात् ज्ञान, गमन व प्राप्ति, समीप, ऐश्वर्य।

(४) ई = ईश्वर, निश्चय या तर्क करनेवाला ।

(५) उ = निश्चय, वितर्क, ऊपर, दूर, समीप, वह तथा, और, जीवात्मा, सचेतन- शक्ति इत्यादि।

(६) ऊ = ऊपर या अत्यन्त उत्कृष्ट ।

(७) ऋ = ज्ञान, गमन, प्राप्ति, स्तुति, वन्दना, जिज्ञासा, सत्य, बाहर आदि ।

(८) ॠ = ऋत नियम, उत्तमता आदि।

(९) ऌ = अन्दर, गति, सत्य, तेज आदि।

(१०) ॡ = संघर्षण आदि ।

(११) ए = निषेध, निश्चय, पूर्ण, अव्यय, प्रगति, गतिहीन इत्यादि ।

(१२) ऐ = निश्चय, उत्कृष्ट, सब प्रकार से जानने योग्य, ज्ञेय- वस्तु।

(१३) ओ = (अ + उ) = ईश्वर और जीव [आ + उ] सर्वोत्तम, सब प्रकार से गवेषणा वा निश्चय करने योग्य।

(१४) औ = सर्वोत्तम अवस्था, निश्चय, और इत्यादि ।

(१५) अं, अं, ओं = प्रज्ञाशक्ति, स्वीकृति, परमेश्वर इत्यादि ।

(१६) अः = सब प्रकार से निषेध, निश्चय, अन्त, अभाव, संकोच, शून्यता आदि ।

(२) व्यंजन

(१) क = बाँधना, सुख, बलवान्, प्रभावशाली, विवेक, शान्ति, स्थिरता, शौर्य, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, शिर, जल, प्रगति इत्यादि ।

(२) ख(१) = आकाश, पोल, खुला, छिद्र, शून्य, इन्द्रिय, संकोच, खोदना इत्यादि ।

(३) ग = ज्ञान, गमन, प्राप्ति, हटना, स्थान छोडना, अलग होना, अनुमान, स्वीकृति इत्यादि ।

(४) घ = निश्चय, एकान्त रुकावट, ठहराव, एकाग्रता, स्थिरता, हिंसा, गति इत्यादि।

(५) ङ् = निषेध, शून्य, संकोच, अभाव, सिकुडना आदि ।

इति कवर्गः

(६) च = और, तथा, भी, ही, निश्चय, फिर, पुनः, भिन्न, अन्य, अपूर्ण, खण्ड, पार्थक्य, अङ्गहीन, दूसरा, चलनेवाला, चलना, विचरण करना इत्यादि ।

(७) छ = आच्छादन, व्यवधान, परिधान, छाया, छत्र, परिच्छद, परिच्छेद, विच्छेद इत्यादि।

(८) ज = जन्म होना, गति, नूतनता, संसर्ग इत्यादि ।

(९) झ = नाश, शीघ्रता, मृत्यु, निश्चय, झङ्कार आदि।

(१०) ञ = अभाव, शून्य, निष्क्रिय, गतिहीन।

इति चवर्गः ।

(११) ट = साधारण, संकोच, मध्यम, निर्बल, गतिमान्, टंकार, इच्छा विपरीत आदि ।

(१२) ठ = निश्चय, पूर्णता, सर्वज्ञता, प्रगल्भता आदि ।

(१३) ड = नाद, क्रिया, जड, प्रकृति, अचेतन, अभाव, शून्य इत्यादि ।

(१४) ढ = चेतन, धारक, निश्चय, निश्चल, पूर्ण, कियावान् इत्यादि ।

(१५) ण = न = निषेध, शून्य, अभाव, क्रिया-हीनता, गति-हीनता, अप्रगल्भता, निश्चय, गति, प्राणस्पन्दन क्रियासे युक्त आदि।

इति टवर्गः

' खन अवदारणे ' इति धातुस्तेन खननमित्यर्थो विहित ।

(१६) त=तलभाव, विस्तार, प्रसार, आधार, नीचे अन्तिम-स्थान, सीमा, तट, इधर, इस पार इत्यादि ।

(१७) थ = गति-निवृत्ति अर्थात् ठहरना, उठना, बैठना, सोना प्रशान्त भाव से रहना। ऊपर, इस पार, उस ओर आदि ।

(१८) द(१)=दान, दया, दम, दैन्य, दुःख, न्यून गति, सन्ताप, काटना, अलग करना, अवखण्डन अर्थात् निःशेषतया खण्डन करना आदि।

(१९) ध = धारण, धर्म, घृति, न देना, रखना पोषणा आदि ।

(२०) न =निश्चय, प्रगति, निषेध आदि ।

इति तवर्गः

(२१) प(२) =पालन करना, पीना, भोग करना ज्ञानोपार्जन करना आदि ।

(२२) फ = खुलना, खोलना, निर्घोष, फूत्कार आदि ।

(२३) ब = घुसना, प्रविष्ट होना, छिपना, समाना, अन्तर्मुख होना इत्यादि ।

(२४) भ =नक्षत्र, प्रकाश, प्रकट, प्रत्यक्ष, बाहर, सत्ता, प्राप्ति, ज्ञान, गमन इत्यादि ।

(२५) म =निषेध, वर्जन, दूरीकरण, पृथक् करण, मननीय, परिमाण, अनुमान, विज्ञान, लाभ, गति इत्यादि ।

इति पवर्गः

(२६) य =जो, निश्चय, अवधारण, संयम, उपरमण, पूर्ण गति, भिन्न- वस्तु, निदर्शन, वस्तुनिर्देश आदि ।

(२७) र = रमण, संघर्षण, अग्नि, विद्युत्, सूर्य, दाता, तेज इत्यादि । मत्वर्थीय 'र' का अर्थ है- 'वाला' । जैसे- 'हिरण्यहस्तो असु-रः सुनीथः' यजु० ३४।२६ ॥

(२८) ल(३) = आदान, छेदन, खण्डन, मण्डन, रमण इत्यादि । ळ = वाणी, भूमि, किरण आदि।

(२९) व(४) = अन्य, पूर्ण, प्रगति, सुगन्ध, भिन्न, अथवा, गतिशील, बर्ताव, प्रवाह इत्यादि ।

(३०) श = शोभा, प्रकाश, शौर्य, विशुभ्रता आदि ।

(३१) ष(५) = आन्तरिक क्रिया, वर्षा, सिञ्चन, प्रवाह विज्ञान आदि ।

(३२) स = वह, शब्द, साथ, सत्ता आदि ।

(३३) ह = निश्चय, प्रसिद्ध, सूचना, अन्त, निषेध, अभाव, सङ्कोच, घटना, पाद-पूर्ति आदि।

(३४) क्ष = क्षान्ति, क्षय, क्षीणता, क्षोभ, अविवेक, मोह, मत्सर, क्रोध, सङ्घर्षण आदि ।

(३५) त्र = त्राण, संरक्षण, बचाव, सर्व, समग्र, कुल, विस्तार आदि ।

(३६) ज्ञ = ज्ञान, जानना, नित्य, कर्म, ज्ञेय पदार्थ, अजन्मा, स्वयम्भू, उत्पादक इत्यादि ।

इसी प्रकार वेदोंकी धातुओंमें भी विचित्र अर्थ-मय भावोंका समावेश है । नमूनेके लिये निम्न-लिखित धातुओंकी वर्ण-विश्लेषण-शैली पर ध्यान दीजिए—

(१) भू = भ-प्रकाश व कान्ति, उ = सब ओर अर्थात् सब ओर जाहिर, सदा प्रकट, हमेशा मौजूद = सत्ता ।

(२) एध् = आ— सब ओर, इध्—प्रदीप्त अर्थात् सब और प्रदीप्त = वृद्धि ।

(३) आप्लृ = आ-दूरतक, प- रक्षा करना, लृ-

---

[१] 'दोऽवखण्डने' 'दाप लवने' 'डुदाञ् दाने' इति धातवः ।

[२] 'पा पाने' 'पा रक्षणे' इति धातुद्वयम् । तस्मादातोऽनुपसर्गे क इति क प्रत्यये 'प' इत्यस्य सिद्धिः ।

(३) रलयोर्डलयोश्चैव वबयोः शययोस्तथा । षमयोस्थफयोर्वेदे स्यादभेदेन कल्पनम् ॥
यथाः— 'इडा, इला, इरा, इळा' इत्यादयः ।

(४) 'व' इत्यत्र 'उ+अ' इति च्छेदः । तेनान्ये जीवेश्वरादयोऽप्यर्था ऊह्याः । (५) 'षोऽन्तकर्मणि' इति धातुः ।

अन्तर्गत अर्थात् दूर तक अन्तःसंरक्षण किये हुए व्याप्ति ।

(४) आप् = आ-चारों ओर से, प- पालन करना अर्थात् हर प्रकार से पालन करना = व्यापक ।

(५) गम्लृ = गम्- जाना, लृ-अन्दर या बाहर अर्थात् अन्तर्गमन, बहिर्गमन=गति ।

(६) यज् = य - प्रगतिशील, ज = होना अर्थात् प्रगतिशील होना = देवपूजा करना, सत्सङ्गति करना और सत्पात्र में दान देना । यजुष् = कर्तव्य-शीलता ।

(७) भग् = भ-प्रकाशयुक्त, ग- गति अर्थात् प्रकाशयुक्त गति— वृद्धि—ऐश्वर्य ।

(८) मख= म= नहीं, ख— छिद्र वा त्रुटि अर्थात् निर्दोष कर्म = यज्ञ ।

(९) व्रज् = व्र = श्रेष्ठता, ज् = उत्पन्न करना अर्थात् श्रेष्ठता पैदा करना = गति ।

(१०) अज् = अ— नहीं, ज्- उत्पन्न होना = अनुत्पत्ति गति।

(११) अर्च = अ = पूर्णतया, र = अग्नि, च = चर्या, अर्थात् पूर्णतायुक्त अग्निचर्या, अग्निहोत्र वा पूजा ।

(१२) रट् = र = सब प्रकार से, ट = बोलना अर्थात् सब प्रकार से बोलना-रटना-परिभाषण ।

(१३) अद् = अ— नहीं, द् = देना अर्थात् अदान = भक्षण, रखना ।

(१४) हु = ह्- निश्चय, उ – पृथक् अर्थात् निश्चय ही पृथक् होनेवाला = दान भक्षण आदि ।

(१५) हन् = ह = बिलकुल ही, न् = अभाव अर्थात् हिंसा, गति ।

(१६) णश् = न = नहीं, श = प्रत्यक्ष अर्थात् अप्रत्यक्ष, अप्रकट, प्रकाशहीन = अदर्शन ।

(१७) मर् = म = नहीं, र् = रमण अर्थात् प्राण-स्पन्दन क्रिया का अभाव = मरण, मृत्यु ।

(१८) चर् = च—बारम्बार, र् = रमण अर्थात् बारबार रमण = गति । चर् = च = चबाना, र् = स्वाद अर्थात् स्वाद ले लेकर चबाना = भक्षण ।

(१९) इन्द्र = इ-कामवासना, न = निःशेष, द् = अवखण्डन अर्थात् कामवासना का निःशेष-तया विनाश = परमैश्वर्य ।

(२०) चक = च—बारम्बार, क = आनन्द अर्थात् बारम्बार आनन्द = तृप्ति ।

(२१) वकि = व = वक्रगति, कि = प्रयोग अर्थात् टेढी चाल चलना = कुटिलता ।

(२२) शकि = श = प्रत्यक्ष, कि = अनिश्चय अर्थात् प्रत्यक्षतया निश्चय न होना-सन्देह, संशय, शङ्का शक ।

(२३) अति = अ = नहीं, ति = मोक्ष-अमोक्ष अर्थात् बन्धन ।

(२) गद् = ग = गति, द् = देनेवाला अर्थात् व्यक्त वचन ।

(२५) चन्द् = च = प्रकाश, न = निश्चय ही द् = देनेवाला अर्थात् निश्चय ही प्रकाश व शोभा प्रदान करनेवाला = चाँदनी व प्रसन्नता ।

इस प्रकार अक्षरों वा धातुओंमें गूढ अर्थोंका समावेश होनेके कारण ही वैदिक शब्दोंमें अनेक उत्कृष्ट भावोंका सन्निवेश हो गया है; अन्यथा वेदके एक शब्दमें अनेक अर्थोंकी प्रतीति किस प्रकारसे होती ? उदाहरणार्थ अधोलिखित शब्दों-पर ध्यान दीजिए—

(१) असु- रः = प्राण व प्राणियोंमें रमण करनेवाला अर्थात् जीवात्मा, परमात्मा ।

असु- रः = प्राणशक्तिको [उपकारार्थ] सम-र्पण करनेवाला अर्थात् देवता, सज्जन उदार पुरुष, द्वारपाल, रक्षक आदि ।

अ-सु-रः = निःशेषतया-सुख-प्रदान करनेवाला अर्थात् ईश्वर व उदार पुरुष ।

अ-सु-रः = अ-नहीं, सु-सुख, र = देनेवाला अर्थात् सुख न देनेवाला-पीडा देने वाला = राक्षस, दैत्य, डाकू, चोर आदि ।

अ -सुरः = सुरों से विपरीत कर्म करनेवाला अर्थात् कुकर्मी पुरुष ।

अ - सुरः (१) = सुरा रहित स्थान विशेष। अ-सुरः = सुरा का सेवन न करनेवाला। अ-सु-रः = अ = नहीं, सु = सुख या भोग, र = रमनेवाला अर्थात् भोग में अवलिप्त न रहनेवाला = यती, ऋषि, मुनि, योगी, ब्रह्मचारी आदि।

असु-रः(२) = प्राण-धारी अर्थात् शरीरी।

असु-रः = मायावी - राक्षस।

'असुर' शब्द का वर्ण-विपर्यय अ+सुरः = सुर + अ = सुरा - सुरा या मदिरा।

अ+सु+रः = र+अ = रा, स्+उः = सुः, रा-सुः = दान-दाता। अ+सु;रः = स्+अ = स्व, र्+अः = रः = स्व-रः = स्वयं विराजमान - अर्थात् सूर्य, ईश्वर, स्वर्ग, अकारादि स्वर।

अ(२)- 'सु(१)'-रः(३) = स्-अ+रः-स्-व+रः-स्व+रः-सु+रः = उत्तम रीतिसे वरण करने योग्य अर्थात् ईश्वर, मोक्ष, सज्जन आदि। अ, स्, रः = अ- र- सुः = अ- रसः = नीरस पदार्थ।

(२) अ-मरः = न मरनेवाला अर्थात् देवता, परमेश्वर, ऋषि, महर्षि आदि।

अम-रः = अमा अर्थात् प्रज्ञाशक्तिमें रमण करनेवाला। प्रज्ञाशक्ति के संघर्षण से उत्पन्न होनेवाला- परमेश्वर, जीव, प्रकृति।

अ- म- रः = अ = समस्त, म = विज्ञान-शक्ति, र = देनेवाला अर्थात् गुरु, माता, पिता, परमेश्वर आदि।

'अमर' शब्द का वर्ण- विपर्यय

अ+म, रः = म+अ = मा, र्+अः = रः = मारः = मारनेवाला अर्थात् कामदेव, काल।

अ-म + रः = र् + अ = र, म + अ = मा = रमा = रमण करनेवाली = शक्ति, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, लक्ष्मी आदि।

अ + म + रः = र + अ = रा, म् + अः = मः रामः = प्रत्येक प्राणियों के अन्दर रमण करनेवाला = परमेश्वर।

अमरः = ज्ञान विज्ञान का देनेवाला।

अ- मरः = अविकृत होनेवाला। यथा- आकाशादि पदार्थ।

(३) इडा (३) = स्तुति, प्रार्थना, उपासना।

इ- डा = कामना करने योग्य। जैसे- ईश्वर।

इ-डा(४) = अध्ययन, चिन्तन व मनन करने योग्य जैसे - वाणी।

इ - डा = चलने का स्थान। जैसे- भूमि।

इ- डा = तेज युक्त व तेज प्रदान करनेवाला- जैसे सूर्य-किरण।

इ-डा = प्रज्ञाशक्ति प्रदान करनेवाली। जैसे-माता या आध्यापिका।

इ- डा = बढाने योग्य। जैसे - विद्या, बुद्धि सम्पत्ति आदि।

'इडा' शब्द का वर्ण- विपर्यय

(५) इरा = जल, मेघ, समुद्र, आकाश आदि।

इ- रा = काम- विकार का निरोध करनेवाला दिव्यशक्ति।

इ- रा = विज्ञानवर्धक शक्ति।

इला = ज्ञेय, गम्य, स्तवनीय वस्तु।

इळा = वन्दना, अभिवादन इत्यादि।

इडा (इट्+आ) = विद्युत्, मन, वायु, पर्जन्य आदि

इडा (इट्+आ) = सब प्रकारका आग्नेय-तत्त्व।

इडा = प्रगति शीलता, कुलीनता आदि।

इस प्रकार वैदिक शब्दोंमें अर्थज्ञानकी गम्भीरता होनेके कारण ही आज वेदोंका वाक्यार्थ लगाना कुछ मुश्किलसा हो गया है। यदि शब्दार्थ-ज्ञानका पूर्ण विवेक हो तो फिर वेदमन्त्रोंका अर्थ करनेमें क्या रक्खा है? उदाहरणार्थ निम्नलिखित वेद-मन्त्रपर दृष्टिपात कीजिए-

---

(१) 'वारुणी अमर वारुणी सुरा' इति सुराया नामत्रयम्। साम्प्रतं सुरादिशब्देन मद्यग्रहणम्। तेनोक्तम्- न विद्यते सुरा यस्मिन्सोऽसुरः स्थानविशेष' इति। (२) मत्वर्थे र प्रत्ययः।

(३) इड स्तुताविति धातुः। [४] 'इण्' 'इङ्' इति धातुद्वयम्।

(५) इरा भू वाक्सुराप्सु स्यात्। इत्यमरः।

'सहस्रस्य प्रमाऽसि सहस्रस्य प्रतिमाऽसीति।'
(यजुः १५।६५)

पदार्थः- तू (सहस्रस्य) हजारोंकी (प्रमा) मननीय शक्ति (असि) है, और (सहस्रस्य) हजारोंकी (प्रतिमा) मूर्ति (असि) है।

'परमेश्वर हजारोंकी प्रमा व प्रतिमा है' इस मन्त्रार्थ का यह अभिप्राय है कि- 'सृष्टिमें जितने मनुष्य-प्राणी विद्यमान हैं, उन सबोंकी प्रज्ञाशक्ति (प्रमा) परमेश्वरकी ही प्रज्ञाशक्ति है, और जितनी मूर्तियाँ वा मूर्तिमत्पदार्थ इस संसारमें हैं, वे सब परमेश्वरके ही रूप, अंश व मूर्तियाँ हैं।' इसी भाव की विशद-व्याख्या यजुर्वेदके इन दो मन्त्रोंमें की गई है--

सहस्रशीर्षा १ पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
(यजुः पु. सूक्त ३१।१)

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो-बाहुरुत विश्वतस्पात्। (यजुः १७।१९)

'वह परमेश्वर अनन्त शिर, अनन्त चक्षु, और अनन्त पैरोंवाला है' (य० पुरुषसूक्त ३१।१) 'विश्वचक्षु, विश्वमुख, विश्वबाहु, विश्वपात् इत्यादि नाम उस परमेश्वरके ही हैं' (यजुः १७।१९)

इन कथनोंका आन्तरिक आशय यह है कि- 'परमेश्वर विश्वरूप है। वह मूर्त भी है और अमूर्त भी। संसारके समस्त मूर्तिमत्पदार्थोंमें विराजमान होनेसे वह 'मूर्त' कहाता है। आकाशादि अमूर्त पदार्थोंमें विराजमान व स्वयं आकाशवत् व्याप्त होनेसे वह 'अमूर्त' भी कहाता है। तात्पर्य यह समस्त ब्रह्माण्ड उस मूर्तामूर्तस्वरूप ब्रह्मका अवयव होने से 'विश्व + रूप' (अर्थात् विश्वात्माका रूप) कहाता है। प्रामाणिक दृष्टिसे निम्नलिखित गीता और उपनिषदोंके वचनोंका सारांश निचोड कर देखिए-

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।'
(गी. १०।४२)

'यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।'
(गी. १०।३९)

'अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।'
(गी. १०।३३)

'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥'
(गी. १०।२०)

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे— 'मूर्तममूर्तं च।'
(बृहदारण्यक उप. २।३।१)

'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।'
(गी. १३।१३; श्वे. ३।१६)

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। (श्वे.३।११)

इन समस्त प्रमाणोंका अन्तिम सारांश यह है कि- 'परमेश्वर विश्वरूप, सहस्रमूर्ति, बहुमूर्ति, व्यापक, अनन्त, अक्षर, अजर, अमर, अजन्मा, अन्तर्यामी और अमूर्त है।' इसी भावकी व्याख्या 'सहस्रस्य प्रमासि' (यजुः १५।६५) इस मन्त्रमें 'सहस्र-प्रम' और 'सहस्रप्रतिम' इन दो शब्दोंद्वारा की गई है। इन शब्दोंका रहस्य सर्वसाधारण व्यक्तिको समझानेके लिए उपनिषदोंने अत्यन्त स्पष्ट रूपसे कहा है कि-'सर्वाननशिरोग्रीवः' 'सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्' 'सर्वभूतगुहाशयः' 'मूर्तममूर्तम्' इत्यादि।

पाठक वृन्द! वेदों और उपनिषदोंमें अनेक प्रकारसे ईश्वरीय-स्वरूपका निरूपण किया गया है। कहीं 'सहस्र-शीर्ष, सहस्र-प्रतिम,' और कहीं 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' (य. ३२।३) इत्यादि वचनोंके 'अ-प्रतिम' आदि शब्दोंद्वारा परमेश्वर के 'मूर्त' और 'अमूर्त' रूपोंकी सिद्धि की गई है! इस प्रकार वेदोंका ज्ञान सर्वतो विज्ञानमय एवं परिपूर्ण होनेसे अवर्णनीय तथा अनुल्लेख्य है। आशा है विचारशील पुरुष इस गुप्त 'ईश्वरीय-विज्ञान की महत्ता' का परिचय पाकर स्वयं उस गूढ विज्ञान-सागरमें अनुप्रविष्ट होनेकी योग्यता अपने अन्दर लायेंगे।

इति शम्

(१) 'सहस्रस्य प्रमासि' (यजुः १५।६५) इति वचनप्रामाण्यात् 'सहस्रशीर्षेयस्य' (३१।१) 'सहस्रस्य शीर्षाणि तस्यैव परमपुरुषस्य शीर्षाणीत्यर्थो' विधेयः।

इस प्रकार यजुर्वेदका प्राणविषयक उपदेश है। यजुर्वेदका उपदेश क्रिया-प्रधान होता है। इसलिये पाठक इस उपदेशकी ओर अनुष्ठानकी दृष्टिसे देखें और इस उपदेशको अपने आचरणमें ढालनेका यत्न करें।

सामवेद उपासनात्मक होनेसे प्राणके साथ उसका घनिष्ठ संबंध है। कई उसको उक्त कारणसे " प्राण वेद " भी समझते हैं। उपासना द्वारा जो प्राणका बल बढता है उतनीही सहायता सामवेदसे इस विषयमें होती है। अन्य बातोंका उपदेश करना अन्यवेदोंका ही कार्य है। इसलिये यहां इतनाही लिखते हैं कि जो परमात्मोपासनाका विषय है, उसको प्राणशक्तिका विकास करनेके लिये पाठक अत्यंत आवश्यक समझें और अनुष्ठान करनेके समय उसको किया करें॥ अब अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश देखते हैं—

अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा॥ अ. ३।१६।१

मेमं प्राणो हासीन्मो अमानः॥ अ.२।२८।३

" प्राण अपान मुझे मृत्युसे बचावें॥ प्राण अपान इसको न छोडें। " इन मंत्रोंमें प्राणकी शक्तिका स्वरूप बताया है। प्राणकी सहायतासे मृत्युसे संरक्षण होता है। प्राण वशमें आ जायगा तो मृत्युका भय नहीं रहता। मृत्युका भय हटानेके लिये प्राणकी प्रसन्नता करनी चाहिए। देखीए—

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड॥ निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुंच॥ ४॥ वातः प्राणः॥ ५॥ अ. १९।४४

" हे प्राण ! हमारे प्राणका रक्षण कर। हे जीवन ! हमारे जीवनको सुखमय कर। हे अनियम ! अनियमके पाशोंसे हमें बचा। "

अपनी प्राण शक्तिका संरक्षण करना चाहिए, अपने जीवनको मंगलमय बनाना चाहिये। निर्ऋतिके जालोंसे बचाना चाहिए। " ऋति " का अर्थ-" प्रगति ' उन्नति, सन्मार्ग, उत्कर्ष, अभ्युदय, योग्यता, सत्य, सीधा मार्ग, संरक्षण, पवित्रता " इतना है। अर्थात् निर्ऋतिका अर्थ-अवनति, कुमार्ग, अपकर्ष, अयोग्य रीति, असन्मार्ग, तेढीचाल, घातपातकी रीति, अपवित्रता यह होता है। निर्ऋतिके साथ जानेवाला निःसंदेह अधोगतिको चले जाता है। इसलिये इस तेढमार्गके भ्रमजालसे बचनेकी सूचना उक्त मंत्रमें दी है। हरएक मनुष्य, जो उन्नति चाहता है, सावधान

रहता हुआ अपने आपको इस अधोगतिके मार्गसे बचावे । निर्ऋतिके जाल प्रारंभमें बडे सुंदर दिखाई देते हैं । परंतु जो उनमें एकबार फंसता है, उनको उठना बडा मुष्किल प्रतीत होता है । सब प्रकारके दुर्व्यसन, भ्रम, आलस्य, छल कपट आदि सबही इस निर्ऋतिके जालके रूप हैं । जो लोक इस जालमें फंसते हैं उनको उठना मुष्कील हो जाता है । इसलिये उन्नति चाहनेवाले सज्जनोंको उचित है कि, वे इस बुरे रास्तेसे अपने आपको बचावें । योग साधन करनेवालोंको यह उपदेश अमूल्य है। योगके यम नियम इसी उपदेशके अनुसार बने हैं । अपने विषयमें किस प्रकारकी भावना करनी चाहिए इसका उपदेश निम्न मंत्रमें किया है--

मैं विजयी हूँ ।

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो अंतरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ॥ अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥

अ. ५।९।७

सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अंतरिक्षस्थ तत्त्व मेरा आत्मा है, पृथिवी मेरा स्थूल शरीर है। इस प्रकारका मैं अपराजित हूं । मैं अपने आपको द्यु और पृथिवी लोक के अंतर्गत जो कुछ है उस सबके संरक्षण के लिये अर्पण करता हूं । ”

आत्मशक्तिका विकास करनेके लिये समष्टिकी भलाईके लिये अपने आपको समर्पित करना चाहिए । और अपने आंतरिक शक्तियोंके साथ बाह्य देवताओंका संबंध देखना चाहिए । इतनाही नहीं प्रत्युत बाह्य देवताओंके अंश अपने शरीरमें रहे हैं, और बाह्य देवताओंके सूक्ष्म अंशोंका बना हुआ मैं एक छोटासा पुतला हूं, ऐसी भावना धारण करके अपने आपको देवताओंका अंशरूप, तथा अपने शरीरको देवताओंका संघ अथवा मंदिर समझना चाहिए । योग साधनमें यही भावना मुख्य है। अपने आपको निकृष्ट और हीन दीन समझना नहीं चाहिए, परंतु (अहं अस्तृतः अस्मि I am invincible) मैं पराजित हूं, मैं शक्तिशाली हूं, इस प्रकारकी भावना धारण करना चाहिए। देखिए वेदका कैसा उपदेश है, और साधारण लोक क्या समझ रहे हैं । जैसे जिसके विचार होंगे वैसीही उसकी अवस्था बनेगी । इसलिये अपने विषयमें कदापि तुच्छ बुद्धि धारण करना उचित नहीं है । प्राणायाम करनेवाले सज्जनको तो अत्यंत आवश्यक है कि अपने शरीरको देवताओंका मंदिर, ऋषियोंका आश्रम समझे और अपने आपको उसका अधिष्ठाता तथा परमात्माका सहचारी समझे । अपनी भावना जैसी दृढ होगी

वैसाही अनुभव आ सकता है। वेदमें—

पंचमुखी महादेव।

प्राणापानौ व्यानोदानौ॥ अ. ११।८।२६

प्राण, अपान, व्यान,उदान आदि नाम आगये हैं। उपप्राणोंके नाम वेदमें दिखाई नहीं दिये। किसी अन्य रूपसे होंगे तो पता नहीं। यदि किसी विद्वानको इस विषयमें ज्ञान हो तो उसको प्रकाशित करना चाहिए। पंच प्राणही पंचमुखी रुद्र है, रुद्रके जितने नाम हैं वे सब प्राणवाचकही हैं। महादेव, शंभु आदि सब रुद्रके नाम प्राणवाचक हैं। महादेवके पांच मुख जो पुराणोंमें हैं उनका इस प्रकार मूल विचार है। महादेव मृत्युंजय कैसा है, इसका यहां निर्णय होता है। शतपथमें एकादश रुद्रोंका वर्णन है।

कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः॥ शत०ब्रा० १४।५

"कौनसे रुद्र हैं? पुरुषमें दश प्राण हैं और ग्यारहवां आत्मा है। ये ग्यारह रुद्र हैं।" अर्थात् प्राणही रुद्र है, और इसलिये भव, शर्व, पशुपति आदि देवताके सब सूक्त अपने अनेक अर्थोंमें प्राणवाचक एक अर्थ भी व्यक्त करते हैं। पशुपति शब्द प्राणवाचक माननेपर पशु शब्दका अर्थ इंद्रिय ऐसाही होगा। इंद्रियोंका घोडे, गौवें, पशु आदि अनेक प्रकारसे वर्णन कियाही है। इस रीतिसे वेदमें अनेक स्थानमें प्राणकी उपासना दिखाई देगी। आशा है कि पाठक इस प्रकार वेदका विचार करेंगे। इस लेखमें रुद्रवाचक सब सूक्तोंका प्राणवाचक भाव बतानेके लिये स्थान नहीं है, इसलिये इस स्थानपर केवल दिग्दर्शनही किया है। अग्नि शब्दभी विशेष प्रसंगमें प्राणवाचक है। पंचप्राण, पंच अग्नि, प्राणाग्निहोत्र आदि शब्दोंद्वारा प्राणकी अग्निरूपता सिद्ध है। इस भावको देखनेसे पता लगता है कि, अग्निदेवताके मंत्रोंमें भी प्राणका वर्णन गौण वृत्तिसे है, मध्यस्थानीय देवताओंमें वायु और इंद्र ये दो देवताएं प्रमुख हैं। वायु देवताकी प्राणरूपता सुप्रसिद्धही है। स्थान सान्निध्यसे इंद्रमें भी प्राणरूपत्व आसकता है। इस दृष्टिसे इंद्र देवताके मन्त्रोंसे भी वेदमें प्राणका वर्णन मिल सकता है। इस प्रकार अनेक देवताओं द्वारा वेदमें प्राणशक्तिका वर्णन है। किसी स्थानपर व्यष्टि दृष्टिसे है और किसी स्थानपर समष्टि दृष्टिसे है। यह सब प्राणका वर्णन एकत्र करनेसे ग्रंथविस्तार बहुत हो सकता है, इसलिये यहां केवल उतनाही लेख लिखा जाता है कि जिन मंत्रोंमें स्पष्ट रूपसे प्राणका वर्णन आगया है। अब

प्राणकी सत्ता कितनी व्यापक है उसका वर्णन निम्न मंत्रोंमें देखिये—

प्राणका मीठा चाबुक।

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः॥ यत एति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ ३॥ मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः॥ हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान्गर्भश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥ अ. ९।१

" (अस्याः) इस पृथिवीकी और समुद्रकी बडी (रेतः) शक्ति तू है ऐसा सब कहते हैं। जहांसे चमकता हुआ मीठा-चाबुक चलता है वह ही प्राण और वह ही अमृत है॥ आदित्योंकी माता वसुओंकी दुहिता, प्रजाओंका प्राण और अमृतकी नाभि यह मीठा-चाबुक है। यह तेजस्वी,तेज उत्पन्न करनेवाली और (मर्त्येषु गर्भः) मर्त्योंके अंदर संचार करनेवाली है॥

इस मंत्रमें " मधु-कशा " शब्द है। " मधु " का अर्थ मीठा स्वादु है। और " कशा " का अर्थ चाबुक है। चाबूक घोडा गाडी चलानेवालेके पास होता है। चाबुक मारनेसे गाडीके घोडे चलते हैं। उक्त मंत्रोंमें " मधु-कशा " अर्थात् मीठा-चाबूकका वर्णन है। यह मीठा-चाबूक अश्विनी देवोंका है। अश्विनी देव प्राणरूपसे नासिका स्थानमें रहते हैं, प्राण अपान, श्वास उच्छ्वास, दांये और बांये नाकका श्वास यह अश्विनीदेवोंका प्राणमयरूप शरीरमें है। इस शरीरमें अश्विनीरूप प्राणोंका ' मीठा-चाबूक ' कार्य कर रहा है और शरीर रूपी रथके इंद्रियरूप घोडोंको चला रहा है। इस चाबूकका यह स्वरूप देखनेसे वेदके इस अद्वितीय और विलक्षण अलंकारकी कल्पना पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकती है। यह प्राणोंका मीठा चाबूक हम सबको प्रेरणा कर रहा है,इसकी प्रेरणाके विना इस शरीरमें कोई कार्य होता नहीं है। इतनाही नहीं परंतु सब जगत्में यह ' मीठा--चाबूक ' ही सबको गति दे रहा है। सब जगत्में यह प्राणका कार्य देखने योग्य है। मंत्र कहता है कि " इस मीठे चाबूकमें पृथ्वी और जलकी सब शक्ति रहती है, जहांसे यह मीठा चाबुक चलाया जाता है वहां ही प्राण और अमृत रहता है।" प्राण और अमृत एकत्र ही रहता हैं क्यों कि जब तक शरीरमें प्राण रहता है तब तक मरणकी भीति नहीं होती। और सब ही जानते हैं कि प्राणियोंके शरीरोंमें प्राणही सबका प्रेरक है, इसलिये उसके चाबूककी कल्पना उक्त मंत्रमें कही है क्योंकि शरीररूपी रथके घोडे चलानेका कार्य यह ही

चाबूक कर रहा है। दूसरे मंत्रमें कहा है कि "यह चाबूक शरीरस्थ वसु आदि देवताओं का सहायक है, यह प्रजाओंका प्राण ही है, अमृतका मध्य यह ही है। यह प्राण मर्त्योंमें तेज और चेतना उत्पन्न करता है, और सब प्राणियोंके बीचमें यह चलता है।" यह वर्णन उत्तम अलंकारसे युक्त है, परंतु स्पष्ट होनेके कारण हरएक इसका उपदेश जान सकता है। तथा—

अपनी स्वतंत्रता और पूर्णता।

नसोः प्राणः ॥ अ. १९।६०

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥ ५ ॥
अ० १९।५८

अयुतोऽहमयुतो म आत्माऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥ अ० १९।५१

"मेरे नाकमें प्राण स्थिरतासे रहे॥ मेरा कान, नेत्र और प्राण छिन्नभिन्न न होता हुआ मेरे शरीरमें कार्य करे। मेरी आयु और तेज अविच्छिन्न अर्थात् दीर्घ होवे॥ मैं, अपना आत्मा, चक्षु, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान आदि सब मेरी शक्तियां पूर्ण स्वतंत्र और उन्नत होकर मेरे शरीरमें रहें॥"

आयु और प्राण अविच्छिन्न रूपसे अपने शरीरमें रहनेकी प्रबल इच्छा उक्त मंत्रमें है। सब इंद्रियां तथा सब अन्य शक्तियां अविच्छिन्न तथा पूर्ण उन्नत रूपसे अपने शरीरमें प्रकट होनेकी व्यवस्था हरएकको करनी चाहिये। उक्त मंत्रमें कई शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं—

अहं अयुतः
अहं सर्वः अयुतः

"मैं संपूर्ण रूपसे स्वतंत्र, दूसरे किसीकी सहायताकी अपेक्षा न करने योग्य समर्थ, किसी कष्टसे खिलबिली न मचने योग्य दृढ हूं।" यह भावना यदि मनमें आस्थिर हो जायगी तो मनुष्यकी शक्ति कितनी बढ सकती है इसका विचार पाठक भी कर सकते हैं। मेरी इंद्रियां, मेरे प्राण तथा मेरे अन्य अवयव ऐसे दृढ और बलवान होने चाहिए कि मुझे उनके कारण कभी क्लेश न हो सके, तथा किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा न करता हुआ, मैं पूर्ण स्वतंत्रता के साथ आनंदसे अपने महान महान पुरुषार्थ कर सकूं। कोई यह न समझे कि यह केवल ख्यालही है, परंतु मैं यहां कह

सकता हूं कि यदि मनुष्य निश्चय करेंगे तो निःसंदेह वे अपने आपको इस प्रकार पूर्ण स्वतंत्र बना सकते हैं और उक्त शक्तियोंका पूर्ण विकास वे अपने अंदर कर सकते हैं, तथा—

प्राणकी मित्रता।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ अ० १३।१।१७

" यहां ही प्राण हमारा मित्र बने ! हे परमेष्ठिन् ! अपने आयुष्य और तेजके साथ आपकी ही मैं धारणा करता हूं। " प्राणके साथ मित्रता का तात्पर्य इतनाही है कि अपने शरीरमें प्राण बलिष्ठ होकर रहे। कभी अल्प आयुमें प्राण दूर न हो। अपने आयुष्यमें परमेष्ठी परमात्माकी ही सेवा और उपासना करना चाहिए। परमात्मा सर्व श्रेष्ठ गुणोंका केंद्र होनेसे परमात्मचिंतन द्वारा सब ही श्रेष्ठ सद्गुणोंका ध्यान होता है और मनुष्य जिसका सदा ध्यान करता है उसके समान बन जाता है, इस नियमके अनुसार परमेश्वरके गुणोंके चिंतनसे मनुष्य भी श्रेष्ठ बनता है। यह उपासनाका और मानवी उन्नतीका संबंध है। इस प्रकार जो सत्पुरुष अपनी प्राणशक्तिको बढाता है उसकी प्राणशक्ति कितनी विस्तृत होती है इसकी कल्पना निम्न मंत्रोंसे हो सकती है। देखिए—

तस्य व्रात्यस्य ॥ सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥ योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥ योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढोः नामासौ स चंद्रमाः ॥ योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥ योऽस्य पंचमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥ योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥ योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥ अ. १५।१५।१-९

" उस (व्रात्यस्य) संन्यासी सत्पुरुषके सात प्राण, सात अपान, सात व्यान हैं। उसके सातों प्राणोंके क्रमशः नाम ऊर्ध्व, प्रौढ, अभ्यूढ, विभू, योनि, प्रिय, और अपरिमित हैं। और उनके सात स्वरूप क्रमशः अग्नि, आदित्य, चंद्रमा, पवमान, आपः, पशु और प्रजा हैं। " इसीप्रकार इसके अपान और व्यानका वर्णन उक्त स्थानमें ही वेदने किया है। वहांही उसको पाठक देखें। विस्तार होनेके भयसे उस सबको यहां

नहीं लिया है। मनुष्य अपनी शक्तिको इस प्रकार बढा सकता है। मनुष्य अपने सातों प्राणोंको अपरिमित रूपमें बढा सकता है, वह ही अपने आपको सब प्रजाजनों-के हितके कार्यमें अर्पण करता है, जो अपने प्राणको ऊर्ध्व अर्थात् उच्च करता है वह अग्निके समान तेजस्वी होता है। इत्यादि प्रकार उक्त कथनका भाव समझना चाहिए। तथा—

समयकी अनुकूलता।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ॥
कालेन सर्वा नंदन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥ अ० १९।५३

"कालकी अनुकूलतासे मन, प्राण और नाम रहता है। कालकी अनुकूलतासे सब प्रजाओंका आनंद होता है।"

कालका नियम पालन करना चाहिए। पुरुषार्थके साथ कालकी अनुकूलता होनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है। कालका धिक्कार नहीं करना चाहिए। जो अनुकूलता प्राप्त होती है उसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। प्राणायामादि साधन करनेवाले-को उचित है कि वह योग्य कालमें नियमपूर्वक अपना अभ्यास किया करें, तथा जिस समय जो करना योग्य है उसको अवश्य ही उस समय करना चाहिए। अब प्राणके संरक्षक ऋषियोंका वर्णन निम्न लिखित मंत्रमें देखिये—

प्राणरक्षक ऋषी।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ॥
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥ अ० ५।३०।१०

"बोध और प्रतिबोध अर्थात् स्फूर्ति और जागृति ये दो ऋषी हैं। ये दोनों तेरे प्राणकी रक्षा करते हुए दिनरात जागते रहें।"

प्रत्येक मनुष्यमें ये दो ऋषी हैं। "स्फूर्ति और जागृति" ये दो ऋषी हैं। एक उत्साहकी प्रेरणा करता है और दूसरा सावधान रहनेकी चेतना देता है। उत्साह और सावधानता ये दो सद्गुण जिस मनुष्यमें जितने होंगे, उतनी योग्यता उस मनुष्यकी हो सकती है। ये दो ऋषी प्राणके संरक्षणका कार्य करते हैं, और यदि ये दिन रात जागते रहेंगे तो मनुष्यको मृत्युकी बाधा नहीं हो सकती। जबतक मनुष्य-का मन उत्साहसे परिपूर्ण रहेगा और जबतक सावधानताके साथ वह अपना व्यवहार करेगा, तबतक उसको मरणकी भीति नहीं होगी, यह साधारण नियम समझिये।

जो लोग असावधानताके साथ अपना दैनिक व्यवहार करते हैं,तथा जो सदा हीन दीन और दुर्बलताके ही विचार मनमें धारण करते हैं; उनको इस मंत्रका भाव ध्यानमें धरना उचित है। वेद कहता है कि मनमें उत्साहके विचार धारण करो और प्रतिक्षण सावधान रहो। जो मनुष्य अपने आपको वैदिक धर्मी समझता है उसको उचित है कि वह अपने मनमें वेदके ही अनुकूल भाव धारण करे। वैदिक धर्मी मनुष्यको उचित नहीं कि वह वेदके विरुद्ध हीन और दीनताके विचार अपने मनमें धारण करके मृत्युके वशमें होवे। वैदिक धर्मका विशेष उद्देश सर्व साधारण जनताकी आयुष्यवृद्धि और आरोग्यवृद्धि करना है। इसीलिये स्थान स्थानके वैदिक सूक्तोंमें दीर्घायुत्वके अनेक उपदेश आते हैं। पाठक इन बातोंको ठीक प्रकार अपने मनमें धारण करें।

वृद्धताका धन।

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ॥ अयं जरिम्णः शेवधि-रिष्ट इह वर्धताम् ॥ ५ ॥ आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥ ६ ॥ अ० ७।५३

" जिस प्रकार बैल अपने स्थानपर वापस आते हैं, उसप्रकार प्राण और अपान अपने स्थानपर आ जावें। वृद्धावस्थाका जो खजाना है वह यहां कम न होता हुआ बढता रहे ॥ तेरे अंदर प्राणको प्रेरित करता हूं और बीमारीको दूर फेंकता हूं। यह श्रेष्ठ अग्नि हम सबको सब प्रकारसे दीर्घ आयु देवे। "

बैल शामके समय वेगसे अपने स्थानपर आजाते हैं। उस प्रकारके बलयुक्त वेगसे प्राण और अपान अपने अपने स्थानमें रहें। जब प्राण और अपान बलवान बनकर अपना अपना कार्य करेंगे तब मृत्युका भय नहीं हो सकता और मनुष्य दीर्घ आयुष्य-रूपी धन प्राप्त कर सकता है। सब धनोंमें आयुष्यरूपी धन ही सबसे श्रेष्ठ है,क्योंकि सब अन्य धनोंका उपयोग इसके होनेपर ही हो सकता है। उक्त मंत्रमें—

जरिम्णः शेवधिः इह वर्धतां ॥ अ० ७।५३।५

ये शब्द मनन करने योग्य हैं। "वृद्ध आयुका खजाना यहां बढता रहे।" अर्थात् इस लोकमें आयु बढती रहे, ये शब्द स्पष्टतासे बता रहे हैं कि आयु निश्चित नहीं, प्रत्युत बढनेवाली है। जो मनुष्य अपनी आयु बढाना चाहेगा वह उस प्रकारके आयुष्यवर्धक सुनियमोंका पालन करके आयु बढा सकता है। इस प्रकार वेदका उपदेश अत्यंत स्पष्ट है। परंतु कई वैदिक धर्मी समझते ही हैं कि आयु निश्चित है

और घट बढ नहीं सकती । जिन बातोंमें वेदका कथन स्पष्ट है, उन बातोंमें कमसे कम भिन्न विचार वैदिक धर्मियोंको धारण करना उचित नहीं है ।

बोध और प्रतिबोध ।

पूर्व स्थानमें बोध और प्रतिबोध ये दो ऋषि हैं, ऐसा कहा ही है । वही भाव थोडेसे फरकसे निम्न लिखित मंत्रमें आया है, देखिये—

बोधश्च त्वा प्रतिबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वाऽनवद्राणश्च रक्षताम् ॥
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥ अ० ८।१।१३

"उत्साह और सावधानता तेरा रक्षण करें । स्फूर्ति और जागृति तेरा संरक्षण करें। रक्षक और जागृत तेरा पालन करें ।"

इस मंत्रमें संरक्षक गुणोंका वर्णन है । उत्साह, सावधानता, स्फूर्ति, जागृति, रक्षण और खबरदारी ये गुण संरक्षण करनेवाले हैं । इनके विरुद्ध गुण घातक हैं । इसलिये अपनी अभिवृद्धिकी इच्छा करनेवालेको उचित है कि वह उक्त गुणोंकी वृद्धि अपनेमें करे । इस मंत्रके साथ पूर्व मंत्र, जिसमें दो ऋषियोंका वर्णन है तुलना करके देखें । अब निम्न लिखित मंत्र देखिये—

उन्नति ही तेरा मार्ग है ।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ अ० ८।१।६

"हे मनुष्य ! तेरी गति (उत् यानं) उन्नतिकी ओर ही होनी चाहिये । कभी भी (अव यानं न) अवनतिकी ओर होनी नहीं चाहिये । तेरे दीर्घ आयुष्यके लिये मैं बलका विस्तार करता हूं । इस सुखमय शरीररूपी अमृतमय रथपर (आरोह) चढो। और जब तुम दीर्घ आयुसे युक्त हो जाओगे तब (विदथं) सभाओंमें (आवदासि) संभाषण करोगे ।"

अपना अभ्युदय करनेका यत्न करना चाहिए, कभी ऐसा कर्म करना नहीं चाहिए कि जिससे अवनति होनेकी संभावना हो सके । जीवनके लिये प्राणका बल फैलाना चाहिए । प्राणका बल बढानेसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो सकता है । यह शरीररूपी उत्तम रथ है, जिसको इंद्रियरूपी घोडे जोते हैं । इस रथमें प्राणरूपी अमृत है, इस लिये इसको सुखमय रथ कहा जाता है । इस सर्वोत्तम रथपर आरूढ हो जाओ और अपनी उन्नतिके मार्गमें आगे बढो । जब तुम बल और दीर्घ आयु प्राप्त करोगे

तब तुमको बडी बडी सभाओंमें अवश्य ही संभाषण करना होगा, क्यों कि दूसरोंका सुधार करनेके लिये तुमको प्रयत्न करना चाहिए। जीवनार्थ युद्धमें सब जनताको उत्तम मार्ग बतानेका कार्य तुम्हारा ही है। तुमको स्वार्थी बनना नहीं चाहिए। प्रत्युत जनताकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिए। इस मंत्रसे पता लगता है कि प्राणायामादि साधनों द्वारा दीर्घ आयु, उत्तम आरोग्य, अद्वितीय बल, सूक्ष्म बुद्धि और विशाल मन प्राप्त करनेके पश्चात् मनुष्यको अपना जीवन सार्वजनिक हित-साधन करनेमें लगाना चाहिए। समाजसे अलग होकर अपनी ही शांति प्राप्त करने-मात्रसे मनुष्य कृतकार्य नहीं हो सकता, परंतु जब एक " नर " अपने आपको उन्नत करनेके पश्चात् " वैश्वा--नर " के लिये आत्मसमर्पण करता है, तब ही वह उच्चतम अवस्थाको प्राप्त कर सकता है। यही सर्व–मेध–यज्ञ है। अस्तु। इस प्रकार उक्त मंत्रने योगी मनुष्यके सम्मुख अंतिम उच्च आदर्श रख दिया है। आशा है कि, सब श्रेष्ठ मनुष्य इस वैदिक आदर्शको अपने सम्मुख रखकर अपना जीवन इसके अनुसार ढालनेका यत्न करेंगे। अब अन्य बातोंका विचार यहां करना है। योगी जनोंका अधिकार कहांतक पहुंचता है, इसका पता निम्न मंत्रोंसे लग सकता है—

यमके दूत।

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति॥ वैवस्वतेन प्रहि-तान् यमदूतांश्चरतोप सेधामि सर्वान्॥ ११॥ आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्॥ रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि॥१२॥ अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः॥ तथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्॥ १३॥

अ. ८।२

" मैं तेरे अंदर प्राण और अपानका बल, दीर्घ आयु, (स्वस्ति) स्वास्थ्य आदि सब अच्छे भाव, वृद्धावस्थाके पश्चात् योग्य समयमें मृत्यु आदि स्थापन करता हूं। वैवस्वत यमके द्वारा भेजे हुए यमदूतोंको मैं ढूँढ ढूँढ कर दूर करता हूँ॥ (अरातिं) अदावत, (निर्ऋतिं) नियमविरुद्ध व्यवहार, (ग्राहिं) देरसे चलनेवाले रोग, (क्रव्यादः) मांसको क्षीण करनेवाली बीमारी, (पिशाचान्) रक्तको निर्बल करनेवाले रक्तके कृमि, (रक्षः=क्षरः) सब क्षयके कारण, (सर्वं दुर्भूतं) सब बुरा व्यवहार आदि जो कुछ विनाशक है, उस सबको अंधकारके समान मैं दूर करता हूं॥ तेरे लिये मैं तेजस्वी, अमर और आयुष्मान् जातवेदसे प्राण प्राप्त करता हूं। जिस

प्रकार तेरा अकालमृत्यु न होगा, तू अमर अर्थात् दीर्घजीवी बनोगे, (सजूः) मित्रभावसे संतुष्ट रहोगे और तुम्हें कष्ट न होगा उस प्रकारकी समृद्धि तेरे लिये मैं अर्पण करता हूं ॥ ”

इन मंत्रोंमें प्राण साधन करके जो विलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है उसका उत्तम वर्णन है। प्राणका बल प्राप्त करनेसे सब प्रकारका स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, बल, तथा योग्य कालमें मृत्यु हो सकता है। परंतु प्राणका बल न होनेकी अवस्थामें नाना प्रकार-के रोग, अल्प आयु, अशक्तता और अकाल मृत्यु होते हैं। इससे प्राणायामादि द्वारा प्राणकी शक्ति बढानेकी आवश्यकता स्पष्ट सिद्ध होती है। जो विद्वान् आयुको परिमित और निश्चित मानते हैं वे कहते हैं, कि यमके दूत सब जगतमें संचार करते हैं, वे आयुकी समाप्तिके समय मनुष्यके प्राणोंका हरण करते हैं। इसलिये आयु बढ नहीं सकती। इस अवैदिक मतका खंडन करते हुए वेद कहता है कि जो यमदूत इस जगतमें संचार करते होंगे, उनको भी प्राणके अनुष्ठानसे दूर किया जा सकता है। इसमें मनुष्य पराधीन नहीं है। अनुष्ठानकी रीतिसे प्राणका बल बढावेंगे, तो उसी क्षण यमदूत आपसे दूर हो सकते हैं। प्राणोपासना करनेवालोंके ऊपर यमदूत अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। इस प्रकारका अभयदान वेद दे रहा है, इसकी ओर हरएक वैदिक धर्मीका ध्यान अवश्य जाना चाहिए। इस विचार को धारण करके निर्भय बनकर प्राणायामद्वारा अपनी आयु हरएकको दीर्घ बनानी चाहिए तथा अन्य प्रकारका स्वास्थ्य भी प्राप्त करना चाहिए। प्राणायामके अनुष्ठानसे मनुष्य इतना बल प्राप्त कर सकता है कि जिससे वह यमदूतोंको भी दूर भगा सकता है। इतना सामर्थ्य प्राप्त होता है इसलिये ही सब श्रेष्ठ पुरुष प्राणायामका महत्त्व वर्णन करते हैं।

प्राणायामसे सब ही प्रकारके व्याधी, दोष और रोगोंके मूल कारण दूर हो सकते हैं। दुष्टभाव, बुरा आचार, विधिनियमोंके विरुद्ध व्यवहार आदि सब दोष इस अभ्याससे दूर होते हैं। सब प्रकारके रोगोंके बीज शरीरसे हट जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों द्वारा अंधकारका निर्मूलन करता है, उस प्रकार योगी अपनी प्राण-शक्तिके प्रभावसे सब रोगबीजोंको दूर कर सकता है।

जो सब बने हुए पदर्थोंको यथावत् जानता है वह आत्मा “ जात-वेद अग्नि ” है। वह आत्मा अमृत रूप तथा आयुष्मान है। इसलिये वह ही सबको अमर और आयुष्मान कर सकता है। जो उसके साथ अपने आत्माको योगसाधनद्वारा संयुक्त कर सकते हैं वे अपने आपको दीर्घ आयुसे युक्त और अमरत्वसे पूर्ण बना सकते हैं।

इसप्रकारके साधन संपन्न योगी अकाल मृत्युसे मरते नहीं, अमर बनते हैं, सदा संतुष्ट और प्रेमपूर्ण बनते हैं, इसलिये सब प्रकारकी समृद्धिसे युक्त होते हैं। यह ही सच्ची समृद्धि है। मनुष्यका अधिकार है कि वह इस समृद्धिको प्राप्त करे।

अथर्वाका सिर।

चित्तवृत्तियोंका निरोध करना और मनकी सब वृत्तियोंको स्वाधीन रखकर उनको अच्छे ही कर्ममें लगाना योग कहलाता है। इस प्रकारका पुरुषार्थ जो करता है उसको योगी कहते हैं। योगीके अंदर चंचलता नहीं रहती और दृढ स्थिरता मनोवृत्तियोंमें शोभा बढाने लगती है। इस प्रकारके योगीका नाम " अ-थर्वा " होता है। ' अ-चंचल ' यह अथर्वा शब्दका भाव है। एकाग्रताकी सिद्धि उसको प्राप्त होती है। इस अथर्वाका जो वेद है वह अथर्ववेद है। अथर्ववेद सर्वसामान्य मनुष्योंके लिये नहीं है। योगसाधनका इसमें मुख्य भाग होनेसे तथा सिद्ध अवस्थाकी बातें इसमें होनेसे यह अथर्ववेद योगियोंका वेद है। इसमें इसी कारण प्राणायाम विषयक उपदेश सब अन्य वेदोंकी अपेक्षा अधिक है। इस वेदमें अथर्वाके सिरका वर्णन निम्न प्रकार किया है-

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥ तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७॥ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा॥ पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥ अष्टचका नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥ तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सं परिवृताम्॥ पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा प्रविवेशापराजिताम् ॥३३॥ अ० १०।२

" (अ-थर्वा) स्थिरचित्त योगी अपने (मूर्धानं) मस्तिष्कके साथ हृदयको सीता है, और सिरके मस्तिष्कके ऊपर अपने (पवमानः) प्राणको भेज देता है॥ वह ही अथर्वाका सिर है कि जिसको देवोंका कोश कहा जाता है। उसका रक्षण प्राण, अन्न और मन करता है॥ अमृतसे परिपूर्ण इस ब्रह्मकी नगरीको जो जानता है उसको ब्रह्म और इतर देव चक्षु प्राण और प्रजा देते हैं॥ वृद्धावस्थाके पूर्व चक्षु और प्राण

उसको छोडते नहीं, जो इस ब्रह्मपुरीको जानता है, और जिसमें रहनेके कारण आत्माको पुरुष कहते हैं ॥ आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, इसमें तेजस्वी कोश है वह ही दैदीप्यमान स्वर्ग है। तीन आरोंसे युक्त और तीन स्थानोंपर रहे हुए उस तेजस्वी कोशमें जो पूज्य आत्मा है उसको ब्रह्मज्ञानी लोक जानते हैं। इस दैदीप्यमान, मनोहर, यशस्वी और अपराजित नगरीमें ब्रह्मा प्रवेश करता है।"

योग साधन करनेवालोंके लिये यह उपदेश अमूल्य है। इसमें सबसे पहिली बात यह कही है कि हृदय और मस्तिष्कको एक रूप बनाना। हृदयका धर्म भक्ति है और मस्तिष्कका धर्म विचार है। भक्ति और विचारका विरोध नहीं होना चाहिये। दोनों एक ही कार्यमें सम अधिकारसे प्रवृत्त होने चाहिये। जहां ये दोनों केंद्र विभक्त होते हैं उसमें दोष उत्पन्न होते हैं। धर्ममें विशेषतः मस्तिष्ककी तर्कना और हृदयकी भक्तिको समान स्थान मिलना चाहिए। जिस धर्ममें इनको समान स्थान नहीं होता, उस धर्ममें बडे दोष होते हैं। शिक्षाविभागमें भी मस्तिष्क और हृदयका सम विकास होने योग्य शिक्षा होनी चाहिए। जिस शिक्षामें केवल मस्तिष्ककी तर्कशक्ति बढती है उस शिक्षा प्रणालीसे नास्तिकता उत्पन्न होती है और जिससे केवल भक्ति बढती है उस प्रणालीसे अंधविश्वास बढता है। इसलिये तर्क और भक्तिका समविकास होनेसे दोनों दोष दूर होते हैं और सब प्रकारकी उन्नति होती है। योगसाधन करनेवालेको उचित है कि वह अपनेमें मस्तक की तर्कशक्ति और हृदयकी भक्ति समप्रमाणमें विकसित करे। यही भाव "मूर्धा और हृदयको सीने" के उपदेशमें है। दोनोंको सीकर एक करना चाहिए और दोनोंको मिलाकर आत्मोन्नतिके कार्यमें समर्पित करना चाहिए।

ब्रह्मलोककी प्राप्ति।

"मस्तिष्क के ऊपर के स्थानमें प्राणको प्रेरित करना" यह दूसरा उपदेश उक्त मंत्रोंमें है। मस्तिष्कमें सहस्रार चक्र है और इसके नीचे पृष्ठवंशके साथ कई चक्र हैं। प्राणायाम द्वारा नीचेसे एक एक चक्रमें प्राण भरनेकी क्रिया साध्य होती है। और सबसे अंतमें इस मस्तिष्कके सहस्रार चक्रमें प्राण भेजा जाता है, इस अवस्थासे पूर्व पृष्ठवंशकी नाडियोंमें प्राणका उत्तम संचार होता है। तत्पश्चात् मस्तिष्कके सहस्रार चक्रमें प्राण पहुंचता है और ब्रह्मरंध्रतक प्राणकी गति होती है। यह प्राणकी सर्वोत्तम

गति है। यही ब्रह्मलोक होनेसे तथा इस स्थानमें प्राणके साथ आत्माकी गति होनेसे, इस अवस्थामें मुमुक्षुको ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। इसलिए इस अवस्थाको सबसे श्रेष्ठ अवस्था कहते हैं। यह सबसे श्रेष्ठ अवस्था प्राणायामके नियमपूर्वक अभ्याससे प्राप्त होती है, इस कारण यह योगियोंको प्राप्त होनेवाली अवस्था है।

देवोंका कोश।

अ-थर्वा अर्थात् योगीका उक्त प्रकारका सिर सचमुच देवोंका खजाना है। इस प्रकारके अथर्वाके सिरमें सब दिव्य भावनाएं रहती हैं। सब दिव्य श्रेष्ठ दैवी शक्तियोंका निवास उसके शरीरमें होता है इसलिये उसका देह देवताओंका सच्चा मंदिर है। इस देवोंके मंदिरकी रक्षा करनेवाले जो वीर हैं उनके नाम प्राण, मन और अन्न हैं। बलवान प्राण सब रोगबीजों और शारीरिक दोषोंको हटाता है, श्रेष्ठ सद्गुणी और सत्यनिष्ठ मन अपने सुविचारों द्वारा इसको सुरक्षित रखता है। मनकी प्रबल इच्छा शक्तिद्वारा सब ही दोष दूर हो सकते हैं और आदर्श अवस्था प्राप्त हो सकती है। सात्त्विक अन्नके सेवन करनेसे शरीर निर्दोष बनता है, मन भी सात्त्विक बनता है और प्राणका बलभी बढता है। इसप्रकार ये तीन वीर— "प्राण, मन और अन्न"— परस्परोंका संवर्धन करते हुए, सब मिलकर योगीकी सहायता करते हैं। यह ही प्राणायामका यश है।

ब्रह्मकी नगरी।

ब्रह्मकी नगरी हृदयमें है और उसमें अमृत है। यह अमृत देव प्राशन करते हैं और पुष्ट होते हैं। अर्थात् हृदय स्थानीय रुधिरही सब इंद्रियोंमें जाकर वहांका आरोग्य स्थिर रहता है। इस अमृतपूर्ण ब्रह्मकी नगरीको जो ठीक प्रकार जानता है, इस पुरीके सब गुणधर्मोंसे जो परिचित होता है, अपने इस हृदयकी शक्तियोंको जो जानता है उसको ब्रह्म और ब्रह्मकी शक्तियां चक्षु प्राण और प्रजा देती हैं। चक्षु शब्दसे सब इंद्रिय और अवयवोंकी सूचना होती है, प्रजा शब्द सुप्रजाका बोध करता है और प्राणशब्दसे सामर्थ्ययुक्त जीवनका ज्ञान होता है। तात्पर्य इस अपने हृदयकी शक्तियोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेसे उक्त प्रकारके लाभ हो सकते हैं। हृदयको तथा अपने आंतरिक इंद्रियों और अवयवोंको जानना, प्राणायामसे जो चित्तकी एकाग्रता होती है तब कई अज्ञात शक्तियोंका विज्ञान होता है, उसी अवस्थामें आंतरिक उपकरणोंका विज्ञान होता है, इसी रीतिसे हृदयादि अंतरंगोंका पूर्ण ज्ञान होनेके पश्चात्

वहां अपने आत्माकी शक्ति कैसा अद्भुत रीतिसे कार्य कर रही है, इसका साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अपने आत्माकी शक्ति विदित होते ही उक्त फल प्राप्त होता है। सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्ति, दीर्घ आयु और बलवान इंद्रिय ये तीन फल अपने हृदयका तथा वहांकी आत्मशक्तिका ज्ञान प्राप्त करनेवालेको होते हैं।

जो पुरुष ब्रह्मज्ञानी बनता है, वह अकाल मृत्युसे नहीं मरता, पूर्ण आयुष्यकी समाप्तिके पश्चात् स्वकीय इच्छासे वह मरता है। आयुष्यकी समाप्तितक उसके संपूर्ण इंद्रिय, अवयव और अंग बलवान् और कार्यक्षेम रहते हैं। यह ब्रह्मज्ञानका फल है। कई यहां शंका करेंगे कि ब्रह्मज्ञानका यह फल कैसा प्राप्त होता है? इस शंकाके उत्तरमें निवेदन है कि ब्रह्मज्ञानसे आत्मिक शांति होती है और उस कारण उसको उक्त फल प्राप्त हो सकते हैं। तथा जो ब्रह्मज्ञानी होता है उसका आचार विचार शक्ति क्षीण करनेवाला न होनेके कारण उसकी शक्ति कभी क्षीण होती ही नहीं, प्रत्युत उसकी शक्ति विकसित होती है। जिसकी शक्तिकी अभिवद्धि होती है, उसको उक्त बातें प्राप्त करनीं शक्य ही है।

अयोध्या नगरी।

आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवताओंकी नगरी है, इसका नाम "अयोध्या" है। जिसमें देवभावना और आसुरीभावनाओंका संग्राम नहीं होता, अर्थात् जहां दैवी वृत्ती ही सदा शांतिके साथ निवास करती है। इसलिये उसका नाम "अ-योध्या नगरी हैं। जब तक यह नगरी देवोंके आधीन होती है तब तक उसमें शांतिका राम-राज्य हो जाता है। इंद्रियोंके नौ द्वार हैं और इसमें पृष्ठवंशमें मूलाधार आदि आठ चक्र हैं। इस नगरीमें हृदयस्थानमें प्रकाशमय स्वर्ग है। वह ही प्राणायामादि साधनोंके द्वारा प्राप्तव्य स्थान हैं। प्राप्तव्यका अर्थ स्वकीय इच्छासे प्राप्तव्य है, अन्यथा वह स्थान सब ही प्राणिमात्रके पास है ही, परंतु बहुत ही थोडे लोग हैं कि जो अपनी इच्छासे उसमें प्रवेश कर सकते हैं। आत्मशक्तिका प्रभाव जानते हुए उस स्थानको जानना और ज्ञानके साथ उसमें निवास करना योगसाधनसे साध्य है।

अयोध्याका राम।

इस नगरीमें जो पूजनीय देव है वह ही आत्माराम है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोक ही जानते हैं। अन्योंको उसका पता नहीं लग सकता।

इस यशस्वी नगरीमें विजयी ब्रह्मा प्रवेश करता है। जीवात्मा जब आसुरी

भावनाओंपर विजय प्राप्त करता है तब वह अपनी राजधानीमें विजयोत्सव करता हुआ प्रवेश करता है। यह राजधानी अयोध्या नगरी यशसे परिपूर्ण है, दुःखोंका हरण करनेवाली है और तेजसे प्रकाशित है। इसका पराजय आसुरी भावनाओंके द्वारा कभी हो ही नहीं सकता। इसलिये इसका नाम ही " अपराजित अयोध्या " है। अपने हृदयकी इस शक्तिको जानना चाहिए। मैं अपराजित हूं। दुष्टभावोंसे मैं कभी पराजित नहीं हो सकता। मैं सदा विजयी ही रहूंगा। मेरा नाम ही " विजय " है। इत्यादि भाव उपासकको अपने अंदर धारण करने चाहिए। 'मैं हीन दीन दुर्बल और अधम हूं' इस प्रकारके भाव कदापि मनमें धारण नहीं करने चाहिए। ये अवैदिक भाव हैं। इस मंत्रमें आत्माका विजयी स्वरूप बताया है, आशा है कि वैदिक धर्मी सज्जन इस भावको धारण करेंगे।

अपने आत्माका ही यह वर्णन है। आत्मा किस प्रकारके भावसे पराजित होता है और किस भावनाके धारण करनेसे विजयी होता है, इसका सूक्ष्म वर्णन इसमें दिया है। आत्मा ही ब्रह्मा है, वह हृदयकमलमें निवास करता है, हंस अर्थात् प्राण उसका वाहन है, आदि वर्णन पूर्व स्थलमें आचुका है। यह ब्रह्माकी नगरी है, यही देवोंकी पुरी अमरावती है, यही सब कुछ है। पाठक प्रयत्न करके अपने अंदर इस शक्तिका अनुभव करें और अपना विजय संपादन करें।

अब चारों वेदोंमेंसे अनेक मंत्रोंद्वारा जो जो उपदेश ऊपर दिया है उसका सारांश नीचे देता हूं, जिसको पढनेसे पूर्वोक्त सब कथनका भाव हृदयमें प्रकाशित हो सकेगा—

(१) आंतरिक प्राणका बाह्य वायुके साथ नित्य संबंध है।

(२) जितना प्राण होता है उतनी ही आयु होती है, इसलिये प्राणशक्तिकी वृद्धि करनेसे आयुष्यकी वृद्धि हो सकती है।

(३) प्राणरक्षणके नियमोंके अनुकूल आचरण करनेसे न केवल प्राणका बल बढता है, प्रत्युत चक्षु आदि सब ही इंद्रियों, अवयवों और अंगोंकी शक्ति बढती है, और उत्तम आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

(४) प्राणायामके साथ मनमें शुभ विचारोंकी धारणा धरनेसे बडा लाभ होता है।

(५) सूर्य प्रकाशका सेवन तथा भोजनमें घीका सेवन करनेसे प्राणायाम शीघ्र सिद्धि होती है।

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें

(१) यजुर्वेद। विनाजिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥)
कागजी जिल्द २) ,,
कापडी जिल्द २॥) ,,

(२) संस्कृतपाठमाला । १ अंकका मू.।≈) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥≈)

३ वै.यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू.१) ।)

(४) अथर्ववेदका सुबोधभाष्य।
१ प्रथम काण्ड सजिल्द २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड ,, २) ॥)
३ तृतीय काण्ड ,, २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड ,, २) ॥)
५ पंचम काण्ड ,, २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड ,, २) ॥)
७ सप्तम काण्ड ,, २) ॥)
८ अष्टम काण्ड ,, २) ॥)
९ नवम काण्ड ,, २) ॥)
१० द्वादश काण्ड ,, २) ॥)
११ त्रयोदश काण्ड ,, १) ।≈)
१२ चतुर्दश कांड ,, १) ।)
१३ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(५) छूत और अछूत।
१-२भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

(६)भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से १० प्रत्येकका मू०॥) डा० व्य०≈)

(७) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) ≈)

(८) वेदका स्वयंशिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(९) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन। (सचित्र) २) ।≡)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
४ सूर्यभेदन-व्यायाम। ” ॥) ॥)
५ योगसाधनकी तैयारी। ।॥) ।)

(१०) यजु.अ.३६ शांतिका उपाय॥=) ।)

(११) शतपथबोधामृत ।) -)

(१२) देवतापरिचय-ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१३) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा।द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक≡) -)

(१४) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ।॥) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र। ।≡) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा। ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) ≡)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) =)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता। ।॥) ≡)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

(१५) उपनिषद्माला।१ ईशोपनिषद्१) ।-)
२ केन उपनिषद्। १।) ।-)

(१६) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) =)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
४ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
5 Sun Adoration १) ।=)

Regd.N.B.1463

गीता।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०
"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) "
दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
" " " " " " वी. पी. से ५॥) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रख गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रेलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे। इसका म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है। आदिपर्व ६॥=) रु; सभापर्व २॥) रु.; वनपर्व ९=)रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५॥=) भीष्मपर्व ४॥=)रु.; द्रोणपर्व ८॥)रु.; कर्णपर्व ३॥ रु.; शल्यपर्व २॥-) रु.; सौप्तिकपर्व ॥) स्त्रीपर्व ।॥-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६॥=) रु.; आश्वमेधिकपर्व २॥-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ॥-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री-स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक—श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध.

भाद्रपद
संवत १९९२
सितंबर
सन १९३५
वर्ष १६
अंक ९
क्रमांक
१८९

संपादक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडळ, औंध, (जि० सातारा)

वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) वी० पी० से ३॥) विदेशके लिये ४)

संस्कृत सीखना चाहते हैं ? तो आप

"संस्कृतपाठमाला"

के २४ भाग मंगवाइये और प्रतिदिन आधा घंटा पढकर एक वर्षमें महाभारत समझनेकी योग्यता प्राप्त कीजिये। २४ भागोंका मूल्य ६॥); १२ भागोंका मूल्य ४); ६ भागोंका मूल्य २); ३ भागोंका मूल्य१) और एक भागका मू० ॥)। वी०पी० द्वारा।) चार आने अधिक मूल्य होगा।

—मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

वैदिक प्राणविद्या
(नया संस्करण)

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार 'मनकी भावना' रखनी चाहिये, उसका वर्णन इसमें है। मूल्य॥) और डा० व्य०=) है।
मंत्री स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

दिवाकर।

आर्यसमाज आगरा का सचित्र साप्ताहिक मुखपत्र।

सम्पादक-विष्णुदत्त कपूर साहित्याचार्य, एम. ए.

दिवाकर-आर्यवैदिक संस्कृतिके पुनरुत्थान के लिये उदित हुआ है।

दिवाकर-इस महान् उद्देश्यकी पूर्तिके लिये धर्म, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, कला-विज्ञान, आदि विविध विषयोंपर उच्च कोटिके लेख प्रकाशित करता है।

दिवाकर-सरस कविता, मनोरंजक कहानियां, विचित्र विश्वघटनायें, आदर्श महापुरुषोंकी जीवनकृतियां, एवं अन्य रोचक तथा शिक्षाप्रद रचनाओंद्वारा पाठकोंके हृदयकमलोंको विकसित करता है॥

दिवाकर-बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी को समान रूपसे जीवन-निर्माण-शक्ति प्रदान करता है।

दिवाकर-विज्ञापनदाताओंके लिये अत्यन्त लाभदायक पत्र है। वार्षिक मूल्य २॥)

मैनेजर, दिवाकर कार्यालय, आगरा

ग णे श

क्यों दिन दिन लोकप्रिय हो रहा है ?
इसलिए कि
वह प्रजातंत्र का परम पक्षपाती है।
सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रांति का कट्टा समर्थक है।
दलितों, पतितों और पीडितों का सच्चा सखा है।
निरंकुश राजाओं और अत्याचारी शासकों से जमकर लोहा लेता है।
तथा महिला संसार, बाल-विनोद, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति, राज्यों की हलचल आदि इसके विशेष स्तंभ हैं।

फिर भी वार्षिक मूल्य ३ रु० है।
मैनेजर 'गणेश' कार्यालय, राजामंडी, आगरा

कुश्ती, लाठी, पटा, बार वगैरह का सचित्र **व्यायाम** व्यायाम मसिक

हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती इन चार भाषाओंमें। प्रत्येक का मूल्य २॥ रखा गया है। उत्तम लेखों और चित्रोंसे पूर्ण होनेसे देखनेलायक है। नमूनेका अंक मुफ्त नहीं भेजा जाता। वी. पी. खर्च अलग लिया जाता है। जादह हकीकत के लिये लिखो।
मैनेजर—व्यायाम, रावपुरा, बडोदा

वर्ष १६
अंक ९
क्रमांक
१८९
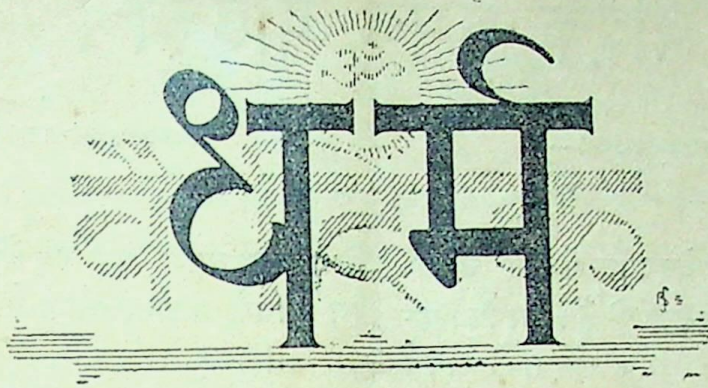
भाद्रपद
संवत् १९९२
सितंबर
सन १९३५

वैदिक-तत्त्वज्ञानप्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि० सातारा)

ज्ञानको फैलाओ।

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः॥

ऋग्वेद १०।१०१।२

' हे (सखायः) समानशीलवाले लोगो ! (मन्द्रा कृणुध्वं) उत्तम शुभ भाषण कीजिये। (धियः आ तनुध्वं) सद्‌बुद्धिवर्धक ज्ञान फैला दीजिये। (अरि-त्र-परणीं नावं कृणुध्वं) शत्रुसे बचाव करनेमें समर्थ नौका तैयार कीजिये। (इष् कृणुध्वं) उत्तम अन्न तैयार कीजिये। (आयुधारं कृणुध्वं) शस्त्रास्त्र बनाइये। (प्राञ्चं यज्ञं प्रणयत) उन्नति करनेवाला- अग्रभागतक पहुंचानेवाला यज्ञ बढाइये। ''

सब लोग उत्तम भाषण करनेका अभ्यास करें और उस वक्तृत्वसे हितकर ज्ञानका फैलाव करें। उत्तम अन्न विपुल प्रमाणमें उत्पन्न करें और जनताका हित-साधन करनेके प्रशस्ततम कर्म सदा किया करें। उत्तम शस्त्रास्त्र अपने पास तैयार रखें, शत्रुसे बचाव करनेवाली नौका बनावें और इन सब साधनोंसे शत्रुको दूर करके अत्यंत सुखको प्राप्त करें।

———

वैदिक धर्मके ग्राहको !

"वैदिक धर्म' मासिकमें वेदशास्त्रसंबंधी खोजपूर्ण लेख प्रतिमास प्रकाशित होते हैं। आपका कर्तव्य है कि आप इस वैदिक धर्मके संदेशको अपने सब इष्टमित्रोंतक पहुंचानेका यत्न करें। आप इस प्रचारमें अनेक प्रकारसे हमारी सहायता कर सकते हैं—

१. आपके इष्टमित्रों और संबंधियोंमें वैदिक धर्म मासिकके लिये ग्राहक बनाकर सहायता कीजिये। आप प्रतिमास एक नया ग्राहक इस प्रकार बना सकते हैं।

२. आपके ग्राममें अथवा अन्यत्र जो आपके परिचित सज्जन हैं, जो धर्मभावनासे युक्त होनेके कारण इस वैदिक धर्म मासिकके ग्राहक बन सकते हैं, उनके नामोंको पूर्ण पतोंके साथ आप हमारे पास भेज सकते हैं।

हम उनके पास नमूना अंक भेजेंगे और ग्राहक होनेके लिये प्रार्थना करेंगे।

३. आपके ग्राममें तथा आसपास जो धार्मिक संस्थाएं हैं, जो पुस्तकालय हैं तथा जो सार्वजनिक सभाएं होंगी उनके नाम और पते हमारे पास लिखकर भेज दें।

इस रीतिसे अनेक मार्ग हैं जिनके द्वारा आप इस धार्मिक मासिककी सहायता कर सकते हैं। हमारी इच्छा धर्मविचारोंका प्रचार चारों ओर खूब करनेकी है। आपकी सहायता इस प्रचार कार्यमें मिलनी हि चाहिये। आप भी धर्मका प्रचार करना चाहते हैं। आपके मनमें यह सदिच्छा प्रबल है। आप इस प्रचारके कार्यके लिये बडा त्याग कर रहे हैं। अतः इस संबंधमें हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप इस वैदिक धर्म मासिकके ग्राहक बढानेमें सहायता कीजिये।

यदि आप अपना वैदिक धर्मका अंक प्रतिमास दस सज्जनोंको पढनेके लिये देंगे तो भी प्रचारमें बडी सहायता हो सकती है। धार्मिक लोगोंको इसी तरह विविध प्रकारसे सहायता करनी चाहिये और पारस्परिक सहकार्यसे प्रचारका कार्य करना चाहिये।

क्या प्रतिमास एक नया ग्राहक बनाना आपके लिये संभव नहीं ? इस विषयमें आप यत्न करिये। क्या आप अपने परिचितोंके पते लिखकर नहीं भेज सकते ? क्या आप अपने समीपके सार्वजनिक संस्थाओंके पते हमारे पास लिखकर नहीं भेज सकते ? क्या आप अपना अंक कुछ परिचित सज्जनोंको पढनेके लिये नहीं दे सकते?

आप यह सब कर सकते हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो आप इससे भी अधिक सहायता कर सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'वैदिक धर्म' यह एकमात्र वेदधर्मका ज्ञान ग्राहकोंको देनेवाला मासिक है। न इसमें अश्लील कथाएं आती हैं, न स्त्रियोंके कामभावपूर्ण आविर्भाव होते हैं। जिससे मानवजातीकी सच्ची उन्नति होगी, वैसे ही विचार इस मासिकमें प्रतिमास प्रकाशित होते हैं।

क्या ऐसे मासिकके ग्राहक बढाकर सहायता करना आपका कर्तव्य नहीं है ?

प्रबंधकर्ता- 'वै० धर्म'

वेदमें आयुर्वेद ।

(लेखक—श्री० अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषग्रत्न, अलमपूर रायपुर, जि० सहारनपूर ।)

वेद और आयुर्वेद ।

१ "अथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। वेदो हि आथर्वणः स्वस्त्ययनबलिमंगलहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासादिभिः चिकित्सां प्राह ॥ "

(चरक)

२ इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य । अनुत्पाद्यैव प्रजाः... ,, कृतवान् स्वयंभुः ॥ (सुश्रुत)

" भिषक् भिषजा त्वां शृणोमि । "

आर्यसंस्कृतिमें वेदोंकी प्राचीनता बहुत पुरानी है । आर्यजातिका जीवन वेदोंके साथ जुडा हुआ है । यदि यह कहा जाये कि वेद ही आर्यजातिके प्राण जीवन हैं; तो भी इसमें अत्युक्ति नहीं आती । क्योंकि आर्यसंस्कृतिमें मनुष्य जीवन का परम ध्येय मोक्ष प्राप्त करना है– अथवा परब्रह्म परमात्माके समान हो जाना; उसके परमधाममें पहुंचकर नियत या अनियत कालतक सुखका उपभोग करना है । *

इसी ध्येयतक पहुंचनेके लिये प्राचीन आचार्योंने तीन सीढीयां बांधी हैं । इन सीढीयोंको शास्त्रमें ' त्रिवर्ग ' के नामसे कहा जाता है । यह त्रिवर्ग 'धर्म,' 'अर्थ,' 'काम' रूप है । इनमें प्रत्येक वर्गको बताने के लिये आचार्योंने भिन्न भिन्न शास्त्ररूपी मार्ग बनाये हैं । यथा-धर्मशास्त्रको बनानेके लिये मनुयाज्ञवल्क्य आदिने, ' अर्थ ' को बतानेके लिये-कौटिल्य, बृहस्पति, उशना आदिने; और ' काम ' को बतानेके लिये कौटिल्य (वात्स्यायन), बाभ्रवीय आदि आचार्योंने शास्त्र बनाये हैं ।

प्रत्येक आचार्य अपने ग्रंथको 'आप्त' प्रमाणद्वारा पुष्ट करनेके लिये किसी विशिष्ट ग्रंथ अथवा वक्ता का आश्रय लेता है । इस बातकी आवश्यकता इस लिये पडती थी कि साधारण मनुष्यके कथनपर कोई विश्वास किसलिये करेगा? इसलिये अपने वचनकी प्रामाणिकता को बतानेके लिये ग्रंथ निर्माण का प्रयोजन, तथा उसका उद्भवस्थान सबसे प्रथम बतलाते हैं । इसि दृष्टिसें 'कामशास्त्र' कों निर्माण करते हुए वात्स्यायनने इन सब बातोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला है । ×

इस प्रयोजनको अथवा इस अनिवार्य प्रणालीसे या यूं कहिये कि अपने ग्रंथ अथवा वचनको अधिक शक्ति देने या प्रसिद्धिके चाहसे सब ग्रंथ

---

* जैसा कि गीतामें कहा है–

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः । सर्गेऽपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ गीता, अ० १४।२

त्रैविद्या मां सोमपा पूतपापाः यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते। ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥ अ. ९ श्लोक २०

× " प्रजापतिर्हि प्रजा सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबंधनं त्रिवर्गस्य । साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच । " तस्यैकदेशं मनुः स्वायंभुवो धर्माधिकारिकं पृथक् चकार ॥ बृहस्पतिरर्थाधिकारम् । महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच ॥ तदेव तु पंचभिरध्यायशतैरौद्दालिकिः श्वेतकेतुः संचिक्षेप । –कामसूत्र

कारोंने अपने ग्रंथको उत्पत्ति सृष्टिके कर्ता प्रजापति-ब्रह्मासे बताई है। ❀

इसी प्रजापति ब्रह्माको चार मुंहवाले पुराणोंमें कहा है। विचारक विद्वान् इसके मुखोंका अर्थ 'ज्ञान' करते हैं। अर्थात् भगवन् प्रजापतिने अपनी प्रिय प्रजा-संतानकी मंगल कामनाका निमित्त चार प्रकारका ज्ञान (चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) उत्पन्न किया है। इस ज्ञानको बतानेके लिये चार वेद (विद् ज्ञाने) बनाये हैं। यही इसके चार मुख हैं।

यहि कारण है कि आर्यजाति वेदको अपना प्राण मानती है। वेदोंकी सत्ता इस जातिकी प्राचीनता को थामे हुए है। आर्य लोग वेदोंको स्वतः प्रमाण-ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। आर्योंका विश्वास है कि संसारमें जितना भी ज्ञान फैला है, वह सब वेदोंसे ही फैला है। वेदोंका पढना और पढाना, सुनना और सुनाना, सब आर्योंका परम धर्म है। मनु महाराजने वेदकी निन्दा करनेवाले को 'नास्तिक' कहा है। ऐसे भी विद्वान् हैं, जो कि ईश्वरपर विश्वास न रखकर वेदको आदर तथा श्रद्धा-भक्तिसे देखते हैं। यही वेद हमको चतुर्वर्ग की प्राप्तिका मार्ग बताते हैं।

इन वेदोंको स्पष्ट करनेके लिये समय समय पर उपवेद, ब्राह्मण, सूत्र आदि अनेक ग्रंथ तथा भाष्य बनाये गये हैं। इतना ही नहीं; इन ग्रंथोंके विस्तार को देखकर, तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति घटती हुई आयुको, तथा तप आदि कर्मोंका नित्य प्रति ह्रास होनेसे; बुद्धिके कम होनेसे, संक्षिप्त ज्ञानका उपदेश किया जाने लगा।

इस प्रकारसे एक ही ज्ञानकी शाखा, अनुशाखा प्रशाखा होकर अनंत ज्ञान बन गया है। उन्हीं ज्ञानोंमें एक प्रकारका ज्ञान यह 'आयुर्वेद' भी है।

आयुर्वेद-

आयुर्वेद वेदका उपवेद है। चरणव्यूह ग्रंथमें आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद कहा है। और सुश्रुतमें अथर्ववेदका उपवेद बताया है। भगवान् पुनर्वसु आत्रेय भी सुश्रुतकोही समर्थन करते हैं।+ कुछ भी हो- इस विषयमें आचार्य एकमत हैं- कि आयुर्वेद-वेद है। इसी दृष्टिको ध्यानमें रखकर न्याय-सूत्रके कर्ताने आयुर्वेदकी प्रमाणिकता को मंत्रकी प्रमाणिकता के पलडेपर तोला है ◎

इसी आयुर्वेदको 'भगवान् कृष्णात्रेय' अनादि मानते हैं। क्योंकि प्रजा तंतुके समान आयुका कभी भी छेदन नहीं हुआ। अर्थाद् मनुष्यरूपी सृष्टिके आरंभसे लेकर आजतक इसका सूत्र चलता रहा है। आयुर्वेदसे ही आयुका ज्ञान किया जाता है। आयुका संबंध केवल मनुष्योंके साथ ही नहीं है। वृक्ष, हाथी, घोडे, गाय, आदि सबके साथ है। इस लिये इनके विषयमें भिन्न भिन्न रूप

❀ प्रजापतिर्हि प्रजाकामी स तपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्च। इत्येतौ मे बहुधा प्रजा करिष्यंते।" प्रश्नोपनिषद्।

+ १ "सर्वेषां वेदानामुपवेदाः भवंति। तद्यथा-- ऋग्वेदस्यायुर्वेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेदः, सामवेदस्य गांधर्ववेदः; अथर्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राणि ॥

२ "यदुपांगमथर्ववेदस्य" ॥ सु. सू. १

३ अथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। "वेदो हि आथर्वणः स्वस्त्ययनबलिमंगलहोमनियमप्रायश्चित्तादिभिः चिकित्सां प्राह। चरक, सूत्र, अ. ३०

◎ "मंत्रायुर्वेदप्रामाण्यात् तत्प्रामाण्यम्।" न्याय.

से संहितायें बनाई गई हैं । × परंतु यहां पर तो मुझको मनुष्योंसे संबंधित आयुर्वेदसे प्रयोजन है।

आयुर्वेदका मुख्य प्रयोजन इस शरीरको स्वस्थ रखना है । इसके दो विभाग सुश्रुतमें किये हैं। यथा रोगग्रस्त व्यक्तियोंको रोगसे मुक्त करना और स्वस्थ व्यक्तिको सदा स्वस्थ बनाये रखना है। आयुर्वेद शास्त्रमें ज्वर आदिका होना जहां रोग है; वहांपर बुढापे का आना भी रोग है । इसीको भी रोकनेके लिये पृथक् अंग (रसायन) बनाना पडा है ।

आयुका संबंध शरीरके साथ है। शरीर ही सब कार्योंका आधार है । जिस प्रकार हाथके विना कोई भी शस्त्रकर्म नहीं हो सकता, उसी प्रकार धर्म, अर्थ कामरूपी कोई भी कर्म विना शरीरके नहीं हो सकता। इसीलिये भगवद्गीतामें शरीरको दुःख देनेवाले व्यक्तियोंको निश्चयरूपसे 'आसुर' कहा है । ❧

रुग्ण शरीर जहां अपने लिये कष्टदायक होता है, वहां दूसरोंके लिये भाररूप होता है। लोग उससे घबराते हैं,उसे दूर भागते हैं। लोग रोगी मनुष्यकी सेवा करें- इसलिये भगवान् बुद्धने राजगृहके विहारमें सब भिक्षुकों को उपदेश दिया- ' जिसने मेरी सेवा करनी हो वह रोगीकी सेवा करे। रोगीकी सेवा भगवान्‌की सेवा ही है। '

रुग्ण शरीर और वृद्ध-जीर्ण शरीर एक ही थैलीकी चट्टे बट्टे हैं । महाभारतमें कथा आती है की ' राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक स्त्रीसंग किया । अन्तमें बुढापा आगया, शरीर और इंद्रियाँ शिथिल हो गई, परंतु तृप्ति नहीं हुई । अंतमें अपने सब पुत्रोंको बुलाकर उनके सामने अपनी चाह रख दी। उनसे कह दिया कि जवानी देकर जो चाहे राज्य बदल ले। सब पुत्रोंके इन्कार करनेपर छोटे पुत्र ' पुरु ' ने जवानी देकर बुढापा लिया। राजाने हिमालयपर जाकर अनंत कालतक जवान होकर विहार किया परंतु फिर भी तृप्ति नहीं हुई। ' ◎

इन उदाहरणोंके देखते एवं समझते हुए आचार्योंने इस शरीरको ही जानना एवं समझना तथा इसकी रक्षाके उपाय पता लगाना आवश्यक समझा। इसी ज्ञानको 'आयुर्वेद' कहा है ।

धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षका मूल यह शरीर है, इस निरोगी, अजर, अमर शरीरको छोडकर और क्या श्रेय दुनियामें होगा। कहा भी है।

' Where is health, There is wealth;
Where is no health, There is no wealth.' +

× अवर्ण, वृक्षायुर्वेद, पालकप्यसंहिता (हस्त्यायुर्वेद); शालिहोत्र (अश्वचिकित्सा) मिलती है ।

(१) पंचतंत्रमें एक कथा आती है- जिसमें कहा है कि, घोडोंके आमसे जलनेपर बंदरकी वसा लाभदायक होती है ।

(२) विराट नगरमें सहदेवने अपना परिचय देते हुए अपनेको घोडोंका चिकित्सक बताया था और नकुलने गायों का ज्ञाता-नकुलने कहा-

" वृषभांश्चापि जानामि ... लक्षणैः । येषां मूत्रं समाघ्राय वन्ध्याऽपि प्रसूयते ॥ म. भा. विराट पर्व.

❧ " कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान् विध्यासुरनिश्चयान् ॥ "

◎ इन्दौरके धनकुबेर सर शेठ राजा हुकुमचंदजीने जवानी प्राप्त करनेके लिये तीन लाखके भेंट एक चिकित्सकपर चढाई थी।

+ भगवद् गोविंदपादने अपने रसहृदयतंत्रमें स्पष्ट कहा है—

' आयतनं विद्यानां, मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणां। श्रेयः परं किमन्यत् शरीरं अजरामरं विहायैकम् ॥२॥ रस (पारद) शास्त्रके अंदर इन आयुर्वेदमें दो प्रकारकी सिद्धियाँ हैं, एक ' देहसिद्धि ' और दूसरी 'लोह सिद्धि । ' दोनों सिद्धियोंको प्राप्त करनेकी विधियां बताई गई हैं। 'देहसिद्धि' या तो योगसाधनसे प्राप्त होती थी या फिर पारदके उपयोगसे । पारद-वास्तवमें पार लगानेवाला है। रस ग्रंथोंमें पारदको जरा-मृत्युनाशक कहा है। इसकी अनंत प्रशंसा है।

❀

शरीरको खोकर जो संपत्ति बनाई जाती है, वह शरीरके सुधारनेमें या तो खर्च हो जाती है, या यूं ही पडी रह जाती है।

इसलिये सब कर्मोंके आधारभूत इस 'शरीर' को जानना आवश्यक है। वेदोंमें इस शरीरको 'अयोध्या' 'देवताओंकी नगरी' आदि सुंदर शब्दोंसे वर्णन किया गया है। जिस नगरमें देवता राज्य करते हों, उस नगरपर चढाई करनेकी किसकी शक्ति है? इस नगरीमें आने जानेके नौ दरवाजे हैं, आठ चक्र चढे हुए हैं, इसके अंदर सोनेका अनन्त कोष रक्खा हुवा है। इस कोष की ३३ तेंतीस देवता हरसमय रक्षा कर रहे हैं। ऐसे सुंदर शरीरको न समझना, परमात्माकी सर्वोत्तम रचना को न देखना है। ⊙

इतना ही नहीं, भगवान पुनर्वसु आत्रेयका तो यहांतक कहना है की 'जो शरीरमें है, वही ब्रह्मांड में है, और जो ब्रह्मांडमें वही इस शरीर में है।' इससे भिन्न वस्तु संसारमें कुछ भी नहीं है। × इसी शरीरको अथवा इसके नियत समय (काल) को बतानेके लिये ही 'आयुर्वेद' शास्त्र की रचना की गई है।

इस शास्त्रको वेदोंमेंसे पृथक् रूपसे छाट लिया गया है। इस प्रकार करनेसे यह ज्ञान सरल और संक्षिप्त हो गया है। अब इसको हम जैसे साधारण बुद्धिके मनुष्य भी समझ सकते हैं। इस आयुर्वेदकी अनित्यता वेदोंके ज्ञानकी भान्ति है। जिस प्रकार उपदेश ज्ञानपरम्पराके सिवाय वेदोंकी उत्पत्तिका पता नहीं चलता, उसी प्रकार इस ज्ञान-परंपराकी भी अनित्यता है। +

आयुर्वेदके आचार्य।

" यद्यातं दिवोदासाय वर्तिर्भारद्वाजाया-
श्विना हयन्ता ॥ " ऋग्वेद १।११६।१८

" भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि "॥ऋ. २।३३।४

वेदोंके स्पष्टीकरण करनेके लिये बनाये गये ग्रंथोंमें अथवा प्राचीन इतिहासकी मान रक्षाके आधारस्तंभ पुराणोंमें आयुर्वेदकी बातोंका स्थान स्थान पर प्रसंगवश वर्णन आया है।

उदाहरणके लिये वहांपर विषकन्याके प्रयोगके विषयमें, शीतलाके टीकाके विषयमें लिखनेके साथ साथ आयुर्वेदकी आचार्य परंपरा के विषयमें भी लिखा है * यथा –

⊙ " अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्याम् हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ " अथर्ववेद.

× 'यावन्तो हि भावा अस्मिल्लोके तावन्तः पुरुषं। यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके। इति बुधास्त्वेनं द्रष्टुमभिसंभिदन्ते॥' चरक. शारी. अ ४०

+ "आयुरनेन विंदति वेत्ति वा तदायुर्वेदम्" अथवा 'आयुरस्मिन् विद्यते इति तद् आयुर्वेदम्' सुश्रत. सूत्र.१ म.
"सोऽयं आयुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात्। अन्यत्र बोधोपदेशाभ्याम्। नह्यस्यऽभूतोत्पत्तिरूप लभ्यते॥" चरक. सूत्र. ३०

* विषकन्या— (क) विषकन्योपयोगाद् वा क्षणाद् जह्याद् असून्नरः। तस्माद् वैद्येन सततं विषाद् रक्ष्यो नराधिपः॥१
न चाविज्ञातशीलासु स्त्रीषु भोग्यागमः क्वचित्। विषकन्या भयं घोरं पापजं श्रूयते परम्॥२॥ दे. पुराण, अ. १०
(ख) मुद्राराक्षसमें आता है कि पर्वतेश्वर राजाको चाणक्यने विषकन्याके प्रयोगसे मारा था।
(ग) सुश्रुतमें भी आता है कि " हन्ति गम्यमाना च मैथुने "।
शीतलाका टीका— " धेनुस्तन्यमसूरी वा नराणां च मसूरिका। शस्त्रेणोत्कृत्य तत्पूयं बाहूमूले विचारयेत्। तत्पूयं रक्तमिलितं स्फोटज्वरकरं भवेत्॥ "
(ख) धेनुस्तन्यं मसूरी वा नराणां च मसूरिका। तज्जलं बाहूमूलाच्च शस्त्रान्तेन गृहीतवान्॥
बाहुमूले च शस्त्रेण रक्तोत्पत्तिकरणे च। तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वरसंभवम्॥

" वेदेषु रुद्राऽश्विवरुणेंद्रसूर्या दिव्यभिषजा-मताः। " ब्रह्मपुराण

१ रुद्र- यद्यपि इस समय रुद्रका बनाया कोई भी आयुर्वेदका ग्रंथ नहीं मिलता, तथापि संपूर्ण तंत्र ग्रंथ रुद्रको ही आश्रय करके बनाये गये हैं। रस शास्त्रका धातुवाद (लोहसिद्धि) तो मुख्यतः रुद्रके ही आधारपर स्थित है। रसशास्त्रका चिकित्सा विषयमें बहुत आदर है। वेदोंमें " प्रथमो दैव्यो भिषक् " इस शब्दसे रुद्रका वर्णन किया है।

२ सूर्य- वेदोंमें सूर्यको भी भिषक् रूपसे माना है। अब भी बहुतसे प्रयोग आयुर्वेद ग्रंथोंमें सूर्यके नामसे आते हैं। ' भास्कर संहिता' नामकी आयुर्वेद संहिता लंडनके (British Museum) विचित्रागारमें रक्खी है। कहा भी जाता है " आरोग्यं भास्करादिच्छेत् ' आरोग्यकी चाहना भास्कर (सूर्यनमस्कार) से चाहे। +

३ इंद्र- सुश्रुत और चरक दोनों ग्रंथोंमें इंद्रको आयुर्वेदका आचार्य माना है। इंद्रकी बनाई ' बलभित्संहिता ' का नाम सुना जाता ही है। हां, इंद्रके बनाये प्रयोग (ऐंद्री रसायन) तथा अन्य औषधियां आयुर्वेद शास्त्रमें पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदमें राजयक्ष्मा रोग-चिकित्साविषयक संबंधि संपूर्ण एक सूक्तमें इंद्रकी स्तुति देखी जाती है।

४ वरुण- वेदोंमें वरुण-वैद्य वनस्पतियोंका अधिष्ठाता रूपमें देखा जाता है, किन्तु इसका बनाया कोई भी ग्रंथ नहीं मिलता।

५ अश्विनौ- वेद, ब्राह्मण, पुराण, आयुर्वेद ग्रंथ, महाभारत आदिमें सर्वत्र अश्विनौकी कीर्ति गाई जा रही है। वेदोंमें पचासके लगभग सूक्तोंमें अश्विनौकी स्तुति गाई गई है। अन्य बहुतसे स्थानोंमें इनका चरित्र, इनकी चिकित्साकी प्रशंसा इनकी स्तुति देखी जाती है।* आजकलभी अश्विनौकी बनाई बहुत सी औषधियां आयुर्वेद ग्रंथोंमें

+ (१) सूर्य- अपचितः प्रपतत सुपर्णो वसतेरिव। सूर्यः कृणोतु भेषजं चंद्रमा वोपोच्छतु॥ अथर्व ६।२३।३५ जिस प्रकार गरुड दौड जाता है, उसी प्रकार स्फोटक व्याधि दूर चली जायेगी। इसके लिये औषधरूप सूर्य बने और चंद्रमा अपने प्रकाशसे नाश करे।

(२) " उद्यन्नादित्यः क्रमीन् हन्तु " अथर्ववेद.

(३) " उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शिर्ष्णो रोगमनीनशत्। अथर्व. ९।८।१९ आजकाल Ultra-Violet Rays का तथा सूर्यनमस्कार व्यायाम की कीमत बाजारमें दिनपर दिन बढ रही है। ... आयुर्वेदञ्चकार सः। कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः॥

* अश्विनौ— देवभिषजौ-यज्ञवाहौ इति स्मृतौ। यास्क-निरुक्त.

(क) महाभारतमें कथा आती है कि ' अश्विनौ'को देवतालोग यज्ञका भाग नहीं देते थे। देवताओंकी गिनती में गिने जानेपर भी यज्ञका भाग न मिले-यह अपमान था। इसलिये इस प्रतिकारकी इच्छासे ' च्यवनऋषि ' को पुनः यौवन प्रदान करके (युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तम्) उससे-उसके श्वशुरके राज्यमें यज्ञ कराया। इस यज्ञका हविर्भाग जब अश्विनौको च्यवनऋषि देने लगे उस समय देवताओंके राजा इंद्रने रोकना चाहा। च्यवनऋषिने तपोबलसे उसकी भुजाको वहीं स्तंभित कर दिया। अन्तमें अश्विनौका यज्ञभाग स्वीकार करनेपर अश्विनौने इंद्रकी भुजाको अच्छा किया है। इसीका वर्णन चरकमें आता है-

प्रशीर्णाः दन्ताः पूष्णे नेत्रे नष्टे भगस्य च। वज्रिणश्च भुजस्तम्भः ताभ्यामेव चिकित्सितः॥ चरक चि. अ. १ कक्षिवान् ऋषिकी आंख बनानेका, विश्पला पत्नीकी लोहेकी टांग बनानेकी (सद्यो जंघामायसीं सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्) कथा ऋग्वेदमें स्पष्टरूपसे आती है।

अश्विनौ—क्या हैं? कुछ विद्वान् इनको विद्युत्के ऋण और धनरूपी दो ध्रुव (Pole) मानते हैं। कुछ चंद्रमा और सूर्य; कुछ रयि और प्राण, कुछ रात और दिन मानते हैं। प्रश्नोपनिषद्में प्रजापतिने सृष्टि बनानेकी कामनासे युगल उत्पन्न

देखी जाती है। निरुक्तकार यास्कमुनिने इनको देवताओंके भिषक्- यज्ञवाहक कहा है।

यह तो हुई पुराणकी परंपरा-परंतु चरक और सुश्रुतकी परम्परा इससे जरा भिन्न मार्गमें बहती है। + यथा-

सुश्रुत परम्परासे- ब्रह्मा-प्रजापति- अश्विनौ- इंद्र-धन्वंतरि।

चरक परम्परासे— ब्रह्मा-प्रजापति- अश्विनौ- इंद्र- भारद्वाज- आत्रेय।

इस परम्परामें इंद्रतक आयुर्वेदका अवतरण समान है। इसके आगे इसकी दो शाखायें फूट जाती हैं। एक शाखा धन्वन्तरि शाखा है, दूसरी भारद्वाज या आत्रेय शाखा। इन्हीं शाखाओंको " स्कूल ऑफ सर्जरी " शल्यशाखा और ' स्कूल ऑफ मेडिसिन ' काय शाखा शब्दसे कहें तो भी काम चल सकता है। इनमें—

६ धन्वन्तरी— काशिपति, काशिराज, धन्वं[तरि] और दिवोदास - ये सब-शब्द-वर्तमान सुश्रुत सं[हि]तामें एक ही मनुष्यको बताते हैं। परंतु ब्रह्मपु[राण] में ये सब व्यक्ति पृथक् पृथक् कहे हैं। साथ इनकी संहितामें भी पृथक् पृथक् वर्णन [की] गई हैं। ×

परंतु वर्तमान उपलब्ध संहितामें " काशिप[तिं] दिवोदासं सुश्रुतः परिपृच्छति " ऐसा शब्द आत[ा] है। जिससे स्पष्ट है कि काशिपति और दिवोदास दो व्यक्ति न होकर एक ही मनुष्यके द्योतक शब्द हैं। शेष " धन्वंतरी " नाम तो सुश्रुत संहितामें काशिपति स्वयं लेते हैं 'कि मैंने इंद्रसे आयुर्वेद सीखा है।' इस प्रकारसे हम वर्तमान वैद्य इन तीनों नामोंको एकका ही पर्यायवाची शब्द मानते हैं।

एक दुसरी बात- ' धन्वन्तरि ' शब्द शल्यकर्म करनेवालोंके संप्रदाय (School of Surgery)

किया था। वही युगल यह है। आयुर्वेद दृष्टिसे शीत और उष्णरूपमें पुरुष और स्त्री ही अश्विनौ हैं। कहा भी है— " स्त्रियाश्चाग्नेयाः पुरुषाश्च सौम्याः " सुश्रुत। यह संसार भी ' अग्निषोमीय' (अग्निषोमीयं जगत्) है। आग्नेय और सौम्य तत्त्वसे मिलकर बना है। अथवा यूं कहिये कि - देवताओंके भिषकोंमें एक कायाचिकित्सा (Medicine) का पंडित है, दूसरा शल्याचिकित्सा (Surgery) का। इस युगलको ' अश्विनौ ' कहते हैं।

+(क) ब्रह्मा प्रोवाच-ततः प्रजापतिरश्विनौ, अश्विभ्यामिंद्रः इंद्रादहं, मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः॥
अहं हि धन्वंतरिरादिदेवो, जरा रुजा मृत्युहरोऽमराणां। शल्यांग मंगैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥
सु. सूत्र. अ. १

(ख) ब्रह्मणा हि यथा प्रोक्तम् आयुर्वेदं प्रजापतिः। जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥
अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्। ऋषिः प्रोक्तो भरद्वाजः तस्माच्छक्रमुपागमत्॥
... ...
ऋषयश्च भरद्वाजाज्जगृहुस्तं प्रजाहितम्। अथ मैत्रीपरः पुण्यमायुर्वेदं पुनर्वसुः॥ चरक. सूत्र. अ. १

× ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः। विचिंत्य तेषामर्थं चैवायुर्वेदं चकार सः॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः। स्वतंत्रसंहितां तस्माद् भास्करश्च चकार सः॥
भास्करश्च स्वशिष्येभ्यः आयुर्वेदं स्वसंहिताम्। प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च। व्याधिप्रणाश बीजानि साध्वि मत्तो निशामय॥
धन्वतरिर्दिवोदासः काशिराजोऽश्विनौ सुतौ। नकुलो सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः॥
जाबालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च। एते वेदाङ्ग वेदज्ञाः षोडशोः व्याधिनाशकाः॥
चिकित्सा तत्त्वविज्ञानं नामतन्त्रम् मनोहरम्। धन्वन्तरिश्च भगवां चकार प्रथमे सति॥
चिकित्सादर्शनं नाम दिवोदासः चकार सः। चिकित्सा कौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार सः॥
(ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखंड १६ अध्याय.)

बताता है । क्योंकि वर्तमान उपलब्ध चरक संहितामें इस बातको स्पष्ट रूपमें स्थान स्थानपर दिया गया है । जहांपर शल्यकर्मकी अपेक्षा हुई। वहांपर आचार्य यह कह कर कि 'यहांपर शल्यकर्म करनेवालों (धन्वन्तरियों) का अधिकार है।' आगे अपने कायचिकित्सामें कहने लगते हैं । +

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ' धन्वन्तरि ' शब्द ' सर्जन ' शब्दको बताता है । अस्तु । धन्वन्तरि संप्रदायकी एक ही संहिता – 'सुश्रुत-संहिता' इस समय मिलती है ।

वेदमें ' दिवोदास ' शब्द आया है। 'दिवोदास' शब्द भी ' धन्वन्तरि ' शब्द की भांति ' सर्जन 'का द्योतक है। चूंकि ' सुश्रुत-संहिता ' में दिवोदास धन्वन्तरि, काशिपति-आदि शब्दोंके साथ एक ही व्यक्तिके लिये आता है । इसलिये दिवोदास शब्दसे सुश्रुतका गुरु काशिपति ग्रहण करना चाहिये, और यदि इस व्यक्तिविशेषको माननेमें आपत्ति हो तो इसको व्यापक अर्थमें मानकर ' सर्जन ' शब्दका द्योतक स्वीकार लेना चाहिये । ◎

७ भारद्वाज (आत्रेय) – भारद्वाज और आत्रेय दो भिन्न व्यक्ति होते हुवे भी दोनों ' कायचिकित्सा ' (School of Medicine) के प्रथम गुरु हैं । दिवोदास की भांति भारद्वाज मुनिने इंद्रसे जाकर आयुर्वेदको सीखा और मुनियोंको उपदेश किया । इनमें ' आत्रेय ' ऋषिने इस उपदेशको छः शिष्योंमें पढाया ।

इस प्रकारसे कायचिकित्साकी परम्परा ' आत्रेय ' से संहितारूपमें प्रचलित होती है। इसलिये इसीको इस पद्धतिका कर्ता मानते हैं ।

वेदमें 'दिवोदास' की भांति 'भारद्वाज' नाम भी आया है । यह भारद्वाज नाम भी व्यक्ति विशेषको बतानेके साथ साथ ' फिजीशियन ' शब्दका द्योतक माननेमें कुछ आपत्ति नहीं है । क्योंकि इंद्रसे दोनों (दिवोदास और भारद्वाज) ने भिन्न भिन्न पद्धतिका शिक्षण प्राप्त किया होगा। जिसको जिस वस्तुकी चाह होती है, गुरु उसको वही सीखाता है ।

चरकसंहितामें ' आत्रेय ' शब्द तीन विशेषणोंके साथ आया है । यथा – ' भिक्षुरात्रेय, ' ' कृष्णात्रेय ' और ' पुनर्वसुरात्रेय ' – इनमें पिछले दोनों नाम तो एक ही व्यक्तिके लिये आते हैं । परंतु 'भिक्षुरात्रेय' भिन्न व्यक्तिके लिये है । क्योंकि प्रथम अध्याय (सूत्र-स्थान) में तथा भद्रकाप्यीय (सूत्रस्थान) नामक अध्यायोंमें स्पष्ट शब्दोंसे इनमें भेद किया गया है। भिक्षुरात्रेयके पक्षका खण्डन करते हुवे पुनर्वसु आत्रेय स्पष्ट भिन्न प्रतीत होते हैं ।

वर्तमान उपलब्ध ' चरकसंहिता ' आत्रेय ऋषिके वचनोंका संशोधित संस्करण है । चरक शब्दसे बहुत विद्वान् पाणिनीसूत्रोंपर भाष्यकर्ता, तथा पातंजलसूत्रोंके कर्ता पतंजलिको मानते हैं। × कुछ भी हो- इतना स्पष्ट है कि वर्तमान उपलब्ध चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिताकी भांती संशोधित संस्करण है । सुश्रुतका संस्कर्ता नागार्जुन हैं और चरकसंहिताका संस्कर्ता चरक (पंतजलि)और दृढबल हैं ।

+(१) सर्वांगनिवृत्तिः युगपदिति धन्वंतरिः । चरक, शा. ६. १८.
(२) दाहे धन्वन्तरियाणामत्रापि भिषजां बलम् ॥ चरक. चि. ६. ५८.
(३) सः शल्यविद्भिः कुशलैः चिकित्स्याः शस्त्रेण संशोधनरोपणैश्च । च. ५. ६४.
(४) धान्वतरं पिबेत्सर्पिः स्नेहानार्थषु कुष्टितः । भेल. चि. ६.
भेल संहिताके कर्ता ' भेल ' भी आत्रेयके शिष्योंमेंसे एक थे ।

◎ " यदयातं दिवोदासाय वर्ति भरद्वाजायाश्विना हयन्त " ऋग्वेद.

× कहा जाता है —
योगेन चित्तस्य पदेन वाचां । मलं शरीरस्य च वैद्यकेन। अपाकरोद् यः प्रवरो मुनीनां, पतजलिं तं शिरसा नमामि॥

इस प्रकारसे चरक संहिता आत्रेय के शिष्य (पट्ट शिष्य) अग्निवेशकी बनाई हुई मानी गई है। आत्रेय मुनिके आत्रेय संहिता पृथक् मानी जाती है।

(८)वाग्भट-यह आचार्य आयुर्वेद शास्त्रका अंतिम आचार्य है,और बहुत प्राचीन न होनेपर बहुत नवीन भी नहीं है। इसके नामसे ' अष्टांग-संग्रह अष्टांग हृदय, रसरत्न-समुच्चय और अलंकारका ग्रन्थ (वाग्भटालंकार) प्रसिद्ध है। इन आयुर्वेदकी पुस्तकोंमें चरक और सुश्रुत संहिताके उपयोगी अंश, पद्य तथा गद्यरूपसे रखे गये हैं। अष्टांग-संग्रह गद्य भाषामें है, और अष्टांग-हृदय पद्यरूपमें है। दोनोंके अन्दर विशेष कोई भेद नहीं है।

इन ग्रन्थोंके पढनेसे पता चलता है कि इसके समयमें ऋषिप्रणित ग्रन्थोंमें लोगोंकी अधिक रूचि थी। इसीसे चरक-सुश्रतका अधिक प्रचार था, इसको भय हुवा कि कहीं मेरे लिखे इन ग्रंथो का लोक आदर नहीं करेंगे। इसीलिये इसने अष्टांग-हृदयके अन्तमें इस शंकाको निर्मूल बताकर तर्कद्वारा इस मान्यता का खण्डण किया है।+

इस प्रकारसे आयुर्वेदके मुख्य आचार्य आठ है। इन आचार्योंने वेदोंसे ब्रह्मासे आयुर्वेदको लेकर इस मनुष्य लोग पर फैलाया है।

अश्विनौ के कार्य- मेरी तो यह मान्यता है कि 'अश्विनौ' शब्द युगल अर्थमें Physician or Surgeon (फिजोसीयन और सर्जन) दोनोंने संयुक्त कर्मवाले व्यक्तिमें (जिसे कि आजकल M. D. M. S. या M. B. B. S. की उपाधिसे कहा जाता है) आता है। इसीलिये इनके दोनों प्रकारके कार्य देखनेमें आते हैं। यहां पर कुछ कार्योंका दिग्दर्शन करता हूं-

(१) जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्। प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम्॥

ऋ० १।११६।१०

कथानक- वलिपलितादिसे युक्त शीर्ण शरीर, पुत्रादिसे त्यक्त च्यवन ऋषिने अश्विनौ की स्तुति की। अश्विनौने उसका बुढापा मिटा कर नया यौवन दिया।

हे नासत्यौ (अश्विनौ), जुजुरुषो (जीर्ण शरीरवाले) च्यवनात् (च्यवन ऋषिके पाससे) वव्रिं (सम्पूर्ण शरीरको व्याप्त करके स्थित बुढापेको) प्रामुञ्चतम् (बलपूर्वक दूर किया) यथा द्रापिमिव (जिस प्रकारकी शरीरपरसे कवच जिरह वख्तर को दूर किया जाता है)। हे दस्रा (अश्विनौ) तुमने जहितस्य (पुत्रादियोंसे परित्यक्त) ऋषिको आयुप्रदान की। और पीछेसे कनीनां (कन्याओंका) पतिं (पति) अकृणुतम् (बनाया)-

(२) चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्। सद्यो जघांमायसीं विष्पलायै धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्ताम्॥

ऋ०- १।११६।१५

आजा (संग्राममें) खेलकी सम्बधिनी विष्पला नामकी स्त्रीका चरित्रं (चरण पांव) वेरिव (पक्षिके पर की भ्रान्ति) आच्छेदि (कट गया)। हे अश्विनौ-तुम अगस्त्य पुरोहित द्वारा स्तुति किये जानेपर परितक्म्यायाम्(रात्रिमें दी)सद्यः(तुरन्तही)

\+ ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेत्, मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ। भेदाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्॥
वाते……शान्तौ तैलं सर्पिः माक्षिकं च क्रमेण। एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा कानिर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्ति शक्तिः॥
(अष्टांग-हृदय)

नैषध चरित्रके कर्ता हर्षके समयमें भी चरकसुश्रतका प्रचार अधिक था। क्योंकि--
कन्यान्तः पुरवाद्यान्नायं दोषाः तौ द्वौ मन्त्रीप्रवरौ तुल्यभगदङ्कारश्चावूचतुः।
देवाकर्ण्य सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलम्। स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपीश्वरः॥ (नैषध)

...(जीतनेके लिये) सर्त्तवे (गमन ...नेके लिये) आयसीं (लोहेकी) जंघां (जंघासे ...पलक्षित पांवको) प्रत्यधत्ताम् (जोडकर एक ...ना दो)।

(३)- शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार। तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्त्रा भिषजावनर्वन्। (ऋ०१।११६।१६)

यः (जो) ऋजाश्वः (वृषगिरका पुत्र ऋज्राश्व नामक राजर्षि) शतं मेषान् वृक्ये (सौ भेडोंको टुकडे करके) तं चक्षदानं (खानेके लिये वृकको देता था) तं (उसको) पितान्धं चकार (पिताने अन्धा कर दिया)। हे नासत्यौ (अश्विनौ) दस्त्रा (दर्शनीय वैद्यो) अनर्वन् (न देखने योग्य-गमन-रहित), अक्षी (आंखोंको), तस्मै (ऋज्राश्व-के लिये) विचक्षे (देखनेके लिये बनाया)।

(४)- युवं विप्रस्य जराणामुपेयुषः पुनःकलेरकृणुतं युवद्वयः। युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः॥

ऋ० १०।३९।८

हे अश्विनौ! युवं (युवां-तुम्) विप्रस्य मेधावि जराणामुपेयुषः (वृद्धावस्थाको प्राप्त हुवे)कलेः (कलि नामके ऋषिके) वयः (फिर भी) युवत् (युवावस्था युक्त) अकृणुतम् (बनाया)। युवं (तुमने) वन्दन (वन्दन नामक ऋषिको) मृश्यदात् (जायाके वियोगसे दुखित होकर कष्टमें गिरे हुवेको बाहर निकाला) और तुमने विश्पला नामक खेल राजाकी स्त्रीको......(गमन चलनेके लिये) शीर प्रदान की।

(५) युवं ह रेभं वृषणा गुहाहितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना। युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्त व्रधये॥

ऋग्० १०-३९.९

हे वृषणौ (वरसानेवाले अश्विनौ) युवं (तुमने) गुहां (कन्दर में) हितं (राक्षसों द्वारा ह...) ममृवांसं (मरणोन्मुख) रेभं (रेभ नामक ऋषिको)उदैरयत् (पार लगाया-अच्छा किया) और तुमने अत्रिके लिये तप्त अग्निकुण्डको वर्षा वरसाकर ठण्डा बनाया।

इस प्रकारसे अनेक मन्त्रोंमें अश्विनौके कार्योंका वर्णन मिलता है। इन कार्योंमें काय-चिकित्सा और शल्यचिकित्सा दोनों प्रकारके कार्य हैं।

आयुर्वेदके यद्यपि आठ अंग है (यथा-शल्य, शालक्य, काय, भूत, कौमारभृत्य, रसायन, वाजिकरण और विषतंत्र); तथापि इनमें शल्य और काय चिकित्सा ही मुख्य हैं। शेष अंगोका मुख्य रूपमें इनके अन्दर ही समावेश हो जाता है। यही कारण है कि वर्तमान उपलब्ध होनेवाले दोनों संहितायें (सुश्रुत और चरक) इन्हीं विषयोंका मुख्यतः प्रतिपादन करती हैं। शेष शालक्य आदि विषयके पर्याप्त रूपसे इनमें वर्णन किये गये हैं। इस प्रकारसे ये ही दो अंग मुख्य हैं। और इन दोनों अंगोको जाननेवाले (फिजीशियन एवं सर्जन) को 'अश्विनौ' कहा जाता था। इसी अश्विनौ 'की। (युगल) स्तुति इनके कर्मोंसे वेदोंमें स्थान स्थानपर आई है।

वेदमें शारीर शास्त्र.

'शरीरविचयः शरीरोपकारार्थमिष्यते भिषग् विद्येयम्। ज्ञाते हि शरीरतत्त्वे शरीरोपकारार्थविषयं ज्ञानमुत्पद्यते। तस्मात् शरीरविचयं प्रशंसन्ति कुशलाः।'

(चरक० शा० अ० ४)

मनुष्यजीवनके मोक्षका साधन यह शरीर ही है। शरीरको आधार रखकर ही सब शारीरिक या मानसिक रोग होते हैं। इसलिये सब रोगों के आधारभूत इस शरीरको जानना परम आवश्यक है। क्योंकि प्रकृतिको विना जाने विकृति को समझना असम्भव ही है। इसीलिये सुश्रुतमें कहा है कि 'मुर्दे को नदीके किनारे कुशा आदिसे ढापकर बांध देवे। और जब वह गलने

लगे तो उसके साथ उसे धीरे धीरे झाडकर शरीरके एक एक अंगको अपनी आंखोसे देखे +

इसी विचारसे तथा परब्रह्म परमात्माकी महत्ता बतानेके लिये वेदोंमे शरीरके अवयवोंके नाम स्थान स्थान पर आये हैं। यहां पर कुछोंका विवेचन उचित ही होगा। यथा—

प्रजापतिश्च परमेष्ठी, च शृंगे इन्द्रः शिरो, अग्निर्ललाटं, यमः कृकाटम् ॥१॥ सोमो राजा, मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यऽधरहनुः ॥२॥ विद्युज्जिह्वा, मरुतो दन्ता, रेवतीर्ग्रीवा, कृत्तिका स्कन्धा, धर्मो वहः ॥३॥ विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४॥ श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं, पाजस्यं बृहस्पतिः, ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५॥ देवानां पत्नीः पृष्टयः, उपसदः पर्शवः ॥६॥ मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥७॥ इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥८॥ ब्रह्मं च क्षत्रं च श्रोणी, बलमूरू; ॥९॥ धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जंघा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥१०॥ चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥ क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥ क्रोधौ वृक्कौ, मन्युराण्डौ, प्रजा शेपः ॥१३॥ देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१४॥
(अथर्व० ९।१२- सूक्त)

शारीर शास्त्रके जो शब्द आये हैं, वे यहां पाठक देखें। इसके अपने मुख्य मुख्य अंगको बतानेवाले वेदमंत्रको देकर उस शब्दका अर्थ विवेचन हो जायेगा।

(१) देव कोशः (हिरण्यमय कोश) —

' तद्वाऽथर्वणः...शिरः देवकोशः समुब्जितः तत्प्राणोऽभिरक्षति शिरोऽन्नमथो मनः॥
(अथर्व० १०।२।२७)

अथर्वाका शिरः सम्यक् प्रकारसे ढपा हुवा देवताओंका कोष है। यहीं प्राण रहते हैं- मन भी यहीं है।

हमारी सब ज्ञान एवं क्रिया (Motor and sensory) प्रवृत्तियां शिरसे ही आरंभ होती हैं और यहीं पर समाप्त होती हैं। चरकमें शिरको ' उत्तमांग ' तथा प्राणीयोंका प्राणाधार कहा है। ×

(२) ग्रीवा- शतपथ ब्राह्मणमें ग्रीवा शब्दकी व्युत्पत्ति ' गुरूंभारं वहतीति ' इस प्रकारसे की है। (श. ब्रा. १०. २।४।१०)

(३) मन्या- सुश्रुतमें ' मन्या ' शब्द ग्रीवाकी धमनीयायोंके लिये आया है। इन धमनीयोंमें वातप्रकोप होनेसे ' मन्यास्तम्भ ' रोग हो जाता है। परन्तु अथर्ववेदमें ' मन्या ' ' शब्द ' अपची (गण्डमाला रोगका एक अवान्तर भेद) शब्दके साथ आया है। यथा—

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि। इतस्ता सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव॥
(अथर्व० ६।२५।१)

(४) उष्णिहा- कण्ठ देशसे उपर जानेवाली शिरा, धमनी, रसायनी आदिके लिये 'उष्णिहा' शब्द आया है। यास्काचार्यने ' अष्टांग ' शब्दकी व्युत्पत्ति —

उष्णिगुत्स्नाता भवति, स्निह्यतेर्वा स्यात्कान्ति कर्मणः। (नि० ७।१२)

की ही। सायणने उष्णिग् शब्दसे उष्णिहा शब्द बना माना है। यथा-

+ " शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टयोऽङ्गविनिश्चयः॥" सुश्रुत

× चरकमें - " प्राणः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च। यदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते॥ चरक सूत्र ' क्रियन्तः शिरसीय, अध्याय. "

-ीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्॥
(अथर्व० २।३३।२)

(५) स्कन्ध और अंस- ये दोनों शब्द लोकमें
[illegible]शेष प्रसिद्ध हैं। काव्यशास्त्रमें इनका स्थान
[illegible]ानपर वर्णन आता है (व्यूढोरस्को महास्कन्धः)
[illegible]में भी ये शब्द बहुत स्थान पर आये हैं। यथा-

कृत्तिका स्कन्धा धर्मो वहः। अथर्व० ९।१२।३
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी
महादेवो बाहू। यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ
या च ते ककुत्॥ (१०-९-१९)
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा या पृष्टीर्याश्च पर्शवः॥
(अथर्व० १०-९-२०)

(६) कफोड- संस्कृतमें कफोड शब्दका धडेके टूटे हुए कपालभागमें अर्थ होता है। इस दृष्टिसे इसको 'अंसपुलक' (Scapula) अस्थिमें समफल चाहिये यथा-

कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान्।
(अथर्व० १०-२-४)

(७) जत्रु- लोकमें 'जोत' शब्द जत्रुका अपभ्रंश होकर प्रसिद्ध है। गाडी या हलमें जोतते समय जो पट्टी गलेके नीचे बैलके बांधते हैं,उससे जोत कहते हैं। इससे जत्रु शब्द गलेके लिये आता है। वेदमें जत्रु शब्द बहुवचन आया है। यथा-

आंत्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः।
(अथर्व० ११-३-१०)

शतपथ ब्राह्मणमें जत्रु शब्द निम्नरूपमें आया है—

उरः सप्तदशः। अष्टावन्ये जत्रवः अष्टावन्ये
उरः सप्तदशं तस्मादुरः। सप्तदशः॥
(श० ब्रा० १२।२।४।११)

"कीकसाः ककुभः सोऽन्तरेण त्रिष्टुभश्च,
ककुभश्च बृहतीरुपदधाति। तस्मादिमा उभ-
यत्र पर्शवो बद्धाः कीकसासु च जत्रुषु च॥"
(श० ब्रा० ८।६।२।१०)

इन शब्दोंसे कुछ विद्वान 'जत्रु' शब्दका अर्थ – 'अक्षकास्थि' (Clarical) करते हैं।

(८) वर्जह्ये- इस शब्दका अर्थ 'स्तन' किया जाता है। क्योंकि निम्न मंत्रमें परमात्माके निर्माण कौशल्यका वर्णन करते हुए बाह्य अंगको वर्णन किया है। यथा –

"ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम्।
पृष्टीर्वर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समादधादृषिः॥"
(अथर्व० ११।१०।१४)

(९) आनूक्य-शब्द 'आनूक' पृष्ठकी अस्थियोंके लिये (Spinal Calumn) आया है। यथा—

[*] "ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो
अनूक्यात्॥ अथर्व० २।३३।२
आनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्याः शीर्ष्णो-रोगमनीनशम्।
(अथर्व० ९।१३।२१)

शतपथ ब्राह्मणमें आनूक शब्द स्पष्ट अर्थोंमें इसी अर्थको बताता है यथा –

"अनूकं त्रयस्त्रिंशः। द्वात्रिंशद्वा एतस्य करू
कराणि-अनूकं त्रयस्त्रिंशं। तस्मादनूकं
त्रयस्त्रिंशः॥" (श० ब्रा० १२।२।४।१४)

आनूक-तेतीस अस्थियोंसे मिलकर बना है। यथा-सात ग्रीवाकी; बारह पृष्ठकी पांच कटि-भागकी, पांच श्रोणीभागकी, चार पुच्छ भाग की अस्थियां हैं।

(१०) भासद्- भासद् भसद् और भंस ये शब्द आते हैं। यथा —

"ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते।
अ० २।३३।५

"पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः।
(अथर्व० ९।१३।२१)

भासद्-शब्द नितम्ब वाचक; भसत्-लिंगवाचक और भंस शब्द कटिप्रदेशके सन्मुख भाग (Anterior Part) के लिये आया मान लेना

---

[*] प्रत्यक्ष शारीरमें- कविराज गणनाथ सेनजी M. A., L. M. S. ने कीकस शब्द अस्थिके लिये प्रयुक्त किया है। यथा- कीकसे यदि कार्कश्यं तथापि आदीयतामिति। ज्ञानगंगाम्बुसंगत्या दिग्यातनुरतो यथा। प्र. शा. १ म.

❀

चाहिये। क्योंकि क्रमसे अंगोका नामकीर्तन मंत्रमें किया जा रहा है।

(११) प्लाशि- प्लाशि शब्दसे 'फुप्फुस' ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि शरीरका यही अवयव वायुसे फैलता और संकुचित होता है। इसकी उपमा पर्वतसे दी गई है। यथा-

क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः॥

कालीदासने भी तथा अन्य साहित्यके काव्योंमें छातीका विशाल पर्वतके समान बडा विस्तृत होना माना है। यथा- "व्यूढोरस्को महास्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः॥"

(१२) पाजस्यम्- 'पाज' शब्द पशुवोंके आधे चबाये घासके पिण्डमें आता है। लोगमें इसको पागुरा या रोमन्थ करना कहते हैं। निरुक्तमें पाज शब्द बलका पर्यायवाची गिना है। पाज शब्दसे यत् प्रत्यय करनेसे पाजस्य शब्द बनता है। इस का अर्थ आमाशय होता है। क्योंकि आमाशय ही बल देता है। बलवान आमाशय ही अहारको पचा सकता है। आहार बलका कारण है।

"श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः॥"
(अथर्व० ९।१२।५)

(१३) वनिष्ठु-वनिष्ठु शब्दसे 'उण्डुक' (Descending Colon) का ग्रहण किया जाता है। क्योंकि वनिष्ठुः कुम्भ (घडे) के समान होता है। खास कर शराव बनानेके घडेसे इसका आकार मिलता प्रतीत होता है।

प्रकरण वश भी यही अर्थ ठीक प्रतीत होता है। यथा—

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि॥
(अथर्व० २।३३।४)

कुम्भो वनिष्ठु जनिता शचीभिः॥ वा.स. १९।८७

सुश्रुत और चरकमें भी 'उण्डूक' (गुदाका उपरका भाग- जहां मल एकत्रित रहता है) स्थूलांगसे पृथक् गिना है।*

(१४)- उल्ब- जरायु- चिकित्साशास्त्रमें जरायु शब्द गर्भके जल (Lig Amnic) तथा गर्भके आवरण (Membrane) के लिये आता है परन्तु वेदमें गर्भजलके 'उल्ब' शब्द और आवरण के लिये 'जरायु' शब्द आता है। यथा—

'आपो वत्सं जनयंतीर्गर्भमग्रे समैरयन्।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद् हिरण्ययः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।' (अ०४।२।८)
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव।
(अथर्व० ६।४९।१)
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम्। (अ० १।११।४)
त्रिवद् बहिर्भवति। माता पिता पुत्रः, तदेव-तन्मिथुनं। उल्बं गर्भो जरायु। तदेव मिथुनं-त्रेधा बहिः सन्नद्ध भवति। (तै०ब्रा०१।६।३।१)

(१५) कुल्मलम्-संस्कृतकी दृष्टिसे 'ड' के स्थान पर 'ल' हो गया है। क्योंकि 'ड' और 'ल' में भेद नहीं माना जाता। इस प्रकारसे 'कुडमल' शब्द समझकर इसका अर्थ कलि (अद्यखिली कलि मुकुल) होता है।

शरीरावयवोंमें इस शब्दका प्रयोग मदनातपत्र- मन्मथछत्र के लिये आता है - क्यों कि कुड्मलके समान इसका आकार होता है। इसके स्पर्शसे कामिनी शीघ्र कामाभिभूत होती है। वेदमें इस अंगसे विष निकालनेके लिये कहा है। यथा-

शल्याद्विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम्।
(अथर्व० ४-६-१)

इसके अतिरिक्त निम्नमन्त्रमें भी कुल्मल शब्द आता है।-

---

* चरकमें - पञ्चादश कोष्ठाऽङ्गानि- नाभिश्च, हृदयश्च, क्लोम च, यकृच्च, प्लीहाच, वृक्कौ च बस्तिश्च, पुरीषाधारञ्च, आमाशयश्च, पक्वाशयश्च, उदरगुदञ्च, अधरगुदञ्च, क्षुद्रान्त्रञ्च, स्थूलान्त्रञ्च, वपावदनञ्च। (चरक ७)

'त्वचः कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लिहानौ फुप्फुस उण्डूकौ हृदयमामाशयाऽन्त्राणि वृक्कौ। (सु० शा० १।५)

जिह्वा ज्या भवति, कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः। तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिः देवजूतैः॥

(अथर्व० ५।१८।८)

यह तो हुवा वेदोंमें अंगोंका नामकीर्तन, इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मणमें तो स्पष्टतया अस्थि संख्याकी परिगणना की है। यथा-

त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्य रात्रयः त्रीणि च शतानि षष्टिश्च पुरुषस्यास्थीन्यत्र तत्समं॥ (शत० १२।३।२)

तत्राहतास्त्रीणि शतानि शंकवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये।

(अथर्व० १०।८।४)

सुश्रुत संहितामें अस्थि संख्या की परिगणनामें अपना भेद दिखाते हुवे- वेदवादी ऋषियोंकी परिगणनामें ३६० ही अस्थियां बताई हैं। +

इसी प्रकार अंगोंके नामोंका भी कीर्तन स्पष्ट सुनाई पडता है साथ ही प्रत्येक अवयवका रूप भी बताया है। यथा—

हृदयमेवाऽस्यैन्द्रः पुरोडाशः। यकृत्सावित्रः। क्लोमा वारुणो। मतस्नेऽएवाऽस्याऽश्वत्थश्च पात्रमौदुम्बरश्च। पित्तं नैयग्रोधम्। अंत्राणि स्थाल्यः। गुदा उपशयानि, श्येनपत्रे प्लीहा, आसन्दी नाभिः। कुम्भो वनिष्ठुः प्लाशि शतातृण्णां। तद्यत्सा बहुधा वितृण्णा भवति- तस्मात्प्लाशिर्बहुधा विकृत्तो मुखं शतं जिह्वा, पवित्रं चप्यं पायुर्वस्तिर्वालः।

(श० ब्रा० १२।९।१।३)

यकृत्सविता क्लोमा वरुणः।(श०ब्रा०१२।९।१।१५)

इस प्रकारसे स्थान स्थान पर शरीर के अन्तः एवं बाह्य अवयवोंके नाम वेद तथा ब्राह्मणोंमें आते हैं। इसके आगे रक्तसंचार, अस्थि-विन्यास तथा प्राण अपान विषयक मंत्र लिखकर इस विषयको अधिक स्पष्ट करनेका यत्न करूंगा।

रक्तसंचार (Blood-Circulation)—

मनुष्य का जीवन रक्तसंचारके ऊपर निर्भर है। सुश्रुतमें रक्त को प्राण, शरीर का आधार कहा है। × शरीरमें रक्त का खराब होना, घट जाना, या मात्रासे अधिक बढ जाना, मिथ्यायोग, अयोग और अतियोग रूपसे रोग हैं।

जिस समय बच्चा प्रथम श्वास लेता है, उस समय से फेफडे और हृदय अपना काम आरंभ करते हैं और जबतक मनुष्यका अन्तिम श्वास चलता रहता है, यह क्रिया एक सेकण्डके लिये भी बन्द नहीं होती। और सब मशिनोंको यंत्रोंको आराम की आवश्यकता पडती है, परंतु यह अनोखी रचना-परब्रह्म परमात्माकी दिव्य कारीगरीका एक नमूना है।

इस चक्रमें शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का रक्त गति करता है। अशुद्ध रक्त शुद्ध बनता है, और शुद्ध रक्त शरीरके उपयोगमें आकर अशुद्ध बन जाता है। इन दोनों प्रकारके रक्त को लेजानेवाली प्रणालियां भी शरीरमें भिन्न प्रकार की हैं। इन दोनों प्रणालियों के कार्यमें अन्तर होनेसे इनकी बनावटमें भी अन्तर है। शुद्ध रक्त को वहानेवाली प्रणालियों को 'धमनी' कहते हैं। क्यों कि इनमें धमन-स्पन्दन (Palpitation) होता है। यह धमन इनकी दिवारोंमें 'एलास्टिक टिस्सु' (Elastic Tissues) के कारण है। दूसरी अशुद्ध रक्तको वहानेवाली प्रणालियोंको 'सिरा'- शिरा -कहते हैं। क्योंकि इनमें रक्त सरक कर वहता है (सरणात्-सिरा, धमनात्- धमन्यः) इनकी दिवारोंमें वैसे संकोच-विकास करनेवाले तन्तुओंके न होने से किसी प्रकारका स्पंदन नहीं होता है। रक्त भी

+ 'त्रीणि सषष्ठीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते। शल्यतन्त्रे तु त्रीण्येव शतानि। तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु; ससदशोत्तर शतं श्रोणि पार्श्व पृष्टोरःसु, ग्रीवां प्रत्यूर्द्धं त्रिषष्टिः। एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते॥ सु. शा. ५.१५

× देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते। तस्माद् यत्नेन संरक्षेत् रक्तं जीव इति स्थितिः॥' सुश्रुत०सूत्र० अ० १२.

साधारण रूपमें वहता है। इसके विपरीत धमनीयों का रक्त जोर एवं वेगसे बाहर आता है ।

इसके सिवाय रक्तसंचारके साथ सम्बन्धित 'लसिका संस्थान' या रसवहा प्रणाली (Lymphatic System-Thoractic Duct) है। आहाररूपी अन्नका रसभाग इस प्रणाली द्वारा रक्तमें मिलता है। इसका रंग श्वेत है; जबकी धमनी में वहनेवाले शुद्ध रक्तका रंग लाल चमकता लाल है; और सिराओं में वहनेवाला रक्त काला-भूरा-मरमैला सा है।

ये सब प्रणालियां शरीरमें उपर, नीचे, तिरछी फैलीं हुई हैं। शरीरमें इस छै फीट लम्बे मनुष्यमें सुईकी नोक जितनी भी जगह इन प्रणालियोंसे खाली नहीं है। आप कहीं पर सुई चुगाईये वहीं से लाल रंगका पानी वहने लगेगा। यह उस व्यापक विश्वकर्मा की दूसरी यादी का नमूना है। इन्हीं संस्मरणोंको अनादि कालसे अनन्त काल तक स्थिर बनाये रखनेके लिये उस स्रष्टाने निम्न उपदेश दिया है—

> कोऽस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूतः पुरूवतः
> सिन्धुसृत्याय जाताः तीव्रा-अरुणाः, लोहिनीः
> ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥
> (अथर्व० १०।२।११)

सुश्रुतमें इस रक्तसंचार को खेतकी नालीयों से 'केदार इव कुल्याभिः' (सु० शा०अ० ७) उपमा दी है। जिस प्रकारकी खेतमें छोटी छोटी नालीयां बना कर खेतके कोनेकोनेमें पानी फैला दिया जाता है, उसीप्रकार इस शरीरमें शाखा, अनुशाखा,प्रशाखा आदिसे सम्पूर्ण शरीरमें रक्त फैल जाता है।

यह चमकता लाल रक्त, धीरे धीरे उपयोगमें आता हुवा तथा मलिन पदार्थोंके मिलनेसे शनैः शनैः काला बन जाता है। इसीलिये मंत्रमें 'अरुणा' 'ताम्रधूम्रा' ये दोन शब्द प्रणालियों के लिये आये हैं। ये प्रणालियां क्रमसे धमनी (Artery) तथा 'सिरा' (Vein) को बताती हैं। इन्हीं धमनी और सिराके आधारपर शरीरमें रक्तसंचार फिर रहा है।

रक्तसंचार की यह अद्भूत रचना परमात्मा की यादी है।

दो वायुवें – (प्राण और अपान) —

जिस प्रकार की एक ही मनुष्य के कार्य भेदसे अनेक नाम पड जाते हैं, उसी प्रकार एक ही वायुके क्रिया भेदसे ५ या १० भेद मान लिये गये हैं। इन सब वायुवोंमें गति (वा गतिगन्धनयोः) धर्म सामान्य रहता है। इन सब क्रियाओंमें भी शरीरको धारण करने एवं शरीरके मलको बाहर करने की क्रिया मुख्यरूपमें हैं। इसलिये इन दो क्रिया करनेवाली वायुवों की प्रधानता सबसे अधिक है। चिकित्सा शास्त्रमें इन वायुवोंको क्रमसे 'प्राण' एवं 'अपान' दो नाम दिये हैं। इन दोनों का कार्य, इन दोनों का स्थान-हिंदू और मुसलमान के समान परस्पर विरुद्ध हैं। एक पूर्वको जाता है, और दूसरा पश्चिम को।

इन्हीं दोनों वायुवोंकी मुख्यतयाको योगी अनुभव करता है। जैसा कि गीतामें कहा भी है -

> अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपाने तथाऽपरे।
> प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥
> अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
> सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥
> (गीता० अ० ४।२९।३०)

योगी प्राणायाम क्रियासें अपानमें प्राणोंका,और प्राणमें अपानों का हवन करता है, दूसरे योगी प्राणोंमें ही प्राणोंको हवन करते हैं-वशमें करते हैं।

योगी मनुष्यकी यह शक्ति होती है कि वह प्राण और अपान को वशमें कर के वायुके स्वाभाविक कर्मको रोक ले। अपान वायु का कार्य मूत्र, मल, शुक्र, गर्भ-इनको बाहर निकालना है। योगी मनुष्य अपान क्रिया को वशमें करके- अपान वायुका प्राणों में हवन करके (प्राणरूपमें अपानको करके) इन्हीं बाह्य द्वारोंसे (Outlet) पानी या अन्य वस्तु अन्दर खींचने लगता है- प्राण वायुका कार्य करने लगता है - शरीरके स्वाभाविक बाह्यमार्गसे (Out-let) से-अन्तःमार्ग (In-let) का काम

...ने लगता है। इसी प्रकार प्राणको वशमें करके उसको अपानमें बदल लेता है- अर्थात् प्राण क्रिया ... स्वाभाविक अन्तःमार्ग को बदल कर बाह्यमार्ग में बदल लेता है। मुखको वमन क्रियामें बहिर्द्वार कर लेता है। इस प्रकारसे प्राणको अपानमें, और अपानको प्राणमें हवन करके योगी समानता को प्राप्त कर लेता है। समानता का नाम योग है —

'समत्वं योग उच्यते'। गीता।

इसी गतिको वेदमंत्रोंमें उपदेशरूपसे प्रजापतिने बताया है यथा-

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु पराऽन्यो वातु यद्रपः॥२॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे" ॥३॥
(ऋग० १०-१-३६)

दो वायुवें हैं- एक समुद्रके उपरसे चलता है, दूसरा जमीन के उपरसे वहता है। प्रथम वायु बलको देता है और दूसरा वायु दोषों को निकालता है। बलवान वायु औषधरूप बन कर शरीरमें आये और दूसरी वायु दोषों को दूर करे। वायु सबका केन्द्र है- इसलिये यह देवदूत है।

यह तो मंत्रका भावार्थ- शरीरमें प्राणवायु (प्रीणाति-जीवयति) पोषणरूप-बलरूप है। और अपान वायु शरीरके दूषित अंशको मलमूत्रसे बाहर निकालनेवाला है। मल-मूत्र-गर्भ-शुक्र आदि वस्तुओंको बाहर करना इसी वायुका काम है। अपानवायुके अवरोधसे भयंकर क्षोभ उत्पन्न (अलसक आदि) होते हैं। इसलिये वेदोंमें प्राण और अपान इन्हीं दो वायुवोंको मुख्य रूपसे वर्णन किया है।

प्राण वायु ही- क्षय तथा मरणोन्मुख रोगीको बल और औषध देती है, यह बात नित्यप्रति हम रोगीयोंमें देखते हैं। क्षय रोगीयोंको पर्वतके सुन्दर शृंगोंपर, देवदारूके सुन्दर जंगलोंमें भेजकर ओजोन (oz) के रूप प्राणवायु उसके शरीरमें प्रविष्ट कराते हैं। मरणोन्मुख रोगीको ओषजन वायु (Oxygen Air) को सुंघा कर (Inhalation) उसकी आयु बढाते हैं- यह तो नित्यप्रति हमारा परीक्षण है- मनुष्यको प्राणायाम गहरा श्वास करनेके लिये आदेश देते हैं। सदा कहते रहते हैं—

Stand erect, sit erect, walk erect,
(सीधे खडे हो, सीधे बैठो, सीधे चलो)

गीता कहती है- 'समं काय शिरोग्रीवम्'- शिरग्रीवा और पीठको सीधा एक रेखामें बनाओ। जिससे समुद्रकी वायु (ओजोन oz) तुममें बल देवे और अपानवायु दोषोंको बाहर फेंके।

शरीरकी रचना (प्रतिष्ठा)

भगवान् को जाननेके लिये बालबुद्धिसे स्वाभाविक रूपमें प्रश्नद्वारा पूछा जाता है। जिस प्रकारकी उत्तम कार्यको देखकर कर्ताको जानने की उत्सुकता होती है- उसी प्रकार इस विचित्र रचनावाले पुरुषको देखकर इसको बनानेवालेको पूछा जाता है, कि-

"केन (१) पार्ष्णि आभृते, केन मांसं संभृतं केन (२) गुल्फौ। (३) केनाङ्गुलीः (४) पेशनीः केन (५) खानि (६) केनौच्छलङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ (७) जंघे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व (८) स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत॥ कति देवाः कतमे त आसन् य (९) ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य। (१०) कति स्तनौ व्यदधुः क (११) कफोडौ (१२) कति स्कन्धान् कति (१३) पृष्टिरचिन्वन् ॥ को अस्य (१४) बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति। (१५) अंसौ को अस्य। कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य मम्हानि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा। मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम्। चित्वा

चित्यं ह्न्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च । गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु । समानमस्मिन् को देवोधि शिश्राय पूरुषे ॥ को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् । बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ को अस्मिन् रेतो न्यदधात्-तन्तुराता यता-मिति । मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् ॥ ... ... "

उपरोक्त पदोंमें शरीरके बाह्य-मुख्य अवयवों का नाम कीर्तन स्पष्टरूपमें सुनाई पडता है । पृष्ठ वंशकी उपमा ईंटके चिननेसे दी है जिस प्रकारकी एक ईंटपर दुसरी ईंट रखक उपर चढते जाते हैं- उसी प्रकार इसकी बनाव है ।

इस प्रकारसे शरीरके अन्तः और बाह्य अंग का स्पष्टीकरण तथा इनके नाम वेद मंत्रोंमें सुना देते हैं । शतपथ ब्राह्मणमें कर्मकाण्डमें तो अंगोंक जानना विशेष आवश्यक है । इसलिये इनका दर्शन-कीर्तन वेद मंत्रोंमें आवश्यक है । उसकी चासनी इस अध्यायमें नमूनेके रूपमें रखकर इस प्रकरणको समाप्त करता हूं ।

(क्रमशः)

यदि आपको अपने धर्मका अच्छी प्रकार अध्ययन करना है, तो आप

वैदिक संपत्ति

पुस्तक मंगवाईये । मूल्य ६) रु० और डा० व्य० १) रु० है । यह पुस्तक आप प्रारंभसे अन्ततक पढिये । एक वार अथवा दो वार पढिये । मननपूर्वक पढनेपर भी यदि आपको पसंद न आवे तो हमें लिखिये, हम आपके दाम वापस करेंगे और पुस्तक वापस मंगावेंगे । इसमें आपका कोई नुकसान नहीं है । एक वार यह पुस्तक आप पढेंगे, तो इसे आप छोड नहीं सकते । यह पुस्तक आपके साथ आजन्म रहनेयोग्य है । डा० व्य० सहित ७) सात रु० म० आर्डर द्वारा भेजकर पुस्तक मंगवाइये । शीघ्रता कीजिये ।

—स्वाध्यायमंडल, औंध, (जि० सातारा)

परमात्मध्यान

अर्थात् पराविद्याके चमत्कार संख्या ८

(ले०- श्री० रुलियारामजी कश्यप, एम्. एस्सी.)

परमात्मध्यान संख्या ७ में लिखा गया था कि 'पूज्य चचाजीके चमत्कार...को तो जुदा लेखमें लिखा जा सकता है'' तदनुसार पाठकोंकी रुचि ब्रह्मविद्यामें बढानेके लिये इस लेखमें उन्हींका वर्णन करनेका यत्न करता हूं। अपने पूज्य पिताजी- से बहुत अनुरोध करके इनका वृत्तान्त लिखवाया है ताकि ठीक ठोकही लिक्खा जाय। पांच घटनाएं जो मैंने आगे कईबार उनसे सुन रक्खी थीं उनका उन्होंने जो विवरण दिया है उसीके आधारपर मैं उनका वृत्त अपनी भाषामें लिखता हूं। यथा—

उन दिनों बाबू मुनशी रामजी लाहौर कालिजमें पढा करते थे वहांसे शहना (जिला फीरोजपुर) में गये वहां मेरे पिताजीसे कहा कि मैं मैस्मेरिज़्म सीख कर आया हूं। फिर पिताजीकी उपस्थिति में ही दिनके समय एक दिन निम्नलिखित परीक्षण (तजरुबा) किया—

(१) एक लडकेकी आयु तो लगभग १२वर्षकी थी परन्तु वह अभी क, ख आदि भी अभी कठिनता- से ही पढ सकता था, उसको बिठाकर पूज्य पिताजीके सामने ही उसपर प्रयोग (अमल) किया। उसके बैठनेके पीछे गद्दा बना कर रख दिया और उसे कहा कि हमारे किसी एक अङ्ग- को देखता रह और दिलमें ख्याल रख कि सोने लगा हूं। पांच मिनटमें लडकेने कहा कि नींद आती है उसको आज्ञा दी गयी कि दस मिनट सो जा। बारह मिनट पीछे उसने करवट बदली। पूछा गया कि 'सो चुका' उत्तर मिला कि अब तो १२ मिनट हो गये हालांकि वह घडी देखना बिल्कुल न जानता था। फिर उसको कहा गया कि तुम सैरकर आओ बम्बई देख आओ। उसने कई बातें बम्बईकी बतलाईं। फिर उसको कहा गया कि तू संस्कृत जानता है? उसने कई श्लोक संस्कृतके सुनाए और अपने पेटको सुकेडने लगा। पूछा क्यों ? उसने उत्तर दिया कि पतञ्जलिजी ऋषि खडे हैं वह आपका दर्शन करने आये हैं, उनके मार्गमें पेटकी रुकावट है। उसको कहा गया कि उनकी सेवामें मेरे नमस्कार कहो। इसके पीछे कई और बातें पूछ कर जिनका उत्तर उसने साफ साफ दिया उसको कहा गया कि यह सब भूल जाओ।

(२) उनकी सगी बहिनके जोडोंमें दर्द रहा करता था। एक दिन लगभग रातके नौ बजे मकानकी दूसरी छतपर उन्होंने अपनी बहिनको बिठा लिया नीचे अच्छा बिस्तरा बिछाया और पिछली ओर गद्दा बना कर रख दिया ताकि यदि नींद आनेसे गिरे तो चोट आदि न आवे। उसको भी पहिले उसी प्रकार कहा गया कि एक ओर देखती रहो और सोनेका ध्यान रखो थोडी देर में वह सो गई जब करवट बदली तो एक दो साधारण प्रश्न पूछकर कहा कि तुम हरि- द्वार गङ्गाजीमें स्नान कर आओ क्योंकि उसका विचार था कि मैंने हरिद्वार जाना है। उसने कहा रास्ता किधर है। उसको बतलाया गया कि यहाँसे बरनाला जाओ वहांसे रेलके रास्ते चली जाओ। उसने बरनाला जाकर कहा कि यहां तो बहुत बडे बडे साप पडे हैं। उसको कहा गया कि यह साप नहीं यह रेल की पटरी है इसी पर हो कर चली जाओ यह हरिद्वार तक जायगी।

उसने जल्दीसे कह दिया कि मैं हरिद्वार पहुंच गयी यहाँ तो सब बाजार खाली पडे हैं। (उन दिनोंमें बाढ आनेका भय था जो कि पीछेसे आ भी गया इसलिये रातको बाजार खाली रहते थे।) उससे कहा गया कि स्नान कर लो। तो उत्तर मिला कि हाय इसमें तो हड्डियां ही हड्डियां पडी हैं, मैं यहाँ अस्नान नहीं करूंगी। इसके पीछे और दो चार प्रश्न किये गये। उत्तर साफ साफ मिला।

फिर उसको कहा गया कि तू तो हकीम है अपने शरीरमें फिर कर देख कि इसमें कोई (नुक्स) दोष तो नहीं है। उत्तर मिला कि जोडोंमें बहुतसो जिलब (चिकना द्रव्य) जमी हुई है। पूछा गया यह कैसे निकले। उत्तर दिया कि या पसीने रास्ते या जुलाबके द्वारा। पूछा कौनसा ठीक रहेगा। उत्तर मिला पसीने द्वारा ही ठीक है क्योंकि जुलाबों-द्वारा दुर्बलता बहुत हो जायगी। कहा गया अच्छा-पसीनेद्वारा ही निकाल दो। उसने कहा मेरे पास गरमी नहीं है। कहा गया लो गरमी हम देते हैं और यह कहते हुए उसके नाकके पास हाथ चत्ता अङ्गु-लीओंके सिरे उसकी नाककी ओर करके एक फूंक लगा दी। उत्तर मिला कि गरमी थोडी है। एक बार फिर वैसे ही दुहरा दिया यह कहते हुए कि और गरमी लो। और पूछा गरमी अब तो काफी है? उत्तर मिला काफी, अधिक गरमी भी हानि किया करती है। इसके पीछे उन्हें कहा गया सो जाओ और भूल जाओ। उसी समयसे उसको पसीना आना आरम्भ हो गया बडा दुर्गंधित था। दो दिन तक पसीना आता रहा तीसरे दिन स्नान आदि किया। फिर वह दर्द कभी नहीं हुआ यद्यपि भूआ जी २५, २८ वर्षतक जीती रहीं थीं।

(३) यह घटना सन १८९४ की है। एक लडका १८ वर्षकी आयु नाम तिलकराम तिल्लीसे बहुत दुःखी था। कठिनतासे ही एक आध फुलका (रोटी) खा सकता था। उठने बैठनेमें भी अतीव कष्ट अनु-भव करता था। उसके पेटमें बाई ओर बहुत बडी तिल्ली थी अर्थात् आधा पेट रुका हुआ था क्योंकि वह बहुत आलस्य युक्त तथा सुस्त था इसलिये उसको लोग डिपटी कहा करते थे। उन दिनोंमें बाबू मुन्शीराम शहनामें आ गये थे। उ[स] लडकेको कहा गया कि तू बाबूजीके पास उपस्थि[त] रहकर जो कुछ काम उनका हो किया कर। लग[-] भग डेढ साल पर्यन्त वह उनके पास साधारण-तया उपस्थित ही रहा परन्तु अपने दुःखका वर्णन उसने बाबूजीसे नहीं किया, नहीं उनको ऐस[ा] विचार आया। यहां तक कि उनके लाहौरको जानेका समय आ गया कि कल प्रातः काल लाहौर-को जायंगे। पिताजीने कहा कि भाई ! (तिलक-राम) डिपटीका तो परिश्रम व्यर्थ ही गया क्योंकि वह अब भी दुःखी ही रहा। उन्होंने कहा कि उसने मेरेसे तो कभी वर्णन नहीं किया। अस्तु, आज शाम-को उसको बुलालो। तात्पर्य यह कि सायंकाल छत-पर बिस्तरा बिछाकर उसको उन्होंने अपने सामने बिठा लिया और पीछे उसके एक रजाईका गद्दा बनाकर रख दिया। उसको कहा कि मेरे किसी अङ्गको देखता रह और दिलमें विचार रख कि सोने लगा हूं। उसने दस मिनट पीछे कहा कि नींद आती है। तब उसको कहा गया, अच्छा, पन्द्रह मिनट सो जाओ। वह पन्द्रह मिनट पीछे करवट बदल कर जाग उठा। उससे कई प्रश्न किये गये जिनके उत्तर देता रहा। फिर उसको कहा गया कि तुम अपने शरीरमें फिर कर देखो तो कोई दोष इसमें है? उसने उत्तर दिया कि पेटमें बडासा पत्थर जमा हुआ है जिसने सारा पेट रोक रक्खा है। उसको कहा गया कि तुम तो स्वयं हकीम हो इसको निकाल दो (इसका उसने जो उत्तर दिया वह अब पिताजीके स्मरण नहीं रहा)। थोडा समय और बातें करके उसको कहा गया कि अब सब बातें भूल जाओ। पीछेसे उसको उठा कर कहा कि अपने घरको चले जाओ। प्रातःकाल बाबूजीको पिताजी और तिलकरामका मामा तपेता स्टेशनपर पहुंचाने चले गये जो वहांसे दस मील था जब वे उन्हें गाडी चढा कर वापिस घर पहुंचे जो लगमन ११ बजे होंगे तब तिलकरामने कहा कि मेरा पेट आज बहुत नरम

तीत होता है। तात्पर्य यह कि कुछ ही दिनोंमें ट साफ हो गया न कोई जुलाब आया न कुछ अन्य प्रकारका ही कोई और कष्ट हुआ। उस समय सर्वथा नीरोग हो गया, फिर पटियाला रियासतके उग्गीके ग्राममें पटवारी हो गया। फिर कभी तिल्लीकी शिकायत नहीं हुई॥

(४) लाहौरसे पढाई समाप्त करके ग्रामकोट गङ्गूराएमें आकर अपने घर रहने लगे। एक दिन अजीर्णनाशक गोलियां बनानेके लिये कुछ दवाईयां रगड रहे थे कि, एक युवक जिमींदार बालक जो उनके पास कभी कभी बैठा करता था, आया और कहने लगा कि 'बाबू! तू बडा हकीम बना बैठा है और मेरी आंखें सूज रही हैं, रातको नींद नहीं आती दुःखती हैं, कोई दवाई दे।' उसको वही कूंडी जिसमें अजीर्णनाशक चूर्ण रगडा गया था दे दी और कहा कि इसमें थोडा पानी डाल कर इसको धो आंखोंपर इसीकी लेप कर लो। उसने वैसा ही किया जिससे उसका आंखोंका दर्द जाता रहा।

(५) एक दिन एक स्त्री उनकी माताजीके पास आकर कहने लगी कि, तुम्हारा बेटा इलाज करता है। मैं कई बरससे दमेकी व्याधिसे दुःख उठा रही हूं कोई दवाई ले दो। माताने उनको कहा कि, इसको कोई दवाई दे दो। उन्होंने कहा कि, अच्छा, इसको कोटगङ्गूराए भेज देना। 'दूसरे तीसरे दिन वह कोटगङ्गूराएमें गई, तो उसको कुछ गोलियां देकर कहा कि, यह खा लेना। उसने पूछा, 'भाई किस तरह खाऊं।' उत्तर मिला, 'माताजीकी सिफारश है खाना न खाना, बीमारी हट जायगी।' वह चली गयी और बीमारीसे नीरोग हो गई।

(६) पूज्य पिताजी फील्डकानूनगो थे एक पटवारीकी अनुपस्थितिकी रिपोर्ट उनको एक बार करनी पडी। क्योंकि वह इनके हलकेके एक ग्रामका पटवारी था और वहां हाजिर नहीं था। इसपर उसने इनके विरुद्ध अफसर माल (ऐक्स्ट्रा ऐसिस्टैन्ट कमिश्नर) के पास कोई झूठी शिकायत लगा दी, जिसको सच समझकर उसने इन्हें पत्र-द्वारा आज्ञा देकर बुला भेजा, जिसके विशेष लेख प्रकारसे पता चलता था कि वह सख्त नाराज है। अतः उसको मिलने जाते हुए पहिले पिताजी कोट-गङ्गूराए आये जहां बाबूजी भी थे और रात वहां रह कर अगले दिन अफसर मालको मिलने गये। जाते समय बाबूजीने उन्हें कहा कि पहिलें अफसर मालको उसके डेरे (घर) पर मिलकर फिर उसके दफ्तरमें हाजिर होना। पिताजीने कहा कि, वह डेरे पर नहीं मिलेगा, क्योंकि सख्त नाराज है। उन्होंने कहा कि अवश्य ही उनके मकानपर होकर कचहरी जाना। अतः पिताजीने प्रातः काल ही उसके डेरेपर पहुंचकर चपडासी अरदलीको खबर दी। उसने कुरसी ला कर कहा कि, 'बैठो डिपटी साहिब स्नान करते हैं,' मैं उनको सूचना देता हूं। अभी उन्होंने कपडे नहीं पहिने थे।' तुरन्त पिताजी-को ऊपर बुला लिया और ऐसी नम्रतासे बातें करने लगे कि जैसे कि क्षमा मांग रहे हों। उन्होंने कहा कि उस पटवारीने कुछ ऐसे प्रकारसे बातें कहीं कि, हम लत्यमान बैठे। अब आप कचहरीमें उसका उत्तर लिखा देना। अस्तु! कचहरीमें मेरा उत्तर लिखकर पटवारीको नौकरीसे पृथक् करनेकी आज्ञा जारी कर दी। वापिस आकर यह सब वृत्तान्त पिताजीने बाबूजीको सुनाया, तो उन्होंने कहा कि अगर वह (अफसर माल) दिलमें तुम्हारे लिये कुछ बुरा भाव लाता तो जल जाता।

इस प्रकार अपने स्वर्गीय सिद्ध चचाके द प्रसिद्ध, पिताजी तथा अन्य उपस्थित कुटुंबियोंके अपनी आंखों देखे, चमत्कार लिख कर यह परमात्मध्यान सं० (८) यहीं समाप्त करता हूं। यह सब सत्य घटनायें जैसे हुई वैसे ही यथाशक्ति वर्णन कर दी गयी हैं।

पोण्डिचेरी के परमहंस।

(ले०- श्री० देवशर्मा अभय)

श्रीअरविंद उन महापुरुषोंमें से हैं जो संसारमें कभी कभी उत्पन्न होते हैं। उनकी महापुरुषता अभी संसारको मालूम नहीं है, मालूम होनेको है। कमसे कम मेरी ऐसी ही श्रद्धा है।

ऐसे महापुरुषके विषयमें भी अपने भारतवर्षमें और विशेषत: उत्तरी भारतमें लोगोंको बहुत कम ज्ञान है। इसका कारण यह है की वे इस ईश्तिहार बाजीके युग में भी (इश्तिहार-प्रोपेगन्डा) में जरा भी विश्वास नहीं रखते हैं। सत्यमें-सत्यस्वरूप परमेश्वरमें -प्रतिष्ठित होनेके कारण उन्हें संसारकी और किसी भी वस्तुकी परवाह नहीं है। इश्तिहारकी तो उन्हें जरा भी परवाह नहीं है। यही कारण है कि हम लोग इनके विषयमें कुछ भी नहीं जानते हैं, अधूरा जानते हैं या भ्रमपूर्ण बातें जानते हैं।

गत वसन्तऋतुमें मुझे पोण्डिचेरीके श्रीअरविन्द आश्रममें जाकर दो मासतक रहनेका सुअवसर परमेश्वरकी कृपासे मिला। इस दो मासके परिचयके आधारपरही मैं इस लेखमें श्रीअरविंदके विषयमें कुछ जानकारी पाठकों भी देने का यत्न करूंगा।

श्रीअरविन्दकी सिद्धि

सरकार उनको एक घोर अनार्किष्ट करके जानती है। आम जनता उनको एक महान् देशभक्त करके पूजती है। इसी वास्ते उनको ७, ८ बार कांग्रेसके प्रधानके लिये निमंत्रित किया जा चुका है। पर वे अब इस स्थितिसे ऊपर हो चुके हैं। अबसे पच्चीस वर्ष पूर्व वे बेशक अपने तीन पागलपन बताते हुए आये थे। पर शीघ्र ये उनके पहाले दो पागलपन- अर्थात् एक अपना सर्वस्व भारतमाता व जगन्माताको सौंप देनेका पागलपन और दूसरा भारतमाताको बंधन-मुक्त करनेका पागलपन-तीसरे पागलपनमें अर्थात् भगवान्के साक्षात्कारके पागलपनमें समागये। पोंडिचेरी पहुंचकर वे पूरीतरह योग साधनमें लीन हो गये। पाठकोंको आश्चर्य होगा की गत २० वर्षोंसे वे अपने मकानतकसे बाहर नहीं निकले। वे योगके जिस ध्येयके लिये साधना कर रहे थे उसमें उनको सन १९२६ के २८ नवम्बरको सफलता प्राप्त हुई। तभीसे श्रीअरविन्दने अन्योंको योग सिखानेका कार्य भी अपने ऊपर लिया। और तभीसे श्री-अरविन्दके योग-आश्रमका आरंभ हुवा। इससे पहिले कोई उनका बाकायदा आश्रम न था।

माताजी

श्रीअरविन्दके योगाश्रमका वर्णन वहां की श्री-माताजीके वर्णनके विना नहीं हो सकता। वहां पर एक फ्रैंच महिला रहती है। जिनका नाम मिरा Mirra है। आश्रममें उन्हें सब माता मा, या Mother नामसे ही जानते वा पुकारते हैं। उनकी अध्यात्मिक स्थिती श्रीअरविन्दकी स्थितिके बराबर ही समझी जाती है। जब श्रीअरविन्द केवल साधनामें लगे हुए थे तब भी कई लोग इनके साथ साधनाके लिये आकर रहते थे। उन्हीं दिनों ये माताजी लगभग १९१३ में पोंडिचेरीमें आयीं। ये जपानमें भी रही हैं और भारत-में भी आयीं, भारतमें आकर पोण्डिचेरीमें अचानक

आयीं। ये भी प्रारंभसे ही आध्यात्मिक साधनामें ...। वहां श्रीअरविन्दसे मिलीं और आश्रममें रहने ...। सन १९१४ में योरोपीय युद्धके कारण इन्हें फरान्स ...ट जाना पडा। युद्धके बाद फिर ये यहां आयीं। ...र्य' पत्र इन्हींके आग्रहसे श्रीअरविन्दने निकाला ...। धीरे धीरे श्रीअरविन्दको यह मालूम हुवा कि ... माताजीकी आध्यात्मिक स्थिति विशेष उन्नत है। ...ब तो, जैसा की मैंने ऊपर कहा है, दोनोकी स्थिति ...क समझी जाती है। बल्कि यहां तक समझा जाता है कि जो बात श्रीअरविन्दकी कही जाय या इनको कही जाय वह बात दोनोंको मालूम हो जाती है। जबसे आश्रम प्रारंभ हुआ है, आश्रमकी बाहरी सब व्यवस्था माताजी ही करती हैं। श्रीअरविन्द तबसे न किसीसे बात करते हैं और न मिलते हैं, माताजी ही सब काम करती हैं। मानों ये माताजी प्रकृति हैं, और श्रीअरविन्द आत्मा हैं।

आम लोगोंमें फैला हुवा है कि ये माताजी पाल रिपार की धर्मपत्नी है पर यह भ्रम है। ये तो अविवाहिता हैं।

श्रीअरविन्दके दर्शन

जैसा मैंने अभी कहा है कि श्रीअरविन्द २८ नवम्बर १९२६ से सर्वथा एकान्तसेवी हो गये हैं तबसे उनसे न कोई मिल सकता है, न उन्हें देख सकता है, बात तो करेगा ही क्या। माताजी ही एक मात्र अपवाद हैं। पर उन्हें भी बहुत ही कम मिलनेकी आवश्यकता होती है। तो भी आम लोगोंके लाभके लिये यह व्यवस्था की गई है कि वर्षमें तीन दिन उनके दर्शन किये जा सकते हैं। वे तीन दिन निम्न लिखित हैं–

२१ फरवरी (माताजीका जन्मदिन)
१५ अगस्त (श्रीअरविन्दका जन्मदिन)
२८ नवम्बर (श्रीअरविन्दका सिद्धिका दिन)

इन तीन दिन जो उनके दर्शन प्राप्त करना चाहें उन्हें पहिलेसे दर्शनकी आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए। विना आज्ञा प्राप्त किये किसीको वहां नहीं जाना चाहिये। ऐसे ही जाना व्यर्थ हो सकता है। गत २१ फरवरीके दिन मैंने उनके दर्शनका लाभ प्राप्त किया। लगभग ३०० आदमी भिन्नभिन्न जगहसे दर्शनार्थी आये थे। इस बारके दर्शनार्थी महानुभावोंमें श्री काका कालेलकरका नाम उल्लेखनीय है। पाठकोंको यह ध्यान रखना चाहिए कि इस दर्शनके समयमें भी उनसे बातचीत कोई नहीं की जा सकती है। दर्शनके लिये १-१॥ मिनट प्रत्येक दर्शनार्थीको मिलता है। प्रथा यह है की दर्शनार्थी फूल वा माला लेकर जाते हैं, उन्हें और साथमें दायें बैठी माताजीको प्रणाम करते हैं। इस पर वे दोनों सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हैं। एक दो क्षण उनकी तरफ देखते हुए या देरतक प्रणाम करते हुए दर्शनार्थी अपना १॥ मिनट बीता देते हैं। दर्शनमें मैंने उनकी मूर्तिको फोटोमें देखी मूर्तिसे अधिक भव्य पाया। पाठकोंको मालूम होना चाहिये कि जो भी कोई फोटो मिलती है वह कमसे कम २० वर्ष पुरानी है। इसके बार इन्होंने अपनी कोई फोटो नहीं खिंचवायी।

उनका आश्रम

लोग समझते होंगे कि उनका आश्रम किसी एक बडे से मकानमें शहरसे बाहर होगा। परंतु ऐसा नहीं है। आश्रम बनाया नहीं गया है। यह बन गया है। स्वभावतः विकसित हुवा है। अतः जिस मकानमें श्रीअरविन्द रहते थे उसमें तथा उससे कुछ कुछ दूरी पर करीब ४० मकानोंमें आश्रमवासी रहते हैं। आश्रमवासियोंको जोडनेवाले श्रीअरविन्द तथा माताजी हैं। कोई फिरा हुवा स्थान या किसी अन्य बाहीरी स्थितिकी उन्हें जोडनेके लिये आवश्यकता नहीं है। हां, सब साधक, भोजन, प्रणाम व ध्यानके सार्वजनिक कार्य प्रायः एक जगह इकट्ठा मिलकर करते हैं।

आजकल करीब १५० साधक साधिकायें वहां रहती हैं। इनमें ९०-१०० साधक और ५०-६० साधिकायें हैं । कुछ युरोपियन भी रहते हैं। तीन, चार, परिवार मुसलमान भाइयोंके भी हैं । प्रान्तोंके दृष्टिसे गुजराती सबसे अधिक हैं । दूसरेपर बंगाली और फिर मद्रासी हैं। संयुक्त प्रान्त व महाराष्ट्रका वहां कोई नहीं है। पंजाबी हालमें ही दो आदमी वहां पहुंचे हैं ।

भोजनव्यवस्था

बहुतोंको शायद् ऐसा मालूम होगा कि वहां भोजनसंबंधी कोई नियम संयम नहीं है । वहां जानेसे पूर्व मैंने भी सुन रक्खा था कि वहां मांस, शराबका भी परहेज नहीं है । परन्तु वहां ऐसा नहीं देखा। (यद्यपि सिद्धान्ततः उच्च आध्यात्मिकताके लिये ऐसे कोई बंधन वे अनिवार्य नहीं समझते)। आश्रमवासियोंका भोजन निम्न प्रकार है—

प्रातराश-पावभर गौका दूध, ब्राउन ब्रेड (बिना छने आटेकी डबल रोटी) के चार टुकडे और एक केला।

दोपहर- चावल, रोटी, दाल या शाक, पावभर दहीं, तीन केले ।

सायं- पावभर दूध और रोटी, शाक या दाल.

श्री-अरविन्द व माताजी भी फलोंका रस, दूध व शाक रोटी आदि ही बहुत थोडी मात्रामें सेवन करते हैं ।

अन्य व्यवस्था

आश्रमवासी ही भोजन बनाते हैं । आश्रमकी अपनी बिजलीकी चक्की तथा बेकरी है । इसके अतिरिक्त इन्जिनियरिंग, बढई, चित्रण, गोशाला, बागवानी आदि के विभाग (Department) आश्रमकी तरफसे चलते हैं। जिनमें साधक लोग अपनी साधनाके तौर पर कार्य करते हैं । उनका हर-एक कार्य साधनाके तौर पर होता है । माताजी जिस साधकको जो काम सौंपती उसे वही करना होता है । और प्रायः साधक उसे अपना कल्याणकारी कार्य समझकर ही करते हैं ।

खर्च

पाठक लोग जानना चाहेंगे कि डेढसौ लोगोंका खर्च कैसे चलता होगा । आश्रमका खर्च ४, ५ हजार रुपये माहवार होगा । वैसे तो जो आश्रमवासी बनता है- स्वीकार कर लिया जाता है वह अपना सब कुछ (जहां अपना अन्तरात्मा और मन, वहां अपना सब भौलिक धन भी) आश्रमको समर्पित कर देता है इससे कुछ संपत्ति आश्रमको मिली है । पर आश्रमवासियोंमें अधिकांश तो ऐसे ही हैं जिनके पास एक कौडी भी नहीं थी । और प्रत्येक आश्रमवासीपर ३०।४० रुपया माहवार तो व्यय होता ही है । यह रुपया कुछ भक्त लोगोंसे प्राप्त होता है । श्रीअरविन्दने कभी आश्रमके लिये चन्देकी अपील नहीं की । बल्कि औरोंकों भी आश्रमके लिये रुपया इकट्ठा करनेकी उन्होंने कभी इजाजत नहीं दी। वे इस संस्थाको सार्वजनिक संस्था नहीं समझते। अतः जनतासे न मांगते हैं और न जनताके प्रति उत्तरदाता समझते हैं । जो कुछ भक्त लोग स्वयमेव दे जाते हैं उससे काम चलाते हैं । वे मानते हैं की परमेश्वरका यह कार्य है, परमेश्वर ही रुपया देता है और देगा। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि उन्हें कभी कभी आर्थिक तंगी होती है तो भी अर्थाभावके कारण उनका कार्य कभी रुका नहीं है ।

उनका भावी कार्यक्रम

'क्या वे फिर पॉलिटिक्समें आवेंगे?' यह प्रश्न है जो कि प्रायः पूछा जाता है । यह प्रश्न आम लोगोंके लिये स्वाभाविक भी है । पर जो मनुष्य जान गये हैं कि वे कितने अतिमहान् कार्यमें लगे हैं उनके लिये ऐसे प्रश्नोंकी कोई गुंजाइश नहीं रहती। यद्यपि आज भी उनके दरवाजेके सामने फरेंच और ब्रिटिश

आयू. डी. का पहरा लगातार लगा रहता है। र उस मकानमें घुसनेवाला व्यक्ति अपने विषयमें लगाये जानेसे अपनेको बचा नहीं सकता है भी यह सच है कि वहां शुद्ध आध्यात्मिकता-सिवाय और कुछ नहीं है। सन १९२६ क तो श्रीअरविन्द यह कहते रहे 'अभी हीं' 'अभी कुछ नहीं कह सकता,' पर उसके बादसे वे एक महान् कार्यमें लग चुके हैं। वह कार्य है क नयी 'जाति,' उत्पन्न करना, मनुष्यको देव बनाना। वे ऐसा मनुष्य तैयार कर रहे हैं जो विज्ञान (Supermind) तत्त्वको प्राप्त करेगा और उसके कारण उसका मन अज्ञान और संशयकी क्रीडा-भूमी न रहकर सत्यप्रकाशका मार्ग बन जायगा, उसका प्राण बदल कर, काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिसे सर्वथा शून्य हो कर कार्य करेगा और उसके शरीरका भी ऐसा रूपान्तर हो जायगा कि वह यूं ही मृत्युके वश न होगा। यह बहुत भारी साधना है, इसमें शायद् एक युग लग जायगा। परंतु पोण्डिचेरीके ये पर-महंस जिस कार्य के लिये उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं वह यही है। इसी महान् कार्यका आरंभ इन्होंने यह आश्रम खोलकर किया है। यद्यपि वे बोलते और मिलते नहीं हैं तो भी लिखकर और अपनी आन्तरिक शक्तिसे आश्रमका पथप्रदर्शन करते हैं। उनसे लगभग ६ घंटे प्रतिदिन अपने हाथसे साधकोंके पत्रोंके उत्तर देनेमें बीतते हैं। दिनरातमें केवल दो तीन घंटे ही वे विश्राम- निद्रा लेते हैं। वे इस समय जितना कार्य कर रहे हैं उतना कार्य कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता। देशकी स्वाधीनता तो उनके इस महान् कार्यमे कहीं स्वयमेव आजायगी। उसकी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

मुझपर क्या प्रभाव पडा ?

आखिर लोग मुझसे यह जरूर पूछते हैं कि वहां दो मास रहनेका मुझपर क्या प्रभाव पडा ! एक वाक्यमें उसका उत्तर है कि-

'उनके ग्रंथ पढकर मेरी उनमें बहुत श्रद्धा थी। परंतु वहां रहकर मेरी यह श्रद्धा और भी अधिक बढ गयी है।'

वहां खादी नहीं पहिनी जाती, माताजी तो रोज नयी नयी रेशमी साडियां पहनती हैं ! वहां गुप्तता बहुत वर्ती जाती है। एवं और कई बातें हैं। जिनका असर बहुतसे लोगोंपर बुरा पडता है और कईओं-को तो यह सब ढोंग प्रतीत होता है। परंतु मेरे मन-पर इनका कोई बुरा प्रभाव नहीं हुआ है। क्योंकि मैं इनके दूसरे पक्ष को भी जानता हूं। मेरा तो यही विश्वास है कि वहांपर एक बडा भारी (आध्यात्मिक) कार्य हो रहा है, जिसकी महत्ताको आज हम नहीं समझ रहे हैं।

इन परमहंस (श्रीअरविन्द)के विषयमें सच्चे जिज्ञासुओंको और भी जो कुछ मैं जानता हूं बतानेको तैयार हूं। अतः मेरा विचार है कि समय मिलनेपर मैं उन वार्तालापोंको भी प्रकाशित करूंगा जो कि पॉडिचेरी से लौटने पर गांधीजीके वर्धा आश्रम की तथा गुरुकुलकांगडी की इसी निमित्त हुई समाजोंमें मुझसे किये गये प्रश्नोंके उत्तर के रूपमें प्रकट कर चुका हूं। पर अभी इतना ही।

समालोचना

'भूगोल' का भूगोल अटलस अंक

श्री० पं० रामनारायणजी मिश्र बी. ए., संपादक, 'भूगोल' का हम सहृदय धन्यवाद करते हुए उनके 'अटलस' अंक को ग्राहकोंके सम्मुख रखते हैं। पं० रामनारायणजीका भूगोल मासिक का कार्य देखकर हमें अत्यंत आनंद होता है। भूगोल जैसे नीरस विषयको सरस बनानेका श्रेय निःसंदेह भारतवर्षमें श्री०पं०रामनारायणजी को ही सबसे प्रथम प्राप्त हुआ है। वास्तवमें भारतवर्षके हिंदी जगत् के घर घरमें यह मासिक पहुंचना चाहिये और पाठकोंको विश्वका विज्ञान जो इसमें प्रकाशित होता है वह पढकर अपनी भौगोलिक दृष्टिको विकसित करना चाहिये। परंतु ऐसा नहीं हो रहा है जिससे पंडितजी को आर्थिक हानि उठाकर अपना मासिक केवल ध्येयनिष्ठासे हि चलानेका भार उठाना पडता है।

आजकल स्त्रैण लेखोंके मासिकोंका जमाना है। जिस मासिकमें स्त्रियोंके चित्र नहीं और स्त्रीविषयक प्रणयकथा नहीं, वे मासिक इस कालमें चलना कठिन है। फिर भूगोल जैसे विषयके मासिक चलाना कितना कठिन होगा इसकी कल्पना ही पाठक कर सकते हैं। यह अवस्था बहुत भयंकर है और यदि स्त्रैण विषयका घासलेटी वाङ्मय ही जनताको पसंद होगा, तो देशके शीघ्र उठनेकी आशा बहुत कम होगी। सब ग्राहकोंको इसका विचार करना चाहिए।

आज हमारे सामने भूगोल मासिकका 'अटलस अंक' है। हम चाहते हैं कि ग्राहक इसको खरीदें और जो नानादेशोंका विज्ञान इसमें बतलाया है उसको एकवार अवश्य देखें। अटलस भूगोलका प्राण है विना अच्छी अटलसके भूगोलके पढने पढानेमें बडी बाधाएं पडती हैं। इन बाधाओंको दूर करने के लिए ही यह अटलस अंक बनाया गया है इससे इसकी विशेषताका पता लग सकता है।

पाठक इस पुस्तकमें निम्नलिखित बातें देख सकते हैं— सौरमंडल, ऋतुपरिवर्तन, देशोंके झण्डे, भिन्न देशोंकी प्राकृतिक अवस्था, मिट्टी, तापक्रम, भूगर्भमें चट्टाने, वर्षा और हवा, वनस्पति, शक्कर, ज्वारभाटा, भोजन वस्त्र, जनसंख्या, व्यापार व्यवहार, सब देशोंके राजनैतिक तथा प्राकृति तिरंगे चित्र, नदियोंके प्रवाह, दुनियाकी खोज आदि वर्णन चित्रोंद्वारा और नकशोंद्वारा किया है। देशका चित्र देखनेसे उसकी सब स्थिति स्पष्ट दर्शकके सामने खडी होती है। ऐसी युक्तिसे चित्र इस अंकमें दिये हैं।

भारतवर्षसंबंधी ये चित्र हैं— हवाई मार्ग, धरती, जनसंख्या, उपजाऊपन, । खनिजसंपत्ति, वनस्पति, वर्षा, प्रधान उपज, इत्यादि अनेक चित्रोंद्वारा भारतवर्षकी स्थिति दर्शायी है। चित्र इतने उत्तम हैं कि उनको देखतेहि वर्ण्य बात स्पष्ट हो जाती है।

यह उत्तम 'अटलस अंक' भूगोलके ग्राहकोंको विनामूल्य दिया जाता है। भूगोल का वार्षीक मूल्य ३) है और इस प्रकारका अंक उस मूल्यमें देना बडा त्यागका कार्य है। हमें आशा है कि पाठक इसके ग्राहक बनकर इस अंकको प्राप्त करेंगे।

इस अटलस अंकाका मूल्य २) है और हम कह सकते हैं कि इस मूल्यमें यह बहुत सस्ता है।

यदि हायस्कूल, नार्मल स्कूल और प्राइमरी स्कूल आदिमें यह मासिक लिया जाय तो निःसन्देह अध्यापक वर्ग अपने शिष्योंको भूगोलका पाठ सरसताके साथ दे सकते हैं। हमे पूर्ण आशा है कि हिंदी पाठक इस भूगोल मासिकके ग्राहक बनकर पं० रामनारायण मिश्रजीके इस कार्यकी अच्छी सहायता करेंगे।

[मिलनेका पता 'भूगोल कार्यालय, प्रयाग']

(६) प्राणशक्तिका विकास करना हरएकका कर्तव्य है। क्योंकि आत्माकी शक्तिके साथ प्रेरित प्राण शरीरके प्रत्येक अंगमें जाकर वहांके स्वास्थ्यकी रक्षा और बलकी वृद्धि करता है।

(७) एकही प्राणके प्राण अपान व्यान उदान और समान ये भेद हैं, तथा अन्य उप प्राणभी उसीके प्रभेद हैं।

(८) संतोष वृत्ति और पवित्रतासे प्राणका सामर्थ्य बढता है।

(९) प्राणका वीर्यके साथ संबंध है। वीर्यरक्षणसे प्राण शक्तिकी वृद्धि होती है और प्राणायामसे वीर्यकी स्थिरता होती है। इसप्रकार इनका परस्पर संबंध है।

(१०) परमेश्वरकी उपासना और संगीतका अभ्यास इन दोनोंसे प्राणका बल बढ जाता है।

(११) प्राणशक्तिकी रक्षा और अभिवृद्धिके लिये सब अन्य इंद्रियोंके सुखोंको त्यागना चाहिए; अर्थात् अन्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त करनेके लिये प्राणकी हानी करना नहीं चाहिए।

(१२) सब शक्तियोंमें प्राणशक्तिही मुख्य और प्रमुख शक्ति है।

(१३) सत्कर्मके साथ प्राणका पोषण करना चाहिए।

(१४) वाचा, मन और कर्ममें शुद्धता और पवित्रता रखना चाहिए। इससे बल बढता है।

(१५) सोनेके समय अपनी सब इंद्रियशक्तियां किस प्रकार आत्मामें लीन होतीं हैं, और उठनेके समय पुनः किस प्रकार व्यक्तरूपमें कार्य करने लगतीं हैं इसका विचार करना और इसमें प्राणके कार्यका अनुभव लेना चाहिए। इस अभ्याससे आत्माकी विलक्षण शक्ति जानी जाती है।

(१६) संपूर्ण रोगबीजों और शारीरिक दोषोंको प्राण ही दूर करता है। जबतक प्राण है तबतक शरीरमें अमृत है।

(१७) भोजनके साथ, प्राणशक्ति, आयुष्य, आरोग्य आदिका संबंध है। इस लिये ऐसा उत्तम सात्विक भोजन करना चाहिए कि जो आयुष्य आरोग्य आदिकी वृद्धि कर सके।

(१८) सहस्रों सूक्ष्म रूपोंसे शरीरमें प्राण कार्य करता है।

(१९) प्राण संवर्धनके नियमोंके विरुद्ध व्यवहार करनेसे सब शक्ति क्षीण होकर अकाल मृत्यु होती है। इसलिये इस प्रकारकी नियमविरुद्ध आचरण करनेकी

प्रवृत्तिको रोकना चाहिये।

(२०) अग्नि, वायु, रवि आदि बाह्य देवताएं अपने शरीरमें वाचा, प्राण, चक्षु आदि रूपसे रहीं हैं। इस प्रकार अपना शरीर देवताओंका मंदिर है और मैं उन सब देवताओंका अधिष्ठाता हूं। यह भावना मनमें स्थिर करना चाहिये। और अपने आपको उक्त भावनारूप ही समझना चाहिये।

(२१) अपने आपको अपराजित, विजयी और शक्तिका केंद्र मानना उचित है।

(२२) प्राण ही रुद्र है। रुद्रवाचक सब शब्द प्राणवाचक हैं।

(२३) प्राणके आधारसे ही सब विश्व चल रहा है। प्राणियोंके अंदर यह बडी विलक्षण शक्ति है।

(२४) मैं पुरुषार्थसे अवश्य ही अपनी सब शक्तियोंका विकास करूंगा, ऐसा दृढ निश्चय करना योग्य है।

(२५) अपने आपको कभी हीन, दीन, दुर्बल नहीं समझना, परंतु अपने प्रभावका गौरव ही सदा देखना चाहिए।

(२६) जगत्में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि जो मुझे कष्ट दे सकेगी। मैं सब कष्टोंको दूर करनेका सामर्थ्य रखता हूं। यह भाव मनमें रखना चाहिए।

(२७) सर्व शक्तिमान परमेश्वर मेरा मित्र है, इस बातपर पूर्ण विश्वास रखना, तथा उसको अपना पिता, माता, भाई आदि समझना। उसमें और मेरेमें स्थान काल आदिका भेद नहीं है।

(२८) योग्य कालमें योग्य कार्य करना। कालकी अनुकूलता प्राप्त होनेपर उसको दूर नहीं करना। आजका कर्तव्य कलके लिये नहीं रखना।

(२९) स्फूर्ति और जागृति धारण करनेसे उन्नति होती है।

(३०) दीर्घ आयु ही बडा धन है, उसको और भी बढाना चाहिए। निर्दोष बननेसे उस धनकी वृद्धि होती है।

(३१) उत्साह, सावधानता, स्फूर्ति, जागृति, स्वसंरक्षणकी भावना और योजनासे उन्नतिका साधन किया जा सकता है।

(३२) सदा ऊपर उठनेके लिये प्रयत्न होना चाहिए, ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिए कि जिससे नीचे गिरनेकी संभावना हो सके।

(३३) इस अमृतमय शरीरमें आकार व्यक्तिकी उन्नति और सब जनताकी उन्नति करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिए। जीवन का यही उद्देश है।

(३४) संपूर्ण अनिष्टोंके साथ युद्ध करके अपना विजय संपादन करना चाहिए।

(३५) हृदयकी भक्ति और मस्तिष्कका तर्क इन दोनों शक्तियोंको एक ही सत्कार्यमें लगाना चाहिए तथा इन दोनोंका सम विकास करना चाहिए।

(३६) योगीका सिर सचमुच देवोंका वसतिस्थान है।

(३७) अपने ही हृदयमें ब्रह्मनगरी है, वह ही स्वर्ग और वह ही अमरावती है। यही देवोंकी अयोध्या है। ब्रह्मज्ञानी इसको ठीक प्रकार जानते हैं।

(३८) जो आत्मशक्तिका विकास करता है वह ही स्वकीय गौरवके साथ इस अपनी राजधानीमें प्रवेश करता है।

(३९) प्राणको अपने स्वाधीन करके मस्तिष्कके ऊपर भेजना चाहिए। जहां विचारोंकी गति नहीं है वहां पहुंचना चाहिए, वह ही आत्माका स्थान है।

(४०) निश्चयके साथ पुरुषार्थके प्रयत्नसे उन्नतिके पथपर चलनेवाला योगी अपनी सब प्रकारसे उन्नति कर सकता है।

इसप्रकार वेदमंत्रोंका आशय है। पाठक इसका वारंवार विचार करें और अपनी उन्नतिके लिये उपयोगी बोध लेलें। तथा प्राप्त बोधके अनुसार आचरण करके अपने और जनताके अभ्युदय और निश्रेयस प्राप्तिके साधनमें सदा तत्पर रहें।

इस लेखमें थोडेसे वेदमंत्र दिये हैं जिनमें प्राणविषयक उपदेश विशेष रीतिसे स्पष्ट है। परंतु इसके अतिरिक्त अन्य देवताओंके सूक्तोंमें गुप्त रीतिसे जो प्राणविद्याका वर्णन है उसकी भी खोज होनी चाहिए। आशा है कि पाठक स्वयं प्राणविद्याका अभ्यास करके उक्त खोज करनेके पवित्र कार्यमें अपने आपको समर्पित करेंगे।

स्वयं अनुभव लेनेके विना उक्त प्रकारकी खोज नहीं हो सकती, इसलिये प्रथम प्राणायामका साधन स्वयं करना चाहिए। जो सज्जन प्राणायामका साधन स्वयं करेंगे और उच्च भूमिकाओंमें जाकर वहांका प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे, उनको ही वैदिक संकेतोंका उत्तम ज्ञान होना संभव है। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे प्रथम अनुष्ठान द्वारा स्वयं अनुभव लेनेका यत्न करें, और पश्चात् वैदिक प्राणविद्याकी खोज करके पीछेसे आनेवाले सज्जनोंका मार्ग सुगम करें। हरएकके थोडे थोडे प्रयत्नसे महान कार्य सिद्ध हो सकता है। आशा है कि पाठक उत्साहके साथ अपूर्व प्रयत्न करेंगे।

उपनिषदोंमें प्राण-विद्या।

वेदमंत्रोंमें जो अध्यात्मविद्या है, वह ही उपनिषदोंमें बतलाई है। अध्यात्मविद्याके

अनेक अंगोंमें प्राणविद्या नामक एक मुख्य अंग है। वह जैसा वेदके मंत्रोंमें है वैसा उपनिषदोंके मंत्रोंमें भी है। इससे पूर्व वेदमंत्रोंकी प्राणविद्या सारांशरूपसे बताई है, अब उपनिषदोंकी प्राणविद्या देखना है।

प्राणकी श्रेष्ठता।

प्राण सब शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ शक्ति है, इस विषयमें निम्न वचन देखिये—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते।
प्राणेन जातानि जीवंति। प्राणं प्रयंत्यभि सं विशंतीति ॥ तै० उ०३।३

" प्राणही ब्रह्म है, क्योंकि प्राणसे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, प्राणसे जीवित रहते हैं और अंतमें प्राणमें ही जाकर मिल जाते हैं।"

यह प्राणशक्तिका महत्त्व है। प्राण सबसे बडी शक्ति है, सब अन्य शक्तियां प्राण-पर ही अवलंबित रहतीं हैं। जबतक प्राण रहता है तबतक अन्य शक्तियां रहतीं हैं, प्राण जाने लगा, तो अन्यशक्तियां प्रथम चलीं जातीं हैं, और पश्चात् प्राण निकल जाता है। न केवल प्राणियोंकोही प्राणका आधार है, परंतु औषधि वनस्पति तथा अन्य स्थिरचर पदार्थ, इन सबको भी प्राणशक्तिका ही आधार है। प्राणशक्ति सर्वत्र व्यापक है और सबके अंदर रहती हुई सबका धारण पोषण कर रही है। प्रजापति परमात्माने सबसे प्रथम जो दो पदार्थ उत्पन्न किये उनमेंसे एक प्राण है और दूसरी रयि हैं। इस विषयमें देखिये —

स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं च ॥ ४ ॥ आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चंद्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥ प्रश्न. उ० १

" परमेश्वरने सबसे प्रथम स्त्रीपुरुषका एक जोडा उत्पन्न किया। उसमें एक प्राण है और दूसरी रयि है। जगतमें आदित्य ही प्राण है, और चंद्रमा तथा मूर्तिमान जगत् जिसमें दृश्य और अदृश्य पदार्थ मात्र हैं, रयि है।"

अर्थात् एक प्राणशक्ति और दूसरी रयिशक्ति सबसे प्रथम उत्पन्न हुई। इसका भाव निम्न कोष्टकसे ज्ञात होगा, देखिये—

प्राण	रयि
आदित्य	चंद्रमाः
पुरुष	स्त्री, प्रकृति
Positive	Negative

जगत्के ये मातापिता हैं, इनसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। संपूर्ण जगतमें इनका कार्य है। सूर्यमालामें सूर्य प्राण है, अन्य चंद्र आदि रयि है, शरीरमें मुख्य-प्राण प्राण है और अन्य स्थूल शरीर रयि है, देहमें सीधी बगल प्राण है और बांई बगल रयि है। इस प्रकार एक दूसरेके अंदर रयि और प्राणशक्तियां व्यापक हैं, किसी स्थानपर ये दोनों शक्तियां नहीं हैं ऐसा नहीं है; सर्वत्र रहकर सब स्थिरचरमें इनका कार्य हो रहा है; इसको देखनेसे प्राणकी सर्वव्यापकताका पता लग सकता है। इस प्रकार यह सब देवोंका देव है इसलिये कहा है कि-

कतम एको देव इति प्राण इति ॥ बृ. ३।९।९

" एक देव कौनसा है ? प्राण है। " अर्थात् सब देवोंमें मुख्य एक देव कौनसा है ? उत्तरमें निवेदन है कि प्राणही सबसे मुख्य और श्रेष्ठ देव है। और देखिये-

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ छां. ५।१।१। बृ. ६।१।१

" प्राणही सबसे मुख्य और श्रेष्ठ है। " सब अन्य देव इसके आधारसे रहते हैं। तथा—

(१) प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥ बृ. ५।१४।४

(२) प्राणो वा अमृतम् ॥ बृ. १।६।३

(३) प्राणो वै सत्यम् ॥ बृ. २।१।२०

(४) प्राणो वै यशो बलम् ॥ बृ. १।२।६

" (१) प्राणही बल है,वह बल प्राणमें रहता है। (२) प्राणही अमृत है, (३) प्राणही सत्य है, (४) प्राणही यश और बल है। " इसप्रकार प्राणका महत्त्व है। प्राणकी श्रेष्ठता इतनी है कि उसका वर्णन शब्दोंसे नहीं हो सकता।

प्राण कहांसे आता है ?

परमात्माने प्राणकी उत्पत्ति की है, इसका वर्णन पूर्व स्थलमें हो चुका है। परंतु इस प्राणशक्तिकी प्राप्ति प्राणियोंको कैसी होती है, इसविषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य है—

आदित्य उद्यन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ॥ यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥६॥ स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ॥ तदेतदृचाभ्युक्तम्॥७॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपंतम् ॥ सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥

प्रश्न. उ. १।६-८

" सूर्यका जब उदय होता है तब सबही दिशाओंमें सूर्यकिरणोंके द्वारा प्राण रखा जाता है। इसप्रकार सर्वत्र सूर्यकिरणोंके द्वाराही प्राण पहुंचता है ॥ यह सूर्यही प्राणरूप वैश्वानर अग्नि है ॥ यह सूर्य (विश्व-रूपं) सब रूपका प्रकाशक, (हरिणं) अंधकारका हरण करनेवाला, (जात-वेदसं) धनोंका उत्पादक, एक, श्रेष्ठ तेजसे युक्त, सेंकडों प्रकारोंसे सहस्रों किरणोंके साथ प्रकाशनेवाला यह प्रजाओंका प्राण उदयको प्राप्त होता है। "

यह सूर्यका वर्णन बता रहा है कि सूर्यका प्राणके साथ क्या संबंध है। सूर्यकिरणोंके विना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती । इस सूर्य मालिकाका मूल प्राण यह सूर्य देव ही है। इसी कारण वेदमंत्रोंमें आयु, आरोग्य, बल आदिके साथ सूर्यका संबंध वर्णन किया है। सूर्यप्रकाशका हमारे आरोग्यके साथ कितना घनिष्ट संबंध है इसका यहां पता लग सकता है। जो लोग सदा अंधेरे स्थानमें रहते हैं, सूर्यप्रकाशमें क्रीडा नहीं करते, सूर्यके प्रकाशसे अपना आरोग्य नहीं संपादन करते हैं; और अपने आरोग्यके लिये वैद्यों,हकीमों और डाक्टरोंके घर भरते रहते हैं, विषरूप दवाइयां पीते हैं, उनकी अज्ञानताकी सीमा कहां है ? परमात्माने अपार दयासे सूर्य और वायु उत्पन्न किया है, और उनसे पूर्ण आरोग्य संपादन हो सकता है। योग्य रीतिसे प्राणायामद्वारा उनका सेवन किया जायगा, तो स्वभावतः ही आरोग्य मिल सकता है। इतना सस्ता आरोग्य होनेपर भी मनुष्य ऐसी अवस्थातक आ पहुंचे हैं कि अनंत संपत्तिका व्यय करनेपर भी उनको आरोग्य नहीं प्राप्त होता। पाठको, देखिये कि वेदके उपदेशोंसे जनता कितनी दूर गयी है। अस्तु। विश्वव्यापक प्राण प्राप्त होनेका मार्ग इस प्रकार है। वह प्राण सूर्यमें केंद्रित हुआ है, वहांसे सूर्यकिरणोंद्वारा वायुमें आता है और वायुके साथ हमारे खूनमें जाकर हमारा जीवन बढाता है। जो प्राणायाम करना चाहते हैं उनको इस बातका ठीक ठीक पता होना चाहिये। इसी प्राणका और वर्णन देखिये-

देवोंकी घमंड।

" एक समय ऐसा हुआ कि बाह्य सृष्टिमें पृथिवी, आप, तेज, वायु ये देव, तथा शरीरके अंदर वाचा, मन, चक्षु और श्रोत्र ये देव समझने लगे कि हम ही इस

जगतको धारण करते हैं, और हमारेसे कोई श्रेष्ठ शक्ति नहीं है। इन देवोंका यह गर्व देखकर प्राण कहने लगा कि, हे देवो! ऐसी घमंड न कीजिए, मैं ही अपने आपको पांच विभागोंमें विभक्त करके इसकी धारणा कर रहा हूं। परंतु इस कथनको उन देवोंने माना नहीं, उस समय मुख्य प्राण वहांसे हटने लगा, तब सब देव कांपने लगे। फिर जब प्राण आगया तब देव प्रसन्न हुए। इससे देवोंको पता लगा कि यह सब प्राणकी शक्ति है कि जिसके कारण हम कार्य कर रहे हैं, हमारी ही केवल शक्तिसे हम इस कार्यको चलानेमें सर्वथा असमर्थ हैं।" इसप्रकार जब देवोंने प्राणकी महिमा विदित की, तब वे प्राणकी स्तुति करने लगे। यह स्तुति निम्न मंत्रोंमें है—

प्राणस्तुति।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥ ५ ॥ अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥ प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति जायसे ॥ तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रति तिष्ठसि ॥ ७ ॥

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा ॥ ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वांगिरसामसि ॥ ८ ॥ इंद्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ॥ त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥ यदा त्वमभि वर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः ॥ आनंदरूपास्तिष्ठंति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १०॥ व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ॥ वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मारिश्व नः॥ ११ ॥ या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ॥ या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥ प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥ १३ ॥ प्रश्न.उ. २

" यह प्राण अग्नि, वायु, सूर्य, पर्जन्य, इंद्र, पृथिवी, रयि आदि सब है॥ जिस प्रकार रथ नाभीमें आरे जुडे होते हैं, उसी प्रकार प्राणमें सब जुडा हुआ है॥ ऋचा, यजु, साम, यज्ञ, क्षत्र और ज्ञान सबही प्राणके आधारसे है॥ हे प्राण! तू प्रजापति है और गर्भमें तू ही जाता है। सब प्रजायें तेरे लिये ही बली अर्पण करती हैं। तू देवोंका श्रेष्ठ संचालक और पितरोंकी स्वकीय धारण शक्ति है। अथर्वा आंगिरस

ऋषियोंका सत्य तपाचरण भी तेरा ही प्रभाव है ॥ तू इंद्र, रुद्र, सूर्य, है, तू ही तेजसे तेजस्वी हो रहा है ॥ जब तू वृष्टि करता है तब सब प्रजायें आनंदित होतीं हैं क्योंकि उनको बहुत अन्न इस वृष्टिसे प्राप्त होता है ॥ तू ही व्रात्य एक ऋषि और सब विश्वका स्वामी है, हम दाता हैं और तू हम सबका पिता है ॥ जो तेरा शरीर वाचा, चक्षु, श्रोत्र और मनमें है, उसको कल्याण रूप करो और हमारेसे दूर न हो ॥ जो कुछ त्रिलोकीमें है वह सब प्राणके वशमें है । माताके समान हमारा संरक्षण करो और शोभा तथा प्रज्ञा हमें देओ ॥ ”

यह देवोंका बनाया प्राणसूक्त देखनेसे प्राणका महत्त्व ध्यानमें आ सकता है ॥ यह सूक्त कई दृष्टियोंसे विचार करने योग्य है । पहिली बात जो इसमें कही है वह यह है कि चक्षु श्रोत्र आदि इंद्रियां शरीरमें तथा सूर्य, चंद्र, वायु आदि जगतमें देव हैं और ये सब प्राणके वशमें हैं। प्राणकी शक्ति इनके अंदर जाती है और इनके द्वारा कार्य करती है। जिस प्रकार प्राणकी शक्ति आंखमें जाकर आंखको देखनेके कार्य करनेके लिये समर्थ बनाती है, उसी प्रकार सूर्यके अंदर विश्वव्यापक प्राणशक्ति रहकर प्रकाश कर रही है। इसलिये आंखकी दृष्टि और सूर्यकी प्रकाशशक्ति न आंख और सूर्यकी है प्रत्युत प्राणकी है इसीप्रकार अन्य इंद्रियों और देवताओंके विषयमें जानना उचित है। देव शब्द जैसा शरीरमें इंद्रियवाचक है उसी प्रकार जगतमें अग्नि वायु आदि देवताओंका भी वाचक है । पाठक इस दृष्टिको धारण करके अग्नि आदि देवताओंके सूक्तोंका विचार करें ।

उक्त सूक्तमें दूसरी बात यह है कि, अग्नि, सूर्य, इंद्र, वायु, पृथिवी, रुद्र आदि शब्द प्राणवाचक होनेसे इन देवताओंके सूक्तोंमें भी प्राणविद्या प्रकाशित हुई है । इस-लिये जो सज्जन अग्नि आदि सूक्तोंका विचार करते हैं वे उक्त सूक्तोंमें विद्यमान प्राणविद्याका भी विचार करें। अर्थात् अग्नि सूर्य आदि देवताओंके नामोंका “ प्राण” अर्थ समझकर उन सूक्तोंका अर्थ करें । जो सूक्त सामान्य अर्थवाले होंगे उनके अर्थ इस प्रकार हो सकते हैं । देखिये—

प्राणरूप अग्नि ।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ॥ यशसं वीरवत्तमम् ॥

ऋ.१।१।३

“ (अग्निना) प्राणसे (रयिं) शोभा और (पोषं) पुष्टि (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अश्नवत्) प्राप्त होती है । और वीर्ययुक्त यश भी मिलता है । ”

यह अत्यंत स्पष्ट ही है कि प्राण चले जायगा तो न तो शरीरकी शोभा बढेगी और न शरीरकी पुष्टि होगी, फिर यश मिलना तो दुरापास्त ही है। इसप्रकार बहुत विचार हो सकता है, यहां उतना स्थान नहीं है, इसलिये यहां केवल दिग्दर्शन ही किया है। वेदके गूढ रहस्योंका इसप्रकार पता लग जाता है, इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे वेदका स्वाध्याय प्रतिदिन किया करें। स्वाध्याय करते करते किसी न किसी समय वैदिक दृष्टि प्राप्त होगी और पश्चात् कोई कठिनता नहीं होगी।

उक्त सूक्तोंमें तीसरी बात यह है कि अग्नि आदि शब्दोंके गूढ अर्थोंसे प्राणविद्याका महत्त्व उसमें वर्णन किया है। इसका थोडासा स्पष्टीकरण देखिए—

(१) देवानां वह्नितमः असि ।= प्राण " इंद्रियोंको " चलानेवाला है, सूर्यादिकोंको " चलाता है, प्राणायाम द्वारा " विद्वान् " उन्नति प्राप्त करते हैं।

(२) पितॄणां प्रथमा स्वधा असि ।= संपूर्ण पालक शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ और (प्रथमा) अव्वल दर्जेकी पालकशक्ति प्राण है और वह ही (स्व-धा) आत्मत्वकी धारणा करती है।

(३) ऋषीणां सत्यं चरितं असि ।= सप्त ऋषियोंका सत्य (चरितं) चाल चलन अथवा आचरण प्राण ही करता है। दो आंख, दो कान, दो नाक और एक मुख ये सप्त ऋषी हैं ऐसा वेद और उपनिषदोंमें कहा है।

(४) अथर्वांगिरसां चरितं असि ।= (अ-थर्वा, अंगि-रसां) स्थिर अंगोंके रसोंका (चरितं) चलन अथवा भ्रमण प्राण ही करता है। प्राणके कारण पोषक रस सब अंगोंमें भ्रमण करता है और सर्वत्र पहुंच कर सर्वत्र पुष्टि करता है।

इसप्रकार भाव उक्त सूक्तके वाक्योंमें गुप्त रीतिसे है। प्रत्येक शब्दका आशय देखनेसे इसका पता लग सकता है। साधारण सूचना देनेके लिये यहां उपयोगी होनेवाले शब्दार्थ नीचे देता हूं। (१) अग्निः- गति देनेवाला, उष्णता और तेज उत्पन्न करनेवाला; (२) सूर्य-प्रेरणा करनेवाला, प्रकाश देनेवाला; (३) पर्जन्य (पर-जन्य)= पूर्णता करनेवाला; (४) मघवान्- महत्त्वसे युक्त; (५) वायुः= हिलानेवाला और अनिष्टको दूर करनेवाला; (६) पृथिवी - विस्तृत, आधार देनेवाली; (७) रयिः- तेज, संपत्ति, शरीरसंपत्ति आदि; (८) देवः-क्रीडा, विजिगीषा व्यवहार, तेज, आनंद, हर्ष, निद्रा, उत्साह, स्फूर्ति आदि देनेवाला, दिव्य; (९) अ-मृतः= अमरत्वसे युक्त; (१०) प्रजा-पतिः= चक्षु आदि सब प्रजाओंका पालक, प्रजा उत्पन्न करनेवाला; (११) वह्नितमः= अत्यंत प्रेरक; (१२) इंद्रः=

ऐश्वर्यवान्, भेदन करनेवाला; (१३) रुद्रः=(रुत्-रः) शब्दका प्रेरक, (रुद्-रः) दुःखको दूर करके आरोग्य देनेवाला; (१४) व्रात्यः= (व्रत) नियमके अनुसार आचरण करनेवाला। इस प्रकार शब्दोंके अर्थ देखनेसे पता लगेगा, कि उक्त शब्दों द्वारा प्राणकी किस शक्तिका कैसा उत्तम वर्णन किया गया है। वैदिक शब्दोंके गूढ आशय देखनेसे ही वेदकी गंभीरता व्यक्त होती है। आशा है कि पाठक उक्तप्रकार उक्त सूक्तका विचार करेंगे।

अस्तु। इसप्रकार प्राणकी मुख्यता और श्रेष्ठता है और वह प्राण सूर्य किरणोंके द्वारा प्राणियों तक पहुंचता है। सूर्य किरणोंसे वायुमें आता है, वायु श्वाससे अंदर जाता है, उससमय मनुष्यके शरीरमें पहुंचता है। प्राणायामके समय इसप्रकार इस प्राणका महत्त्व ध्यानमें धरना चाहिए।

प्राणका प्रेरक।

केन उपनिषद्में प्राणके प्रेरकका विचार किया है। प्राणके आधीन संपूर्ण जगत् है, तथापि प्राणको प्रेरणा देनेवाला कौन है? जिसप्रकार दीवानके आधीन सब राज्य होता है, उसीप्रकार प्राणके आधीन सब इंद्रियादिकोंका राज्य है। परंतु राजाकी प्रेरणासे दिवान कार्य करता है उसप्रकार यहां प्राणका प्रेरक कौन है, यह प्रश्नका तात्पर्य है।

केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः॥ केन उ० १।१

" किससे नियुक्त होता हुआ प्राण चलता है ? " अर्थात् प्राणकी प्रेरक शक्ति कौनसी है ? इसके उत्तरमें उपनिषद् कहता है कि—

स उ प्राणस्य प्राणः॥ केन उ० १।२

" वह आत्मा प्राणका प्राण है " अर्थात् प्राणका प्रेरक आत्मा है। इसका और वर्णन देखिए—

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते॥
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ केन उ० १।८

" जिसका जीवन प्राणसे नहीं होता, परंतु जिससे प्राणका जीवन होता है, वह (ब्रह्म) आत्मा है, ऐसा तू समझ। यह नहीं कि जिसकी उपासना की जाती है। "

अर्थात् आत्माकी शक्तिसे प्राण अपना सब कारोबार चला रहा है इसलिये प्राणकी प्रेरक शक्ति आत्मा ही है। इस विषयमें ईशोपनिषद्का मंत्र देखने योग्य है—

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ ईश० १६
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ वा० यजु० १७

" जो यह (असौ) असु अर्थात् प्राणके अंदर रहनेवाला पुरुष है वह मैं हूं। " मैं आत्मा हूं, मेरे चारों ओर प्राण विद्यमान है और मैं उसका प्रेरक हूं। मेरी प्रेरणासे प्राण चल रहा है और सब इंद्रियोंकी शक्तियोंको उत्तेजित कर रहा है। इसप्रकार विश्वास रखना चाहिए और अपने प्रभावका गौरव देखना चाहिए। इस विषयमें ऐतरेय उपनिषद्का वचन देखिये—

नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुः ॥ ऐ०उ० १।१।४
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥ ऐ० उ० १।२।४

" नासिका रूप इंद्रिय खुल गये, नासिकासे प्राण और प्राणसे वायु हो गया।" अर्थात् प्राणसे वायु हो गया। आत्माकी प्रबल इच्छाशक्ति थी कि मैं सुगंधका आस्वाद लेलूं। इस इच्छाशक्तिसे नासिकाके स्थानमें दो छेद बन गये, ये ही नासिकाके दो छेद हैं। इसप्रकार नाक बनते ही प्राण हुआ और प्राणसे वायु बना है। आत्माकी इच्छाशक्ति कितनी प्रबल है इसकी कल्पना यहां स्पष्ट हो सकती है। इस-प्रकार शरीरमें छेद करनेवाली शक्ति जो शरीरके अंदर रहती है वह ही आत्मा है, इस को इंद्र कहते हैं क्योंकि यह आत्मा (इदं--द्र) इस शरीरमें सुराख करनेकी शक्ति रखता है। इसकी प्रबल इच्छाशक्तिसे विलक्षण घटनायें यहां सिद्ध हो रहीं हैं, इसका अनुभव अपने शरीरमें ही देखा जा सकता है। जो ऐसा समर्थ जीवात्मा है वह ही प्राणका प्रेरक है। इसका सेवक प्राण है यह प्राण वायुका पुत्र है क्योंकि ऊपर दिये मंत्रमें कहा है कि " वायु प्राण बनकर नासिकामें प्रविष्ट हुआ है। " इसलिये वायुका यह प्राण पुत्र है। यही " मारुती " है, मारुतीका अर्थ ' मारुत् ' अर्थात् वायुका पुत्र। विश्वमें व्यापनेवाला पवन वायु है उसका एक अंश शरीरमें अवतार लेता है, इसालिये इसको ' पवनात्मज ' कहते हैं। यही हनुमान, मारुती, राम--सखा है। अवतारकी मूल कल्पना यहां व्यक्त हो सकती है। विश्वव्यापक शक्तियां अवताररूपसे कर्मभूमिमें अर्थात् इस देहमें आकर कार्य करतीं हैं। वायु के पुत्रोंकी जो कल्पना पौराणिक वाङ्मयमें है वह यही है। इसको चिरंजीव कहा है, इसका कारण इस लेखमें पूर्व स्थलमें बताया ही है। प्राणके अमरत्वके साथ इसका चिरंजीवत्व सिद्ध होना है। इसप्रकार यह हनुमानजीका रूपक है। इसका संपूर्ण वर्णन किसी अन्य स्थानमें किया जायगा। यहां संक्षेपसे सूचना मात्र लिखा है। अर्थात् हनुमानजीकी

उपासना मूलमें प्राणोपासना ही है। यह " दशरथके राम " का सहायक है, दश इंद्रियोंके रथमें जो आनंद रूप आत्मा है उसका यह प्राण नित्य सहायक ही है। तथा " दशमुखकी लंका " को जलानेवाला है, दश इंद्रियोंसे मुख्यतया भोगमें जो प्रवृत्तियां होती हैं उनका प्राणायामके अभ्याससे दहन होता है । इत्यादि विचारसे पूर्वोक्त कल्पना अधिक स्पष्ट होगी। पाठक इसका विचार करें। पूर्वोक्त उपनिषद्में " प्राणका प्रेरक आत्मा " कहा है, और उक्त इतिहासमें " वायुपुत्रका प्रेरक दाशरथी राम " कहा है, दोनोंका तात्पर्य एक ही है। सूक्ष्म वाचक विचारके द्वारा इसके मूलभावको जान सकते हैं।

पूर्वोक्त ईशोपनिषद् के वचनमें " असौ अहं " शब्द आगये है, " प्राणके अंदर रहनेवाला मैं आत्मा " यही भाव बृहदारण्यक के निम्न वचनमें है-

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादंतरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमंतरो यमयति, एष त आत्मा अंतर्याम्यमृतः ॥

बृ० ३।७।१६.

" जो प्राणके अंदर रहता है, प्राणके अंदर रहनेपर भी जिसको (प्राणः न वेद) प्राण जानता नहीं, जिसका शरीर प्राण है, जो अंदरसे (प्राणं यमयति) प्राणका नियमन करता है, (एषः) यह तेरा अंतर्यामी अमर आत्मा है। "

प्राणके अंदर रहनेवाला और प्राणका नियमन करनेवाला यह आत्मा है; इस कथनके अनुसार आत्माका प्राणके साथ नित्य संबंध है यह बात स्पष्ट होती है। मैं आत्मा हूं, प्राण मेरा अनुचर है और प्राणके आधीन संपूर्ण इंद्रियां और शरीर है, यह मेरा वैभव और साम्राज्य है। इसका मैं सच्चा सम्राट् बनूंगा और विजयी तथा यशस्वी बनूंगा, यह वैदिक धर्मकी आदर्श कल्पना है। इस प्राणका वर्णन अन्य रीतिसे निम्न वचनमें हुआ है-

प्राणो वै रं प्राणे हीमानि भूतानि रमंते ॥ बृ० ५।१२।१

प्राणो वा उक्थं प्राणे हीदं सर्वमुत्थापयति ॥ १ ॥ प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यंते ॥ २ ॥ प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यंचि ॥ ३ ॥ प्राणो वै क्षत्रं प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते ॥ ४ ॥ बृ० उ० ५।१३

" प्राण ' र ' है क्योंकि सब भूत प्राणमें रमते हैं। प्राण 'उक्थ' है क्योंकि प्राण सबको उठाता है। प्राण ' यजु ' है क्योंकि प्राणमें सब भूत संयुक्त होते हैं। प्राण

' साम ' है क्योंकि सब भूत प्राणमें सम्यक् रीतिसे रहते हैं। प्राण 'क्षत्र' है क्योंकि प्राण ही क्षतों अर्थात् कष्टोंसे बचाता है। "

इसका प्रत्येक मुख्य शब्द प्राणकी शक्तिका वर्णन कर रहा है। ' साम, यजु ' आदि शब्द अन्यत्र वेदवाचक होते हुए भी यहां केवल गुणवाचक हैं। इस शब्दप्रयोगसे स्पष्ट पता लग जाता है, कि वैदिक समयमें शब्दोंका विशेष रीतिसे भी उपयोग होता था और सामान्य रीतिसे भी होता था। यहां सामान्य रीतिका प्रयोग है। जहां सामान्य रीतिसे प्रयोग होगा वहां उसका यौगिक अर्थ करना चाहिये और जहां विशेष रीतिसे प्रयोग होगा वहां योग-रूढीका अर्थ समझना चाहिए। इस प्रकार एक ही शब्द के दोनों अर्थ होनेपर भी अर्थविषयक ठीक व्यवस्था लगाई जा सकती है। आशा है कि पाठक इस व्यवस्थाको वेदमंत्रोंमें देखेंगे। यह बात वेदका अर्थ करनेके समय विशेष महत्त्वकी है इसलिये यहां लिखी है।

अंगोंका रस।

शरीरके अंगोंमें एक प्रकारका जीवनका आधाररूप रस है। इसका वर्णन निम्न मंत्रमें है—

आंगिरसोऽगानां हि रसः, प्राणो वा अंगानां रसः ....
तस्माद्यस्मात्कस्माचांगात् प्राण उत्क्रामति, तदेव तच्छुष्यति ॥
बृ० १।३।१९

" प्राण ही अंगोंका रस है, इसलिये जिस अंगसे प्राण चले जाता है, वह अंग सूख जाता है। "

वृक्षोंमें भी यही बात दिखाई देती है। यह अंग--रसका महत्त्व है। जीवात्माकी इच्छासे प्राणके द्वारा यह रस सब शरीरमें घुमाया जाता है और प्रत्येक अंगमें आरोग्य और बल बढाया जाता है। प्रबल इच्छा शक्तिद्वारा आरोग्य संपादन करनेका उपाय इससे विदित होता है। इच्छा शक्ति और प्राण इनका बल बढानेसे उक्त सिद्धि होती है। आत्माकी प्रेरणा प्राणमें होती है, प्राणसे मन संलग्न रहता है, मनसे इच्छा शक्तिका नियमन होता है, इच्छासे रुधिरमें परिणाम होकर इसके द्वारा संपूर्ण शरीरमें इष्ट कार्य होता है। देखिये-

पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते, मनः प्राणे,
प्राणस्तेजसि, तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ छां० उ० ६।८।६

" पुरुषकी वाणी मनमें, मन प्राणमें, प्राण तेजमें, और तेज परदेवतामें संलग्न होता है। " यही परंपरा है। परदेवताका तात्पर्य यहां आत्मा है। प्राणविद्याकी परमसिद्धि इस प्रकारसे सिद्ध होती है।

प्राण और अन्य शक्तियां।

प्राणके आधीन अनेक शक्तियां हैं, उनका प्राणके साथ संबंध देखनेके लिये निम्न मंत्र देखिये—

प्राणो वाव संवर्गः। स यदा स्वपिति, प्राणमेव वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणं श्रोत्रं, प्राणं मनः, प्राणो ह्येवैतान् संवृंक्ते ॥ ३ ॥ छां० ४।३।३

" जब यह सोता है तब वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि सब प्राणमें ही लीन होतीं हैं क्यों कि प्राण ही इनका संवारक है। "

जिसप्रकार सूर्य उगनेके समय उसके किरण फैलते हैं और अस्तके समय फिर अंदर लीन होते हैं, इसीप्रकार प्राणरूपी सूर्यका जागृतिके प्रारंभमें उदय होता है उस समय उसकी किरणें इंद्रियादिकोंमें फैलतीं हैं और निद्राके समय फिर उसीमें लीन होतीं हैं। इसप्रकार प्राणका सूर्य होना सिद्ध होता है। इसका सादृश्य एक अंशमें है, यह बात भूलना नहीं चाहिये। सूर्यके समान प्राण भी कभी अस्त नहीं होता, परंतु अस्त और उदय ये शब्द हमारी अपेक्षासे उसमें प्रयुक्त हो रहे हैं। इस विषयमें निम्न वचन और देखिये—

पतंग।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो, दिशं दिशं पतित्वा, अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, बंधनमेवोपश्रयत; एवमेव खलु, सोम्य, तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा, ऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा, प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबंधनं हि सोम्य मनः ॥ छां० उ० ६।८।२

"जिसप्रकार पतंग, डोरीसे बंधा हुआ, अनेक दिशाओंमें घूम कर, दूसरे स्थानपर आधार न मिलनेके कारण, अपने मूल स्थानपर ही आजाता है; इसीप्रकार निश्चयसे, हे प्रिय शिष्य ! वह मन अनेक दिशाओंमें घूम धाम कर, दूसरे स्थानपर आश्रय न मिलनेके कारण, प्राणका ही आश्रय करता है क्योंकि, हे प्रियशिष्य ! मन प्राणके साथ ही बंधा है। "

इसप्रकार प्राणका मनके साथ संबंध है, यही कारण है कि प्राणायामसे प्राण

बलवान होनेपर मन भी बलिष्ठ होता है, प्राणका निरोध होनेसे मनका संयम होता है। प्राणकी चंचलतासे मन चंचल होता है और प्राणकी स्थिरतासे मन भी स्थिर होता है। इससे प्राणायामका महत्त्व और उसका मनके संयमके साथ संबंध विदित हो सकता है।

प्राणसे मनका संयम होनेके कारण अन्य इन्द्रियां भी प्राणके निरोधसे स्वाधीन होतीं हैं, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि प्राणसे मनका संयम, और मनके वश होनेसे अन्य इंद्रियोंका वश होना स्वाभाविक ही है। इसप्रकार प्राणायामसे संपूर्ण शक्तियां वशीभूत होतीं हैं। यही भाव निम्न वचनमें गुप्त रीतिसे है—

वसु रुद्र आदित्य।

प्राणा वाव वसव, एते हीदं सर्वं वासयंति ॥१॥ प्राणा वाव रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयंति ॥२॥ प्राणा वावादित्याः एते हीदं सर्वमाददते ॥ ३ ॥

छां० ३।१६

" प्राण वसु हैं क्योंकि ये सबको वसाते हैं, प्राण रुद्र हैं क्योंकि इनके चले जानेसे सब रोते हैं, प्राण आदित्य हैं क्योंकि ये सबको स्वीकारते हैं। "

इस स्थान पर "**प्राणा वाव रुद्राः एते हीदं सर्वं रोदनं द्रावयन्ति**" अर्थात् "प्राण रुद्र हैं क्योंकि ये इस सब दुःखको दूर करते हैं।" ऐसा वाक्य होता तो प्राणका दुःख निवारक कार्य व्यक्त हो सकता था। परंतु उपनिषद्में "**ऐते हीदं सर्वं रोदयंति।**" अर्थात् ये प्राण जब चले जाते हैं तब वे सबको रुलाते हैं, इतना प्राणोंपर प्राणियोंका प्रेम है, ऐसा लिखा है। शतपथादिमें भी रुद्रका रोदन धर्म ही वर्णन किया है, परंतु दुःख निवारक धर्म भी उनमें उससे अधिक प्रबल है। इसका पाठक विचार करें। इस प्रकार प्राणका महत्त्व होनेसे ही कहा है—

प्राणो ह पिता, प्राणो माता, प्राणो भ्राता, प्राणः स्वसा, प्राण आचार्यः, प्राणो ब्राह्मणः॥ छां० उ० ७।१५।१

" प्राण ही माता, पिता, भाई, बहन, आचार्य, ब्राह्मण आदि है " ये शब्द प्राणका महत्त्व बता रहे हैं। (१) **माता**–मान्यहित करनेवाला; (२) **पिता**–पाता, पालक, संरक्षक, (३) **भ्राता**–भरण पोषण करनेवाला; (४) **स्वसा**–(सु असा) उत्तम प्रकार रखनेवाला; (५) **आचार्य**–आत्मिक गुरु है, क्योंकि प्राणके आयामसे आत्माका साक्षात्कार होता है इसलिये, (६) **ब्राह्मणः**–यह ब्रह्मके पास

लेजानेवाला है ।

ये शब्दोंके मूलभाव यहां प्राणके गुण बता रहे हैं । यह प्राणका वर्णन है, इतना प्राणका महत्त्व है इसलिये अपने प्राणके विषयमें कोई भी उदासीन न रहे। सब लोग स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं वह स्वर्ग प्राण ही है । देखिये—

तीन लोक ।

वागेवायं लोकः मनो अंतरिक्ष लोकः प्राणोऽसौ लोकः ॥ बृ० १।५।४

" वाणी यह पृथिवी लोक है, मन अंतरिक्ष लोक है और प्राण वह स्वर्ग लोक है । "

इसलिये ही प्राणायामके अभ्याससे स्वर्गधामकी प्राप्ति होती है । देखिये प्राणकी कितनी श्रेष्ठता है !! इसप्रकार उपनिषदोंमें प्राणविद्या है । विस्तार करनेकी कोई जरुरत नहीं है । संक्षेपसे आवश्यक बातोंका उल्लेख यहां किया है। इससे उपनिषदोंकी प्राण विद्याकी कल्पना हो सकती है । जो पाठक इसकी और अधिक गहराई देखना चाहते हैं वे स्वयं उपनिषदोंमें ही इसको देख सकते हैं । आशा है कि पाठक इस-प्रकार इसविद्याका अभ्यास करेंगे ।

प्राणायामसे बहुत प्रकारकीं शक्तियां प्राप्त होतीं ह ऐसा प्राणके विविध शास्त्रोंमें लिखा है । प्राणायामका अभ्यास करनेके विना ही उक्त शक्तियोंकी प्राप्ति होना ही असंभव है । अभ्यास के विना उन्नति की प्राप्ती सर्वथा ही असंभव है । प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये प्राणकी शक्तिकी कल्पना प्रथम होनेकी आवश्यकता है । वह कार्य सिद्ध होनेके लिये इस लेखका उपयोग हो सकता है। इस सूक्तको अच्छी प्रकार पढनेके पश्चात् मननद्वारा अपनी प्राणशक्तिका आकलन करना चाहिए । अपने प्राणका यह स्वरूप है उसका यह महत्त्व है और इसकी उपासनासे इसप्रकार लाभ हो सकता है, इत्यादि विषयकी उत्तम कल्पना इस सूक्तके अभ्यास से होगी । इतनी कल्पना दृढ होनेके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करनेसे बहुत लाभ हो सकता है ।

स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि॰ सातारा) की हिंदी पुस्तकें

(१) यजुर्वेद। विनाजिल्द मू. १॥) डा०व्य०॥)
कागजी जिल्द २) ,,
कापडी जिल्द २॥) ,,

(२) संस्कृतपाठमाला। १ अंकका मू.।=) -)
१२ अंकोंका मूल्य ४) ॥)
२४ अंकोंका मूल्य ६॥) ॥।=)

३ वै. यज्ञसंस्था भाग १-२ प्रत्येकका मू १) ।)

(४) अथर्ववेदका सुबोधभाष्य।
१ प्रथम काण्ड सजिल्द २) ॥)
२ द्वितीय काण्ड ,, २) ॥)
३ तृतीय काण्ड ,, २) ॥)
४ चतुर्थ काण्ड ,, २) ॥)
५ पंचम काण्ड ,, २) ॥)
६ षष्ठ काण्ड ,, २) ॥)
७ सप्तम काण्ड ,, २) ॥)
८ अष्टम काण्ड ,, २) ॥)
९ नवम काण्ड ,, २) ॥)
१० द्वादश काण्ड ,, २) ॥)
११ त्रयोदश कांण्ड ,, १) ।=)
१२ चतुर्दश कांड ,, १) ।)
१३ १५ से १८ तक ४ काण्ड २॥) ॥)

(५) छूत और अछूत।
१-२भाग दोनोंका मू० १॥।) ॥)

(६)भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)
अध्याय १ से १० प्रत्येकका मू०॥) डा०व्य०=)

(७) महाभारतकी समालोचना।
भाग १-२ प्रत्येकका मू. ॥) =)

(८) वेदका स्वयंशिक्षक। भाग १-२
प्रत्येकका मू. १॥) ।=)

(९) योगसाधनमाला।
१ संध्योपासना। १॥) ।-)
२ योगके आसन। (सचित्र) २) ।=)
३ ब्रह्मचर्य। १) ।-)
४ सूर्यभेदन-व्यायाम। ,, ॥) ॥)
५ योगसाधनकी तैयारी। ॥।) ।)

१०) यजु.अ.३६ शांतिका उपाय॥=) ।)

(११) शतपथबोधामृत ।) -)

(१२) देवतापरिचय-ग्रंथमाला।
१ रुद्रदेवतापरिचय ॥) =)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ॥=) =)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡) -)
४ देवताविचार। ≡) -)
५ अग्निविद्या। १॥) ।-)

(१३) बालकधर्मशिक्षा।
१ प्रथम भाग -) -)
२ बालकधर्मशिक्षा।द्वितीय भाग =) -)
३ वैदिक पाठमाला। प्रथम पुस्तक≡) -)

(१४) आगमनिबंधमाला।
१ वैदिक राज्यपद्धति। ।-) -)
२ मानवी आयुष्य। ।) -)
३ वैदिक सभ्यता। ॥।) ≡)
४ वैदिक चिकित्साशास्त्र। ।=) -)
५ वैदिक स्वराज्यकी महिमा। ॥) =)
६ वैदिक सर्पविद्या। ॥) =)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ॥) =)
८ वेदमें चर्खा। ॥) =)
९ वैदिक धर्मकी विशेषता। ॥।) =)
१० तर्कसे वेदका अर्थ। ॥) =)
११ वेदमें रोगजंतुशास्त्र। ≡) -)
१२ वेदमें लोहेके कारखाने। ।-) -)
१३ वेदमें कृषिविद्या। ≡) -)
१४ वैदिक जलविद्या। =) -)
१५ आत्मशक्तिका विकास ।-) -)
१६ वैदिक उपदेशमाला। ॥) =)
१७ ब्रह्मचर्यका विघ्न =) -)

(१५) उपनिषद्‌माला। १ ईशोपनिषद्१) ।-)
२ केन उपनिषद्। १।) ।-)

(१६) अन्य ग्रंथ।
१ वैदिक अध्यात्मविद्या ॥) =)
२ गीता-समीक्षा =) -)
३ भगवद्गीता-लेखमाला ॥) =)
४ गीताश्लोकार्धसूची ।=) =)
5 Sun Adoration १) ।=)

Regd. N. B. 1463

गीता।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

इस मासिकमें निम्न लिखित विषय होंगे—

(१) श्रीमद्भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषा टीका १६ पृष्ठ, (२) गीताके अन्यान्य विषयोंपर निबन्ध, १६ पृष्ठ, और (३) उपनिषदादि संबंधी निबंध ८ पृष्ठ। (कुल पृष्ठ ४०)

"गीता" का वार्षिक मूल्य म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) रु०

"वैदिक धर्म" का " म० आ० से ३) रु. वी०पी०से ३।=) "

दोनों मासिकोंका सहूलियत का वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

" " " " " " वी. पी. से ५।।।) रु.

दोनों मासिकोंके ग्राहक बनकर पाठक लाभ उठा सकते हैं।

संपूर्ण महाभारत।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। सजिल्द अथवा विनाजिल्द जैसा आप चाहते हैं वैसा तैयार है। इस महाभारतका मूल्य विनाजिल्द ६०) रु० और सजिल्द ६५) रु० रख गया है। जो ग्राहक सब मूल्य म०आ० द्वारा पेशगी भेज देंगे, उनके लिये रेलसे भेजनेका व्यय माफ होगा। आप अपना रेलका स्टेशन लिखिये। इस स्टेशनपर हम रलवे पार्सल द्वारा यह ग्रंथ भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। यदि रेलवे स्टेशन आपके पास नहीं है, तो डाकद्वारा भेज देंगे। रुपया म० आर्डरसे भेज दें, जिसे आधा डाकव्यय माफ होगा। वी० पी० से मंगवायेंगे तो सब डाकव्यय आपको देना होगा।

महाभारतके फुटकर पर्वोंका (विनाजिल्द) डा० व्य० सहित मूल्य निम्न लिखा है।

आदिपर्व ६।।=) रु.; सभापर्व २।।) रु.; वनपर्व ९॥) रु.; विराटपर्व २) रु; उद्योगपर्व ५।।=) भीष्मपर्व ४।।।=) रु.; द्रोणपर्व ८।।) रु.; कर्णपर्व ३।।। रु.; शल्यपर्व २।।-) रु.; सौप्तिकपर्व ।।।) स्त्रीपर्व ।।।-) रु.; शांतिपर्व १२) रु.; अनुशासनपर्व ६।।=) रु.; आश्वमेधिकपर्व २।।-) रु. आश्रमवासिकपर्व १) रु; मौसल-महाप्रास्थानिक-स्वर्गारोहणपर्व ।।।-) रु०

[सूचना-महाभारतका कोईभी फुटकर पर्व आप मंगवा सकते हैं। डाकव्ययसहित मूल्य भेज दें, जिससे आपका अधिक लाभ होगा।] बडा सूचीपत्र और नमुनापृष्ठ मंगवाइये

मंत्री—स्वाध्यायमंडल, औंध, [जि० सातारा]

मुद्रक और प्रकाशक—श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध.